आप्तवाणी
श्रेणी-14 (भाग-3)

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी - 14

भाग - 3

मूल गुजराती संकलन : दिपक देसाई
हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ, मई, 2023

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 250 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
एच.बी.कापडिया न्यू हाइस्कूल के सामने,
छत्राल-प्रतापपुरा रोड, छत्राल,
ता. कलोल, जि. गांधीनगर-382729, गुजरात
फोन : +91 79 3500 2142

ISBN/eISBN : 978-93-91375-37-9

Printed in India

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो ऊवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

‘दादा भगवान’ कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन पर बैठे श्री ए.एम.पटेल रूपी देहमंदिर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। ‘मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?’ इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य को भी प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे ‘अक्रम मार्ग’ कहा। क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना! अक्रम अर्थात् बिना क्रम के, लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ‘‘यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। जो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। मैं खुद भगवान नहीं हूँ। मेरे भीतर प्रकट हुए दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।’’

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) को 1958 में आत्मज्ञान प्रकट हुआ था। उसके बाद 1962 से 1988 तक देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे।

दादाश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी।

आत्मज्ञानी पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। वर्तमान में पूज्य नीरू माँ के आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में निमित्त भाव से आत्मज्ञान करवा रहे हैं।

इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, सभी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

समर्पण

‘नेति, नेति’ वेद वदे, न मिलेगा ‘आत्मा’ शास्त्रों में;
‘गो टु ज्ञानी’, निजात्मा प्राप्ति, दादा कृपा से सहज में।

कलिकाल का परम आश्चर्य, प्रकट हुए दादा भगवान अवनी पर;
अक्रम विज्ञान से, ज्ञानी संज्ञा से, आतम प्रकटा स्व-स्वरूप में।

विस्मृत हुआ था मूल आत्मा, अज्ञान मान्यताओं में;
आतम ज्ञान से, स्व के भान से, देह से अलग ‘मैं शुद्धात्मा’।

गढ़ता मूर्ति ‘खुद’ अपनी ही, करता प्रतिष्ठा ‘व्यवहार आत्मा’;
मन-वचन-काया ‘निश्चेतन चेतन’, निर्जरे ‘व्यवस्थित’ हिसाब से।

श्रुत-मति-अवधि-मनःपर्यव, केवलज्ञान वर्णन शास्त्रों में;
अनुभव-*लक्ष*-प्रतीत, पाया निज पद, ज्ञानी कृपा से प्रत्यक्ष में।

गोपित ज्ञान ‘दादा’ हृदय में बसा, आश्चर्य यह कि वह शब्दों में निकला;
अनंत ऐश्वर्यमय, अलौकिक वाणी, ‘आप्तवाणी’ में अमृत भरा।

समाए सर्व स्पष्टीकरण विज्ञान के, अपूर्व चौदह आप्तवाणियों में;
ज्ञानी करुणा से बरसा ज्ञान, समर्पित जगकल्याण में।

भविष्य के शास्त्रों जैसी हैं आप्तवाणियाँ

ये जो चौदह आप्तवाणियाँ हैं, वे सभी आगमों के सार जैसी हैं। इसलिए फिर लोगों को आगमों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

अपनी इन आप्तवाणियों में तमाम शास्त्र आ चुके होंगे और लोगों के लिए नए शास्त्रों के रूप में, वेदांतियों और जैनिज़म सभी के लिए यही शास्त्र चलेंगे। अभी से ही इसकी शुरुआत हो गई है।

अपनी आप्तवाणियाँ तो इसलिए लिखी गई हैं ताकि बाहर के लोगों को यह भान उत्पन्न हो कि, 'आत्मा क्या है और क्या नहीं एवं यह परमात्मा क्या है और क्या नहीं।' यह किसी एक धर्म वालों के लिए नहीं लिखा गया है। ये चौदह आप्तवाणियाँ तो हेल्पिंग हो जाएँगी। सभी धर्म इन पर से चलेंगे। सभी के लिए, पूरे वर्ल्ड के कल्याण के लिए लिखा है।

ये आप्तवाणियाँ बहुत इफेक्टिव हैं। वीतराग शास्त्रों के सभी लॉ (नियम) इसमें आ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने तो ऐसा साहित्य दिया है, जैसे गिरे हुए, बिखरे हुए मोतियों को ढूँढ कर हार बनाया हो। बहुत-बहुत धन्यवाद है। हम आपके बहुत ऋणी हैं।

दादाश्री : अपनी इन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद सभी धर्म वाले लोग क्या कहते हैं कि, 'अब शास्त्रों को एक तरफ रख देंगे तो चलेगा।' अपनी देशी भाषा में है। इसका फिर अन्य भाषाओं में अनुवाद होगा। चौदह आप्तवाणियाँ बनेंगी और ये ही शास्त्र के रूप में चलेंगी।

प्रश्नकर्ता : चौदह आप्तवाणियाँ ही बनेंगी या उनसे आगे भी बनेंगी?

दादाश्री : नहीं, चौदह आप्तवाणियाँ ही बनेंगी और आगे भी बनें, उतना माल तो बहुत है लेकिन चौदह में सब आ जाएगा।

ये आप्तवाणी की पुस्तकें तो हज़ारों सालों तक खूब काम करेंगी।

प्रस्तावना

परम पूज्य दादाश्री की ज्ञानवाणी का संकलन अर्थात् व्यवस्थित शक्ति से संयोग व निमित्तों के संकलन का परिणाम। अनंत जन्मों के परिभ्रमण में ज्ञानी पुरुष परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) को हुए अनेक अनुभव, जो उनकी निर्मोही दशा के कारण हूबहू बरतते थे, उससे इस जन्म में, निमित्ताधीन सहज ज्ञानवाणी निकलने पर, आत्मा-अनात्मा के संधिस्थान पर के गुह्य रहस्यों की सूक्ष्म स्पष्टता होती गई। पूज्य नीरू माँ ने इस जगत् पर असीम कृपा की कि दादाश्री के तमाम शब्दों को टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड कर लिया।

पूज्य नीरू माँ ने दादाश्री की वाणी को संकलित करके चौदह आप्तवाणियाँ, प्रतिक्रमण, वाणी का सिद्धांत, माँ-बाप बच्चों का व्यवहार, पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार, पैसों का व्यवहार, आप्तसूत्र, निजदोष दर्शन से निर्दोष, समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य जैसी अनेक पुस्तकें और विविध विषयों पर बहुत सारी पुस्तिकाएँ प्रकाशित की थीं और उनकी स्थूल देह की अनुपस्थिति में इस वाणी को पुस्तकों में संकलन की कार्यवाही बहुत से ब्रह्मचारी भाईयों-बहनों तथा सेवार्थी महात्मागणों के आधार पर आगे बढ़ रही है।

जिस प्रकार कारखाने में माल-सामान इकट्ठा होने के बाद फाइनल प्रोडक्ट बनता है, उसी प्रकार से ज्ञानवाणी के इस दादाई कारखाने में दादा की ज्ञानवाणी से पुस्तकें बन रही हैं। सर्वप्रथम, कैसेट में से दादाश्री की वाणी लिखी जाती है। उसके बाद उसकी चेकिंग होती है और फिर रिचेकिंग होकर, उसकी शुद्धता की जाँच करने के बाद, वाणी को ज्यों का त्यों संभाले रखने के पूर्ण प्रयास किए जाते हैं। उसके बाद उस वाणी का सब्जेक्ट (विषय) के अनुसार संग्रह होता है। फिर उसका विविध दृष्टिकोण वाली बातों में विभाजन होता है और एक ही व्यक्ति के साथ दादाश्री सत्संग की बातचीत कर रहे हों, ऐसे भाव सहित अज्ञान से ज्ञान के और केवलज्ञान तक के संधिस्थान की सारी स्पष्टता करती हुई वाणी का संकलन होता है। अंत में वह

संकलन प्रूफ रीडिंग होने के बाद छपता है। इसमें, सूक्ष्म रूप से परम पूज्य दादा भगवान की कृपा, पूज्य नीरू माँ के आशीर्वाद, देवी-देवताओं की दैवीय सहायता से और अनेक महात्माओं की सेवा के निमित्त से अंत में यह ग्रंथ के रूप में आपके हाथ में आ रहा है।

जैसे एक फिल्म के लिए प्रोड्युसर व डायरेक्टर अलग-अलग क्लिप बनाते हैं, एक कलाकार के जीवन की बहुत सारी फिल्में रिकॉर्ड करते हैं, बचपन, विवाह और मृत्यु कश्मीर में होते हैं। फिर स्कूल, युवावस्था, व्यापार वगैरह दिल्ली में करता है। घूमने पेरिस, स्विट्ज़रलैंड जाता है। इस तरह अनेक क्लिप होती हैं लेकिन फिर एडिटिंग होने के बाद, हमें बचपन से लेकर मृत्यु तक के सीन देखने को मिलते हैं। उसी प्रकार दादाश्री ने अपनी वाणी में एक सब्जेक्ट के लिए बिगिनिंग से एन्ड (शुरुआत से अंत) तक की सभी बातें बता दी हैं। अलग-अलग निमित्ताधीन, अलग-अलग समय पर, अलग-अलग क्षेत्र में निकली हुई वाणी, यहाँ पर एडिटिंग (संकलित) होने के बाद पुस्तक के रूप में प्राप्त हो रही है। जिसमें दादाश्री ने आत्मा-अनात्मा के संधिस्थान पर रहकर पूरा सिद्धांत अनावृत किया है। हम इस वाणी को पढ़कर, स्टडी करेंगे ताकि उन्होंने जो अनुभव किया, वह हमें समझ में आए और अंत में हमें भी अनुभव हो।

- दीपक देसाई

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू)
53. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
55. आप्तवाणी - 14 (भाग-1 से 3)
58. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

[सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध]

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपादकीय

शास्त्रों में आत्मज्ञान और आत्मा के स्वरूप के बारे में स्पष्टीकरण तो दिए गए हैं लेकिन वह बहुत सूक्ष्मता से दिए गए हैं, उसका यथार्थ थाह पाना अति कठिन होता है। और उसकी यथार्थ समझ प्राप्ति के लिए ज़रूरत पड़ती है अनुभवी पुरुष की, अध्यात्म विज्ञानी की, जिनके हृदय में तीर्थंकरों द्वारा, पूर्व काल के ज्ञानियों द्वारा दिया गया, यह अति सूक्ष्म और गोपित विज्ञान निरावृत हुआ है।

इस काल के लोगों का पुण्य है कि परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) को 1958 में आत्मविज्ञान प्रकट हुआ और फिर मूल प्रकाश के आधार पर उन्होंने जगत् के तमाम अति गुह्य रहस्य अनावृत किए, और वह भी आज के युग में आसानी से समझ में आ जाए, ऐसी भाषा में और इस काल के अनुरूप उदाहरणों सहित।

दादाश्री के पास विविध लोग विभिन्न प्रकार की समझ लेकर आते थे और प्रश्न पूछते थे। उनमें कुछ शास्त्रों के अभ्यासी भी होते थे, कुछ ऐसे भी होते थे जिन्हें अध्यात्म में रुचि न हो, पढ़े-लिखे, अनपढ़, शहर के और गाँव के भी होते थे, तो हर एक को आसानी से समझ में आ जाए और वह भी आज के युग की भाषा में इसलिए एक ही चीज़ के लिए अलग-अलग उदाहरण और अलग-अलग नाम देकर सिद्धांतों को समझाया है।

उदाहरण के तौर पर किसी प्रश्नकर्ता के प्रश्न में हो कि, 'कर्म कौन चार्ज करता है?' उसके जवाब में... वह व्यक्ति कौन से मील पर खड़ा है, उसका क्या बैकग्राउंड है, उस अनुसार अलग-अलग प्रकार से दादाश्री ने जवाब दिए हैं। कोई शास्त्रों का अभ्यासी हो तो उसे बताया है कि व्यवहार आत्मा कर्म चार्ज करता है, लेकिन यदि वही प्रश्न, कोई शास्त्र अभ्यासी नहीं हो तो उसे ऐसा बताया है कि पावर चेतन कर्म चार्ज करता है। क्योंकि वह जानता है कि हर रोज़ घर पर पावर भरी बैटरी क्या काम करती है, इसलिए उसे तुरंत ही समझ में फिट हो जाता है कि कर्म किस तरह से चार्ज होते हैं। ज्ञानी पुरुष की यही बलिहारी है कि

सामने वाला व्यक्ति जितनी आसानी से समझ सकता है, उसी अनुसार समझाते हैं।

खंड-1 में आत्मा के स्वरूप रियली, रिलेटिवली, संसार व्यवहार में हर एक प्रकार से, कर्म बाँधते समय, कर्मफल भोगते समय और खुद मूल स्वरूप में कौन है, इस प्रकार अस्तित्व के स्वरूपों को, जो ज्ञानी पुरुष के श्रीमुख से बोले गए हैं, उनकी हमें विस्तृत स्पष्टता प्राप्त होती है।

संसार परिभ्रमण में मूल आत्मा बिगड़ा ही नहीं है, द्रव्य-गुण व पर्याय से शुद्ध ही है, वह बात त्रिकाल सत्य है। अज्ञानता से, संयोगों के दबाव से विभाविक आत्मा उत्पन्न हो गया है। तो इस तरह यह व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है और वह मूल आत्मा से अलग विभाग बन गया है। उसी से कर्म चार्ज होते हैं। उसे पावर चेतन, मिश्र चेतन, व्यवहार आत्मा, चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा, सूक्ष्मतम अहंकार ऐसे नाम दिए गए हैं और चार्ज हो चुका जब डिस्चार्ज होता है तब उसके लिए डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा, मिकेनिकल चेतन, निश्चेतन चेतन, मुर्दा, पावर, पावर भरा हुआ पुतला, सूक्ष्मतर अहंकार जैसे विविध शब्दों का उपयोग हुआ है।

मूल आत्मा और फिर उत्पन्न हुआ विभाविक आत्मा, उनकी जो हकीकत दादाश्री समझाना चाहते हैं, वह उन्हें दिखाई देती है, अनुभव में है और हम अभी समझने की कोशिश कर रहे हैं कि हकीकत क्या है? जिस वस्तु का हमें बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है, वह बात वे किस तरह से समझाएँ? जिस माइल स्टोन तक हम अभी तक पहुँचे नहीं हैं, उन्हें वे उदाहरणों द्वारा समझाने का प्रयत्न करते हैं। फिर भी वास्तव में तो रियल वस्तु का कोई उदाहरण हो ही नहीं सकता।

इसलिए दादाश्री कहते हैं कि, 'जो मुझे दिखाई देता है न, वह आपको एक्ज़ेक्ट समझाया नहीं जा सकता। ये जितने शब्द मेरे पास हाथ में आ सकते हैं, उनसे मैं आपको समझाने का प्रयत्न करता हूँ। बाकी, इसके लिए शब्द हैं ही नहीं। यह तो, ढूँढ-ढूँढकर शब्द इकट्ठे करने पड़ते हैं, आत्मा का वर्णन करने के लिए। बाकी, मूल आत्मा निःशब्द है, अवर्णनीय है, अवक्तव्य है।'

जैसे, एक हाथी रूम में हो और दरवाज़ा बंद हो तो उसमें सुई की नोक जितना एक छोटा सा छेद कर दें तो हाथी की सूंड, चेहरा, आँख वगैरह दिखाई देंगे। दूसरी तरफ छेद करने से उसमें से पूँछ दिखाई देगी। दरवाज़े में नीचे छेद करके देखें तो पैर दिखाई देंगे। इसी प्रकार व्यू पॉइन्ट वाले को मूल वस्तु का खंडों (टुकड़ों) में दर्शन होता है। फिर भी मूल वस्तु अखंड है लेकिन समझाते समय, वाक्य बोलते समय, अलग बात निकलती है और फिर समझने वाले में भी आवरण होते हैं, वह अलग प्रकार से समझता है।

अत: इस मूल सिद्धांत को समझना तो बहुत मुश्किल है फिर भी कारुण्य भाव से, कृपा से दादाश्री शब्दों द्वारा समझा सकते हैं।

दूसरी एक स्पष्टता करनी रही है कि जिन्होंने अन्य सभी आप्तवाणियों का अभ्यास किया हो, उन्हें यह आप्तवाणी पढ़ते हुए ऐसा लगेगा कि अभी तक के आप्तवाणी के अभ्यास से जो सार निकला था, वह इस आप्तवाणी में अलग क्यों है? ज्ञानी की वाणी में विरोधाभास तो नहीं होता है, तब फिर आप्तवाणियों में अलग-अलग सार क्यों दिया गया है? उदाहरण के तौर पर, पहले की आप्तवाणियों में पढ़ा होगा कि 'प्रतिष्ठित आत्मा' ही जगत् का अधिष्ठान है और वही नए कर्म का बंधन करता है और इस आप्तवाणी में पढ़ेंगे तो दादाश्री कहते हैं कि वास्तव में तो ज्ञान मिलने के बाद जो बाकी बचा, वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' है और अज्ञानता में जो कर्म बाँधता है, वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं, बल्कि 'व्यवहार आत्मा' है। तो ऊपरी तौर पर यह विरोधाभासी लगता है लेकिन वास्तव में ज्ञानी का अंतर आशय समझ में आए तो वैसा कुछ है ही नहीं।

जब तक खुद को आत्मा का अनुभव नहीं हुआ है तब तक खुद अज्ञानी है। अत: अज्ञान दशा में डिस्चार्ज कर्मों में एकाकार रूप से ही बरतता है अर्थात् खुद देह के रूप में ही बरतता है, नाम के रूप में ही बरतता है, अहंकार के रूप में ही बरतता है। खुद ही डिस्चार्ज परिणाम है, खुद ही कर रहा है, उस प्रकार से बरतता है। वर्तन और श्रद्धा एकरूप ही बरतते हैं। जिस प्रकार वाणी डिस्चार्ज है और मान्यता यह है कि 'मैं बोला', उसी में एकाकार, तन्मयाकार रूप से बरतता है। अत: कई बार मुमुक्षुओं

को बात समझाने के लिए आत्मा की गहरी हकीकत की विस्तारपूर्वक स्पष्टता करने के बजाय दादाश्री ऐसा कहते हैं कि प्रतिष्ठित आत्मा ही कर्म बाँधता है। क्योंकि अज्ञानी खुद डिस्चार्ज होते हुए प्रतिष्ठित आत्मा में ही बरतता है इसलिए तन्मयाकार होने से ऑटोमैटिक चार्ज होता ही रहता है।

जिस प्रकार मोटी भाषा में 'मैंने आम खाया', ऐसा ही कहते हैं, लेकिन सूक्ष्मता से ऐसा कहा जाएगा कि मैंने छिलका और गुठली निकालकर गूदा खाया या रस पीया है।

अत: मिश्र चेतन, प्रतिष्ठित आत्मा या व्यवहार आत्मा से संबंधित दादाश्री की वाणी को हम बहुत ही बारीकी से, विरोधाभास से पकड़ने के बजाय, उनके पॉइन्ट ऑफ व्यू को पकड़कर, अंतर आशय को पकड़कर, उस बात को वैज्ञानिक तरीके से समझेंगे तो खुद के निज स्वरूप अनुभव के मूल सिद्धांत सरलता से समझ में आते जाएँगे।

शास्त्रों में आत्मा और जड़ तत्त्वों के बारे में विस्तारपूर्वक समझाया गया है लेकिन रोज़मर्रा के जीवन व्यवहार में खुद किस प्रकार से आत्मा में रह सकता है और जड़ से अलग रह सकता है, उसका वर्णन तो हमें अनुभवी ज्ञानी पुरुष ही दे सकते हैं और आचरण में ला सकते हैं।

खंड–2 में, आत्मा खुद वस्तुत्व रूप से क्या है? खुद ज्ञान स्वरूप ही है लेकिन ज्ञान स्वरूप के, अज्ञान से लेकर केवलज्ञान तक के प्रकार और ज्ञान–दर्शन के अलग–अलग प्रकार किस प्रकार से हैं? इन सभी बातों के बारे में विस्तृत रूप से समझ प्राप्त होती है। अज्ञान भी ज्ञान ही है। अज्ञान में कुश्रुत, कुमति और कुअवधि हैं जबकि ज्ञान में श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यव ज्ञान और केवलज्ञान, इस प्रकार से पाँच विभाग हैं। जबकि दर्शन में चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवलदर्शन इस प्रकार के विभाग किए गए हैं। वे प्रश्नोत्तरी द्वारा हुए सत्संग यहाँ संकलित हुए हैं।

दादाश्री ने केवलज्ञान देखा है इसलिए उन्होंने समझाया कि इस अनुसार ज्ञान में आगे बढ़ोगे तो फिर ज्ञान श्रेणी के इन स्टेशनों के बाद केवलज्ञान का स्टेशन आएगा। अत: केवलज्ञान दशा तक पहुँचने के लिए सभी बातें यहाँ पर अनावृत कर दी हैं।

ज्ञान के विविध प्रकारों की बातें, दादाश्री की अनुभवगम्य वाणी है। शास्त्रों में सूक्ष्मता से की गई परिभाषाओं को अपनी बुद्धि से समझने की कोशिश करते हुए लगता है कि, 'दादाश्री जो कहते हैं, वह अलग है जबकि शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है।' कभी अगर बुद्धि के प्रश्नों से इस प्रकार का दखल हो तो बुद्धि को एक तरफ रखकर ज्ञानी पुरुष की वाणी को यथार्थ रूप से समझकर मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ करना, तो अनुभव की श्रेणियाँ सिद्ध की जा सकेंगी। मूल जगह पर आएँगे, मूल वस्तु की प्राप्ति करेंगे, तब सम्यक् दृष्टि से देखने पर शास्त्रों की बातों से कोई जुदाई नहीं रहेगी।

दादाश्री कहते हैं कि 'हमने यह ज्ञान तो बहुत ज़बरदस्त दिया है लेकिन *निकाली* कर्म जत्थे में हैं और इसलिए ऐसा होता है कि हम भूल जाते हैं। इस पर विचार करते रहें तब यह याद रहेगा और फिर हमेशा के लिए पक्का हो जाएगा। यदि इस पर विचार नहीं करेंगे तो फिर उलझन वाला ही रह जाएगा।' अतः यदि एक बार पढ़ने से उलझन होने लगे तो, अनुभव से समझ में आता है कि वही का वही फिर से पढ़ेंगे तो पूरी स्पष्टता से समझ में आता जाएगा।

ज़्यादा स्पष्टता के लिए आप्तवाणी-13 और 14 के भाग-1 और भाग-2 के उपोद्घात अवश्य पढ़ें, उसमें कईं स्पष्टीकरण किए हुए हैं ही।

दादाश्री के साथ हुए सत्संगों का विवरण, जितना संभव हो उतना एकत्र करके चौदहवीं आप्तवाणी के ग्रंथ बन सके हैं। यहाँ पर वाचक को शायद ऐसा लगे कि एक ही बात पुनः-पुनः आ रही है फिर भी तमाम वाणी संकलित करके रखी गई है, ताकि उसे ज्ञानी पुरुष के अगाध ज्ञान का पता चले। हो सके उतनी स्पष्टता से बात आगे बढ़े और शुरुआत से अंत तक उसका सातत्य बना रहे, ऐसा नम्र प्रयास हुआ है। और ब्रैकेट में रखे गए शब्दों के अर्थ संपादक की वर्तमान में प्रवर्तमान समझ के आधार पर जितना हो सके, उतने सुसंगत प्रकार से रखने के प्रयत्न हुए हैं, फिर भी यदि कोई विरोधाभास लगे तो ज्ञानी के ज्ञान में भूल नहीं है लेकिन वह संकलन की कमी की वजह से हो सकता है, ऐसी तमाम भासित क्षतियों के लिए क्षमापना।

– **दीपक देसाई**

उपोद्घात

[खंड-1]

आत्मा के स्वरूप

[1] प्रतिष्ठित आत्मा

[1.1] प्रतिष्ठित आत्मा का स्वरूप

मूल आत्मा केवलज्ञान स्वरूपी है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ज्ञान स्वरूप है लेकिन 'खुद कौन है', ऐसा नहीं जानने की वजह से, अज्ञानता से खुद अपने आप को हम ऐसा जो मानते हैं कि 'मैं चंदू हूँ' (सूक्ष्मतम अहंकार), वही (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा है।

आज का यह चंदू (सूक्ष्मतर अहंकार), यह देह-वाणी-मन वगैरह सब डिस्चार्ज रूपी हैं। पूर्व जन्म में जो प्रतिष्ठा की थी, आज यह पुतला उसका फल दे रहा है। उसमें अज्ञानता से खुद नई प्रतिष्ठा करता जाता है कि, 'मैं ही चंदू, यह शरीर मेरा है, इसका पति लगता हूँ, इसका मामा लगता हूँ।' उससे वह खुद अगले जन्म की मूर्ति गढ़ रहा है। मैं पन की यह जो प्रतिष्ठा करते हैं, उससे फिर अगले जन्म में पूरी ज़िंदगी वह पुतला बोलेगा, चलेगा, व्यवहार करेगा।

ज्ञान मिलने के बाद खुद को भान होता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और खुद के शुद्धात्मा स्वरूप होने के बाद में समझ में आता है कि खुद अक्रिय है, अनंत ज्ञान क्रिया, अनंत दर्शन क्रिया वाला है। जब तक खुद शुद्धात्मा नहीं हुआ है तब तक खुद प्रतिष्ठित आत्मा स्वरूपी है और इसीलिए कर्ता-भोक्ता पद में है। पूर्व जन्म में की गई प्रतिष्ठा को इस जन्म में भोक्तापन से भुगतता है, लेकिन फिर अज्ञानता से कर्ता बन बैठता है व अज्ञानता से नई प्रतिष्ठा करके अगले जन्म का नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न करता है।

आज का चंदू पूरा ही डिस्चार्ज स्वरूपी प्रतिष्ठित आत्मा है लेकिन अज्ञानता से खुद उसमें एकाकार हो जाता है, उससे वापस अगले जन्म के कर्म चार्ज होते हैं। नया पुतला तैयार होता है।

'मैं चंदू हूँ, यह शरीर मेरा है, इसका पति लगता हूँ, इसका मामा लगता हूँ' आज यह जो बोल रहा है, तो जो पहले की प्रतिष्ठा की हुई थी, योजना के रूप में था, पहले का वह कर्म आज रूपक में फल के रूप में आया है। अब, रूपक में आएगा और व्यवहार में वैसी भूमिका अदा करे, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन अज्ञानता से उसकी श्रद्धा भी वैसी ही है, इसलिए फिर से बीज डलता है। यानी कि शरीर में ही प्रतिष्ठा करता है कि 'यह मैं हूँ'। इसलिए फिर वापस शरीर उत्पन्न होता है। (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, प्रतिष्ठा कर-करके मूर्ति गढ़ता है। फिर वह अगले जन्म में फल देती है।

इस जन्म में पुराना सारा भोग रहा है, लेकिन उसमें अहंकार नहीं करना चाहिए न!

प्रतिष्ठित आत्मा की प्रतिष्ठा कौन करता है? अहंकार। वही का वही (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, दूसरा (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न करता है। आज वर्तन में या वाणी में जैसा अहंकार करता है, वह पहले का डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा है और रोंग बिलीफ से खुद वापस प्रतिष्ठा करता है कि, 'मैं चंदू हूँ, मैं कर रहा हूँ, यह मेरा है', वह अगले जन्म की प्रतिष्ठा है। अतः वर्तन में पुरानी प्रतिष्ठा खुल रही है और रोंग बिलीफ से नई प्रतिष्ठा उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह चक्र चलता ही रहता है।

'मैं चंदू हूँ, इसका मामा, मुझे यह विचार आया', वह पिछली प्रतिष्ठा का *आश्रव* (उदयकर्म में तन्मयाकार होना) है, फिर उसकी *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है। *निर्जरा* होते समय, वह उसी प्रकार का रूप गढ़कर *बंधपूर्वक निर्जरा* होती है। अब जिसे यह ज्ञान प्राप्त हो गया है, वह भी कहता है कि, 'मैं चंदू हूँ, इसका मामा', तो वह पिछली प्रतिष्ठा का ही फल है लेकिन आज उसकी वह श्रद्धा खत्म हो गई है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ' इसलिए खुद नई प्रतिष्ठा नहीं करता। तब उसे *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) कहते हैं। नया बंधन नहीं होता।

जड़ और चेतन के सामीप्य भाव से विभाव उत्पन्न होता है। उससे

अहंकार उत्पन्न होता है। वह अहंकार ही ऐसा मानता है कि, 'मैं चंदू हूँ, मैंने किया, यह मेरा है', इस प्रकार अगले जन्म की प्रतिष्ठा होती है। अगले जन्म में वह प्रतिष्ठा किया हुआ पुतला फल देता है। अहंकार नहीं हो तो नई प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

(सूक्ष्मतम) अहंकार ही (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा है और अज्ञानता से (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा में फिर से अहंकार उत्पन्न हो जाता है और अहंकार में से प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। दोनों कारण-कार्य हैं। मूल आत्मा अभी भी शुद्ध ही है।

'मैं चंदूलाल हूँ', बोलता है, फिर मृत्यु के समय चंदूलाल खत्म हो जाता है और सिर्फ 'मैं' रह जाता है। यह शरीर छूट जाता है लेकिन मैं-पन से नया शरीर बना रहा है। 'जिसने' जैसा प्रतिष्ठित आत्मा चित्रित किया, स्त्री का, गधे का, भैंस का, कुत्ते का वह वैसा ही बन जाता है।

जब तक मोक्ष न हो जाए तब तक इस शरीर में मूल आत्मा अलग ही रहता है। यह, जो जन्म लेता है और मरता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। शुद्धात्मा मूल वस्तु है और प्रतिष्ठित आत्मा मान्यता है। रोंग मान्यता, रोंग बिलीफ से उत्पन्न हुआ पुतला। वह राइट बिलीफ से खत्म हो जाता है।

जड़ और चेतन, दोनों वस्तुओं के नज़दीक आने से विशेष परिणाम उत्पन्न होता है, उससे प्रतिष्ठित आत्मा बनता है। उससे प्रतिष्ठा होती है और प्रकृति बनती है। फिर प्रकृति के लिए हम ऐसा कहते हैं कि, 'यह मैं ही हूँ' तो अगले जन्म की नई प्रकृति बनती है। ऐसा जान ले कि, 'मैं कौन हूँ' तो नई प्रतिष्ठा छूट जाएगी।

'मैं कौन हूँ', ऐसा भान होने के बाद प्रतिष्ठित आत्मा डिस्चार्ज के रूप में रहता है।

मूल आत्मा शुद्ध चेतन है, जबकि (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा निश्चेतन चेतन है, पावर भरे हुए सेल हैं। अज्ञानता से नई बैटरी चार्ज होती है। 'मैं कौन हूँ, कौन कर रहा है', ऐसा जान ले तो चार्ज बंद हो जाएगा। मूल आत्मा वही का वही रहता है, अज्ञानता से उसकी उपस्थिति में यह चार्ज होता रहता है।

डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा में बिल्कुल भी चेतन नहीं है। इतने सारे लोग काम करते हैं, सबकुछ करते हैं फिर भी उनमें बिल्कुल भी चेतन नहीं है। मूल आत्मा की उपस्थिति मात्र से चलता है।

पिछले जन्म में जो प्रतिष्ठा की, उससे आज यह शरीर मिला और अज्ञानता से इस जन्म में फिर से प्रतिष्ठा कर रहे हैं, उससे अगले जन्म का शरीर मिलेगा। खुद जैसे भाव करता है... उस जड़ तत्त्व की शक्ति इतनी अधिक है कि आँख, नाक, कान, सभी कुछ तैयार हो जाता है।

पूरी ज़िंदगी के कार्य डिस्चार्ज स्वरूप हैं। उसमें आज चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा का, व्यवहार आत्मा का उपयोग नहीं होता, सिर्फ अगला जन्म बंधन करने के लिए उपयोग हो रहा है। ज्ञान के बाद नया जन्म बंधन बंद हो जाता है, इसलिए खुद निज स्वरूप में रह सकता है।

देह को कोई मारे तो वह ऐसा मानता है और ऐसा कहता है, 'मुझे ही मारा'। मूल आत्मा अलग है, ऐसा जानते ही नहीं हैं। 'मैं यही हूँ, मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं हैं। यही मैं हूँ।' रोंग बिलीफ हो गई है उसे कर्ताभाव से कि मैं ही कर रहा हूँ यह सब।

प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् माना हुआ आत्मा। 'मैं चंदू हूँ', बोलते ही नया उत्पन्न होता है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान आ जाए तो खुद मूल आत्मा में आ जाता है। रोंग मान्यता से पूरी दुनिया उत्पन्न हो गई है।

[1.2] जगत् का अधिष्ठान

प्रतिष्ठित आत्मा ही इस जगत् का सब से बड़ा अधिष्ठान है। यदि प्रतिष्ठित आत्मा नहीं है तो कुछ भी है ही नहीं। प्रतिष्ठित आत्मा ही अज्ञान है लेकिन अज्ञान कहेंगे तो लोग कहेंगे कि, 'नहीं, जगत् का अधिष्ठान आत्मा है'। लेकिन कौन सा? (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, व्यवहार आत्मा (विभाव से जो 'मैं' उत्पन्न हुआ वह, डेवेलप होता हुआ 'मैं', सूक्ष्मतम अहंकार)।

यह जगत् अज्ञान में से उत्पन्न हुआ है यानी विभाविक आत्मा, (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा और फिर उसी में लय हो जाता है। उसमें से

वापस उत्पन्न होता है और उसी में लय हो जाता है। मूल आत्मा को कुछ भी लेना-देना नहीं है।

संयोगों के दबाव से और लोकसंज्ञा से स्वरूप का अज्ञान हो गया है, ऐसा होने से स्वरूप कहीं बिगड़ नहीं गया है। 'मैं'पन बदल गया है। अस्तित्व का भान तो है ही हर एक को, लेकिन वस्तुत्व का भान नहीं रहा। इसलिए रोंग बिलीफ घुस गई है। वस्तुत्व का भान हो जाए तो खुद आत्मारूप ही है।

खुद ही प्रतिष्ठा करता है कि, 'नींद नहीं आए तो चलेगा, लेकिन डॉलर मिलने चाहिए।' इसके फल स्वरूप डॉलर मिले लेकिन नींद नहीं आती। अब शिकायत करने से नहीं चलेगा। नई प्रतिष्ठा सुधारो कि, 'चिंता रहित जीवन चाहिए और मोक्ष में जाना है', तब फिर वैसा आएगा।

निमित्त के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा निमित्त भाव से कर्ता है। वास्तव में वह कर्ता नहीं है, वह ऐसा मान बैठा है। जैसे कि स्टेशन पर गाड़ी चलती है, तब खुद ऐसा मानता है कि मैं चला, तब तक बंधन है।

अज्ञान भाव में, 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा करने से प्रतिष्ठित आत्मा बनता है। (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा यह सब करता है, और व्यवस्थित शक्ति के अधीन करता है।

(चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा की सत्ता कितनी? सिर्फ अच्छी या बुरी प्रतिज्ञा कर सकता है या अच्छा-बुरा निश्चय कर सकता है, उसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं कर सकता।

संसार भाव वाला है सभी कुछ, (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है), सभी कुछ व्यवस्थित के ताबे में हैं। मूल आत्मा का व्यवस्थित से संबंध नहीं है। मूल आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा ही रहता है।

दुनिया चलाने के लिए मूल आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। इन सब (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्माओं के जो परिणाम हैं, वे बड़े कम्प्यूटर में

जाते हैं। उसके बाद अन्य सभी एविडेन्स इकट्ठे होकर उस कम्प्यूटर के मारफत बाहर निकलते हैं, रूपक में आते हैं, उसे 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं।

लोगों ने हम में प्रतिष्ठा की कि, 'यह चंदू है' और हमने मान भी लिया कि, 'मैं चंदू हूँ', तब तक अंदर ये क्रोध-मान-माया-लोभ रहे हुए हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान होने पर यानी कि खुद निज स्वरूप में आ जाए तब प्रतिष्ठा टूट जाती है और क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाते हैं।

हर एक जन्म में इन्द्रियाँ भोक्ता बनती हैं लेकिन खुद अहंकार करता है कि, 'मैंने खाया, मैंने किया'। अहंकार अति सूक्ष्म है, वह किस प्रकार से भोग सकता है? शरीर को ठंडक हो जाए, तो कहता है, 'मुझे ठंडक हो गई, मैंने ऐसा किया'। उस सूक्ष्म भाव-प्रतिष्ठा से कॉज़ल-बॉडी बनती है और अगले जन्म में वह इफेक्टिव बॉडी बनती है।

शादी करे तब कहता है, 'मैं पति बना' और बालक का जन्म होता है तब कहता है, 'मैं बाप बना'। बेटे की शादी करवाए तब कहता है, 'मैं ससुर बना' और दीक्षा ले ले, तो कहता है, 'मैं साधु बना।' ससुर की प्रतिष्ठा तोड़ी और साधु की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार जब तक प्रतिष्ठा है तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ तो रहेंगे ही।

मूल आत्मा अलग ही रहा हुआ है। यह सारा काम (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा करता है। इसे *पुद्गल* कहा जाता है। 'मैं आचार्य हूँ', *पुद्गल* में ऐसी प्रतिष्ठा करता है। उससे वह (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा अगले जन्म में पूरी ज़िंदगी काम करता रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी प्रतिष्ठा हो जाए तो नया चार्ज नहीं होता।

(डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा को ही आत्मा मानकर खुद उसे स्थिर करने जाता है, स्थिरता से आनंद रहता है लेकिन स्थिरता टूटते ही, जैसा था वापस वैसा ही हो जाता है। मूल आत्मा स्थिर ही है लेकिन लोगों को यह बात पता ही नहीं है न!

केवलज्ञानियों ने ही यथार्थ आत्मा को आत्मा कहा है। ज्ञानविधि में दादा भगवान की कृपा से यथार्थ आत्मा का ही निर्णय निश्चय प्राप्त होता है।

चंचल भाग के भाव, वे निश्चेतन चेतन के हैं, (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा के हैं। शुद्ध चेतन जो कि अचल है, वे भाव उसके नहीं हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि कषाय अर्थात् जो आत्मा को पीड़ा पहुँचाए वह, लेकिन कौन सा आत्मा? बात कही तो है, लेकिन एक खास तरीके से। लोगों को वह पता नहीं चलता।

'आत्मा की निंदा करना।' तो लोग ऐसी निंदा करने लगे, 'मेरा आत्मा पापी है', लेकिन कौन सा आत्मा? व्यवहार आत्मा, प्रतिष्ठित आत्मा पापी है, ऐसा याद रखना चाहिए न? उसके बजाय मूल आत्मा की निंदा हो जाती है। उससे दोष लगते हैं।

शास्त्रों में व्यवहार आत्मा लिखा हुआ है लेकिन लोग उसे भूलकर शुद्धात्मा पर आरोप लगाने लगे। व्यवहार आत्मा अर्थात् खुद ने जिसकी प्रतिष्ठा की है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। वही सब भोगता है। शुद्धात्मा तो परमानंदी है।

अक्रम में जिसे हम (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा कहते हैं, उसे क्रमिक मार्ग में व्यवहार आत्मा कहते हैं। उसी को आत्मा मानकर, 'उसी को स्थिर करना है, उसी को कर्म रहित बनाना है, यही कर्म से बंधा हुआ है', ऐसा मानकर वे तप-त्याग करते हैं लेकिन मूल आत्मा कर्मों से मुक्त ही है, इसका उसे खुद को भान नहीं है। ऐसा भान होने की ज़रूरत है। इस अज्ञान को निकालने की ज़रूरत है। अतः मूल आत्मा को 'तू' जान, तो वह मुक्त ही है।

जो सुख भोगता है, दुःख भोगता है, वह अहंकार है। उसे भगवान महावीर ने व्यवहार आत्मा कहा है। उसे दादाश्री ने प्रतिष्ठित आत्मा कहा है, पावर चेतन कहा है। पावर खत्म हो जाएगा तो पुतला गिर जाएगा और खुद अज्ञानता से, रोंग बिलीफ से नया पावर चेतन खड़ा करता है। खुद, खुद की प्रतिष्ठा करता है मूर्ति में, 'मैं चंदू हूँ'।

क्रमिक मार्ग में वेदकता को आत्मा का गुण माना जाता है। उनकी दृष्टि से वह करेक्ट है, क्योंकि वहाँ पर प्रतिष्ठित आत्मा को ही आत्मा

माना जाता है। जबकि अक्रम में मूल आत्मा को आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में वेदकता नहीं होती।

कुछ नापसंद आए, तब द्वेष करता है लेकिन कौन सा आत्मा है वह? प्रतिष्ठित आत्मा। मूल आत्मा (मूल 'मैं') तो अक्रम विज्ञान के बिना मिल ही नहीं सकता। अब क्रमिक मार्ग में प्रतिष्ठित आत्मा (डेवेलप होता हुआ 'मैं', व्यवहार आत्मा) को वीतराग बनाना है। हर एक जन्म में भावना बदलते रहना है, भावकर्म से भावना बदलती है, ऐसे करते-करते वीतराग हो जाओगे। अक्रम में मूल आत्मा वीतराग ही है, ऐसा खुद को (डेवेलप होते हुए 'मैं' को) भान करवाया। जब यह ज्ञान प्राप्ति होती है तब खुद आत्मा रूप ही बन जाता है। अब जो बाकी है, उसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) कर दो।

मूल आत्मा की बात जानते ही नहीं हैं न! और यह जो है, वह आत्मा ही शुद्ध हो जाना चाहिए, वह शुद्ध हो गया कि मोक्ष हो जाएगा! वह आत्मा अर्थात् (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा। कहते हैं, उसे शुद्ध करो। ऐसा तो कब हो पाएगा?

निश्चय का साधक आत्मा है, साधन आत्मा है और साध्य भी आत्मा है? मूल आत्मा के लिए साधन और साधक नहीं हैं। प्रतिष्ठित आत्मा को साधक कहा जा सकता है। मूल आत्मा साधक नहीं है, परमात्मा है।

शास्त्रों में इसे शब्दों से बताया गया है लेकिन ज्ञानी पुरुष की उपस्थिति के बिना इसकी कोई भी स्पष्टता नहीं हो सकती।

[1.3] ज्ञान के बाद जो शेष बचा, वह है प्रतिष्ठित आत्मा

भाव अर्थात् जहाँ पर खुद नहीं है, वहाँ पर खुद के अस्तित्व की स्थापना करना। खुद आत्मा है लेकिन मानता है कि, 'मैं चंदू हूँ', उस भावमन से नया (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है, और आज का द्रव्यमन अर्थात् डिस्चार्ज होता हुआ प्रतिष्ठित आत्मा।

शुभ-अशुभ भाव किसे होते हैं? प्रतिष्ठित आत्मा को? जो शुभ-अशुभ भाव करता है, वे भाव शुद्धात्मा भी नहीं करता और डिस्चार्ज होता

हुआ प्रतिष्ठित आत्मा भी नहीं करता। यह तो, जो ऐसा मानता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', वह व्यवहार आत्मा भाव करता है। भाव से प्रतिष्ठा करता है। उससे अगले जन्म का प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है।

अज्ञान दशा में डिस्चार्ज होते हुए प्रतिष्ठित आत्मा में खुद व्यवहार आत्मा एकाकार ही है, वे दोनों एकाकार ही बरतते हैं। उससे डिस्चार्ज होते हुए परिणामों में यही श्रद्धा रहती है कि, 'यह मैं ही हूँ'। इसलिए नया चार्ज होता रहता है। ज्ञान मिलने के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी श्रद्धा हो गई। अर्थात् खुद डिस्चार्ज होते हुए प्रतिष्ठित आत्मा से अलग हो गया। इसलिए स्वरूप ज्ञान मिलने के बाद में जो बाकी रहा, वह डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा है। पहले देह में जो 'मैं'पन की प्रतिष्ठा की थी, उस प्रतिष्ठा का फल रहा हुआ है, वह *निकाली* बातों वाला प्रतिष्ठित आत्मा है।

जो विभाव खड़ा हुआ है कि, 'मैं चंदू हूँ', वही व्यवहार आत्मा है और वही अहंकार है। जो अज्ञान में से उत्पन्न हुआ है, उसी को शास्त्रों में व्यवहार आत्मा कहा गया है। उसी को दादा ने नई प्रतिष्ठा करने वाला (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा कहा है। वही प्रतिष्ठा कर-करके अगले जन्म का नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न करता है।

जिसे ज्ञान मिला है, वह खुद शुद्धात्मा बना। अब बाकी जो *निकाल* करने को रहा, वह डिस्चार्ज होता हुआ प्रतिष्ठित आत्मा है। जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया हो, दुनिया के ऐसे लोगों के लिए तो उनका प्रतिष्ठित आत्मा खुद ही मूढ़ आत्म दशा में है, उसे बर्हिमुखी आत्मा कहते हैं।

अज्ञानता में उसी को आरोपित आत्मा कहा गया है, उसी को व्यवहार आत्मा कहते हैं। यह समझाने के लिए कि जहाँ पर खुद नहीं है, वहाँ पर उसने आरोपण किया, वह (बिलीफ में) आरोपित आत्मा है। ऐसा आरोपण करने के बाद जब स्थिर होता है तब प्रतिष्ठित आत्मा (ज्ञान प्राप्ति के बाद) कहलाता है। तब तक वह प्रतिष्ठित आत्मा नहीं कहलाता। समझाने पर वह आरोपण तो खत्म हो सकता है, प्रतिष्ठा होने से पहले खत्म हो सकता है। जब वह स्थिर होकर, इस प्रकार जम जाता है तब प्रतिष्ठित आत्मा बनता है, जब अगले जन्म में (वर्तन में) फल देने लायक बनता है, तब।

जब तक खुद को ज्ञान नहीं हो जाता तब तक खुद आरोपित आत्मा में (व्यवहार आत्मा में) ही रहता है। जहाँ पर कोई भी आरोपण किया हुआ हो, उस समय आत्मा रूप से हमने जो कुछ भी माना, 'मैं हूँ, मैंने किया', ऐसा माना, उससे अगले जन्म का प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। इस शरीर में 'मैं हूँ, मैंने किया', ऐसी मान्यता से अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठा होती है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान हो जाए तो अगले जन्म की प्रतिष्ठा बंद हो जाती है। उसके बाद नई प्रतिष्ठा नहीं होती, वर्ना अज्ञान दशा में पिछला प्रतिष्ठित आत्मा फल देता है और फिर से प्रतिष्ठा करके जाता है। प्रतिष्ठा में से प्रतिष्ठा, उसमें से प्रतिष्ठा होती रहती है, फिर भी मूल आत्मा त्रिकाल, वैसे का वैसा शुद्ध ही रहा हुआ है।

(डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा में क्या-क्या आता है? शुद्धात्मा के अलावा बाकी का सभी कुछ प्रतिष्ठित आत्मा है। पाँच इन्द्रियों से जो अनुभव होता है वह, उसके बाद अंतःकरण, नाम, सभी प्रतिष्ठित आत्मा में आता है। तेजस शरीर उसमें नहीं आता है।

अक्ल या बेवकूफी सबकुछ (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा का है।

प्रतिष्ठित आत्मा का स्थान तालु में है, वहाँ पर रहकर वह सभी काम करता है।

वाणी जो निकलती है, उसमें मूल (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा की संज्ञा है कि, 'मुझे अच्छा नहीं लगता या फिर अच्छा लगता है।' उस संज्ञा से तो कोडवर्ड बनते हैं, कोडवर्ड में से शॉर्ट हैन्ड होकर, फिर शब्द के रूप में निकलता है, ऐसी है यह टेपरिकॉर्डर।

प्रतिष्ठित आत्मा के बारे में कैसा है कि सौ लोगों को रेत में सुलाया हो तो नाजुक व्यक्ति को अलग लगता है, मज़बूत व्यक्ति को अलग लगता है, क्योंकि हर एक ने जैसी प्रतिष्ठा की हुई है, वैसा ही फल आता है।

उच्च पुरुषों के संग से अच्छा बनता है और खराब लोगों के संग से बिगड़ जाता है, जैसा देखता है वैसा ही बन जाता है, ऐसा है प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव।

प्रश्न व सारी समस्याएँ प्रतिष्ठित आत्मा की हैं, जो शंकालु है वह भी प्रतिष्ठित आत्मा है, अभिप्राय भी प्रतिष्ठित आत्मा के, उस अनुसार मशीनरी चलेगी।

मूल आत्मा जीता या मरता नहीं है, प्रतिष्ठित आत्मा जीता या मरता है, भ्रांति रस के संधिस्थान पर।

ज्ञान मिलने के बाद खुद को शुद्धात्मा की जितनी प्रतीति रहती है, उतना ही (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा बर्फ की तरह पिघलता रहता है। एक-दो जन्मों में वह पूर्ण रूप से पिघल जाएगा।

ज्ञान प्राप्त होने के बाद में नई प्रतिष्ठा बंद हो जाती है। नया संसार उत्पन्न होना बंद हो गया।

पिछले प्रतिष्ठित आत्मा की वजह से खुद को अज्ञानता से 'मैं चंदू हूँ, इसका फादर हूँ', ऐसी प्रतिष्ठा हो रही थी। अब ज्ञान के बाद 'मैं शुद्धात्मा' हो गया, इसलिए नई प्रतिष्ठा टूट गई। यह चंदूभाई यानी पिछला प्रतिष्ठित आत्मा, वह पिछली गुनाहगारी है, उसका समभाव से *निकाल* कर देना है, आज्ञा में रहकर।

आज्ञा पालन कौन करता है? प्रतिष्ठित आत्मा? नहीं। आज्ञा पालन आपको करना है और आज्ञा पालन, प्रज्ञाशक्ति जो कि मूल आत्मा की रिप्रेज़न्टेटिव है, वह करवाती है। मोक्ष में ले जाने की सारी क्रियाएँ प्रज्ञा करती है, जबकि भेद डलवाने वाले वे धूर्त हैं (बुद्धि व कषाय)। जो तन्मयाकार होता है, वह है प्रतिष्ठित आत्मा।

दादाश्री में भी प्रतिष्ठित आत्मा है क्या? प्रतिष्ठित आत्मा के बिना देह जीवित ही नहीं रह सकता, लेकिन ज्ञानियों का प्रतिष्ठित आत्मा खुद के आत्मा की, दादा की भक्ति में, और खुद शुद्धात्मा में रहते हैं।

महात्माओं के और दादाश्री के प्रतिष्ठित आत्मा में क्या फर्क है? महात्माओं में अज्ञानता की वजह से चंचलता रहती है, दादाश्री में नाम मात्र की भी चंचलता नहीं है। *भोगवटे* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) में फर्क है, दादाश्री की फर्स्ट क्लास जैसी दशा है और महात्माओं की

थर्ड क्लास जैसी दशा, लेकिन जब गाड़ी से उतरेंगे तब सभी का एक सरीखा। गाड़ी सभी को मोक्ष में पहुँचाएगी।

शरीर गर्म हो जाए तो ज्ञानी आत्मा उसे देखता और जानता है। प्रतिष्ठित आत्मा को *अशाता* (दुःख-परिणाम) अच्छी नहीं लगती, *शाता* (सुख-परिणाम) अच्छी लगती है इसलिए *शाता* व *अशाता* को वेदता है।

कुछ लोगों के शब्दों से डेन्ट (ठेस) पड़ जाते हैं, जैसे बर्तनों के टकराने से पड़ जाते हैं, उस प्रकार से। ज्ञानी के शब्दों से मन पर ज़रा सी भी ठेस नहीं लगती। इसलिए, क्योंकि उनका प्रतिष्ठित आत्मा उनकी वाणी में भी एकाकार नहीं होता।

प्रतिष्ठित आत्मा की ही झंझट है, मूल आत्मा तो वीतराग ही है। वह खुद के स्वभाव को पहचान जाए तो खुद वीतराग ही है। खुद वीतराग हो गया तो प्रतिष्ठित आत्मा को वीतराग होने में देर ही नहीं लगेगी, लेकिन वास्तव में प्रतिष्ठित आत्मा में वीतरागता नहीं होती। उसमें वीतरागता का पावर आता है।

(चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, मूल आत्मा का प्रतिनिधि है। प्रतिष्ठित आत्मा दोष करे तो वह मूल आत्मा को पहुँचता है।

अंतराय आए हैं, ऐसा जानो तो वह भी जागृति है। शुद्धात्मा में रहकर उसका समभाव से *निकाल* करना है।

'यह मुझसे नहीं होता', वह 'नहीं होता', ऐसा बोलने से प्रतिष्ठित आत्मा की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है। हमें प्रतिष्ठित आत्मा से, चंदू से बुलवाना है कि बोल, 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ'। उससे जैसे-जैसे प्रतिष्ठित अहंकार कम होता जाएगा, वैसे-वैसे प्रतिष्ठित आत्मा का आत्मवीर्य बढ़ता जाएगा। अहंकार की वजह से आत्मवीर्य टूट जाता है।

जैसे-जैसे प्रतिष्ठित आत्मा खत्म होता जाता है वैसे-वैसे शुद्धात्मा निरावरण होता जाता है।

हमें यदि पूर्णाहुति करनी हो तो दो भाग रखने चाहिए। एक फाइल भाग, वह प्रतिष्ठित आत्मा है और मूल खुद का भाग, शुद्धात्मा है। फाइलों

में भूल वाले भाग की वजह से जो विचार आते हैं, उनका ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। तो दोनों भाग में यथार्थ रूप से जुदा रह पाएँगे। यदि उस तरह नहीं रह पाए तो फाइल से प्रतिक्रमण करवाना है।

व्यवहार को जो देखे और जाने, वह शुद्धात्मा है और जो राग-द्वेष करे, वह प्रतिष्ठित आत्मा।

शुभ-अशुभ, अशुद्ध उपयोग प्रतिष्ठित आत्मा के हैं और शुद्ध उपयोग शुद्धात्मा का और वह भी वास्तव में प्रज्ञा का है।

शुद्धात्मा स्व-पर प्रकाशक है और (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा, वह पर प्रकाशक है। शुद्धात्मा ज्ञाता है और प्रतिष्ठित आत्मा ज्ञेय है। सब से अच्छा है, खुद के बनाए हुए प्रतिष्ठित आत्मा को देखना।

हमें तो मूल चेतन को पहचानकर मूल चेतन में रहकर (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा का निबेड़ा लाना है। खुद के मूल चेतन में नहीं रहने की वजह से यह उत्पन्न हुआ है।

[2] व्यवहार आत्मा

खुद ऐसा मानता है कि, 'मैं चंदू हूँ', वही व्यवहार आत्मा है। वह मूल आत्मा नहीं है। यानी कि एक तो मूल आत्मा है, और यह है व्यवहार में बरतने वाला चंदू नामधारी, लोग आपको जिस चंदू के रूप में पहचानते हैं, वह व्यवहार आत्मा है। व्यवहार में जिसे खुद ने आत्मा माना, वह।

जिसे भौतिक पदार्थों में लोभ होता है, वह व्यवहार आत्मा है और मूल आत्मा तो अनंत शक्ति वाला है, जो निरंतर देह से मुक्त ही है। व्यवहार आत्मा कर्मों सहित है, देह से बंधा हुआ है।

मूल आत्मा, वह केवलज्ञान स्वरूप है। निश्चय आत्मा, वह शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। निश्चय आत्मा तो जैसा है वैसा ही रहा है लेकिन संयोगों के दबाव से विभाव होने के कारण व्यवहार आत्मा उत्पन्न हुआ है।

जिस प्रकार दर्पण के पास जाने से दो चंदूभाई, जैसे बाहर हैं वैसे

ही अंदर दिखाई देते हैं न? जो बाहर है, वह निश्चय आत्मा है और जो दर्पण में दिखाई देता है, वह व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा पर आवरण नहीं चढ़ा है। संयोगों के दबाव से जो उत्पन्न हुआ है, वह व्यवहार आत्मा दर्पण में दिखाई देता है। वही अपना रोल अदा कर रहा है। उसमें खुद को मैं-पन लगता है, 'मैं चंदू हूँ, मैं कर रहा हूँ, यह शरीर मेरा है', यानी वह भ्रांति वाला आत्मा है, माना हुआ आत्मा है, अहंकार उत्पन्न हो गया है। अहंकार चला जाएगा तो फिर से मूल आत्मा में आ जाएगा। अत: आत्मा दो नहीं हैं, एक आत्मा के दो विभाग हो गए हैं। क्योंकि खुद को खुद का रियलाइज़ेशन नहीं हुआ है इसलिए अहंकार उत्पन्न हो गया। अहंकार को, 'यह मैं हूँ, मेरा है', ऐसा हुआ इसीलिए उससे यह नया व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया।

व्यवहार आत्मा भ्रांतिमय होता है और निश्चय आत्मा शुद्ध ही होता है। निश्चय आत्मा का अवलंबन लेकर व्यवहार आत्मा को क्लियर करना है। निश्चय आत्मा सहज ही है, व्यवहार आत्मा को सहज करो तो वे दोनों एक हो जाएँगे, उसके बाद हमेशा के लिए परमात्मा बन जाओगे।

व्यवहार आत्मा ही पावर चेतन है, मिश्र चेतन है।

जो शुभ-अशुभ भाव होते हैं, उसमें सिर्फ व्यवहार आत्मा नहीं है, साथ में निश्चय आत्मा होता है। खुद की 'मैं' की मान्यता यही है कि मैं एक ही हूँ। यानी भाव का कर्ता, स्वरूप की अज्ञानता। जब स्वरूप का ज्ञान होता है तब स्वभाव भाव में आता है।

मूल आत्मा निरंतर स्वभाव में ही रहता है। जिसे स्वभाव और विभाव होते रहते हैं, वह व्यवहार आत्मा है। यह माना हुआ आत्मा है इसलिए व्यवहार आत्मा विभाविक है, उसमें इतना सा भी चेतन नहीं है।

मूल आत्मा और व्यवहार आत्मा कभी भी जॉइन्ट हुए ही नहीं हैं, दोनों अलग ही हैं, लेकिन ज्ञानी की दृष्टि से। केवलज्ञान स्वरूप से मूल आत्मा हर एक में अलग ही है। यह तो अज्ञानता से खुद को जो बंधन महसूस होते हैं, वे ज्ञान से छूट जाते हैं, वर्ना फिर भी थे तो अलग ही।

जब तक रोंग बिलीफ है, अज्ञान मान्यता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ'

तब तक उसे मूढ़ात्मा कहा जाता है। वह रोंग बिलीफ फ्रैक्चर हो जाए और राइट बिलीफ बैठ जाए, तब शुद्धात्मा कहा जाएगा।

यदि आप व्यवहारिक कार्य में मस्त हो तो आप व्यवहार आत्मा हो और यदि निश्चय में मस्त हो तो आप निश्चय आत्मा हो। मूल रूप से हो तो आप ही (डेवेलप होता हुआ 'मैं')।

जब शरीर छूटता है तो उसके साथ कार्य व्यवहार आत्मा फल देकर, डिस्चार्ज होकर खत्म हो जाता है लेकिन दूसरे कारण व्यवहार आत्मा को चार्ज करते हुए जाता है, वह अगले जन्म में साथ में जाता है।

व्यवहार आत्मा ही प्रतिष्ठित आत्मा है। खुद की प्रतिष्ठा की हुई है इसीलिए उत्पन्न हुआ है। इस व्यवहार को यदि सत्य मानोगे तो (नया) व्यवहार आत्मा उत्पन्न होगा। अभी व्यवहार आत्मा में ज्ञान, दर्शन और चारित्र बरतते हैं। निश्चय आत्मा का स्पर्श होता है। यदि निश्चय आत्मा का ज्ञान, दर्शन और चारित्र उत्पन्न हो जाए तो कल्याण हो जाएगा। अभी अज्ञान दशा में खुद को व्यवहार आत्मा का स्पर्श है, अहंकार उत्पन्न हो गया है।

व्यवहार आत्मा ही (सूक्ष्मतम) अहंकार है। दादाश्री ने उसे पावर आत्मा कहा है।

व्यवहार आत्मा को ही लोगों ने निश्चय आत्मा मान लिया है। व्यवहार आत्मा की निंदा करनी थी, उसे भुला देना था। मूलतः ही भूल हो गई। अंदर निश्चय आत्मा अलग है, उसे भूल ही गए।

संसार के लोग तो, यह जो काम करता है, दान देता है, उपदेश देता है, उसी को आत्मा मानते हैं। यह तो व्यवहार आत्मा है। यह तो माना हुआ आत्मा है, वास्तविक आत्मा नहीं है। वास्तविक आत्मा अचल है, उसे पीड़ा नहीं छूती। माना हुआ आत्मा चंचल है, उसे पीड़ा है।

एक आत्मा जो व्यवहार में (वर्तन में) काम करता है, व्यवहार चला लेता है, उस आत्मा में अभी आप (आपकी रोंग बिलीफ से) हो। जब तक आपका कर्ताभाव है तब तक आप इस व्यवहार आत्मा में हो और यदि कर्ताभाव छूट जाएगा तो आप (राइट बिलीफ से) मूल आत्मा

में आ जाओगे। मूल आत्मा अक्रिय है। खुद का अक्रियपन हो जाए तो खुद मूल आत्मा में तन्मयाकार हो जाएगा और जब तक कर्ताभाव है तब तक भ्रांति है, तब तक हमें व्यवहार आत्मा में रहना है। देहाध्यास से दोष लगता है और कर्म बंधन होता है।

जब आपको ज्ञान होता है तब आप खुद अकर्ता हो, वर्ना जब तक अज्ञान है तब तक आप कर्ता ही हो। जब तक 'मैं चंदू हूँ, कर्ता हूँ' तब तक कर्म बंधन होगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ और चंदूभाई अलग हैं', ऐसा भान रहेगा तो कर्म बंधन रुक जाएगा।

जो चार्ज हो चुका है वह जब अगले जन्म में डिस्चार्ज होता है तब व्यवहार आत्मा की ज़रूरत नहीं रहती है। (मूल आत्मा की उपस्थिति रहती ही है)। जिस प्रकार चार्ज हुई बैटरी (सेल) होती है, उसे यदि गुड़िया में लगाया जाए तो साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से डिस्चार्ज होता ही रहता है। चार्ज करने वाली वस्तु की अब ज़रूरत नहीं है।

मूल चेतन तो शरीर में बिल्कुल जुदा ही रहता है। वह कुछ भी नहीं करता। जिसमें चेतन नहीं है, वह करता रहता है। उसे (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा कहा गया है।

चार्ज (करने) में खुद है, अहंकार खुद उसमें होता है, कर्ता है। चार्ज (करने) में व्यवहार आत्मा, मिश्र चेतन की ज़रूरत है और डिस्चार्ज में, निश्चेतन चेतन में उसकी ज़रूरत नहीं है।

व्यवहार आत्मा ही कर्ता है, निश्चय आत्मा कर्ता नहीं है और कोई कर्म भी नहीं करता है। निश्चय आत्मा तो क्या कहता है कि जिस प्रकार अज्ञानता से यह व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है, अब ज्ञान से समा जा खुद के स्वरूप में।

पुद्गल का गुण ऐसा है कि हम उसे जैसा मानते हैं, *पुद्गल* का स्वरूप वैसा ही हो जाता है और जब ऐसा भान हो जाए, 'मैं कर्ता नहीं हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा हूँ', फिर उस *पुद्गल* को कुछ भी नहीं होता या फिर यदि होता है तब भी (उससे) अलग हो जाते हैं।

यह ज्ञान मिलने से व्यवहार आत्मा में रहकर खुद ने मूल आत्मा को देखा और तभी स्तंभित हो गया कि, 'ओहोहो, इतना आनंद!' अत: पहले जो रमणता भौतिक में थी, वह रमणता फिर उस तरफ चलने लगी।

ज्ञान मिलने के बाद खुद को मूल आत्मा की प्रतीति हो जाती है, उसे दर्शन कहते हैं। उसके बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ, यह चंदूभाई नहीं', ऐसी जो जागृति रहती है, उसे *लक्ष* (जागृति) कहा जाता है। फिर पाँच आज्ञा पालन करने से हर रोज़ भान होता जाता है। जितना अनुभव होता जाता है उतना ही भान होता जाता है। भान को ही अंश ज्ञान, अंश अनुभव होना कहते हैं। सर्वांश अनुभव को आत्मज्ञान होना कहते हैं। उसके बाद चारित्र में आता है। अत: बिलीफ आत्मा, लक्ष आत्मा, उसके बाद भान आत्मा, ज्ञान आत्मा और अंत में पूर्ण होने पर चारित्र आत्मा। हमें ज्ञान मिलने से बिलीफ और लक्ष तो आ गए हैं, अब भान रहना चाहिए। जो भान आत्मा में आ जाए, उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता और बाधा भी नहीं डालता। दादाश्री कहते हैं, 'हम ज्ञान आत्मा में रहते हैं, चारित्र आत्मा में पूरी तरह से नहीं आए हैं।'

व्यवहार आत्मा का कारण भावकर्म है और ज्ञान मिलने से भावकर्म खत्म हो गया।

अब जो, मन की अवस्था में तन्मयाकार हो जाते हैं, उसे 'मेरा नहीं है' कहकर अलग देखना पड़ेगा। क्योंकि अनादि का अभ्यास अलग नहीं होने देता, उसमें उसे मिठास लगती है।

ज्ञान किसका है? *पुद्गल* का। उसे व्यवहार आत्मा (डेवेलप होता हुआ मैं) कहते हैं। आत्मा तो संपूर्ण ज्ञानी ही है। व्यवहार आत्मा जब पूर्ण ज्ञानी बन जाएगा तब छुटकारा होगा। जब खुद मूल भगवान जैसा बन जाएगा तब पूर्णाहुति होगी। ज्ञानी मूल आत्मा नहीं कहलाते, व्यवहार आत्मा कहलाते हैं, *पुद्गल* कहलाते हैं। ज्ञानी हैं इसलिए अभी कुछ बाकी है। दरअसल आत्मा तो संपूर्ण सर्वज्ञ ही है।

जो स्व-पर प्रकाशक है, वह व्यवहार आत्मा है। मूल आत्मा खुद स्व का भी प्रकाशक नहीं है और पर का भी प्रकाशक नहीं है, संपूर्ण प्रकाशक है। उसके लिए कोई विशेषण ही नहीं है। जितने भी विशेषण

हैं, वे व्यवहार आत्मा के लिए हैं। जिसका कोई विशेषण न हो, वह मूल आत्मा है।

[3] पावर चेतन

[3.1] पावर चेतन का स्वरूप

इस जगत् में पाँच इन्द्रियों से जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें मूल चेतन कुछ भी नहीं करता। मूल चेतन का तो उपयोग ही नहीं होता, वह तो अंदर ज्यों का त्यों है, उसमें कोई बदलाव नहीं हुआ है।

जो इंजीनियर के रूप में काम करता है, उसमें आत्मा है ही नहीं। हाँ, शरीर में आत्मा की उपस्थिति है। जिस प्रकार सूर्यनारायण की उपस्थिति से लोग अनेक तरह के काम करते हैं, जैसे कि खेती-बाड़ी और ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं। उसमें सूर्यनारायण खुद कुछ भी करने नहीं आते।

उसी प्रकार से तमाम कार्यों से परे, ऐसा आत्मा अंदर अलग ही है।

तो फिर करता कौन है ? पावर चेतन। अत: न तो जड़ है, न ही चेतन, जिसे मिश्र चेतन कहा जाता है। पावर चेतन से मन-वचन-काया की तीन बैटरियों में पावर भरता है, जो अगले जन्म में फल देता है।

स्वाभाविक जड़ को शुद्ध परमाणु कहते हैं। जब परमाणु चार्ज होते हैं, विभाविक होते हैं, उन्हें *पुद्गल* कहते हैं। उनमें पावर भरता है, *पुद्गल* पावर वाला बन गया है।

स्टील के प्याले में पानी हो, उस पानी को ठंडा करने की मशीन हो तो पानी में से बर्फ बन जाता है। अब यदि उस प्याले को टेबल पर रखें तो स्टील के प्याले के बाहर मॉइस्चर कन्डेन्स (नमी संघनित होगी) हो जाएगा। स्टील के प्याले की सतह ज़रा पानी वाली हो जाएगी, फिर पानी की बूंदें बनेंगी। कुछ देर में बड़ी बूंदें बनकर फिर उसके रेले (पतली धारा) बहने लगेंगे। प्याले के नीचे पानी भर जाएगा। उसके बाद टेबल पर से पानी का रेला बहने लगेगा। टेबल के कोने से नीचे ज़मीन पर बूंदें गिरेंगी।

पानी में ठंडक डाली, जिससे बाहर के परमाणुओं में सक्रियता

उत्पन्न हो गई। बूंदें, रेले, धारा और फिर पानी इकट्ठा हो जाएगा। ठंडक की वजह से यह सब होता ही रहेगा। अंत में जब पानी, कमरे के तापमान पर आ जाएगा तब यह प्रक्रिया बंद हो जाएगी।

उदाहरण के तौर पर पानी मूल आत्मा है, ठंडक-अज्ञान है और गर्मी-ज्ञान है। हवा में जो नमी है, वे परमाणु हैं। उसमें जो शुरुआत में पानी जमता है, वह प्रयोगसा है, और बूंदें-मिश्रसा, रेले-प्रकृति और धारा-प्रकृति की क्रिया, जड़ में यह सब ऑटोमैटिकली हो जाता है। सिर्फ ठंडक से यानी अज्ञान से शुरू हुई और गर्मी से यानी ज्ञान से क्रिया ऑटोमैटिक बंद हो जाती है। जिस कन्डेन्सेशन की वजह से ओस, रेले और बूंदें बनती हैं, वह भी खत्म हो जाता है। इसमें पानी, मूल आत्मा है। वह वैसे का वैसा ही रहा है। गर्मी और ठंड से, ज्ञान और अज्ञान से, जड़ में हल-चल दिखाई देती है, वह किसने किया? यह विज्ञान है। विज्ञान को जानोगे तो यह समझ में आ जाएगा कि किसने किया। विज्ञान नहीं जानोगे तो भ्रांति से कई अन्य चीज़ों पर आक्षेप लगेगा कि इसने किया।

दरअसल चैतन्य, वह मूल आत्मा है। जड़ और चैतन्य के पास में आने से जो विशेष भाव हुआ, 'मैं चंदू', वह पावर चेतन है। जो जड़ में पावर भरता है और पावर भरने के बाद में पावर वाला जड़ भी उछल-कूद करता है, सभी कुछ करता है।

कोर्ट चलती हैं, मजिस्ट्रेट बनता है, प्रधानमंत्री बनता है, कलेक्टर भी बनता है, लेकिन वे सब मूल चेतन नहीं हैं, पावर चेतन हैं। जब तक शरीर में पावर है तब तक पावर से शरीर चलेगा। पावर खत्म होते ही वह गिर जाएगा।

आत्मा जलता नहीं, कटता नहीं। यदि शरीर जड़ है तो शरीर को कोई चोट लगने पर दु:ख क्यों होता है? यह शरीर बिल्कुल जड़ नहीं है, उसमें पावर भरा हुआ है इसलिए दु:ख होता है। आत्मा के निकल जाने के बाद बिल्कुल जड़ कहलाता है। उसके बाद, काटने पर भी कोई दिक्कत नहीं।

'मैं' को दु:ख होता है, मूल आत्मा पर तो कुछ भी असर नहीं होता। उसे दु:ख क्यों होता है? 'मैं'पन की बिलीफ है, 'मैं'पन माना है,

इसलिए। पावर बिलीफ के रूप में आया है, उस पावर की वजह से दुःख है। पावर निकल जाएगा, बिलीफ छूट जाएगी तो दुःख चला जाएगा।

'मैं' को शुद्धात्मा की बिलीफ नहीं बैठती, उसे 'पावर चेतन' की बिलीफ बैठती है। उस अज्ञानता की वजह से यह संसार खड़ा हो गया है। आत्मा तो भगवान ही है। अज्ञान से दो तत्त्व एकाकार हो गए हैं और ज्ञान से जब दोनों तत्त्वों को अलग किया जाता है तब छूट जाते हैं।

व्यवहार आत्मा ही पावर चेतन है। क्रोध-मान-माया-लोभ ही पावर चेतन हैं।

व्यवहार आत्मा में चेतन आया कहाँ से? निश्चय आत्मा कहीं चेतन नहीं देता। वहीं पर यह पूरा विज्ञान है।

जब तक खुद अज्ञान जानता है तब तक वह व्यवहार आत्मा है और जब खुद ज्ञान जानता है तब वह निश्चय आत्मा है, वास्तविक आत्मा है।

जो पढ़ता है, पढ़ाता है, डॉक्टर बनता है, ज्ञानी बनता है, वह सब पावर चेतन है। एक आत्मा में तमाम प्रकार के ज्ञान हैं, इसलिए पावर चेतन उत्पन्न हो सकता है।

मूल आत्मा तो पूरे ब्रह्मांड का ज्ञान ही है लेकिन एक अंश की ओर गया, इसीलिए सर्वांश खो दिया। डॉक्टरी ज्ञान को अनावृत करने जाता है तो बाकी का सब अंधकारमय हो जाता है।

सूर्यनारायण करने नहीं आते, लोग उनके प्रकाश का लाभ उठाते हैं। सूर्य को लेना-देना नहीं है, उनकी उपस्थिति से ही सब होता है। वैसा ही आत्मा की उपस्थिति में होता है, उसमें आत्मा कर्ता नहीं है।

मूल आत्मा को यदि कुछ भी करना हो तो वह कर ही नहीं सकता और यदि करना हो तो पावर चेतन से जो पुतला बनता है वह कर सकता है, वर्ना नहीं हो सकता।

दरअसल चेतन खुद परमात्मा हैं। लोग जहाँ पर चेतन मानते हैं, वहाँ चेतन नहीं है।

आत्मा यानी कि भगवान तो ज्ञाता-द्रष्टा व परमानंदी हैं। उनमें क्रियाशक्ति नहीं है। क्रियाशक्ति जड़ में है। आत्मा की उपस्थिति से क्रोध, मान, माया, लोभ, अंतःकरण व *लागणी* (सुख-दुःख का असर, भावुकता वाला प्रेम), काफी कुछ उत्पन्न हो जाता है।

जिस प्रकार सूर्यनारायण की वजह से यहाँ पर ऊर्जा उत्पन्न होती है, पावर उत्पन्न होता है, उसमें सूर्य का कोई कर्तापन नहीं है। उनकी उपस्थिति में एक अन्य चीज़ के आने से ऊर्जा उत्पन्न हो गई। यहाँ पर कॉन्वेक्स काँच रखें और साथ में दूसरी चीज़ें हों तो वे जल उठेंगी। इससे सूर्य को कोई लेना-देना नहीं है। उसी प्रकार मूल आत्मा की उपस्थिति में जड़ तत्त्वों के इकट्ठे होने से और स्वरूप की अज्ञानता से पावर चेतन उत्पन्न होता है। पावर चेतन से जड़ में पावर भरता है। उसके बाद साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से डिस्चार्ज होता है। इसमें मूल आत्मा कुछ भी नहीं करता।

पावर का भरना और खाली होना, ऐसा खुद की शक्ति से है, आत्मा की सिर्फ उपस्थिति है।

आत्मा की उपस्थिति से जनरेटर (पावर चेतन) उत्पन्न होता है और जनरेटर से तीन बैटरियाँ चार्ज होती हैं और फिर डिस्चार्ज होती हैं।

पावर चेतन से जो पावर भरता है, उसे निश्चेतन चेतन कहते हैं। इस ज्ञान के बाद पावर चेतन खत्म हो गया। अतः फिर शुद्ध चेतन और निश्चेतन चेतन बचा। जैसे-जैसे निश्चेतन चेतन के पावर का उपयोग होगा, वैसे-वैसे वह खत्म हो जाएगा। नया पावर भरना रुक जाएगा।

धर्म करता है, भक्ति करता है, शास्त्र पढ़ता है, समझाता है, उसमें मूल चेतन है ही नहीं। व्याख्यान देने में, व्याख्यान सुनने में पावर चेतन है। मूल चेतन खुद के स्वभाव में ही है।

स्वाध्याय करो, तप करो, जप करो, ध्यान करो, वह सब करता है *पुद्गल* और खुद ऐसा मानता है कि, 'मैंने किया'। उसमें पावर चेतन काम कर रहा है। मोक्षमार्ग समझने के लिए है, करने के लिए नहीं।

दादाश्री कहते हैं, जो मुझे दिखाई देता है, वह आपको समझाया नहीं जा सकता। जितने शब्द मेरे हाथ में आते हैं, उनसे समझाने का प्रयत्न करता हूँ, बाकी इसके लिए शब्द नहीं हैं। इसके लिए ढूँढकर शब्द इकट्ठे करने पड़ते हैं।

इस काल में जनरेटर, सेल, पावर, ऐसे उदाहरण देकर परम पूज्य दादाश्री ने मूल तत्त्वों का विज्ञान समझाया है। मूल चेतन शुद्ध ही है। अज्ञानता से पावर चेतन उत्पन्न हो गया है, उससे यह पूरा जगत् दिखाई देता है। पावर चेतन को समझ जाए तो निबेड़ा आ जाएगा।

[3.2] पावर चेतन विराम पाता है, आत्मज्ञान के बाद

चार्ज हुई बैटरियों के आधार पर उदयकर्म आते हैं। कषायों से बैटरियाँ चार्ज होती हैं। 'मैंने किया, यह मेरा है, मैं चंदू हूँ', इस तरह के इगोइज़म से चार्ज होता है। 'क्रिया मैं कर रहा हूँ', ऐसा कहता है, वहाँ पर पावर चेतन है, फिर भी इसमें 'मैं' अलग है और पावर चेतन अलग है।

बैटरियाँ तो बटन दबाने पर डिस्चार्ज होती हैं जबकि मन-वचन-काया की इन तीन बैटरियों का बटन दबा हुआ ही रहता है, साँस लेने व छोड़ने से निरंतर डिस्चार्ज होता ही रहता है। फिर चाहे सोए या जागे, शादी करे या वैधव्य भोगे, लेकिन बैटरी का डिस्चार्ज होता ही रहता है। पावर खत्म हो जाए तो सेल (देह) को जला देते हैं या दफन कर देते हैं।

जगत् के लोग चेतन को नहीं देख सकते हैं, चेतन की अवस्थाओं को नहीं देख सकते, *पुद्गल* की अवस्थाओं को देखते हैं। वह भी शुद्ध *पुद्गल* की नहीं, विभाविक *पुद्गल* की। उसमें पावर चेतन से पावर भरा हुआ रहता है।

'एन्ट्रेन्स' (प्रवेश), ऐसे साइन बोर्ड से संसार के अंदर आए थे, अब एग्ज़िट (बाहर जाने) के साइन बोर्ड को पढ़कर बाहर निकल जाना है। लोकसंज्ञा, पूर्व कर्म और अज्ञानता से अंदर आए हैं। अब ज्ञानी की संज्ञा, ज्ञान और सत्संग से बाहर निकल पाएँगे। एन्ट्रेन्स भी बोर्ड है और एग्ज़िट भी बोर्ड है। मैला भी खुद हुआ है और साबुन भी खुद है और

कपड़ा भी खुद है, अंत में खुद साफ हो जाता है। 'मैं' को रोंग बिलीफ हो गई इसलिए पावर चेतन उत्पन्न हो गया और संसार में घुसे। 'ज्ञानी' के ज्ञान से 'मैं' को राइट बिलीफ बैठी इसलिए संसार से छूट गए, आत्मा में आए। मूल आत्मा में आ गया कि खुद साफ हो गया। मूल आत्मा अंत तक अलग ही है, अकर्ता ही रहा है।

ज्ञानी कौन (सा भाग) बनता है? जो यह कहता है कि, 'मुझ पर दु:ख आया।' जो 'मैं' और 'मेरा' कहता है, वही अज्ञानी (भाग), ज्ञानी बनता है। मूल आत्मा तो ज्ञानी ही है।

विभाव से मैं उत्पन्न हुआ और मैं को रोंग बिलीफ हो गई कि, 'मैं चंदू हूँ'। उससे जो पावर चेतन बना, वही अशुद्ध चेतन है। उसी को ज्ञान मिलता है, राइट बिलीफ बैठती है कि, 'मैं चंदू नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ।' तो खुद शुद्ध चेतन हो जाता है। मूल चेतन तो दरअसल चेतन है, वह अलग ही रहा है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलने से, पावर चेतन को जो रोंग बिलीफ से उल्टा पावर था, वह पावर राइट बिलीफ से सीधा हो जाता है। समझ सीधी हो गई तो सीधा करने लग जाता है।

प्रज्ञा, मूल आत्मा की ही शक्ति है। जबकि बुद्धि शक्ति इस पावर चेतन की है। ज्ञान मिलने से बुद्धि में से प्रज्ञा नहीं बनती। बुद्धि, बुद्धि की जगह पर रहती है और प्रज्ञा शक्ति प्रकट हो जाती है। बुद्धि उसे संसार में खींचती है, जबकि प्रज्ञा शक्ति सचेत करती है और मोक्ष की तरफ ले जाती है। अंत में जब उसे केवलज्ञान होगा तब वह खुद और प्रज्ञा, मूल आत्मा में एक हो जाएँगे।

देखने व जानने की क्रिया तो आत्मा में ही है लेकिन आत्मा विनाशी और अविनाशी दोनों को देख सकता है। जबकि पावर चेतन (मिश्र चेतन) सिर्फ विनाशी को ही देख सकता है, अवस्थाओं को देखता है।

जो अज्ञान को जानता है, वह पावर चेतन है और जो ज्ञान को जानता है, वह दरअसल आत्मा है।

अंदर आत्मा के प्रकाश में झलकता है यानी वहाँ पर शब्द नहीं

हैं। ये 'देखना व जानना' शब्द, उस प्रकाश में उतरने तक हैं। देखने व जानने का भाव रहा, वह आनंद है। खुद को अन्य कोई ज़रूरत नहीं हैं।

इस ज्ञान के बाद हम खुद को 'शुद्धात्मा' कहते हैं। उसके अलावा बाहर का जो भौतिक भाग है, वह *'पुद्गल'* कहलाता है। वह *पुद्गल* ऐसा कहता है कि, 'जब तक हमें हमारी मूल स्थिति में नहीं लाओगे तब तक आप मुक्त नहीं हो सकोगे।' क्योंकि मूल परमाणु शुद्ध थे, हमने विभाव किए इसलिए विकृत हुए हैं। अब हम अपनी जो शुद्ध दशा है यानी कि स्वभाव, उसमें अशुद्धि नहीं मानेंगे तो *पुद्गल* शुद्ध होता ही रहेगा।

जितना भी डिस्चार्ज-*पुद्गल* है, उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहकर जाने दोगे तो वह शुद्ध होकर चला जाएगा।

दादा की पाँच आज्ञा में रहने पर नए *पुद्गल* का अशुद्ध होना बंद हो जाएगा और जो पहले बिगड़ चुका है, उसका शुद्धिकरण होता रहेगा।

पुद्गल में दखलंदाज़ी नहीं करेंगे तो वह शुद्ध होता ही रहेगा। दखलंदाज़ी कौन करता है? अज्ञान मान्यताएँ।

आत्मा अपना स्वरूप ही है। उसका भान नहीं होने के कारण उल्टे चले, तो जितना उल्टे गए उतना ही वापस आना पड़ेगा।

राग-द्वेष करके *पुद्गल* को बिगाड़ा था, अब समभाव से *निकाल* करके *पुद्गल* को साफ करना है। वैसे-वैसे खुद मुक्त होता जाएगा।

'मेरा, मेरा' करके बिगाड़ा था, 'नहीं है मेरा' करके साफ करना है। आगे की दशा में यह जो पावर भरा हुआ पुतला है, उसे अलग रखकर 'देखना और जानना' है।

शुद्ध परमाणु विश्रसा हैं और जो पावर भरे हुए परमाणु प्रयोगसा होकर, अगले जन्म में फल देने को तैयार हुए, वे मिश्रसा हैं। इन दोनों में इतना ही फर्क है कि उसमें से पावर का उपयोग हो गया है और इसमें पावर का उपयोग नहीं हुआ। ज्ञान के बाद जैसे-जैसे पावर का उपयोग होता जाएगा वैसे-वैसे परमाणु विश्रसा होकर चले जाएँगे।

दादाश्री कहते हैं मेरा मूल चार्ज करने वाला पावर खत्म हो गया है

लेकिन उन बैटरियों का पावर अभी तक खत्म नहीं हुआ है और महात्मा तो प्रतीति से शुद्धात्मा हुए हैं लेकिन अभी भी जागृति *पुद्गल* में चली जाती है। इसलिए अजागृति से *पुद्गल* पेन्डिंग रह जाता है। जैसे-जैसे आज्ञा का पालन होता जाएगा, फाइलों का समभाव से *निकाल* होगा, वैसे-वैसे जागृति वापस आती जाएगी, उसके बाद अलग ही रहेगा।

दादाश्री जैसी दृष्टि लानी होगी। कोई गालियाँ दे तब भी निर्दोष दिखना चाहिए। गालियाँ देने वाला पावर चेतन है और दरअसल चेतन शुद्धात्मा है। दोषित दिखाई दे तो वह भ्रांति है। सामने वाले का पावर चेतन अपने हिसाब के अधीन है। हिसाब चुक जाएगा, निर्दोष दृष्टि हो जाएगी तो कुछ भी बाकी नहीं रहेगा।

[4] मिश्र चेतन

चेतन चेतन में है, अचेतन अचेतन में है। अचेतन विनाशी है, चेतन अविनाशी है।

मन-वचन-काया, बुद्धि-चित्त-अहंकार, क्रोध-मान-माया व लोभ में मूल चेतन नहीं है। यह समझ में नहीं आने की वजह से खुद उलझन में पड़ जाता है।

क्रोध-मान-माया-लोभ जड़ के भी गुण नहीं हैं और चेतन के गुण भी नहीं हैं। आत्मा और जड़ ये दोनों नज़दीक आ गए इसलिए व्यतिरेक गुण, क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न होते हैं। उससे यह संसार चल रहा है।

व्यतिरेक गुणों से मूल आत्मा नहीं बिगड़ा है। उसके गुणों में जो दर्शन (गुण) है, वह लोगों के अज्ञान प्रदान से आवृत्त हो गया है। इसलिए खुद को ऐसी रोंग बिलीफ बैठ गई है, 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं ही यह कर रहा हूँ, यह शरीर मेरा है।' संयोगों के दबाव से, अज्ञानता से चेतन को रोंग बिलीफ हो गई है। वह मिश्र चेतन कहलाता है।

'मैं चंदू हूँ, मैंने किया,' वह मिश्र चेतन है। उसने अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठा की। इसलिए फिर अगले जन्म में प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में वह फल देगा, वही निश्चेतन चेतन है अर्थात् मात्र मुर्दा है।

मिश्र चेतन का जन्म यों ही नहीं हो गया। व्यवहार आत्मा (डेवेलप होता हुआ 'मैं') की बिलीफ बिगड़ गई है। वह चार्ज करता रहता है। उसी से यह उत्पन्न हुआ है, फिर भी मूल आत्मा वैसे का वैसा ही है।

मिश्र चेतन से कर्म बंधन होता है। उससे जब कड़वे-मीठे फल आते हैं तब वैसी की वैसी ही रोंग बिलीफ रहती हैं। 'मैं यह हूँ या वह हूँ', ऐसा पता नहीं चलता।

यह संसार है ही ऐसा कि जन्म से ही उसे नाम देते हैं। फिर नाम को भतीजा, चाचा कहा जाता है। इस प्रकार भयंकर अज्ञानता के संस्कार देते हैं। संसार अर्थात् अज्ञानता में ही डालते रहना। लोग रोंग बिलीफ फिट कर देते हैं।

मिश्र चेतन अर्थात् उसमें चेतन का छींटा तक नहीं है, मात्र पावर चेतन है।

लोग ऐसा ही समझते हैं कि जो यह सबकुछ कर रहा है, वही चेतन है। क्रिया में आत्मा नहीं है, आत्मा में क्रिया नहीं है। मिश्र चेतन तो आत्मा की उपस्थिति से चल रहा है।

जो सर्जन होता है, वह मिश्र चेतन का है और विसर्जन जड़ शक्ति की क्रिया है। जन्म से लेकर, बड़े होने तक, वृद्ध होने तक सभी कुछ विसर्जन शक्ति से है।

नया शरीर आत्मा भी ग्रहण नहीं करता और जड़ भी ग्रहण नहीं करता, उसे मिश्र चेतन ग्रहण करता है। यहाँ पर विज्ञान है। यह तो, मिश्र चेतन को ही खुद का स्वरूप मान लिया है। वह तो रिलेटिव-रियल है।

चेतन के तीन भेद हैं - शुद्ध चेतन, मिश्र चेतन और निश्चेतन चेतन। यह निश्चेतन चेतन डिस्चार्ज होता हुआ इफेक्टिव भाग है। उसमें अज्ञानता से, 'मैं यह हूँ, मैंने यह किया' ऐसा भाव, वह मिश्र चेतन है। उसकी वजह से परमाणु खिंचे और चार्ज हो गए। उसके बाद जब वे डिस्चार्ज हो जाते हैं तब, निश्चेतन चेतन हो जाता है। उल्टा सोचने लगे तभी से खुद मिश्र चेतन बनने लगता है। फिर वह जम जाता है। उसके बाद अगले जन्म में जब फल आते हैं तब वह निश्चेतन चेतन कहलाता है।

मिश्र चेतन में जीवित अहंकार होता है और निश्चेतन चेतन में डिस्चार्ज अहंकार होता है। यानी कि मिश्र चेतन जीवंत है। यह क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह सभी कुछ कर सकता है। जिसमें अहंकार एकाकार नहीं होता, वह है निश्चेतन चेतन और यदि क्रोध-मान-माया-लोभ व अहंकार जीवित हों, कार्यरत हों, कर्ताभाव हो, मालिकीभाव हो तो वह मिश्र चेतन है।

जो चार्ज होता है वह मिश्र चेतन है और जो डिस्चार्ज होता है वह निश्चेतन चेतन है। ये क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं डिस्चार्ज में और खुद उनका मालिक बन जाता है, कर्ता बनता है। 'मुझे हो रहा है' ऐसा कहा, 'मैंने किया' ऐसा माना, तो चार्ज होता है। वह 'मैं' का मालिकीभाव है। 'मैं' उल्टी जगह पर बैठ जाए तो *पुद्गल* को मालिकीभाव होता है और 'मैं' सही जगह पर बैठ जाए तो खुद के गुणों का मालिकीभाव रहता है।

मालिकीभाव वाला जीवंत है। उससे संसार है, और जो मालिकीभाव रहित है, वह मुर्दा है।

जब अगला जन्म लेता है तब चार कषाय, सभी कॉज़ेज़ और आत्मा साथ में जाते हैं। निश्चेतन चेतन (यहीं) छूट जाता है, खुद अगले जन्म में अज्ञान दशा में, मिश्र चेतन में जाता है।

जब मृत्यु होती है तब यह निश्चेतन चेतन और 'मैं कर्ता हूँ' ऐसे भान वाला मिश्र चेतन भी मर जाता है लेकिन कॉज़ेज़ के रूप में थोड़ा-बहुत मिश्र चेतन ('मैं') साथ जाता है। इफेक्टिव होते समय निश्चेतन चेतन उसमें से अलग होकर डिस्चार्ज होता रहता है जबकि मिश्र चेतन (मैं चंदू) जो रहता है, वह फिर से चार्ज करता रहता है।

अज्ञान दशा में क्रमिक मार्ग में एक शुद्ध चेतन, दूसरा मिश्र चेतन और तीसरा निश्चेतन चेतन है। अक्रम में ज्ञान के बाद मिश्र चेतन रहता ज़रूर है लेकिन ज्ञान लेने के बाद में कुछ काम नहीं करता।

ज्ञान के बाद जो घूमता-फिरता है, बोलता-चलता है, चिढ़ता है, गुस्सा करता है, स्वाद लेता है, जो ऐसा सब करता है, वह निश्चेतन चेतन है। उसमें मूल चेतन बिल्कुल भी नहीं है।

अज्ञान दशा में मिश्र चेतन डिज़ाइन बदल देता है। जबकि निश्चेतन चेतन डिज़ाइन से बाहर नहीं जा सकता। जो डिज़ाइन है, उसी डिज़ाइन के अनुसार चलता है।

मिश्र चेतन करता है और भोगता है। ज्ञान के बाद में जीवित अहंकार खत्म हो गया। ज्ञान के बाद खुद को शुद्धात्मा होकर निश्चेतन चेतन का ज्ञाता रहना है।

इस ज्ञान के बाद ममता (मर जाती है) नहीं रही। मरकर जीवित रहता है। वह बस देखता और जानता है, दखल नहीं रहता।

निर्दोष दृष्टि प्रज्ञा का गुण है। अब किसी के दोष नहीं दिखाई देने चाहिए। दोषित दृष्टि, वह मिश्र चेतन का गुण है। ज्ञान के बाद मिश्र चेतन खत्म हो गया। अब अगर झगड़ा करता है तो वह निश्चेतन चेतन करता है, लेकिन अपनी दृष्टि निर्दोष रहनी चाहिए कि कर्म के उदय के अधीन लड़ रहा है, यह उसका खुद का, आज का दोष नहीं है।

[5] निश्चेतन चेतउन

जीवात्मा, निश्चेतन चेतन है जबकि मूल आत्मा शुद्ध चेतन है।

हकीकत स्वरूप क्या है? मूल आत्मा ही शुद्ध चेतन है, वही परमात्मा है और जगत् जिसे चेतन मानता है, वह तो निश्चेतन चेतन है। लोहे के गोले को खूब तपाएँ तो वह अग्नि जैसा लगता है, लेकिन वह मूल अग्नि नहीं है। उसी तरह जो पाँच इन्द्रियों से अनुभव किया जाता है, वह मूल आत्मा नहीं है, निश्चेतन चेतन है।

इस शरीर में, मूर्त भाग में आत्मा नहीं है, आत्मा अमूर्त है। मूर्त में आत्मा रहा हुआ है लेकिन मूर्त रिलेटिव है, विनाशी है और वह निश्चेतन चेतन है।

शुद्धात्मा के अलावा वाला भाग मिकेनिकल है, वह निश्चेतन चेतन है। यानी कि लक्षण चेतन जैसे दिखाई देते हैं लेकिन उसमें चेतन का एक भी गुणधर्म नहीं होता। चेतन के गुण अविनाशी हैं, अगुरु-लघु स्वभाव वाले हैं। जबकि निश्चेतन चेतन के गुण विनाशी हैं, बढ़ते-घटते रहते हैं।

दान देने का विचार आता है, त्याग करने का विचार आता है, त्याग करता है, वकालत करता है लेकिन क्या वे चेतन के गुण हैं? वे निश्चेतन चेतन के गुण हैं, विनाशी हैं।

लोग जो चलता-फिरता है उसे चेतन मानते हैं। क्योंकि मरने के बाद चल-फिर नहीं पाते। लक्षण चेतन जैसे लगते हैं लेकिन गुणधर्म चेतन के नहीं हैं इसलिए वह चेतन नहीं है लेकिन निश्चेतन चेतन है।

शुद्ध चेतन को समझना अति-अति मुश्किल है और लोग जिसे समझते हैं वह तो निश्चेतन चेतन है। उसे स्थिर करते हैं लेकिन मूल स्वरूप स्वभाव से ही स्थिर है और निश्चेतन चेतन तो चंचल स्वभाव वाला ही है। इसलिए छुटकारा नहीं हो पाता न!

है जड़, फिर भी जो चलता-फिरता है, वकालत करता है, जजमेन्ट देता है, केस चलाता है या वादी-प्रतिवादी, लोग इन सब को चेतन मानते हैं लेकिन वे तो निश्चेतन चेतन हैं। यह जगत् इस माया की वजह से परेशान है।

चारों तरफ दर्पण लगाए हुए रूम में तरह-तरह का दिखाई देता है और उससे असर हो जाता है, उससे चार्ज हो जाता है। वह चार्ज, डिस्चार्ज होता है तो वह निश्चेतन चेतन है।

छिपकली की पूँछ कट जाने के बाद पूँछ तड़पती है। लोग उसके लिए कहते हैं कि, 'इसमें आत्मा है', लेकिन नहीं, मूल आत्मा तो छिपकली के साथ ही चला गया। यह तो निश्चेतन चेतन है। यह तो डिस्चार्ज परिणाम है। इसीलिए वह उछल-कूद करती है। जहाँ पर ज्ञान-दर्शन हैं, वहाँ आत्मा है।

जहाँ किसी भी प्रकार की *लागणी* उत्पन्न होती है वहाँ चेतन है। जिसे *लागणी* होती है वह निश्चेतन चेतन है।

जहाँ निश्चेतन चेतन हो वहाँ पर शुद्ध चेतन होता है और जहाँ निश्चेतन चेतन नहीं है वहाँ पर चेतन भी नहीं है। जीवित पेड़ में चेतन है लेकिन सूख चुकी लकड़ी में, जिसमें से टेबल बनती है, वहाँ पर निश्चेतन चेतन नहीं है यानी कि चेतन नहीं है। वहाँ पर निश्चेतन है, जड़ ही है।

हर एक में आत्मा एक सरीखा ही है लेकिन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की वजह से अलग-अलग व्यवहार उत्पन्न हो जाते हैं। व्यवहार, निश्चेतन चेतन है और जगत् के लोग उसी को चेतन मानते हैं, वही भ्रांति है।

जिस प्रकार मशीनरी में पेट्रोल डालना पड़ता है, उसी प्रकार इस शरीर में भी खाने-पीने, हवा की ज़रूरत पड़ती है, तभी चलता है, वर्ना सब बंद हो जाता है। इसीलिए यह शरीर भी मिकेनिकल चेतन है। यह सूक्ष्म मशीनरी है, जिसे चार्ज करके आए हैं और यह अपने आप डिस्चार्ज होता है। उसे ऐसा मानता है कि 'मैंने किया', इससे अगले जन्म के लिए नया चार्ज होता है। 'दरअसल' चेतन को समझना है, फिर कल्याण हो जाएगा।

शरीर, मन, बुद्धि और वाणी सभी सजीव दिखाई देते हैं लेकिन वह प्रकृति है और प्रकृति की सजीवता अर्थात् जिस तरह डोरी लपेटा हुआ लट्टू घूमता है, उस तरह की सजीवता है। वह चेतन जैसा दिखाई देता है लेकिन वह निश्चेतन चेतन है।

उसी प्रकार ये सभी मनुष्य डिस्चार्ज हो रहे हैं, उसमें 'मैं हूँ' ऐसी मान्यता से नया चार्ज होता है, इस बात का भान ही नहीं है। पहले जो चार्ज हो चुका है वह डिस्चार्ज में चलता-फिरता है। वह पराई शक्ति से चलता है, उसी को निश्चेतन चेतन कहा है।

आत्मा की उपस्थिति में अज्ञानता से अहंकार उत्पन्न होता है। उस अहंकार के थ्रू जो प्रकाश आता है वह इनडायरेक्ट प्रकाश है। उससे यह व्यवहार गतिमान होता है, आत्मा से गतिमान नहीं है।

लोग ऐसा ही मनाते हैं कि चेतन प्रेरणा से *पुद्गल* प्रवर्तमान है, लेकिन नहीं, *पुद्गल* की सारी प्रवर्तना निश्चेतन चेतन है।

प्रकृति बिल्कुल जड़ नहीं है, वह निश्चेतन चेतन है। निश्चेतन चेतन अर्थात् डिस्चार्ज चेतन है। खुद ने कुछ भी चार्ज किया हो तो फिर वह अपने आप ही डिस्चार्ज होता है या उसमें कुछ करना पड़ता है? वह डिस्चार्ज पूरा इफेक्टिव है, वह निश्चेतन चेतन है।

एक है, शुद्ध चेतन, वह मूल आत्मा है और दूसरा है, इफेक्टिव चेतन। उसके दो भाग हैं, 'मैं करता हूँ' (मिश्र चेतन) मानने से बंधन होता है, और 'मैं भोगता हूँ' ऐसा लगता है लेकिन यदि उसका कर्ता नहीं बने तो वह निश्चेतन चेतन है, तब बंधन नहीं होता। ज्ञान लेने के बाद में इफेक्टिव चेतन रहता है, वह फल देकर जाता है। नया बीज नहीं डलता।

जब तक खुद को ऐसा भान नहीं हुआ है कि, 'मैं शुद्ध चेतन हूँ' तब तक खुद निश्चेतन चेतन में ही बरतता है। ये साधु, सन्यासी, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी के जीव, देव सभी। (समकिती और ज्ञानी के अलावा।)

जहाँ किंचित्‌मात्र भी चंचलता नहीं है, वह चेतन है, और चंचलता वाला भाग मिश्र चेतन है, और उससे भी बाहर वाला भाग अचेतन चेतन है। जिसे फाइल कहते हैं, वह भाग निर्जीव नहीं है, फिर भी अचेतन चेतन है, निश्चेतन चेतन है। सिर्फ मान्यता ही है कि यह जीव है, इसमें चेतन है ही नहीं।

बेटे की मृत्यु हो जाए तो कुछ लोग रोते हैं, कुछ लोग नहीं रोते। ज्ञानी तो इसे बिल्कुल भी, कुछ मानते ही नहीं हैं। क्योंकि चेतन नहीं मरता है, सिर्फ रोंग बिलीफ ही है।

[6] मिकेनिकल चेतन

दो प्रकार के आत्मा हैं : पहला, सचर, वह मिकेनिकल आत्मा है और दूसरा, अचर, वह मूल आत्मा है। मूल आत्मा में से मिकेनिकल आत्मा उत्पन्न हुआ है।

खुद अचल है, लेकिन खुद के स्वरूप की अज्ञानता के कारण व लोकसंज्ञा से ऐसा मानता है कि, 'मैं चंदू हूँ', उससे चंचलता आ जाती है। जो खुद चंदू के रूप में रहता है, वह मिकेनिकल आत्मा है।

मिकेनिकल आत्मा को ऐसा मानना कि, 'यह मैं हूँ', वही भ्रांति है, उसी को विकल्प कहते हैं, वही कर्तापन है। यह मिकेनिकल आत्मा अहंकार से उत्पन्न हुआ है। जब अहंकार विलय हो जाता है तब मिकेनिकल आत्मा बंद हो जाता है।

जब मिकेनिकल आत्मा से खुद अलग रहता है, तो वह खुद बंधन में नहीं आता। उसके बाद मिकेनिकल आत्मा चाहे कुछ भी करता रहे, लेकिन यदि खुद तन्मयाकार नहीं होता तो बंधन में नहीं आता है। वीतरागों ने ऐसा मार्ग प्राप्त किया था।

यह सारा व्यवहार करता है, जप, तप, शास्त्रों का पठन, ध्यान यह सब मिकेनिकल आत्मा करता है। उसे ऐसा मानता है कि, 'यह मैं हूँ' और उसे सुधारने का प्रयत्न करता है, वही भूल है। मूल आत्मा उसके उस पार है। जब सेल्फ रियलाइज़ेशन हो जाता है तब मूल आत्मा की प्राप्ति होती है।

यह मिकेनिकल आत्मा *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना) स्वभाव वाला है।

जगत् जिसे आत्मा मान रहा है, वह आत्मा है ही नहीं। लौकिक मान्यता से आत्मा मानता है लेकिन वह तो मिकेनिकल आत्मा है। वह मिकेनिकल आत्मा राग-द्वेष करता है, खाता है, पीता है, क्रोध करता है, धर्म-ध्यान करता है, उसे थकान लगती है, चिढ़ता भी है, लोभ करता है, चिंता करता है। बाकी, खुद तो जो मूल स्वरूप में है, वह कुछ भी नहीं करता है।

जो शास्त्र पढ़ता है, उपदेश देता है, उपदेश लेता है, पढ़ता है, डॉक्टर बनता है, योग करता है, उसे चेतन मानते हैं लेकिन उसमें चेतन बिल्कुल भी है ही नहीं। अब यदि मिकेनिकल आत्मा को खुद का आत्मा मान ले तो कब मेल बैठेगा? ज्ञानी पुरुष के अलावा वास्तविक आत्मा को कोई नहीं जान सकता।

'मैं पापी हूँ, अशुद्ध हूँ', ऐसा तो मिकेनिकल आत्मा के लिए है, इसमें मूल आत्मा अपराधी नहीं है।

जन्म हुआ तभी से सबकुछ यह निर्जीव भाग ही कर रहा है और अज्ञानता से हम अहंकार करते हैं कि, 'मैंने किया'। स्वाभाविक निर्जीव, वह परमाणु रूपी है और यह विभाविक निर्जीव, *पुद्गल* रूपी है, इससे संसार चलता है।

क्रमिक मार्ग में अस्सी प्रतिशत आत्मज्ञान हो जाए तो बीस प्रतिशत अहंकार रहता है। आत्मा और अहंकार साथ में रह सकते हैं। अक्रम मार्ग में जब ज्ञान होता है तब सजीव अहंकार सौ प्रतिशत खत्म हो जाता है। उसके बाद निर्जीव अहंकार से संसार चलता रहता है। आत्मा अलग ही रहता है।

इस देह में जो अदृश्य है, वही आत्मा है। दृश्य में आत्मा कहीं भी नहीं है।

जब तक खुद को इस जगत् की भौतिक इच्छाएँ हैं तब तक यह मिकेनिकल चेतन है। खुद अपने स्वरूप में स्थिर हो जाए, उसके बाद मिकेनिकल चेतन बंद हो जाता है।

[7] मुर्दा

खुद शुद्धात्मा बन गए, उसके बाद शेष क्या रहा? खाता है, पीता है, बोलता है, गुस्सा करता है, जो यह सब करता है, वह कौन है? जीवित है या मुर्दा? जिसका चेतन के साथ बिल्कुल भी व्यवहार नहीं रहा, ऐसा मुर्दा है वह। उसे अच्छी भाषा में निश्चेतन चेतन कहा गया है।

जिस तरह सेल में पावर चार्ज किया और सेल को गुड़िया में रखें, तब फिर गुड़िया चलती-फिरती है, बोलती है, रोती है, गाती है, फिर भी ऐसा डिस्चार्ज होते हुए पावर से है। जो पुतला पावर से चलता है, क्या उसे जीवित कह सकते हैं? चिढ़ जाता है तो वह भी डिस्चार्ज परिणाम है। अब उसे ऐसा कैसे मान सकते हैं कि, 'यह मुझे हो रहा है'?

वाणी को ऐसा कहा, 'टेपरिकॉर्डर बोलती है' तो फिर वह मुर्दा हो गई न!

निश्चेतन चेतन अर्थात् चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन है निश्चेतन। अत: उसे मुर्दा ही कहेंगे, ज्ञानी की दृष्टि से। अत: उसमें गहरे उतरने जैसा नहीं है। राग-द्वेष करने जैसा रहा ही नहीं।

जिसने ज्ञान नहीं लिया हो, उसमें मिश्र चेतन है बीच में, उसे मुर्दा नहीं कह सकते। वह तो जीवित है, नया चार्ज करता है, वह अहंकार सहित है।

जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ है और खुद शुद्धात्मा में ही रहता है, उसके मन-वचन-काया चाहे कुछ भी करें, उसकी जोखिमदारी उसकी खुद की नहीं है। क्योंकि डिस्चार्ज भाग मुर्दा है।

इस संसार में व्यवहार में मृत भाग ही चल रहा है। जो गुरु बनता है, शिष्य बनता है, संबंधी बनता है, वह सारा मरा हुआ भाग ही है। उसे 'मैंने किया, मैं हूँ' ऐसा मानता है, वही भ्रांति है। आत्मा अनंत शक्ति का धाम है, वह ऐसा नहीं करता।

मन, वाणी और देह की, बुद्धि, चित्त और अहंकार की किसी भी क्रिया में मूल चेतन नहीं है। वह अलग ही है, वीतराग ही है, वह बिगड़ा भी नहीं है और वही भगवान है। क्रिया करने वाले में, करवाने वाले में चेतन नहीं है, वह सारा मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट है। आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता, ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी ही रहता है।

जीवित मनुष्य में चेतन अलग ही है। जीवित जैसा दिखाई देता है, बातें करता है। बातें सुनता है लेकिन वह ऐसा सब चेतन के बिना ही करता है।

मशीन है तो वह मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट है, उसे मुर्दा ही कहेंगे न! फिर चाहे वह बंद हो या चल रही हो। इलेक्ट्रिसिटी भी मशीन का ही भाग है, उसमें आत्मा नहीं है।

संसार के लोगों के लिए एक तरफ तो निश्चेतन चेतन है, वह मुर्दा है। वह डिस्चार्ज होता रहता है लेकिन अज्ञानता है तो साथ में अंदर मिश्र चेतन भी है, वह चार्ज कर देता है। ज्ञान के बाद में मिश्र चेतन खत्म हो गया और खुद शुद्ध चेतन में आ गया इसलिए अब चार्ज नहीं होता।

[8] चल-अचल-सचराचर

इस शरीर में आत्मा के दो विभाग हैं : एक है, अचल आत्मा, जो कि मूल आत्मा है, रियल है, अविनाशी है और दूसरा है सचर आत्मा, वह पावर आत्मा है, व्यवहार आत्मा है, विनाशी है, रिलेटिव है।

जब तक खुद को भौतिक सुखों की वांछना है, तब तक खुद इस सचर आत्मा में रहता है कि 'मैं यह हूँ'।

जहाँ सचर आत्मा है, वहाँ पर अचल आत्मा (भी) है। चौले के भिगोने पर अगले ही दिन उसमें अंकुर निकल आते हैं। जहाँ *लागणी* (उगना) दिखाई देती है वहाँ पर अंदर अचल आत्मा है ही। अचल आत्मा के स्पर्श से पावर उत्पन्न होता है। उसमें से फिर सचर आत्मा उत्पन्न होता है।

'दरअसल' आत्मा ही परमात्मा है और यह जीव सचर आत्मा है, यह मिकेनिकल चेतन है। अज्ञानता से खुद को भ्रांति उत्पन्न हो गई है कि 'मैं, यह सचर हूँ', यह भूल है। खुद की जो रोंग बिलीफ है, उससे सचर में 'मैं'पन का आरोपण हुआ है, उसमें से मुक्त कब होगा?

जब तक व्यवहार आत्मा को सत्य मानता है तब तक भटकना है और मूल आत्मा के दर्शन हो जाए, सम्यक्त्व हो जाएँ तो हल आ जाता है।

अचर आत्मा शुद्ध ही है और सचर आत्मा अशुद्ध है। जब तक खुद का मुकाम सचर आत्मा में है तब तक सुख-दुःख भोगने हैं। खुद जब अचल आत्मा में आ जाए तब सुख-दुःख नहीं रहते।

लोग जिसे स्थिर करने जाते हैं, वह मिकेनिकल चेतन है और मिकेनिकल स्थिर नहीं हो सकेगा। मूल चेतन अचल ही है। खुद अचल ही है लेकिन यदि भान हो जाए तो। अतः यदि खुद मूल स्वरूप को ढूँढ निकाले तो मूल स्वरूप स्थिर ही है।

केवलज्ञानियों ने कैसा आत्मा देखा? मूल आत्मा, जो चेतन स्वरूपी है। चेतन का उपयोग नहीं होता, वह खत्म नहीं होता, उसका नाश नहीं होता और वह अचल स्वभाव वाला है, कभी भी चंचल नहीं हुआ है, जो चंचल हो जाता है, वह मिकेनिकल आत्मा है।

चिड़िया दर्पण में प्रतिबिंब को, 'मैं हूँ', ऐसा मानती है, ऐसी भ्रमणा उत्पन्न हो गई है। इंसान परछाई को 'मैं हूँ' ऐसा मानता है। वास्तविक आत्मा को पहचान जाए तो कल्याण हो जाएगा।

जो संसार में रचा-पचा रहता है, वह आत्मा तो मिकेनिकल चेतन है। यह मिकेनिकल चेतन विज्ञान से उत्पन्न हो गया है।

सचराचर जगत् में मनुष्य को खुद अपनी जात का भान हो जाए तो मूल्य है वर्ना कोई मूल्य नहीं है।

मूल आत्मा अचल है, खुद अचल है, लेकिन खुद को रोंग बिलीफ हो गई है कि 'मैं चंदू हूँ', उससे सचर उत्पन्न हो गया है। सिर्फ इतना भान हो जाए कि आत्मा अचल भाग में है तो मोक्ष हो जाएगा।

वास्तव में आत्मा खुद अचल ही है, लेकिन खुद की रोंग मान्यता सचर है। यानी कि मिकेनिकल की भक्ति से मिकेनिकल में रहता है और दरअसल की भक्ति से दरअसल बनता है। जब तक सचल की मान्यता नहीं टूट जाती तब तक अचल नहीं बन सकता।

'मैं कौन हूँ' ऐसा भान होते ही कॉज़ेज़ बंद हो जाते हैं। उसके बाद सचर खत्म हो जाता है, उसके बाद खुद अचल हो जाता है, तब मोक्ष में जाता है। वैसा भान ज्ञानी पुरुष करवा देते हैं।

इस चंचल को स्थिर करने में टाइम बेकार जाता है और इगोइज़म बढ़ता जाता है। आत्मा अचल है, खुद अचल है, ऐसा भान करने की ज़रूरत है।

सचर में से अचल में जाने के लिए अचल स्वरूप मूल आत्मा है, ऐसा *लक्ष* में रहना चाहिए। खुद अज्ञानता से सचर में बरतता है लेकिन ऐसा *लक्ष* में रखना है कि मेरा मूल स्वरूप अचल है। सचर को अचल नहीं बनाना है।

निश्चय में, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *लक्ष* में रखकर व्यवहार चलाना है। जहाँ चंचलता में एकता हो जाए, वहाँ 'नहीं है मेरा, मेरा स्वरूप तो अचल है' *लक्ष* में रखकर आगे बढ़ना है।

अचल को पहचान ले तो सचल में जो भूलें हैं, वे दिखाई देती हैं।

आज का चंदूभाई मिकेनिकल आत्मा है। अचल आत्मा अपना मूल स्वरूप है लेकिन रोंग बिलीफ से 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा मान लिया है। वह मान्यता विज्ञान से छूट सकती है।

कोई चंदू को गालियाँ दे तो खुद स्वीकार कर लेता है। ऐसे में यदि वह खुद आत्मा में रहे तो चंदू की चिट्ठी खुद नहीं लेगा। इस प्रकार जागृति से खुद को मूल स्वरूप में आना है।

दो प्रकार की चेतना हैं; एक है, शुद्ध चेतना, जो मूल आत्मा है, अचर है और जो दूसरी चेतना है, वह सचर है। उसके दो भाग हैं। कर्म चेतना, जिसमें खुद कुछ नहीं करता है लेकिन वहाँ मानता है कि 'मैं कर रहा हूँ' और उससे कर्म बंधन होता है। जब उसके फल आते हैं तब कर्मफल चेतना, वह डिस्चार्ज है।

हम खुद अचल ही हैं, लेकिन हम में नासमझी से चंचलता आ गई है कि, 'यह कौन आया? यह किसने किया?' आत्मा दर्पण जैसा है और जगत् (जड़) दर्पण जैसा हो गया है। खुद के विकल्प के प्रतिबिंब दर्पण में (जड़ में) पड़ते हैं। प्रतिबिंब को स्थिर करने के लिए जैसे-जैसे वह चंचल होता जाता है वैसे-वैसे प्रतिबिंब और भी अधिक चंचल होता है। प्रतिबिंब को स्थिर करना हो तो क्या करना होगा? खुद स्थिर हो जाना होगा। खुद कोई चेष्टा नहीं करे तो प्रतिबिंब स्थिर हो जाएगा। खुद को भान हो जाए कि 'मेरा मूल स्वरूप अचल है, यह दृश्य अलग है और मेरा स्वरूप द्रष्टा है, अचल है', तो खुद उस रूप होता जाएगा। फिर मुक्त हो जाएगा।

इस जगत् में अचल की नकल नहीं हो सकती। जिसकी नकल हो सकती है, वह पूरा ही चंचल है।

क्रिया अर्थात् मिकेनिकल। क्रिया में आत्मा नहीं है। अत: स्वभाव से वस्तु को पहचानो।

जितनी स्थिरता बढ़ेगी उतना ही आत्मा की तरफ जाएगा और जितनी चंचलता बढ़ेगी उतना *पुद्गल* की तरफ जाएगा।

ज्ञाता स्थिर है, ज्ञेय अस्थिर है। अस्थिर को ही देखना है। हर क्षण जगत् परिवर्तित हो रहा है। एक के बाद एक देखते ही जाना है।

विचार चंचल हैं, हम अचल हैं। दोनों अलग ही हैं। विचार ज्ञेय हैं और खुद ज्ञाता, उसके अलावा अन्य कोई संबंध है ही नहीं।

लोगों द्वारा माना हुआ आत्मा और दरअसल आत्मा में समूल अंतर है। अक्रम विज्ञान से दादाश्री ने महात्माओं को दरअसल आत्मा का अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति प्राप्त करवाए हैं।

लोग चेतन का अर्थ यही समझते हैं कि जो चलता-फिरता है, वे उसी को चेतन कहते हैं लेकिन चेतन अर्थात् ज्ञान-दर्शन। चेतन कोई क्रिया करता ही नहीं है, चेतन का काम सिर्फ देखने और जानने का ही है। क्रिया मात्र अनात्म विभाग की है, आत्मा अकर्ता है। सभी कुछ देखते ही रहना, वह आत्मा का स्वभाव है, उसके परिणाम स्वरूप आनंद है।

खंड-2

आत्मा के ज्ञान-दर्शन के प्रकार

[1] ज्ञान-अज्ञान

जहाँ पर जीव है, वहाँ आत्मा है और जहाँ आत्मा है, वहाँ ज्ञान है ही। ज्ञान अर्थात् प्रकाश। जीव मात्र में प्रकाश है। प्रकाश सभी में एक सरीखा है। फिर भी ज्ञान और अज्ञान, दो भाग क्यों हो गए? स्व (आत्मा) और पर (अनात्मा) को जो प्रकाशित करता है, वह ज्ञान है और जो सिर्फ 'पर' को ही प्रकाशित करता है, 'स्व' को नहीं जानने देता, वह अज्ञान है।

अज्ञान के फिर तीन भाग हैं : 1. कुश्रुत 2. कुमति 3. कुअवधि और ज्ञान के मुख्य पाँच भाग हैं : 1. श्रुतज्ञान 2. मतिज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मन:पर्यवज्ञान और 5. केवलज्ञान।

आत्मज्ञान उसे कहते हैं कि चाहे कैसे भी संयोग हों लेकिन अंदर कषाय न होने दे। जेल में ले जाने को आए तब भी अंदर चंचलता उत्पन्न नहीं होती। देह का मालिक बने तो चंचलता उत्पन्न होती है। जहाँ विकल्प खड़े न हों, वह ज्ञान है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है।

करोड़ों वर्षों में भी जो नहीं हो सकता, वह ज्ञान अक्रम विज्ञान

से दो ही घंटों में प्राप्त हो जाता है लेकिन फन्डामेन्टल (आधारभूत)। सत्संग के परिचय से विस्तारपूर्वक प्राप्त कर लेना चाहिए।

कोई कहे कि क्या ज्ञान भी दिया जा सकता है ? तो दादाश्री कहते हैं कि जितने भी ज्ञान हैं उन्हें, कोई देता है और कोई लेता है। ऐसी शंका करने वाले भी वह ज्ञान कहीं से लेकर ही आए हैं। स्कूल, कॉलेज, शास्त्र वगैरह सभी से ज्ञान मिलता ही है। ज्ञानी पुरुष से जो ज्ञान मिलता है, वह श्रुतज्ञान है। फिर जब वह खुद में परिणामित होता है और दूसरों को समझाता है तब वह खुद के लिए मतिज्ञान कहलाता है और सामने वाले के लिए श्रुतज्ञान बन जाता है।

[2] श्रुतज्ञान

आत्मा से संबंधित, मोक्ष में जाने से संबंधित जो बातें हैं उन्हें पुस्तकों से, शास्त्रों से पाए या किसी से सुनो तो श्रुतज्ञान कहलाता है। श्रुतज्ञान सुनने के बाद, समझने के बाद अपने आप ही संसार रोग निकलने लगता है।

शास्त्रों में जैसा लिखा गया है कि, 'दया रखो, क्षमा रखो', वह ज्ञान 'करने के लिए' नहीं बताया गया है। प्रथम तो उस ज्ञान को जानना है। उसके बाद उस पर प्रतीति रखनी है। फिर उसे निरंतर जागृति में रखोगे तो उस अनुसार फिर उस पर अमल (बरताव) हो ही जाएगा।

जो अध्यात्म की तरफ मोड़े, वह सुश्रुत कहलाता है और संसार की तरफ वाला कुश्रुत कहलाता है। कुश्रुत की वजह से जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह विपरीत बुद्धि है और उसकी वजह से संसार में भयंकर दुःख हैं। कुश्रुत छूट जाए तब सुश्रुत आता है, तब सुमति आती है। वह खुद को और दूसरों को शांति देती है।

श्रुतज्ञान से चित्त निर्मल होता जाता है और यदि 'ज्ञानी' मिल जाएँ तो अच्छी तरह से ज्ञान को पकड़ (समझ) सकता है।

श्रुतज्ञान को बुद्धिजन्य ज्ञान कहा जाता है। क्योंकि यदि पूरे संसार के शास्त्रों को जान ले लेकिन आत्मा को नहीं जाना है तो उसका समावेश

बुद्धि में होता है और आत्मा को जान लिया और शास्त्रों को नहीं जाना फिर भी उसका समावेश ज्ञान में होता है।

श्रुतज्ञान-आवरण की वजह से पुस्तक पढ़ता है लेकिन उसे उसका सार नहीं मिल पाता। ज्ञानी पुरुष एक बार पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ें तो क्षण भर में उसका सार मिल जाता है।

शास्त्रों का ज्ञान तो भगवान की वीतराग वाणी है। उसे बरसात के पानी जैसा कहा जा सकता है। आम मीठा हो जाता है और नीम कड़वा ही रहता है। उसी प्रकार से समकिती में यह सम्यक् रूप में परिणामित होता है और मिथ्यात्वी का मिथ्यात्वी के रूप में परिणामित होता है।

शास्त्र हेल्प करते हैं, लेकिन जहाँ 'ज्ञानी' हों, वहाँ पर खुद का दीया प्रकट हो जाता है।

मुख्य तो, श्रुतज्ञान को सुनते रहो, उसमें सबकुछ आ जाता है और वह श्रुतज्ञान उनसे मिलता है जो आत्मा के अनुभवी हों या जिन्हें प्रतीति हुई है।

श्रुतज्ञान के फल स्वरूप अनुभव होना ही चाहिए। यदि फल नहीं आए तो ऐसा तभी हो सकता है जब वह श्रुत, अहंकार से पॉइज़नस (जहरीला) हुआ हो तो।

ज्ञानी पुरुष की वाणी वह 'अपूर्व वाणी, परम श्रुत', कृपालुदेव ने ऐसा जो लिखा है, वह कहलाती है। इस वाणी को सुनते ही कितने ही पाप भस्मीभूत हो जाते हैं और यह सीधी आत्मा को ही पहुँचती है।

दादाश्री कहते हैं, हम ठेठ ऊपर जाकर देखकर बताते हैं। जो पहले कभी सुनी न हो, पुस्तकों में न हो, वैसी ग्रामीण और स्थानीय भाषा है फिर भी पूरी स्पष्टता कर देती है।

यहाँ अक्रम मार्ग में सीधे आत्मज्ञान ही प्राप्त हो जाता है, ज्ञानार्क ही प्राप्त होता है।

[3] मतिज्ञान

मतिज्ञान अर्थात् आत्मा की तरफ ले जाने वाला जो श्रुतज्ञान है उसे समझना और समझकर जब वह अपने अंदर पच जाता है तब मतिज्ञान कहलाता है। उसके बाद यदि वह दूसरों को समझाए तो खुद के लिए वह मतिज्ञान है और सुनने वाले के लिए श्रुतज्ञान कहलाता है।

मतिज्ञान से आगे फिर नया श्रुतज्ञान प्राप्त करता है और पचने के बाद फिर वह मतिज्ञान बनता है। फिर वह दूसरों को समझा सकता है।

जीवन में ये अच्छे कर्म हैं, ये पाप कर्म हैं, खुद को यह कैसे समझ में आ सकता है? जो पढ़ा हुआ और सुना हुआ ज्ञान है, पचने के बाद वह खुद को प्रेरणा देता है कि यह करने योग्य नहीं है। फिर भी वह व्यवहारिक ज्ञान है, जबकि निश्चय ज्ञान ज्ञानियों के हृदय में रहता है।

वकीलों की पुस्तकें वगैरह सब कुमति ज्ञान है। तरह-तरह के पेपर पढ़ने से, पुस्तकें पढ़ने से कुमति जमा होती रहती है। कुमति को अज्ञान में रखा गया है जबकि सुमति अर्थात् आत्मा को जानने से संबंधित बुद्धि को ज्ञान में रखा गया है।

सांसारिक सुख के लिए जो-जो पढ़ा जाता है, पढ़ाई की जाती है, कॉलेज में पढ़ने जाते हैं, वह सारा कुश्रुत-कुमति है और वह सब विपरीत बुद्धि को बढ़ाता है। जबकि आत्मा के लिए जो कुछ भी है, वह सुश्रुत-सुमति है। उससे सम्यक् बुद्धि बढ़ती है।

कुश्रुत पर श्रद्धा बैठ जाए तो कुमति उत्पन्न होती है और कुमति से ऐसा वर्तन होता है। कोई यदि सौ डॉलर ले जाए तो कलह करके रख देता है। जब सुश्रुत सुनता है, उस पर श्रद्धा आती जाती है तो फिर सुमति उत्पन्न होती है और जब इस तरह डॉलर चले जाएँ तो मन में समाधान रहता है कि मेरा हिसाब खत्म हुआ। कलह कम हो जाती है, बंद होती जाती है और आनंद बढ़ता जाता है।

कुमति व कुश्रुत से क्रोध-मान-माया-लोभ टॉप पर चले जाते हैं और सुश्रुत व सुमति से क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते जाते हैं।

सुश्रुत व सुमति, रियल की तरफ ले जाते हैं। रियलिटी से बढ़ते-बढ़ते अंत में वे रियल में ले आते हैं। मतिज्ञान अंत में केवलज्ञान तक पहुँचता है।

क्रमिक मार्ग में, इस काल में कृपालुदेव ने शास्त्रों के आधार पर कहा है कि जीव को मतिज्ञानावरणीय कब तक रहता है? जब तक आरंभ-परिग्रह हो तब तक। जब साधारण कर्तापन कम हो जाता है और परिग्रह काफी कुछ कम कर देता है तब थोड़ा-बहुत मतिज्ञान उत्पन्न होता है। बाकी, इस काल में तो जगत् की चीज़ें प्राप्त करने वाली बुद्धि है। फिर वह आत्मा की तरफ आगे कैसे बढ़ेगी?

वेदांत में 'श्रवण' शब्द रखा गया है। फिर मनन, निदिध्यासन और उसका फल है साक्षात्कार। 'श्रवण' ज्ञानियों के मुख से सुने, ऐसा होना चाहिए।

क्रमिक मार्ग में जब अहंकार की शुद्धि करते-करते क्रोध-मान-माया-लोभ के परमाणु दूर करते हैं तब मतिज्ञान बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते जब वह संपूर्ण हो जाता है तब केवलज्ञान होता है।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान, केवलज्ञान का कारण है।

मतिज्ञान के कुछ विभाग पार होने के बाद उसे आत्मज्ञान की शुरुआत माना जाता है। तो ठेठ निन्यानवे तक मतिज्ञान ही कहलाता है, और सौ पर केवलज्ञान होता है।

स्वरूप ज्ञान मिलने पर खुद की सत्ता में आ जाता है, या फिर यदि मतिज्ञान उपजा हो तो खुद को उतनी ही सत्ता प्राप्त होती है।

क्रमिक मार्ग में खुद को भ्रांति है कि क्या इसे समझने में बुद्धि का काम है? उसके लिए दादाजी कहते हैं, नहीं। यह बुद्धि भ्रांति ही है। इसमें उपादान जागृति काम आती है और उपादान का कारण है श्रुतज्ञान। सुना हुआ, पढ़ा हुआ, सभी का सार है उपादान जागृति, वह मतिज्ञान है। निमित्त, वह श्रुतज्ञान है। फिर इस निमित्त से उपादान बढ़ता जाता है।

श्रुतज्ञान से जो शक्ति स्फुरित हुई, प्रकट हुई, वह उपादान है। उसके पूर्ण प्राकट्य तक उपादान जागृति, और पूर्ण प्रकट हो जाए तो केवलज्ञान।

यदि श्रुतज्ञान का प्रेमपूर्वक आराधन किया जाए तो उसमें से मतिज्ञान हुए बिना रहेगा ही नहीं। उसकी खुद की इच्छा होनी चाहिए कि यह मुझ में मतिज्ञान में परिणामित हो।

श्रुतज्ञान, वह थ्योरिटिकल ज्ञान है जबकि मतिज्ञान अनुभव अर्थात् कि प्रैक्टिकल ज्ञान है। ज्ञान दोनों में एक सरीखा ही है, लेकिन श्रुतज्ञान स्वाद रहित है और यह स्वाद सहित है।

प्रैक्टिकल बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान तक पहुँचता है, लेकिन यदि उस आराधना में अहंकार का पॉइज़न न डले तो, कि, 'मैं कुछ हूँ'। मतिज्ञान से आगे जाने के बाद यदि ऐसा हो जाए कि 'मैं जानता हूँ' तो पॉइज़न डल गया। इस वजह से वह प्रत्यक्ष ज्ञानी से नहीं पूछता है। फिर श्रुतज्ञान भी बंद हो जाता है और मतिज्ञान भी बंद हो जाता है।

श्रुतज्ञान सुनने के बाद लोगों को बताने की इच्छा हो, तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। यदि खुद बहुत दिनों तक ज्ञानी की वाणी सुनता रहे तब श्रुतज्ञान का परिणाम आता है, उसके बाद वह मतिज्ञान रूपी हो जाता है। उसके बाद यदि वाणी के रूप में बोला जाए तब सामने वाले में उगेगा।

श्रुतज्ञान को जल्दी से मतिज्ञान में बदलने के लिए चारित्रबल की आवश्यकता है। उसके लिए, पहला है ब्रह्मचर्य और दूसरा, किसी को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं होने देना। इन दोनों के गुणाकार से चारित्रबल बढ़ता है। तब वह जल्दी से मतिज्ञान में प्रगमित हो जाता है।

अक्रम विज्ञान में ज्ञानी पुरुष दादा भगवान की कृपा से आत्मा प्राप्त हो जाता है लेकिन भरे हुए माल की वजह से जो आवरण हैं, वे बाधा डालते हैं। आवरण किस वजह से आए हैं? कुश्रुत और कुमति से।

मतिज्ञानावरण की वजह से कार्य को देखने के बाद भी कारण

को नहीं समझ पाता। कुछ लोग कारण को देखते हैं लेकिन उसका क्या फल आएगा, वह उन्हें समझ में नहीं आता।

मतिज्ञान की विराधना हो जाए तो बुद्धि पर आवरण आ जाता है। फिर वह मूर्ख जैसा रहता है। उसके उपाय में यदि विराधना के लिए बार-बार क्षमापना करे तो बच जाएगा।

[4] अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान

[4.1] अवधिज्ञान

अवधिज्ञान अर्थात् कुछ हद तक का देख सकता है, जान सकता है, सौ-दो सौ-पाँच सौ-हज़ार मील के रेडियस में। जिन चीज़ों की फोटोग्राफी की जा सकती है, वह उसे दिखाई देता है। उसे कुअवधि कहा जाता है। वह स्थूल ज्ञान कुछ हद तक का होता है। उसमें आत्मा की बात नहीं है, *पुद्गल* का जो कुछ हो रहा है, वह दिखाई देता है। लड़ाई, मकान जलते हुए, मारामारी सबकुछ दिखाई देता है।

जगत् के बुद्धिजन्य ज्ञान और इन्द्रियजन्य ज्ञान को निकाल दिया जाए तो उसके बाद जो बचा वह अवधिज्ञान है। वह पौद्गलिक अवस्थाओं को देख सकता है।

कुअवधि वाले को अधोगति में ले जाए और अवधि वाले को उर्ध्वगति में ले जाए, ऐसा दिखाई देता है।

अज्ञान दशा में संसार में सभी कुछ देखने की इच्छाएँ हों, '*पुद्गल,* कि यहाँ पर क्या-क्या है', तो उसे ऐसा अवधिज्ञान हो जाता है। यदि अच्छा काल हो और वीतरागों की उपस्थिति हो तो वह बढ़ते-बढ़ते परम अवधि तक पहुँच सकता है।

अवधिज्ञान वाले को यहाँ रहते हुए महाविदेह क्षेत्र का कुछ भी नहीं दिखाई देता, उपयोग पहुँच भी नहीं सकता।

अवधि अर्थात् लिमिट, परम अवधि अर्थात् बड़ी लिमिट और केवलज्ञान अर्थात् अनलिमिटेड, असीम ज्ञान, सर्व भूमिका का ज्ञान।

अवधिज्ञान में पिछले कुछ जन्मों का दिखाई देता है लेकिन तिर्यंच का जन्म आया हो तो वहाँ से आगे का नहीं दिखाई देता। जबकि केवलज्ञान में अंतराय नहीं रहते, ठेठ तक का दिखाई देता है।

देवगति वालों में और नर्कगति वालों में अवधिज्ञान होता है, कुदरती रूप से ही। उससे देवगति वाले के सुख में वृद्धि होती है और नर्कगति वाले के दु:खों में वृद्धि होती है। मनुष्य के पास यदि अवधिज्ञान होता तो वह दु:ख भरा जीवन ही जीता और वह और भी अधिक नुकसानदायक होता।

[4.2] मन:पर्यव ज्ञान

अज्ञान दशा में तो मन में ही तन्मयाकार रहा करता है। ज्ञान दशा वाले, जो मन से बिल्कुल जुदा रहते हैं, उन्हें वह सब दिखाई देता है कि खुद के मन में क्या-क्या विचार आ रहे हैं, और उस पर से उन्हें सामने वाले के विचारों के प्रतिस्पंदन पहुँचते हैं इसलिए वे सामने वाले के मन के पर्यायों को समझ सकते हैं, वह मन:पर्यव ज्ञान है।

यदि मन के कहे अनुसार चलेगा तो मन के पर्यायों को कैसे समझ सकेगा? वह तो, यदि मन से बिल्कुल अलग रहता हो, मन का ज्ञाता-द्रष्टा रहता हो, मन उसके वश में हो गया हो, उसके बाद ही मन के पर्यायों को समझ सकता है।

दादाश्री कहते हैं कि इस काल में मन:पर्यव ज्ञान नहीं होता, फिर भी इस अक्रम विज्ञान के आधार पर हमें कुछ अंशों तक बरतता है। सर्वांश रूप से नहीं बरतने के पीछे काल का कोई बल है! ऐसी दशा द्वारा सामने वाले के मन को दु:ख न हो उस प्रकार से व्यवहार किया जा सकता है।

[4.3] अक्रम ज्ञान द्वारा पहुँचे केवलज्ञान के समीप

दूषमकाल की वजह से यह अवधिज्ञान नहीं हो पाता। और जिसे मोक्ष चाहिए उसे तो अवधिज्ञान या मन:पर्यवज्ञान की ज़रूरत ही नहीं है। इसकी ज़रूरत तो जिसे इस संसार की लीला दिखानी हो उसे पड़ती है। बाकी, वह रोग न घुसे वही सब से बड़ी जागृति रखने योग्य है। और किस प्रकार मोक्ष में जा सकें, वही प्रयत्न करते रहना है।

इस काल में कर्म के क्षयोपशम इस प्रकार से नहीं होते हैं कि जिससे अवधिज्ञान उत्पन्न हो सके। कर्म का ज़बरदस्त दबाव है। अवधि या मन:पर्यव बहुत ही कम हो पाता है।

जातिस्मरणज्ञान अवधिज्ञान में ही आता है।

लोग दादाश्री से पूछते थे कि, 'आपको अवधिज्ञान से दिखाई देता है?' तो दादाश्री कहते थे कि, 'नहीं, यह मेरा काम नहीं है। हमें तो सिर्फ मोक्ष ही चाहिए और केवलज्ञान सहित रहना है।'

मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान मुख्य हैं, उनके परिणाम स्वरूप यह केवलज्ञान है। ये अवधि और मन:पर्यव तो बीच में, रास्ते में आने वाले स्टेशन हैं। वे अपने आप ही प्रकट होते हैं। और वैसा हो या न हो, ज्ञानी को उसकी कुछ पड़ी नहीं है।

भगवान महावीर को तो जन्म से ही मति-श्रुत और अवधिज्ञान थे। संसार व्यवहार छूटते ही तुरंत मन:पर्यवज्ञान हो गया।

लोग दादाश्री से पूछते थे कि, 'आपके पास कौन से प्रकार का ज्ञान है?' दादाश्री कहते हैं, 'हमारा ज्ञान केवलदर्शन वाला है। यह, न तो मन:पर्यवज्ञान है, न ही अवधिज्ञान है। इसमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से आगे जाकर केवलज्ञान में चार अंश की कमी रही है।'

साधारण भाषा में दादाश्री कहते थे कि, 'हमारे पास तो आत्मज्ञान है। हमारे पास और कुछ भी नहीं है।'

अज्ञान दशा में अहंकार में ही रमणता थी कि किस प्रकार से अपमान न हो और मान मिले, उसी का ध्यान रखते थे। निरंतर पर-रमणता थी और अब निरंतर स्व-रमणता उत्पन्न हो गई, उसे स्व-चारित्र कहा जाता है।

दादाश्री कहते हैं, हम ये शास्त्र की बातें नहीं बता रहे हैं, यों केवलज्ञान में देखकर बताते हैं। आप पूछते हो तो दिखाई देता है और वही बताते हैं।

दादाश्री कहते हैं, हम में प्रत्यक्षपन प्रकट हो गया है। जो आज उपस्थित हैं, उनमें जितना सामर्थ्य है उस अनुसार वे सभी कुछ दे देते हैं। परोक्ष कुछ भी नहीं दे सकते।

ज्ञानविधि में जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह केवलज्ञान में आता है। केवलज्ञान की शुरुआत किसे कहते हैं कि जब शुक्लध्यान बर्ते! यहाँ पर केवल-आत्मा का ज्ञान अनुभव के रूप में है।

मति, श्रुत और अवधि, ये परोक्ष ज्ञान हैं। मन:पर्यव और केवलज्ञान, ये दोनों प्रत्यक्ष ज्ञान हैं।

[5] ज्ञानी ने जाना विपरीत ज्ञान, विभंग, जाति व त्रिकाल को

[5.1] विभंगज्ञान

सभी सांसारिक ज्ञान को जानना, जैसे कोई शादी में होशियार होता है, कोई वकालत में एक्सपर्ट बना होता है, कोई डॉक्टरी में एक्सपर्ट होता है, वह सब कुमति कहलाता है। वह कुश्रुत को पढ़ने से होता है। ऐसा करते-करते वे साधन, वे पुस्तकें जब बहुत ज़्यादा हो जाती हैं तब कुअवधि उत्पन्न हो जाता है। उसे विभंगज्ञान कहते हैं। जब प्रकाश बढ़ जाता है तब खुल्लम खुल्ला दिखाई देता है। किसी भी साधन के बिना वह दिखाई देता है कि यह क्या हो रहा है। चर्चिल को ऐसा दिखाई देता था।

हिन्दुस्तान में अंतर सूझ और अंतर ज्ञान के आधार पर ही चलते हैं। जबकि फॉरेन वाले में बाह्य ज्ञान और बाह्य सूझ होते हैं, उनके आधार पर वे लोग कुश्रुत, कुमति और कुअवधि तक पहुँचते हैं।

विभंगज्ञानी अर्थात् कुछ ऐसे हाई लेवल के ऑफिसर होते हैं कि वे अपनी सही बात को भी उड़ाकर रख देते हैं। हमें उनसे कोई काम करवाना हो तो ऐसे शब्द बोलते हैं कि हम उनकी बात का जवाब ही नहीं दे पाते और वे हमें उलझन में डाल देते हैं।

जो ज्ञान किसी को उलझन में डाले वह बहुत ही नुकसानदायक है। जो ज्ञान किसी को उलझाए नहीं, वह ज्ञान बहुत उच्च प्रकार का होता है।

विभंग ज्ञान के आधार पर वह उल्टी सत्ता कहलाती है। जबकि 'इस' ज्ञान के आधार पर वह सीधी सत्ता कहलाती है। वह हार्टिली सत्ता है। देवी-देवताओं को भी कबूल है, पूरे ब्रह्मांड में सभी जगह कबूल है।

[5.2] जाति-स्मरण ज्ञान

जाति-स्मरण तो वास्तव में ज्ञान ही नहीं है, वह तो जाति-स्मरण है। उसमें, पूर्व जन्म का दिखाई देना, वह एक प्रकार की यादशक्ति है।

पिछले जन्म की याददाश्त नहीं रहने के कारणों में एक तो, मृत्यु के समय जो वेदना होती है, और दूसरा, जन्म के समय गर्भ में भी वेदना होती है और बीच में यदि कोई जन्म जानवर का मिले तो उससे पहले का याद नहीं आता।

यादशक्ति तो राग-द्वेष के अधीन है। वह किसी को पिछले जन्म का याद आता है। इसमें कुछ सच होता है, बाकी, इग्ज़ैजरेशन (अतिशयोक्ति) होता है।

यदि इस जगत् में खाए-पीए, कपड़े पहने, लेकिन कुछ भी भोगे नहीं तो उसे स्मरण हो सकता है। भोगने से पिछला सब विस्मृत हो जाता है।

जाति-स्मरण तो मिथ्यात्वी को भी होता है और समकिती को भी होता है। लेकिन समकिती उसमें से कुछ सीख ग्रहण करता है जबकि मिथ्यात्वी कोई लाभ नहीं उठाता। बल्कि उसके राग-द्वेष बढ़ जाते हैं, चिंता, *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख) और परेशानी बढ़ जाती है। आत्मज्ञान के अलावा दुनिया में अन्य कुछ भी काम का नहीं है।

कुछ लोग मानते हैं कि जाति-स्मरण से वैराग्य आ जाता है लेकिन वैराग्य की वे बातें मोक्ष के लिए काम की नहीं है। और वैराग्य यदि उत्पन्न करना हो तो एक ही दिन में कितनी ही ऐसी घटनाएँ होती हैं, पत्नी के साथ, बच्चों के साथ, यदि उन्हें याद रखे तब भी वैराग्य आ जाए।

दादाश्री कहते हैं, हमारा तो यह आत्मज्ञान है। बाकी, हमें पहले

या बाद वाला कोई जन्म दिखाई नहीं देता। हमें मोक्ष चाहिए था और वह मिल गया। हम में बुद्धि ही नहीं रही इसीलिए याददाश्त नहीं है।

दादाश्री कहते हैं, जाति-स्मरण से ऐसा ज्ञान होता है कि कौन-कौन से शरीर प्राप्त हुए हैं, जबकि हम शरीर से बाहर निकल गए हैं। हमारी जाति केवलज्ञान वाली है।

[5.3] त्रिकालज्ञान

ज्ञानी पुरुष की दृष्टि से त्रिकालज्ञान का अर्थ ऐसा है कि हर एक चीज़ के भूतकाल के पर्याय और भविष्य काल के पर्याय वर्तमान में बता देते हैं। जबकि लोग सामान्य रूप से ऐसा समझते हैं कि जो पहले हो चुका है, अभी हो रहा है और भविष्य में होगा, जो यह सब देख सकता है, उसे त्रिकालज्ञान बरतता है। लेकिन यह ऐसा नहीं है।

भविष्य काल के बारे में अभी बताया जाए तो वह वर्तमान काल ही कहलाएगा न?

मिट्टी के घड़े को देखा, तो वह आज वर्तमान में घड़ा है, वह ज्ञेय कहलाता है। वह घड़ा भूतकाल में क्या था? उसके मूल पर्याय क्या थे? तो वह मूल रूप से मिट्टी के रूप में था। मिट्टी में से कुम्हार ने उसे चाक पर रखकर घड़ा बनाया। फिर पकाया, फिर बाज़ार में बेचा, उसके बाद अभी उसकी यह स्थिति है, इसके बाद भविष्य में यह टूट जाएगा। फिर धीरे-धीरे उसके टुकड़े हो जाएँगे। फिर टुकड़े घिसते-घिसते वापस मिट्टी बन जाएँगे। इस प्रकार घड़े के भूतकाल और भविष्य काल के दोनों ही पर्यायों का जो वर्णन है, वह त्रिकालज्ञान है।

लोकदृष्टि से, जो यह सब जान सके कि भविष्य काल में क्या होगा, उसे त्रिकाल ज्ञानी कहते हैं। लेकिन दादाश्री कहते थे कि ऐसा त्रिकालज्ञान हमारे पास आया था लेकिन हमने निकाल दिया कि ऐसा नहीं चाहिए। क्योंकि उस ज्ञान से ऐसा पता चलता है कि, 'रास्ते में गाड़ी टकराएगी और एक पैर टूट जाएगा', तब इंसान क्या करेगा? यदि विकल्प हो जाए तो वह ज्ञान चला जाता है। इसमें तो ऐसा है कि जो

कर रहे थे उसी अनुसार करते रहना चाहिए, जाना ही चाहिए। ऐसा ज्ञान तो केवल भगवान में ही टिकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि, 'ऐसा होगा', तो वैसा हो जाता है। वह त्रिकालज्ञान नहीं है, परंतु उसके अंत:करण की शुद्धि और यशनाम कर्म होता है, उससे ऐसा हो जाता है।

त्रिकाल ज्ञानी भूत, भविष्य और वर्तमान को हमेशा जानते हैं और हृदय शुद्धि वाला तो साधारणत: जो कह देता है, उस अनुसार हो जाता है।

तीर्थंकर केवलज्ञान द्वारा सभी कुछ बता सकते हैं कि भूतकाल में इस अनुसार था, वर्तमान में इस अनुसार है और भविष्य काल में इस अनुसार होगा। लेकिन वे वर्तमान ही देखते थे।

हर एक चीज़ के पर्याय पहले क्या थे, अभी क्या हैं और अब के बाद क्या होंगे, इस प्रकार जो तीनों काल के पर्याय बताएँ, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

[6] केवलदर्शन

[6.1] केवलदर्शन की समझ

केवल अर्थात् एब्सल्यूट, जिसमें कोई मिलावट नहीं है, प्योर। केवलदर्शन अर्थात् वे, जिन्हें केवल आत्मा पर ही श्रद्धा है।

यह जगत् ज्यों का त्यों समझ में आ जाए, वह केवलदर्शन है और जानने में आ जाए तो वह केवलज्ञान है।

केवलदर्शन अर्थात् क्षायक समकित। वैसा होने के बाद केवलज्ञान होगा।

सम्यक् दर्शन कब हो सकता है? जब पूरी दुनिया में कहीं भी किसी के प्रति पक्षपात न हो, मतभेद न हो, तब।

समझ प्राप्त करने के लिए टाइम की ज़रूरत नहीं है, लेकिन ज्ञान परिणामित होने में टाइम की ज़रूरत है।

तीर्थंकर भगवान की अद्भुत खोज है; दर्शन और ज्ञान, देखना और जानना, दोनों को अलग कर दिया। उसके पीछे पूरा विज्ञान है।

सम्यक् दर्शन पर आवरण आ सकता है लेकिन क्षायक समकित पर आवरण नहीं आ सकता।

'मैं यह शरीर हूँ', देह के प्रति ऐसी आत्मबुद्धि छूट जाए, देहाध्यास छूट जाए तो आत्मदर्शन होता है और उसके बाद सांसारिक दुःख असर नहीं डालते, वह आत्मज्ञान है।

आत्मा को पहचानना, आत्मा का अनुभव करना, वह केवलदर्शन की ओर जाता है।

केवलदर्शन में, समझने की चीज़ समझ ली लेकिन जानना बाकी है, और संपूर्ण जान लिया तो केवलज्ञान, अनंत प्रदेशों के सभी आवरण टूट जाते हैं।

अक्रम विज्ञान के आधार पर, अपवाद के रूप में, इस काल में महात्माओं को सीधे क्षायक समकित ही प्राप्त हो गया है। वह शुक्लध्यान का पहला स्तंभ है, अस्पष्ट वेदन कहलाता है। 'कुछ है' ऐसा लगा, लेकिन स्पष्ट वेदन अर्थात् 'यह है', ऐसा डिसिज़न नहीं आया है। समझ में आता है, वह दर्शन है और जो अनुभव में आता है, वह ज्ञान है।

इस अक्रम मार्ग में केवलदर्शन का ज्ञान, क्षायक समकित का ज्ञान प्राप्त होता है। अब जैसे-जैसे आज्ञा में रहेंगे तो यह समझ वर्तन में आएगी और तब क्षायक ज्ञान होगा।

अक्रम मार्ग में प्रतीति के अनुसार जितना अनुभव होता है, उतना ही ज्ञान प्रकट होता जाता है। जितने प्रमाण में अनुभव उतने ही प्रमाण में वीतरागता, उतना ही वह चारित्र कहलाता है।

कोई दस हज़ार लूट ले, उस क्षण ऐसा भान रहे कि यह *पुद्गल* की करामात है, और अंदर असर न हो तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की करामात है, ऐसा जाने तो केवलज्ञान है और *पुद्गल* की करामात है, ऐसा वर्तन में आए तो वह केवलचारित्र है।

सूझ दर्शन है, बिना प्रयास के प्राप्त होती है। वह दर्शन खुलते-खुलते केवलदर्शन होकर रहता है लेकिन बीच में निमित्त की ज़रूरत है।

सूझ, वह दर्शन है। अज्ञा, वह बुद्धि है और प्रज्ञा ज्ञान है।

अक्रम मार्ग में ज्ञानविधि में सूझ संपूर्ण हो जाती है। उसके बाद सूझ खिलनी बाकी नहीं रहती। प्रज्ञा शक्ति प्रकट हो जाती है।

ज्ञानविधि में दर्शनावरण पूरा ही टूट गया। तब ऐसा कहा जाता है कि उसे क्षायक दर्शन प्राप्त हुआ। 'कुछ है, मैं शुद्धात्मा हूँ', वह समझ में आता है। लेकिन 'क्या है' उसकी जानकारी नहीं हो तो वह ज्ञानावरणीय कर्म है। जैसे-जैसे अनुभव में आता जाता है वैसे-वैसे ज्ञानावरणीय निकल जाएगा। उसी के लिए अपना यह सत्संग है।

अज्ञान अर्थात् खुद का भान ही नहीं है, जबकि ज्ञानावरण तो आवरण है। वह कम-ज़्यादा होता रहता है। लेकिन अज्ञान तो हमेशा रहता है। ज्ञान प्राप्त होने के बाद सब से पहले अज्ञान चला जाता है। इसके बाद धीरे-धीरे ज्ञानावरणीय जाता है। सभी आवरण खत्म हो गए कि पूर्ण दशा।

इस ज्ञान के बाद मिथ्यादर्शन चला गया, दर्शनावरण भी खत्म हो गया। दर्शन मोहनीय भी खत्म हो गया। अंतराय और ज्ञानावरणीय खत्म नहीं हुए। जैसे-जैसे आज्ञा में रहकर चारित्र मोहनीय और ज्ञानावरणीय का समभाव से *निकाल* होता जाएगा वैसे-वैसे आवरण कम होंगे, अंतराय टूटते जाएँगे।

दर्शनावरण टूट गया है इसलिए विश्व की चीज़ें दिखाई देनी चाहिए, ऐसा नहीं है, लेकिन खुद की श्रद्धा बैठी, खुद का स्वरूप दिखाई दिया, वह केवल श्रद्धा, वह केवलदर्शन है।

मिथ्यादर्शन अर्थात् ऐसी श्रद्धा कि विनाशी चीज़ों में ही सुख है और सम्यक् दर्शन अर्थात् ऐसी प्रतीति रहती है कि आत्मा में ही सुख है। लेकिन एकाध *गुंठाणे* (48 मिनट, गुणस्थानक) तक ऐसा रहता है और फिर चला जाता है। वापस जैसा था, वैसे का वैसा ही हो जाता है।

क्योंकि प्रकृति उपशम है, क्षय नहीं हुई है। जबकि अक्रम में मैं शुद्धात्मा हूँ का भान और *लक्ष* (जागृति) रहता है इसीलिए यह क्षायक समकित है, केवलदर्शन है। निरंतर प्रतीति, ऐसी कि जो एक क्षण के लिए भी इधर-उधर नहीं होती।

जन्म से अभी तक मैं किसी भी चीज़ का कर्ता नहीं हूँ, इसकी संपूर्ण प्रतीति हो जाए तो वही केवलदर्शन है।

'इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह जगत् को पुसाए या न पुसाए, फिर भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा जो ध्यान रहता है, वह केवलदर्शन है। 'मैं ही कर रहा हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहे तो मिथ्यादर्शन है। 1968 में मामा की पोल में जब दादाश्री नहाकर बाहर आए तब तमाम शास्त्रों के सार रूपी यह वाक्य उनके मुख से निकला।

[6.2] केवलदर्शन, परिभाषा और प्रसंग

जगत् को सभी कुछ पुसाए, उसकी तैयारी करोगे तो ऐसा कभी भी नहीं हो पाएगा। जगत् को पुसाए, उस तरफ दृष्टि रखोगे तो आपका काम बिगड़ जाएगा। कुछ लोगों को नहीं पुसाएगा, कुछ लोग विरोध करेंगे। कुछ कहेंगे, बहुत अच्छा किया। और कुछ कहेंगे, हमें यह पसंद नहीं है। ऐसे में यह भान कि, 'मैं खुद कुछ भी नहीं करता हूँ', वह केवलदर्शन है।

'चंदू' चाहे कुछ भी करे, अच्छा या बुरा, फिर भी ऐसा रहे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ' तो वह निर्भय बनाता है।

दादाश्री कहते हैं, हमें जो निरंतर रहता था, हमने वही वाक्य कहा है। जिनका आग्रह खत्म हो गया है, उनके लिए कोई कैसे ऑब्जेक्शन कर सकता है? जिनके कर्तापन के आग्रह खत्म हो गए हैं, उन्हीं को कहते हैं सहज, वही स्याद्‌वाद है।

इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद दर्शन मोह सर्वांश रूप से खत्म हो जाता है। अब चारित्र मोह बचा है। वह नियम वाला आए या अनियम

वाला, फिर भी 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहे और यह देखता रहे कि, 'चंदू क्या कर रहा है', तो वह एकावतारी बनाएगा।

जिस प्रकार स्टीमर में बैठने वाले को पता ही होता है कि 'स्टीमर ही चल रहा है, मैं नहीं चल रहा हूँ, मैं बैठा हुआ हूँ।' उसी प्रकार इसमें एक क्षण के लिए भी कर्तापन महसूस नहीं हो तो वह केवलदर्शन है और जब वह ज्ञान में या वर्तन में आ जाए तो वह केवलज्ञान है।

जिसे ऐसा अनुभव, *लक्ष* व प्रतीति हो गए हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', नि:शंक पद प्राप्त हुआ है, निराकुलता बरतती है, वहाँ क्या बाकी रहा? दो-तीन जन्मों में कर्म खत्म होते ही पूर्णाहुति।

केवलदर्शन में ज्ञाता-द्रष्टापन नहीं होता, वहाँ खुद को प्रतीति हो चुकी है कि 'मैं ऐसा ही हूँ'। अब ज्ञाता-द्रष्टा बन सकेगा। केवलदर्शन होने के बाद में खुद 'पुरुष' बना। अब ज्ञाता-द्रष्टा रूपी पुरुषार्थ से जितना अनुभव बढ़ता जाएगा उतना ही ज्ञान प्रकट होता जाएगा।

भगवान महावीर को ऐसा अनुभव में था कि पूरा जगत् निर्दोष है। जबकि ज्ञान लिए हुए महात्माओं को, 'पूरा जगत् निर्दोष है', ऐसा समझ में आया है। इस दूषमकाल में केवलदर्शन तो ग़ज़ब का पद कहलाता है!

केवलदर्शन और केवलज्ञान, जब एक साथ ये दोनों रहें तो उसे परम ज्योति स्वरूप कहा जाता है। प्रतीति में इतना आनंद रहता है तो मूल वस्तु की प्राप्ति के बाद कितना आनंद आएगा!

[7] केवलज्ञान

[7.1] केवलज्ञान की समझ

'मैं' और 'मेरा', उसका छोटे से छोटा घेरा, वह है कैवल्यज्ञान, वह रिलेटिव ज्ञान है। जबकि केवलज्ञान रियल ज्ञान है, एब्सल्यूट, निरालंब ज्ञान है।

जब सभी विशेषण खत्म हो जाते हैं तब केवलज्ञान होता है।

मूल आत्मा को समझने पर दर्शन उत्पन्न होता है और उसके बाद

जब जानता है, तब आत्मज्ञान हो जाता है और केवल आत्मज्ञान में ही रहना, वह है केवलज्ञान। अर्थात् आत्मज्ञान होने के बाद ही उसकी प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा का अनुभव होने के बाद जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसे केवलज्ञान स्वरूप समझ में आता जाता है। ऐसे ज्ञानी, जो केवलज्ञान स्वरूप के नज़दीक आ चुके हैं, उन्हें यह दिखाई देता है।

केवलज्ञान अर्थात् इस दुनिया के जितने भी ज्ञेय हैं, दृश्य हैं, वे सभी उसे दिखाई देते हैं। क्योंकि खुद उसका ज्ञाता-द्रष्टा है।

लोग केवलज्ञान का प्रचलित अर्थ ऐसा लगाते हैं कि, 'पूरी दुनिया का सबकुछ दिखाई देना।' लेकिन उसका ऐसा और इतना ही अर्थ नहीं है। मूल अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान में ही, केवल आत्मा में ही 'मैं'पन, अन्य किसी भी चीज़ में 'मैं'पन नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य है, वह केवलज्ञान मात्र है। इस ज्ञान के अलावा अन्य कोई चीज़ है ही नहीं, केवलज्ञान स्वरूपी ही है। केवल शब्द, एब्सल्यूट बताने के लिए है, न कि इसलिए, कि यह सब दिखाई देता है।

जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक अंदर के ज्ञेय देखने हैं। उसके बाद ब्रह्मांड के ज्ञेय झलकते हैं।

केवलज्ञान को ये लोग जो समझते हैं उसके बजाय मूल बात पर आ जाना चाहिए कि क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष और अहंकार, ये सभी निकल जाते हैं और एब्सल्यूट ज्ञान रहता है। क्रोधी ज्ञान, लोभी ज्ञान, अहंकारी ज्ञान, वह सब निकल जाता है और मात्र एब्सल्यूट ज्ञान रह जाता है, यदि ऐसा समझे तो हल आएगा।

'मुझे केवलज्ञान जानना है', वह ज्ञान भी जानपने की इच्छा से मिक्स्चर हो गया है। उसे निकाल दो। ज्ञान अर्थात् प्योर प्रकाश।

ज्ञान ही परमात्मा है, लेकिन कौन सा ज्ञान? जो ज्ञान चोरी, झूठ, लोभ, क्रोध, मान, कपट, प्रपंच न करवाए। वह केवल उसी ज्ञान की *भजना* (उस रूप होना) करता है, उसी को कहते हैं केवलज्ञान।

अहंकारी ज्ञान को शुद्ध करते-करते वह शुद्ध ही हो जाए, अन्य कुछ भी मिलावट न रहे, शुद्ध ज्ञान, वही केवलज्ञान है।

जिस प्रकार कढ़ी में पानी होता है और यदि उसमें से सिर्फ पानी निकाल लेना हो तो जो भी मिक्स्चर है, उसमें एक-एक चीज़ नमक, मिर्ची निकाल दी जाए या फिर पूरी कढ़ी की भाप निकाल दे तो पानी साफ हो जाएगा, वह सिर्फ पानी है, उसी तरह ज्ञान में सारी मिलावट हो गई है, जैसे कढ़ी, और जब शुद्ध ज्ञान ही रहे तो वह केवलज्ञान है।

केवलज्ञान अनुभव की चीज़ है। इन्द्रियज्ञान से, बुद्धि से आगे की चीज़ है, शब्द से बाहर की चीज़ है। शब्दों में पच्चीस प्रतिशत समा सकता है, लेकिन पचहत्तर प्रतिशत शब्द वहाँ तक पहुँचते ही नहीं हैं, वैसा ज्ञान है यह। वह खुद जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसे खुद को अनुभव होता जाता है।

डायरेक्ट ज्ञान पर से जितना आवरण हटता है उतना ही वह केवलज्ञान तक पहुँचता है। उसके बाद पूरे जगत् को देख सकता है। अत: यदि यह पता चल जाए कि केवलज्ञान क्या है तो पूरे ब्रह्मांड का राजा माना जाएगा।

अहंकारी ज्ञान, इन्डायरेक्ट ज्ञान को बुद्धि कहते हैं जबकि निर्अहंकारी ज्ञान, डायरेक्ट ज्ञान, वह ज्ञान है। जैसे-जैसे वह बढ़ता जाता है, वह फिर केवलज्ञान हो जाता है। जिसे डायरेक्ट ज्ञान हुआ है उसे सब पता चल जाता है कि केवलज्ञान में कैसी दशा होती है, कैसा दिखाई देता है।

आत्मा खुद के निज स्वरूप का ज्ञान है, केवलज्ञान स्वरूप है और उसमें से (ज्ञान रूपी) प्रकाश उत्पन्न होता है, वह पूरा स्वयं प्रकाश है।

जब आत्मा सर्व आवरणों से मुक्त हो जाता है तब उसे पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशमान करने की शक्ति प्राप्त होती है, वही केवलज्ञान है।

समझ, वह श्रद्धा है, दर्शन है, और ज्ञान, वह प्रकाश है। वह प्रकाश, वही आत्मा है। अन्य कोई मिलावट नहीं, वैसा ज्ञान। उसी को

प्रकाश कहते हैं और वही केवलज्ञान है। वह बेजोड़ वस्तु है, इन्द्रियातीत है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है।

केवलज्ञान में जो दिखाई देता है, वह किस प्रकार से? यह दर्पण यदि चेतन होता तो वह ऐसा कहता कि ये सभी चीज़ें मैं देख रहा हूँ। वास्तव में खुद बाहर नहीं देखता है, लेकिन जितनी चीज़ें बाहर हैं, वे दर्पण में झलकती हैं। वह उन्हें खुद अपने आप में देखता है, इसी प्रकार पूरा ब्रह्मांड खुद के अंदर झलकता है और उसे देखता है।

सर्व द्रव्य-क्षेत्र सभी को प्रकाशमान करे, तो वह केवलज्ञान का परिणाम है। केवलज्ञान, वह खुद तो स्व-स्वरूपावसान ज्ञानमय परिणाम है।

दादाश्री कहते हैं, हमने वह देखा है लेकिन वह अवर्णनीय है। शब्द रूपी नहीं है, उसे शब्दों में कैसे समझाया जा सकता है? जैसे, दो गूँगे लोग एक-दूसरे से संज्ञा से कुछ कहते हैं, कुछ देर बाद फिर स्टेशन पर पहुँच जाते हैं। दूसरे लोग वह नहीं समझ पाते।

केवलज्ञान में क्या अनुभूति होती है? खुद एब्सल्यूट हो गया उसके बाद उसकी अनुभूति होती होगी क्या? फ्रिज में बैठे हुए को ठंडक का अनुभव कैसा? जो बाहर खड़ा है, उसे थोड़ी ठंडक महसूस हो तो उसे अनुभव होना कहा जाएगा। अनुभूति समकित की होती है, आत्मज्ञान की होती है, केवलज्ञान की अनुभूति नहीं होती। अनुभूति जुदापन को सूचित करती है। जबकि केवलज्ञान में जुदापन जैसा कुछ है ही नहीं।

केवलज्ञान अर्थात् कोई अवलंबन नहीं, निरालंब-एब्सल्यूट आत्मा।

वाणी स्थूल है, केवलज्ञान सूक्ष्मतम है। इसलिए वाणी द्वारा नहीं बताया जा सकता।

केवलज्ञान किसी दृष्टि से सत्ता रूप भी है, किसी दृष्टि से शक्ति रूप भी है, ये दोनों लगभग एक सरीखा ही है। एक कहेगा, शक्ति प्रकट होती रहती है, दूसरा कहेगा, सत्ता प्रकट होती रहती है।

कोई ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ और आवरण तोड़ दें तो परसत्ता खत्म हो जाएगी और स्व-सत्ता में आ जाएगा।

बाहर सामान्य लोगों में भी शक्ति रूपी केवलज्ञान है। सभी महात्माओं में केवलज्ञान सत्ता के रूप में है। लेकिन दादाश्री में प्रकट हो गया है। खुद कहते हैं, 'हमें पचा नहीं, तीन सौ छप्पन डिग्री तक पहुँचा है।'

ज्ञानविधि में जो ज्ञान देते हैं, वह मूल आत्मा का ज्ञान है। केवलज्ञान ही देते हैं लेकिन इस काल की वजह से पचता नहीं है। यदि यह ज्ञान केवलज्ञान नहीं होता तो सत्ता अलग ही नहीं हो सकती थी। एक घंटे में आत्मा अलग हो ही जाता है। इसमें तो एक घंटे के परिचय से तो ग़ज़ब का बदलाव हो जाता है, इसका कारण यह है कि यह केवलज्ञान की सत्ता है।

ज्ञानविधि में आत्मा ही हाथ में दे देते हैं। इसीलिए फिर उसकी दशा अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति से नीचे नहीं उतरती, यह क्षायक समकित है।

आत्मा केवलज्ञान स्वरूप है, लेकिन बादल हटने चाहिए न! जैसे-जैसे आवरण हटते जाएँगे वैसे-वैसे खुद अपने आपको पूरा ही दिखाई देगा। खुद खुद को ही जाने तो उसे केवलज्ञान कहा जाता है।

[7.2] सम्यक् दर्शन - आत्मज्ञान - केवलज्ञान

सम्यक् दर्शन केवलज्ञान की बिगिनिंग है। सम्यक् दर्शन से 'मैं अविनाशी आत्मा हूँ' ऐसी श्रद्धा बैठी, लेकिन पूरी बाउन्ड्री को नहीं जान सका है। उस पूरी बाउन्ड्री को जान ले तो आत्मज्ञान कहा जाएगा।

सिर्फ आत्मा को ही जाने, अन्य तत्त्वों को पूरी तरह से नहीं जाने तो वह आत्मज्ञान है और जब सभी तत्त्वों को संपूर्ण रूप से जान जाए तो वह केवलज्ञान है।

आत्मज्ञान और केवलज्ञान में बहुत फर्क नहीं है। आत्मज्ञान वाले को श्रद्धा में है जबकि केवलज्ञान में संपूर्ण प्रवर्तन में रहता है।

केवलज्ञान कैसा होता है, इसे क्षायक समकिती समझते हैं, लेकिन उन्हें केवलज्ञान का अनुभव नहीं होता है।

श्रुतज्ञान वाली अंतिम दशा को श्रुतकेवली कहते हैं। लेकिन लोकभाषा के श्रुतकेवली के लिए वह शब्द में ही रहता है, भाव में नहीं आता। जबकि अक्रम विज्ञान द्वारा वेद से व अनुयोग से भी आगे की, शब्दों से परे मूल वस्तु प्राप्त हो जाती है।

जिनमें खुद में तमाम शास्त्रों का रहस्य आ गया हो, सभी शास्त्र पढ़ लिए हों, मौखिक हों, जिन्होंने सभी शास्त्र धारण कर लिए हों, भगवान का पूरा श्रुतज्ञान जिन्हें हाज़िर रहता है और वह ऐसा है कि आत्मा प्रकट करवा दे, वह श्रुतज्ञान ऐसा है जिसमें से केवलज्ञान प्राप्त हो सके, तो वह श्रुतकेवली है।

जो सभी आगमों को जानता है, शास्त्रों को पढ़कर शास्त्रों का केवलज्ञान शाब्दिक रूप से जानता है फिर भी यदि आत्मा को नहीं जानता है, अनुभव नहीं किया है तो उन्हें वास्तविक श्रुतकेवली नहीं कहा जाएगा। उन्हें लोकभाषा वाले श्रुतकेवली कहा जाएगा। शास्त्र पढ़कर प्राप्त किया हुआ शब्द-आत्मा चला जाएगा जबकि अनुभव किया हुआ आत्मा कभी भी नहीं जाता। ज्ञानी की भाषा में कारण केवली को वास्तविक श्रुतकेवली कहा जाता है।

जैनों के चार अनुयोग बहुत बड़े शास्त्र कहलाते हैं और वेदांत में चार वेद बड़े शास्त्र कहलाते हैं। वे शास्त्र कौन से स्टेशन तक पहुँच सकते हैं? शब्दों के अंतिम स्टेशन तक। लेकिन आत्मा शब्दों से बहुत दूर है। क्योंकि आत्मा अवर्णनीय है, अवक्तव्य है, शब्दों में नहीं समा सकता। इसमें तो जो वेद से ऊपर व अनुयोग से ऊपर हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष का काम है।

वास्तविक श्रुतकेवली से श्रुतज्ञान सुनने को मिलता है। लोकभाषा के श्रुतकेवली को शायद आत्मज्ञान न भी हो। इसीलिए अंत तक स्वच्छंद रहता है। स्वच्छंद ज्ञानी के माध्यम से जाता है। यदि श्रुतकेवली में एक भी स्वच्छंद आ जाए तो श्रुतकेवलज्ञान का नाश हो जाता है।

वास्तव में इस काल में ऐसा माल बहुत कम है जो मोक्ष में जा सके। जो इतनी चौबिसियाँ बीतने के बाद भी आगे नहीं बढ़ पाया तो

ऐसा नहीं लगता कि अब वह बढ़ पाएगा। यों मोक्ष में जाने के लिए ज़बरदस्त तप करते हैं, सारे शास्त्र मौखिक होते हैं, फिर भी एक क्षण के लिए भी (उन्हें) आत्म अनुभव नहीं है। इसका फल संसार फल ही मिलता है। उसे भगवान ने अभव्य कहा है। वे लोग हम में ही रहते हैं। जब तक आत्मा का अनुभव नहीं हो जाता तब तक वे वास्तविक श्रुतकेवली नहीं कहलाते।

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद केवली धर्म रहा था। उसके बाद दो सौ साल तक श्रुतकेवली रहे थे। उसके बाद वीतराग धर्म का लोप हो गया। क्योंकि वास्तविक श्रुतकेवली नहीं रहे। वीतराग धर्म के खत्म होते ही पहले दो संप्रदाय बन गए। उसके बाद बहुत सारे संप्रदाय बन गए। इसलिए वीतरागी दीक्षा रही ही नहीं। इसीलिए उन्हें आत्मज्ञान नहीं हो सकता। यह तो अपवाद के रूप में अक्रम ज्ञानी हो गए हैं। यहाँ पर वीतराग धर्म चल रहा है। यहाँ पर स्याद्‌वाद है, अनेकांत है।

वास्तविक श्रुतकेवली शास्त्रों को जानते हैं और आत्मा को भी जानते हैं। आत्मा को क्षयोपशम के अनुसार जानते हैं लेकिन सारे शास्त्रों का सभी कुछ जानते हैं। जहाँ से पूछो वहाँ से जवाब देते हैं। उनके खुद के *लक्ष* में ही रहता है कि ऐसा है, ऐसा नहीं है।

वास्तविक श्रुतकेवली को ज्ञानी ही कहते हैं। ज्ञानी की भाषा में कारण केवली कहते हैं।

वास्तविक श्रुतकेवली अर्थात् अस्सी प्रतिशत प्रैक्टिकल और सौ प्रतिशत थ्योरिटिकल। केवलज्ञान होने में बीस प्रतिशत प्रैक्टिकल बाकी है। वह पूर्ण हो जाने पर केवलज्ञान हो जाएगा। नियम ही ऐसा है कि जितना थ्योरिटिकल है, उतना प्रैक्टिकल में नहीं रहता।

दादाश्री कहते हैं कि हम में चार डिग्री थ्योरिटिकल कम है इसलिए हम श्रुतकेवली नहीं कहलाते। फिर भी यदि 'चार डिग्री कम वाले', श्रुतकेवली कहा जाए तो चल सकता है।

वास्तविक श्रुतकेवली, वह पुरुषार्थ का फल है और जो केवली बनते हैं, वे तीर्थंकर भगवान की कृपा का फल है।

अशोच्या (अश्रुत) केवली अर्थात् वे जिन्हें किसी ज्ञानी या केवलज्ञानी से कुछ सुने बगैर ही ज्ञान उत्पन्न हो गया।

स्वयंबुद्ध अर्थात् जो इस जन्म में किसी के उपदेश के बिना सर्वज्ञ बन गए हों, वे। बाकी, पिछले जन्म में किसी गुरु से ज्ञान प्राप्त किया ही होता है।

ज्ञान स्वयंबुद्ध को होता है, त्यागी वेष में, सांसारिक वेष में, स्त्री को, पुरुष को, नपुंसक को, सभी को हो सकता है। कोई ऐसा पकड़कर न बैठ जाए कि इसी वेष में ज्ञान होता है। ऐसा अनाग्रह वाला मार्ग है।

जो सत् को संपूर्ण रूप से जान लें और असत् को भी संपूर्ण रूप से जान लें, वे तत्त्वदर्शी हैं।

तत्त्व दृष्टि को सुदर्शन चक्र कहा जाता है, जो कृष्ण भगवान का भी दुनिया भर में प्रशंसित हुआ।

क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, षड्रिपुओं, जो आत्मा को प्राप्त नहीं करने देते, उन्हें तत्त्व ज्ञानियों ने दुश्मन कहा है। जिन्होंने इन छ: शत्रुओं का हनन कर दिया, वे अरिहंत भगवान कहलाते हैं।

इस जगत् में पाँच इन्द्रियों से जो कुछ दिखाई देता है, वे तत्त्व नहीं हैं, तत्त्व की अवस्थाएँ हैं, जो कि विनाशी हैं। तत्त्व अर्थात् अविनाशी वस्तुओं को जो जानता है, प्रतीति से अनुभव करता है, उसे तत्त्व ज्ञानी कहते हैं। जो सिर्फ आत्मा को ही जाने, वे तत्त्व ज्ञानी कहलाते हैं और जो सभी अलग-अलग तत्त्वों को जाने, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

सर्वज्ञ अर्थात् जिन्हें इस दुनिया में कोई भी चीज़ जाननी बाकी नहीं रही। वे तीर्थंकर या केवलज्ञानी ही हो सकते हैं।

जिन अर्थात् आत्मज्ञानी। जिनेश्वर अर्थात् आत्मज्ञानी के *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक), वे ही सर्वज्ञ हैं। केवलज्ञान के आधार पर ऐसे पद में आए हैं।

सर्वज्ञ, अनंत अवतार के स्मृतिज्ञान के आधार पर ही बताएँ, ऐसी

कोई ज़रूरी नहीं है। उन्हें तो सबकुछ प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है, उतना ही बोलते हैं।

आत्मा ऐसी वस्तु है जिसका किसी को भी पता नहीं लगा है, सिर्फ केवलज्ञानियों को ही पता लगा है। वास्तव में यदि किसी ने खोज की हो तो केवलज्ञानियों ने, तीर्थंकरों ने। उनके दर्शन करने से अन्य लोग भी केवली बने हैं।

केवली और केवलज्ञानी में कोई अंतर नहीं है। केवली भी केवलज्ञानी ही कहलाते हैं, लेकिन तीर्थंकर और केवली में फर्क है। तीर्थंकर जगत् का कल्याण करते हैं और केवली बस खुद अपना ही कल्याण करके चले जाते हैं।

तीर्थंकर, केवलज्ञानी और केवली में ज्ञान में फर्क नहीं है, पुण्य में फर्क है।

केवली भी मोक्ष प्राप्त करते हैं, लेकिन केवली को तीर्थंकर की होड़ में नहीं रखा जा सकता। तीर्थंकर तो वर्ल्ड के आश्चर्य कहे जाते हैं, वे जहाँ पैर रखते हैं वहीं पर तीर्थ बन जाता है। उनकी वाणी देशना रूपी होती है। वास्तविक साइन्टिस्ट तो तीर्थंकर ही कहलाते हैं।

दादाश्री कहते हैं कि मैं इन सभी को ज्ञान देता हूँ। अब इन्हें सिर्फ तीर्थंकर भगवान की उपस्थिति की ही ज़रूरत है। उनके दर्शन हो जाएँ तो इन सभी को केवलज्ञान हो जाएगा। केवली बन जाएँ, सब को उस हद तक का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानी ही तीर्थंकर बनते हैं, क्योंकि उन्होंने जगत् कल्याण की भावना की है। ब्राह्मण, बनिये और पटेल सभी केवली बन सकते हैं, जबकि सिर्फ क्षत्रिय ही तीर्थंकर बनते हैं।

ज्ञानी पुरुष तो लोगों को तैयार करते हैं, उसके बाद जब तीर्थंकर के पास पहुँचते हैं, तो वहाँ केवली बनते हैं।

तीर्थंकरों की उपस्थिति में चाहे कोई भी व्यक्ति जाए फिर भी कुछ

नहीं होता। वह तो, जिनकी मिथ्या दृष्टि बदली और सम्यक् दृष्टि हो गई है, उन्हें तीर्थंकर को देखते ही केवलज्ञान हो जाता है!

तीर्थंकरों के पास बैठे रहे फिर भी चटनी खाना नहीं छूटा, इसलिए कल्याण नहीं हुआ।

यदि इतना समझ जाएँ कि तीर्थंकरों के पास बैठे रहने के बावजूद भी भटक गए हैं तो अब सतर्क हो जाना है। अब नहीं चूकना है। अब दादा की आज्ञा का पालन करके तैयार होकर फिर वीज़ा लेकर जाएँगे तो कोई न कोई तीर्थंकर मिल ही जाएँगे।

जिसे आत्मदृष्टि मिल गई हो तो उसे तीर्थंकरों के दर्शन प्राप्त करते ही आनंद का पार नहीं रहेगा। देखते ही जगत् विस्मृत हो जाएगा, निरालंब आत्मा प्राप्त हो जाएगा, केवलज्ञान हो जाएगा।

ज्ञानी पुरुष दादा भगवान की आज्ञा रूपी धर्मध्यान के फलस्वरूप सर्वोत्तम प्रकार की मनुष्य गति मिलेगी, तीर्थंकर मिलेंगे और खुद की पूर्णाहुति होगी।

जो सभी तीर्थंकर निर्वाण प्राप्त करके सिद्ध भगवान हुए हैं, वे ही परमात्मा हैं।

शुद्ध ज्ञान अर्थात् परमात्मा। केवलज्ञान एक ही स्टाइल का, लेकिन देह दशा सब की अलग-अलग। किसी को कढ़ी ज़्यादा भाती है, किसी को मिर्ची ज़्यादा भाती है, कोई बहुत आकर्षक लगते हैं। तो कोई वाणी बोलते ही एकदम स्तब्ध कर देते हैं।

परम पूज्य दादा भगवान जैसे अक्रम विज्ञानी और तीर्थंकरों की देशना होती है। केवली की देशना नहीं होती। देशना अर्थात् वाणी उदयाधीन सहज रूप से निकलती रहती है, टेपरिकॉर्डर की तरह।

दादाश्री कहते हैं कि केवलज्ञान कैसा है, उसका हमें जितना अनुभव है, वह जितना शब्दों द्वारा बताया जा सकता है उतना वाणी द्वारा बता दिया है। बाकी का जो अनुभव है उसके लिए शब्द नहीं हैं। वह नि:शब्द है। आज की वाणी पूर्वयोग वाली वाणी है।

छठे *गुंठाणे* में तथा तेरहवें *गुंठाणे* में उपदेश देते हैं। तीर्थंकर भी केवल होने से पहले उपदेश देते हैं, केवलज्ञान होने के बाद में देशना देते हैं।

ज्ञानी पुरुष भेद स्वरूप से भी रह सकते हैं और अभेद स्वरूप से भी रह सकते हैं। भेद स्वरूप में प्रकाश की शुरुआत होती है और अभेद स्वरूप में संपूर्ण प्रकाश! भगवान महावीर का, केवलज्ञान होने से पहले, भेद स्वरूप था। बयालीस साल से बहत्तर साल की उम्र तक केवलज्ञान होने के बाद में अभेद स्वरूप था।

तीर्थंकर केवलज्ञान के आधार पर कुछ जीवों के बारे में ऐसा बता सकते हैं कि, 'इतने जन्मों बाद यह इस जन्म में ऐसा बनेगा।' लेकिन वे समकिती जीवों के बारे में ही बता सकते हैं। अज्ञानी अर्थात् अहंकारी, यानी जीवित विभाविक चेतन कब क्या करेगा, वह कहा नहीं जा सकता।

हर एक वस्तु, अपने द्रव्य, गुण व पर्याय, वे भी भूतकाल से लेकर वर्तमान और भविष्य काल का सभी कुछ केवलज्ञान में दिखाई देता है। मिट्टी में से घड़ा और घड़े में से मिट्टी, वहाँ तक के सभी पर्यायों को जानते हैं। एट ए टाइम, कैल्कुलेशन्स से नहीं। बुद्धि से क्रमपूर्वक दिखाई देता है और केवलज्ञान में एट ए टाइम सभी कुछ ज्ञान व दर्शन में रहता है।

जिस प्रकार घड़े के पर्याय देखते हैं उसी प्रकार केवलज्ञान में जीव के पर्यायों को देखते हैं।

केवलज्ञान में जगत् के सनातन तत्त्व और उनकी अवस्थाएँ दिखाई देती हैं, जबकि लोग जगत् को देखने का मतलब न जाने क्या ही समझते हैं!

भगवान महावीर को तीन चीज़ों का ज्ञान था। एक परमाणु को देख सकते थे, एक समय को देख सकते थे और एक प्रदेश को देख सकते थे। सिर्फ केवलज्ञानी ही यह देख सकते हैं, अन्य कोई नहीं देख सकता।

रूपी तत्त्वों में यह भौतिक विज्ञान, अणु तक का सूक्ष्म देख सकता है। लेकिन उसका मूल असल स्वरूप जो अविभाज्य है, वह परमाणु है।

वह सिर्फ केवलज्ञान से ही विज़िबल (दृश्यमान) है। वह अन्य किसी भी प्रकार से, बुद्धि से या इन्द्रिय से गम्य नहीं है।

मूल परमाणु स्वभाव से रूपी है और केवलज्ञान द्वारा देखा जा सकता है।

सर्वज्ञ परमाणु, प्रदेश और समय को देख सकते हैं। समय अर्थात् काल का अविभाज्य अंश। और एक परमाणु जो जगह रोकता है, वह एक प्रदेश है, उसे केवलज्ञानी देख सकते हैं।

आत्मा जब संपूर्ण रूप से निरावृत हो जाता है तब वह अंतिम दशा में होता है। आत्मा जब अंतिम देह से अलग होता है, उस समय शैलेषीकरण की क्रिया होती है। आत्मा खुद अपने सभी प्रदेशों को परमाणु मात्र से बिल्कुल अलग कर देता है, फिर पूरे लोक में प्रकाशमान होकर फैल जाता है। उसके बाद अंतिम देह के 1/3 (एक तिहाई) भाग जितना सिकुड़कर फिर सीधा सिद्ध क्षेत्र में स्थान प्राप्त करता है। हर एक केवलज्ञानी का शैलेषीकरण एक सरीखा ही होता है।

[7.3] दशा – ज्ञानी पुरुष, दादा भगवान और केवलज्ञानी की

परम पूज्य दादाश्री हमेशा कहते थे कि ये जो दिखाई देते हैं, ये तो अंबालाल पटेल हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं और वह भी ऐसे कि जिनमें बुद्धि का एक छींटा भी नहीं है। और दादा भगवान जो तीन सौ साठ डिग्री पर हैं, वे अंदर संपूर्ण दशा में हैं। मेरी चार डिग्री कम हैं। इसीलिए मैं भी उन्हीं की भक्ति करता हूँ न! चार डिग्री पूर्ण करने के लिए!

ज्ञानी पुरुष और केवलज्ञानी में इतना ही फर्क है कि केवलज्ञानी को सभी चीज़ें ज्ञान में दिखाई देती हैं, पूरी स्पष्टता रहती है। जबकि ज्ञानी पुरुष को सभी चीज़ें समझ में आती हैं लेकिन मोटे तौर पर।

आत्मा 'केवलज्ञान स्वरूपी' है, लेकिन सत्ता को लेकर ज्ञानी पुरुष और केवलज्ञानी में फर्क है। जिस प्रकार डेढ़ नंबर के चश्मे हों और किसी को चश्मे न हों तो फर्क पड़ता है न! वैसा है।

ज्ञानी पुरुष और मुक्त पुरुष में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं है। किसी मुक्त की डिग्री ज़्यादा होती है, किसी की डिग्री कम होती है। कोई आंशिक ज्ञानी होते हैं, कोई सर्वांश ज्ञानी होते हैं।

आत्मज्ञानी सर्वज्ञ बन सकते हैं लेकिन अभी ऐसा नहीं कह सकते कि वे सर्वज्ञ हैं। आत्मज्ञानी को आत्मज्ञानी ही कहा जाएगा। जब केवलज्ञानी बन जाएँगे तब सर्वज्ञ कहे जाएँगे। आत्मज्ञानी एक-दो जन्मों में सहज रूप से केवलज्ञानी बन ही जाएँगे।

क्रमिक मार्ग के जो ज्ञानी हैं, वे बुद्धि वाले होते हैं, जबकि अक्रम मार्ग के ज्ञानी पुरुष दादाश्री को भेदविज्ञानी कहा जाता है। उनकी बुद्धि सर्वांश रूप से चली गई है और वे कारण सर्वज्ञ हैं। आत्मा का सर्वांश अनुभव हो चुका है और अब सर्वज्ञ पद के कारणों का सेवन हो रहा है, भावनाएँ जारी हैं।

संपूर्ण ज्ञानप्रकाश के सामने बुद्धि तो सूर्य के सामने दीये के समान है। अवस्था में बुद्धि का उपयोग नहीं करना, वही अबुधता है। और अबुधता से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। सर्वज्ञ पद उत्पन्न होने के बाद में इस जगत् की सभी चीज़ें ज्यों की त्यों दिखाई देती हैं।

केवलज्ञान मूल प्रकाश है और बुद्धि इन्डायरेक्ट प्रकाश है। वह संसार में भटकाती है, और सिर्फ दो ही चीज़ें, फायदा और नुकसान दिखाती है। चौबीस तीर्थंकरों में और ज्ञानियों में बुद्धि थी ही नहीं। बुद्धि का नाश होने के बाद में केवलज्ञान होता है।

बुद्धि संसार में भटकाती है। तीर्थंकरों को पहचानती है, उनके पास बैठने के बावजूद भी वह मोक्ष में नहीं जाने देती।

क्रमिक मार्ग में केवलज्ञान के बिना केवलदर्शन नहीं हो सकता। जबकि अक्रम मार्ग में केवलदर्शन होने के कुछ काल बाद केवलज्ञान होता है।

क्रमिक मार्ग में पहले ज्ञान और बाद में दर्शन है, और उसके बाद चारित्र आता है। जबकि अक्रम मार्ग में पहले दर्शन उसके बाद ज्ञान और

फिर चारित्र। अत: दादाश्री कहते हैं कि हमारा दर्शन संपूर्ण है, केवलदर्शन है। उसके बाद ज्ञान अर्थात् जब उसका अनुभव होता है उसके बाद वह वर्तन में आता है। निश्चय से 'मैं यही हूँ', वह सब प्रकट हो चुका है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र किस अनुपात में आगे बढ़ते हैं? चार अंश दर्शन के, दो अंश ज्ञान के और एक अंश चारित्र का।

परम पूज्य दादाश्री आत्मज्ञान से बहुत आगे थे और केवलज्ञान होने में उनकी चार डिग्री की कमी, इसलिए न तो वे आचार्य थे, न ही अरिहंत, ऐसी बीच की स्थिति तक पहुँचे हुए थे। यदि पास हो जाते तो केवलज्ञानी कहे जाते। लेकिन फेल होने वाले को किसमें रखा जाए? लेकिन फेल हुए तो लोगों के काम आए। पास हो जाते तो मोक्ष में चले जाते। फेल क्यों हुए? अहंकार की कोई भूल रह गई, मैंपन आ गया होगा, इसलिए फेल हुए। अब साफ कर दिया।

खुद हिसाब लगाकर कहा है कि हमारी चार डिग्री कम हैं। पाँच भी नहीं और तीन भी नहीं, जितनी कमी थी उतना ही बता दिया है। और वह कमी भी दुनियादारी को लेकर नहीं है लेकिन सूक्ष्मता से कुछ भाग जानना बाकी है। उस आधार पर संपूर्ण रूप से एब्सल्यूट ज्ञान में नहीं रहा जा सकता।

वे खुद कहते हैं कि हमारे वर्तन में इम्प्योरिटी (अशुद्धता) है। कपड़े, बूट, टोपी हैं, इसलिए उतनी डिग्री कम हो जाती हैं, भले ही वर्तन, चारित्र मोह पर मूर्च्छा न हो।

इस काल का इतना ज़बरदस्त इफेक्ट है कि वे खुद अखंड रूप से केवलज्ञान स्वरूप में नहीं रह सकते। लेकिन उनका खुद का आशय ऐसा रहता है कि निरंतर केवलज्ञान स्वरूप में ही रहना है।

चार डिग्री की कमी से पूरा मोक्ष रुका हुआ है लेकिन शायद लोगों का कल्याण होना होगा, और हमें नुकसान नहीं होने वाला।

डिस्चार्ज में हमारी (दादाश्री की) इच्छा है कि इन लोगों के समस्त दु:ख जाएँ, मेरे जैसा सुख जगत् के लोग भी पाएँ। लेकिन वह

इच्छा भी आवरण लाती है। अपने आप ही सहज रूप से वे चार डिग्री पूर्ण हो ही जाएँगी।

चार डिग्री पूर्ण होने के बाद में केवलज्ञान होगा। तो केवलज्ञान से पहले या बाद में अक्रम विज्ञान में कोई अंतर नहीं है। अब वास्तव में तो पूर्ण दशा के लिए अक्रम विज्ञान की ज़रूरत नहीं है। तीर्थंकर भगवान के दर्शन करने बाकी हैं। वे दर्शन होते ही तीन सौ साठ डिग्री पूर्ण हो जाएँगी।

भूत या भविष्य का जो देख सके, ऐसा ज्ञान दादाश्री को खुद को नहीं है लेकिन आत्मज्ञान से केवलज्ञान तक की सभी बातचीत कर सकते हैं।

जिस डिग्री पर केवलज्ञान होता है, फेल हुए लोग उस डिग्री पर नहीं पड़े रहते। इस काल में सिर्फ दादाश्री ही केवलज्ञान में फेल हुए हैं, तो वे जगत् के काम आ गए। पूरे जगत् की बातों का यहाँ पर स्पष्ट विवरण प्राप्त होता है। इसके बावजूद भी खुद निमित्त भाव में बरतते हैं और चार मार्क्स से फेल हुए हैं तो वह कोई गुनाह नहीं है।

मूल आत्मा केवलज्ञान स्वरूपी है। खुद (दादाश्री) केवलज्ञान स्वरूप से बाहर एक सेकन्ड के लिए भी नहीं रहते। केवलज्ञान स्वरूप में निरंतर रहना, वही निश्चय केवलज्ञान है, और व्यवहार केवलज्ञान अर्थात् लोकालोक प्रकाशक, सभी ज्ञेयों का झलकना।

दादाश्री कहते हैं कि हमें केवलज्ञान में सभी ज्ञेय नहीं झलके (दिखाई दिए) लेकिन काफी कुछ ज्ञेय झलके (दिखाई दिए) हैं। इसीलिए आपको इस वाणी में नया-नया सुनने को मिलता है, नई-नई गहरी-गहरी स्पष्टताएँ जानने को मिलती हैं। शास्त्रों से बाहर की बातें जानने को मिलती हैं। ये सब तो केवलज्ञान के पर्याय हैं। मात्र चार डिग्री कम रहा है केवलज्ञान।

वे खुद ज्ञानी पुरुष के तौर पर हैं और यदि केवलज्ञान हो गया होता तो भगवान कहे जाते। खुद अपने आपको भगवान नहीं कहलवाते हैं। अंदर जो पूर्ण रूप से प्रकट हुए हैं, वे दादा भगवान हैं।

आत्मा को जाना, वही अंतिम बात है। आत्मा जानने के बाद क्षायक समकित से आगे और केवलज्ञान के नज़दीक गया।

आत्मज्ञान होने के बाद से ही (कारण) सर्वज्ञ कहलाते हैं। वास्तविक सर्वज्ञ अर्थात् केवलज्ञान।

आत्मा का ज्ञाता आत्मज्ञानी कहलाता है और सर्व तत्त्वों का ज्ञाता सर्वज्ञ कहलाता है।

इस काल में कार्य सर्वज्ञ नहीं हुआ जा सकता, कारण सर्वज्ञ हुआ जा सकता है।

इस जगत् में अंतिम दशा सर्वज्ञ है। ज्ञान प्रकाश बढ़ते-बढ़ते जब पूर्ण प्रकाश हो जाता है तो वह सर्वज्ञ कहलाता है।

एक व्यक्ति कहे कि, 'मैं अहमदाबाद जा रहा हूँ', और वे यहाँ मुंबई से निकलें तब लोग कहते हैं कि, 'वे तो अहमदाबाद गए।' इस प्रकार से जो सर्वज्ञ बनने के कारणों का सेवन कर रहे हैं, वे सर्वज्ञ हो जाएँगे, आज हुए नहीं हैं।

भीतर जो तीन सौ साठ डिग्री वाले दादा भगवान प्रकट हुए हैं, वे सर्वज्ञ हैं। वे खुद कहते हैं, 'हम तो ज्ञानी पुरुष हैं। मैं भी सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूँ। भीतर वाले मेरी भूलें दिखाते हैं।'

इस दूषमकाल की विचित्रता है कि इस काल में सर्वज्ञ पद उत्पन्न ही नहीं होता। लेकिन इस प्रकार का ज्ञानी पुरुष वाला पद उत्पन्न हुआ है, वह भी कुदरत का आश्चर्य है! पूरा अक्रम विज्ञान खुल गया! उसके माध्यम से मोक्ष का एकावतारी पद प्राप्त हो सके ऐसा है।

अन्य शब्दों में, इस काल में कार्य केवलज्ञान नहीं होता लेकिन कारण केवलज्ञान हो सकता है। केवलज्ञान के कारणों का सेवन कर रहे हैं। दादाश्री ऐसा कहते हैं, "आत्मा का जो अंतिम स्वरूप, निरालंब स्वरूप है, वह 'हमने' देखा है।"

मूल आत्मा ऐसी जगह पर है कि जहाँ उसकी बाउन्ड्री में *पुद्गल*

(जो पूरण और गलन होता है) पहुँच ही नहीं सकता। दादाश्री ऐसा कहते हैं, 'वह जगह हमने देखी है।' जिसे इस काल का आश्चर्य माना जाएगा!

धन्य हैं ये तीर्थंकर! उनकी इतनी गहरी खोज है कि उन्होंने इस देह से बिल्कुल अलग मूल आत्मा को ढूँढ निकाला! इसे बहुत बड़ा आश्चर्य ही कहा जाएगा! दादाश्री कहते हैं कि, 'तीर्थंकरों ने जिन परमात्मा को जाना, उन्हें हमने देखा है।'

'हमने देखा है', तो वह किसने? प्रज्ञा ने। प्रज्ञा को आत्मा का स्वभाव अर्थात् अन्वय गुण नहीं कहा जा सकता। प्रज्ञा का कार्य केवलज्ञान होते ही खत्म हो जाता है।

केवलज्ञान होने के बाद में शुद्ध डिस्चार्ज है, शुद्ध डिस्चार्ज। तब तक ज़रा मैला डिस्चार्ज रहता है, एक-दो जन्म बाकी रहे हैं न, इसलिए।

केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा दादा ने देखा है। तो 'देखा है', ऐसा कहने वाला कौन है? वह खुद देखने वाला भी है। खुद ज्ञेय भी है और ज्ञायक भी है, दोनों है। जब निरालंब हो जाएगा तब ज्ञायक पद में होगा, वर्ना ज्ञानी पद पर ज्ञेय के रूप में रहता है।

दादाश्री कहते हैं, 'जब हम पर बहुत खराब परिस्थिति आ पड़े तो हमने जो मूल स्वरूप देखा है, वैसे आत्मा रूप ही हो जाते हैं और जब वह परिस्थिति चली जाती है तो हम ज्ञेय रूपी ज्ञानी होते हैं।'

महात्मा भी खराब पोज़िशन में शुद्धात्मा हो जाते हैं। शब्द का अवलंबन है अभी तक। मूल जो है, वह इससे आगे का पद है। ऐसा स्वरूप देखने के बाद एक्ज़ेक्ट वाणी निकलती है।

दादाश्री कहते हैं कि, 'केवलज्ञान हमारी समझ में आ गया है लेकिन पूरी तरह से अनुभव में नहीं आया है। अनुभव में आया होता तो केवलज्ञान की बात बाहर आती। लेकिन समझ में आया है कि यह क्या खोज है!'

दादाश्री कहते हैं कि (मूल आत्मा केवलज्ञान स्वरूपी है और खुद जब एब्सल्यूट और निरालंब हो जाता है तब केवलज्ञानी बनता है।) भगवान केवलज्ञान स्वरूपी हैं और 'हम' ज्ञान स्वरूप में रहते हैं।

जिन्हें केवलज्ञान हुआ था, वे केवलज्ञान की बातें बताने को रहे नहीं क्योंकि संपूर्ण वीतराग हो गए थे और बाकी के सब जिन्हें ज्ञान हुआ था, वे अलौकिक तक पहुँचे नहीं थे।

हमें केवलज्ञान समझ में आ गया है, इसीलिए पूरे वर्ल्ड का कोई भी ऐसा आध्यात्मिक प्रश्न नहीं है कि जिसका यहाँ पर जवाब न मिल सके। दादाश्री की बातें व्यवहार में भी काफी कुछ काम आएँ, ऐसी होती हैं। क्योंकि केवलदर्शन से निकली हुई हैं।

केवलज्ञान अर्थात् सभी ज्ञेयों और ज्ञेयों के सभी पर्यायों को जानता है। दादाश्री कहते हैं कि हमारा किसी जगह पर रुका हुआ है। केवलज्ञान समझ में आ गया है लेकिन जानने में नहीं आया है। उसके फलस्वरूप कुछ वस्तुएँ यों ही खुली, हूबहू दिखाई देती हैं। जितनी बातें वाणी द्वारा निकल सकती हैं, उससे भी अनंत गुना बातें हमें हूबहू दिखाई देती रहती हैं। जो केवलज्ञान तक पहुँचता है, उसी को यह सब पता चलता है।

उपयोग देने पर ज्यों का त्यों दिखाई देता है। सत्रह साल की उम्र में क्या किया था? शरीर क्या क्रिया कर रहा था, वह सब फिल्म की तरह दिखाई देता है। इसी को केवलदर्शन कहते हैं।

फिर भी वे कहते हैं कि हमें पिछले जन्म का कुछ भी नहीं दिखाई देता। यह दिखाई देना बुद्धि का विषय है। हम में बुद्धि नहीं है, याददाश्त नहीं है।

दादाश्री कहते हैं कि हम में बुद्धि बिल्कुल भी नहीं है। हम में किसी भी तरह के विचार नहीं हैं। चित्त शुद्ध होकर प्रज्ञा हो चुका है। इसलिए जो बातें होती हैं, वे एक तरफ दिखाई देती हैं और दूसरी तरफ शब्दों में निकल पड़ती हैं। सभी चीज़ें सामने दिखाई देती हैं, जैसे केवलज्ञान में सबकुछ दिखाई देता है वैसा ही सब दिखाई देता है।

जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाए तब तक सभी व्यू पॉइन्ट से देखते हैं और केवलज्ञान हो गया तो व्यू पॉइन्ट रहा ही नहीं।

दादाश्री कहते हैं, हमें केवली नहीं कह सकते। कहना हो तो कारण केवली कह सकते हैं, कार्य केवली नहीं। वीतराग मार्ग में एक बाल जितनी भी भूल नहीं चलती, ढील नहीं चलती। केवली कहा जाए तो कहने वाले को, सुनने वाले को और जो केवली हो चुके हैं, उन्हें दोष लगेगा। हम तो केवलज्ञान कारणों का सेवन कर रहे हैं।

केवलज्ञानी के सभी प्रदेश खुले हुए होते हैं, सभी जगह शुद्ध ही देखते हैं।

केवल होने तक प्रदेश खुलते जाते हैं। जितने प्रदेश खुल जाएँ उतना अनुभव होता है।

सर्वज्ञ के ज्ञान में जानने को कुछ भी बाकी नहीं रहता, अनंत बातों को जान सकते हैं। वे जो जानते हैं वह हमें समझ में आता है कि ऐसा-ऐसा होना चाहिए लेकिन जान नहीं पाते।

तीर्थंकरों ने केवलज्ञान में जिस आत्मा को जाना, वह आत्मा हमने देखा है। संपूर्ण निर्भय बना सकता है, संपूर्ण वीतरागता रख सकता है। हमें यह समझ में आ गया है, अनुभव में नहीं आया है। एक-दो जन्मों बाद आ जाएगा अपने आप ही। अभी तो लोगों का काम हो रहा है!

[7.4] केवलज्ञान की श्रेणी चढ़ी जा सकती है, आत्मज्ञान के बाद

ज्ञानी पुरुष जितना ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए? उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिए। कृपा से ही केवलज्ञान होता है।

केवलज्ञान, देने से मिलता है या खुद के पुरुषार्थ से? केवलज्ञान तो केवलज्ञानी का कृपा प्रसाद है।

ज्ञानविधि में एक समय के लिए जो शुद्ध चित्त की प्राप्ति हो जाती

है, वह केवलज्ञान होने तक छोड़ती नहीं है। जगत् के लोग एक समय के लिए भी आत्मामय नहीं हुए हैं।

ज्ञानविधि, वह दादाश्री को उदय में आई है, लेकिन वह उनका प्रकट ऐश्वर्य है। दो घंटे में मोक्ष दे दें, ऐसा ऐश्वर्य प्रकट हुआ है। पूरी ज्ञानविधि जो है, वह केवलज्ञान ही है। एक बार ज्ञानविधि हो जाए तो आत्मज्ञान हो जाता है, मोक्ष भी हो जाता है, वर्ना लाख जन्मों तक भी ठिकाना न पड़े ऐसा है।

यह ज्ञान तो भेदविज्ञान है। सौ प्रतिशत मतिज्ञान को केवलज्ञान कहा जाता है। जब छियानवे-सतानवे प्रतिशत मतिज्ञान हो तो उसे भेदविज्ञान कहा जाता है।

भेदज्ञान ही सर्वस्व ज्ञान है और वही केवलज्ञान में जाने का द्वार है।

आत्मज्ञान जान लिया, वह कारण केवलज्ञान है और उसके बाद केवलज्ञान, वह कार्य केवलज्ञान है।

यहाँ अक्रम मार्ग में ज्ञानविधि में जो ज्ञान मिलता है, वह आत्मज्ञान है, वह अंश केवलज्ञान है। उसके बाद बढ़ते-बढ़ते वह सर्वांश हो जाता है। जितने अंश तक आत्मस्वभाव प्रकट होता जाता है उतने ही अंश तक केवलज्ञान प्रकट होता जाता है। जब सर्वांश हो जाता है तब एब्सल्यूट हो जाता है और एब्सल्यूट केवलज्ञान ही परमात्म पद है।

आंशिक केवलज्ञान से यह आशय है कि यह मार्ग केवलज्ञान की ओर जाता है। यह ज्ञान मिले और आज्ञापालन करे तभी से केवलज्ञान के अंश इकट्ठे होते जाते हैं। ऐसे करते-करते जब तीन सौ साठ अंश पूर्ण हो जाते हैं तब केवलज्ञान हो जाता है।

कृपालुदेव ने कहा है कि आरंभ-परिग्रह निवर्त्ये, केवलज्ञान होता है। तो महात्माओं में आरंभ-परिग्रह दिखाई देता है, फिर भी वे केवलज्ञान के नज़दीक हैं। किस प्रकार से? आरंभ किसे कहा जाता है? 'मैं अकर्ता हूँ', ऐसा भान हुआ कि आरंभ चला गया, और ग्रह है लेकिन मूर्च्छा तो नहीं है इसीलिए परिग्रह गए। अत: आरंभ और परिग्रह *निवर्त्ये* हो (चला)

गया। इसमें तो केवलज्ञान के कारणों का सेवन हो रहा है। अद्भुत वस्तु प्राप्त हो गई है! बच्चे के हाथ में हीरा आने के बराबर है!

हमें यह अद्भुत ज्ञान प्राप्त हुआ है, रात को नींद खुलने पर तुरंत ही हाज़िर हो जाता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। परेशानी में भी निरंतर जागृति रहती है और बहुत बड़ी परेशानी आ जाए तो केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाती है, ऐसा है यह ज्ञान!

थे दो सौ डिग्री पर और ज्ञान मिलते ही तीन सौ डिग्री पर आ गए। सौ डिग्री पार कर गए, दादा भगवान की कृपा से ही!

ज्ञान पचना अर्थात् परिणमित होना। एक-दो जन्मों में धीरे-धीरे पचेगा। हमें केवलज्ञान नहीं पचा है, तीन सौ छप्पन डिग्री पर आकर रुक गया है।

इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा रहे तो वह जागृति है। उससे खुद उस प्रकाश को देख रहा है, वह केवलज्ञान स्वरूप की दिशा में जा रहा है, उसमें तदाकार हो रहा है।

दादाश्री कहते हैं कि आप सब महात्मा शुद्धात्मा की तरह रहते हो और हम केवलज्ञान स्वरूप में रहते हैं। शुद्धात्मा के लिए निःशंकता उत्पन्न हो जाए, उसके बाद का पद अर्थात् अपना केवलज्ञान स्वरूप!

ज्ञानविधि से भान होता है, ज्ञान नहीं होता। पहले दर्शन होता है अर्थात् प्रतीति बैठती है कि, 'मैं चंदूलाल नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा ही हूँ।' उसके बाद उसे भान होता है अर्थात् अंश ज्ञान होता है। संपूर्ण भान प्रकट हो जाए तो फिर जो वर्तन में आता है, वह केवलज्ञान है।

जगत् के जीवों का प्रवाह, कुदरती रूप से अविनाशी की तरफ ही जा रहा है। उतार-चढ़ाव होने के बाद, सभी अनुभव करवाने के बाद अविनाशी की तरफ जाना है। केवलज्ञान अर्थात् तमाम प्रकार के अनुभवों का संग्रहस्थान। इसलिए लोग जो अनुभव करते हैं, वह करेक्ट ही है।

ज्ञानी पुरुष ज्ञान सहित बुलवाते हैं इसलिए आत्मा रूप हो जाते

हैं। उसके बाद अनुभव, *लक्ष* व प्रतीति रहती है। अब ये अनुभव बढ़ते जाएँगे और पूर्ण अनुभव को ही केवलज्ञान कहा गया है। केवलज्ञान संपूर्ण अनुभव है। तब तक अनुभव होते ही रहेंगे।

केवल आत्मप्रवर्तन, दर्शन और ज्ञान के सिवा अन्य कोई प्रवर्तन नहीं, उसे केवलज्ञान कहा जाता है।

शुद्धात्मा पद में आने के बाद आगे का जो केवलज्ञान स्वरूप है वह अंतिम पद है। केवलज्ञान हो गया अर्थात् हो गया पूर्ण परमात्मा। वह निर्वाण के लायक हो गया।

पहले के मोह से जो सत्याभास थे, वे अब अच्छे नहीं लगते। उनका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करते जाते हैं उससे वीतरागता आती जाती है, और अंत में केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

जब सर्वथा *पुद्गल* परिणति बंद हो जाए, कोई *पुद्गल* रमणता नहीं रहे, निरंतर खुद की स्वाभाविक रमणता, आत्मा की ही रमणता रहे तो वह केवलज्ञान है।

केवलदर्शन में निज परिणति उत्पन्न होती है। जो क्रमश: बढ़ती जाती है और वह केवलज्ञान स्वरूप में परिणामित होगी। जो केवलज्ञान में संपूर्ण हो जाएगी।

निज परिणति ही आत्मभावना है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलना, वह आत्मभावना नहीं है।

'केवल निज स्वभाव का अखंड बरते ज्ञान' अर्थात् कि, 'मैं ज्ञाता-द्रष्टा हूँ' जब यह ज्ञान निरंतर बरते तो यह केवलज्ञान है। और निरंतर नहीं रह सके तब तक केवलज्ञान होने की तरफ का जो ध्येय है, उसे समकित कहा जाता है। जितना खंडित उतना ही अंश केवलज्ञान।

महात्माओं को अखंड प्रतीति रहती है, लेकिन अखंड ज्ञान क्यों नहीं रह पाता? पिछले कर्म धक्का लगाते हैं।

केवलज्ञान अर्थात् एब्सल्यूट अर्थात् निरालंब। जेल में बिठा दिया हो तब भी निरालंब।

अक्रम विज्ञान अहंकार का फुलस्टॉप (पूर्ण विराम) विज्ञान है, कॉमा (अल्प विराम) विज्ञान नहीं है।

शुद्धात्मा पद प्राप्त होने के बाद केवलज्ञान के अंशों की शुरुआत होती है। वह जब एक खास अंश तक पहुँचता है तो आत्मा बिल्कुल अलग ही दिखाई देता है, उसके बाद में एब्सल्यूट हो जाता है।

एब्सल्यूट होने के बाद निरालंब होता है। एब्सल्यूट की बिगिनिंग है और एन्ड भी है। संपूर्ण एब्सल्यूट हो जाए तब केवलज्ञान होता है। निरालंब होना और केवलज्ञान होते जाना। एक तरफ निरावरण और दूसरी तरफ निरालंब, दोनों साथ में ही होता जाता है।

शास्त्रों में लिखा है कि साढ़े बारह हज़ार एकावतारी होंगे। पूरी दुनिया की बस्ती में से उतने ही लोगों के लिए स्कोप है।

इस काल में केवलज्ञान समझ के रूप में आता है लेकिन वर्तन के रूप में नहीं आता, इस दूषमकाल की वजह से।

वीतराग अर्थात् मूल जगह का, स्वरूप का ज्ञान-दर्शन।

दादाश्री कहते हैं, हमने आपके, अपने और केवली भगवान के बीच बहुत अंतर नहीं रखा है। यहाँ ज्ञानविधि में केवलज्ञान के सिवा अन्य कुछ भी नहीं दिया जाता। लेकिन केवलज्ञान का जो प्रवर्तन है, वह काल के प्रभाव से टिकता नहीं है, काल की वजह से पचता नहीं है। लेकिन संपूर्ण केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

इस ज्ञानविधि में आत्मा के अलावा कोई भी मिश्रण वाली चीज़ प्राप्त नहीं होती। केवल शुद्ध आत्मा, केवल आत्मा को ही केवलज्ञान कहते हैं। लेकिन वैसा केवलज्ञान बरतने नहीं देता। वे अंतराय टूट जाएँ ऐसे नहीं हैं। लेकिन क्षायक समकित तक का प्राप्त होता है। इसलिए अब नए कर्म नहीं बंधते।

इस काल में कर्म बहुत हैं, रूई की गांठ की तरह कम्प्रेस और फिर कॉम्प्लेक्स। वे कर्म खत्म नहीं होते।

तीर्थंकर भगवान के दर्शन करने बाकी हैं। उनकी स्थिरता को देखेंगे, उनका प्रेम देखेंगे, सिर्फ उनके दर्शन से ही पूर्ण कक्षा प्रकट हो जाएगी।

जब केवलज्ञान होता है तो पता चल ही जाता है, पूरी दुनिया को एट ए टाइम देख पाते हैं! लोक-अलोक का स्वरूप दिखाई देता है।

जब आत्मज्ञान होता है तब पहले खुद की भूलें दिखाई देती हैं। जैसे-जैसे भूलें खत्म होंगी वैसे-वैसे आगे बढ़ पाएगा।

जब तक अशुद्धि वाली बातें आती हैं और उस समय अंदर परिणाम डिस्टर्ब हो जाते हैं, तब तक 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलना अच्छा है। उसके बाद आगे की श्रेणी में 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' ऐसा बोला जा सकता है। दिन में पाँच-दस बार ऐसा बोलना है और खुद को कभी-कभी केवलज्ञान स्वरूप से देखना है।

खुद का केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखाई देता है? पूरे देह में आकाश जितना ही अमूर्त भाग खुद का दिखाई देता है। उसमें कोई मूर्त चीज़ नहीं होती। इस प्रकार ज्ञानी पुरुष के कहने से धीरे-धीरे अभ्यास करते जाएँगे तो शुद्ध हो जाएगा।

यदि आत्मा के गुणों की *भजना* करेंगे तो स्थिरता रहेगी। आत्मा क्या है, उसके गुण सहित बोलना चाहिए, उसे देखना चाहिए तब वह प्रकाशमान होगा।

इस ज्ञान का अर्थ क्या है? जागृति। और उसका फल है केवलज्ञान। जब जागृति संपूर्ण और निरंतर रहती है तब उसे केवलज्ञान कहते हैं।

इस ज्ञान के बाद में खुद पुरुष बना, इसलिए पुरुषार्थ कर सकता है। जितना आज्ञा का पालन करेगा उतनी ही जागृति बढ़ती जाएगी, उतनी ही पूर्णता उत्पन्न होती जाएगी।

ज्ञाता-द्रष्टापन जागृति के अधीन है, बुद्धि के अधीन नहीं है।

यह ज्ञान जो प्राप्त हुआ है, वह दर्शन में परिणामित हुआ। अब

प्रत्यक्ष सत्संग से, आज्ञापालन करने से बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे शुद्ध उपयोग उत्पन्न होगा। जितना शुद्ध उपयोग उतना ही ज्ञान है।

शुद्ध उपयोग में से केवलज्ञान के बीज बोए जाते हैं, अंश केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

शुद्ध उपयोग, वह ज्ञान स्वरूप कहलाता है और उपयोग उपयोग में रहे तो वह विज्ञान स्वरूप कहलाता है, केवलज्ञान स्वरूप कहलाता है। शुद्ध उपयोग पर भी उपयोग रखे कि कैसा शुद्ध उपयोग बरत रहा है तो वह केवलज्ञान है।

वीतराग होने की शुरुआत से लेकर जब सर्वांश रूप से वीतराग हो जाते हैं तब केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान पहले नहीं हो जाता, जितने अंश तक वीतराग हुआ उतने ही अंश का केवलज्ञान होता है।

केवलज्ञान करने की चीज़ नहीं है, वह तो जानने की चीज़ है। करने की चीज़ को तो कुदरत चला रही है। 'करना' ही भ्रांति है, वह तो 'व्यवस्थित शक्ति' ठाठ से 'खुद' (आत्मा) के लिए कर रही है।

ज्ञानी पुरुष द्वारा दिए गए 'व्यवस्थित' को एक्ज़ेक्ट समझ जाए तो इस तरफ केवलज्ञान हो जाए ऐसा है। तब तक जितना समझ में आएगा, धीरे-धीरे उतना ही केवलज्ञान खुलता जाएगा।

व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाए तो वह संपूर्ण ज्ञाता-द्रष्टा रह सकता है।

जितने समय तक खुद ज्ञायक रहता है, उतने ही समय तक केवलज्ञान के अंश इकट्ठे होते रहते हैं।

महात्मा व्यवस्थित को स्थूल रूप से समझे हैं। अभी भी सूक्ष्म व्यवस्थित को पूरा समझना बाकी है। उसके बाद सूक्ष्मतर और फिर जब सूक्ष्मतम व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाएगा तब केवलज्ञान होगा।

'ज्ञान' प्राप्ति के बाद स्वाभाविक रूप से अबुध होते ही जाते हैं।

जब बुद्धि का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होगा, अहंकार निर्मूल हो जाएगा, तब पूरा केवलज्ञान दिखता रहेगा।

जीवित अहंकार चले जाने के बाद डिस्चार्ज अहंकार रहता है। उसके बाद खुद को *पुद्गल* का आकर्षण नहीं रहता, *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण रहता है। जब वह भी खत्म हो जाएगा तब केवलज्ञान होगा।

जब तक केवलज्ञान नहीं होता तब तक सभी अवस्थाएँ छद्मस्थ अवस्था कहलाती हैं। उसके बाद जब केवलज्ञान हो जाता है तो वह विदेही अवस्था, और फिर निर्वाण प्राप्ति के बाद जब मुक्त हो जाता है तो वह महाविदेही अवस्था है।

छद्मस्थ को फाइलों का समभाव से *निकाल* बाकी है।

दर्शन मोह चले जाने के बाद चारित्र मोह बचा। उसे डिस्चार्ज मोह कहते हैं। आगे के गुणस्थानकों में उसे क्षीण मोह कहते हैं। उस चारित्र मोह के पूर्ण होने के बाद केवलज्ञान होता है।

– **दीपक के जय सच्चिदानंद**

अनुक्रमणिका

[खंड - 1] आत्मा के स्वरूप

[1] प्रतिष्ठित आत्मा

[1.1] प्रतिष्ठित आत्मा का स्वरूप

[1.2] जगत् का अधिष्ठान

[1.3] ज्ञान के बाद जो शेष बचा, वह है प्रतिष्ठित आत्मा

[2] व्यवहार आत्मा

[3] पावर चेतन

[3.1] पावर चेतन का स्वरूप

[3.2] पावर चेतन विराम पाता है, आत्मज्ञान के बाद

[4] मिश्र चेतन

[5] निश्चेतन चेतन

[6] मिकेनिकल आत्मा

[7] मुर्दा

[8] चल-अचल-सचराचर

[खंड - 2] आत्मा के ज्ञान-दर्शन के प्रकार

[1] ज्ञान-अज्ञान

[2] श्रुतज्ञान

[3] मतिज्ञान

[4] अवधिज्ञान-मन:पर्यवज्ञान

[4.1] अवधिज्ञान

[4.2] मन:पर्यव ज्ञान

[4.3] 'अक्रम' से पार किए श्रुत, मति, अवधि और मन:पर्यव

[5] ज्ञानी ने जाना विपरीत ज्ञान, विभंग-जाति व त्रिकाल को

[5.1] विभंगज्ञान

[5.2] जाति-स्मरण ज्ञान

[5.3] त्रिकाल ज्ञान

[6] केवलदर्शन

[6.1] केवलदर्शन की समझ

[6.2] केवलदर्शन की परिभाषा और प्रसंग (घटनाएँ)

[7] केवलज्ञान

[7.1] केवलज्ञान की समझ

[7.2] विशेष समझ : केवली, सर्वज्ञ व तीर्थंकर भगवान के बारे में

[7.3] दशा - ज्ञानी पुरुष, दादा भगवान और केवलज्ञानी की

[7.4] केवलज्ञान की श्रेणियाँ पार कर सकते हैं, आत्मज्ञान के बाद

❖❖❖❖❖

आप्तवाणी

श्रेणी-14 भाग-3

[खंड - 1]

आत्मा के स्वरूप

[1]

प्रतिष्ठित आत्मा

[1.1]

प्रतिष्ठित आत्मा का स्वरूप

'मैं चंदू हूँ', वह चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा है

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् क्या?

दादाश्री : जब तक यह नहीं जानते कि 'मैं खुद कौन हूँ' तब तक जिसे हम आत्मा मानते हैं कि, 'मैं यह चंदूलाल हूँ'। वह आत्मा अर्थात् क्या? खुद का सेल्फ। खुद के सेल्फ को ऐसा मानना (क्या हूँ, कैसा हूँ, कौन हूँ, ऐसी मान्यता) कि 'मैं यह चंदूलाल', वह (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा (सूक्ष्मतम अहंकार) है और यह जो चंदूलाल है, देह है, वह (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा (सूक्ष्मतर अहंकार) है, पूर्व जन्म में जो प्रतिष्ठा की थी, वही है।

प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् 'आपने' अज्ञानता से जो प्रतिष्ठा की कि,

'मैं चंदूलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', ऐसी प्रतिष्ठा करते रहे। इस चंदूलाल शब्द को नहीं देखना है। लेकिन 'खुद' नया शरीर बना रहा है, उसमें 'मैं'पन की प्रतिष्ठा करता है इसलिए अगले जन्म में वह पुतला बोलता है, जीवन भर। यदि प्रतिष्ठा नहीं की होती तो कैसे बोलता? यानी कि यह प्रतिष्ठित आत्मा है।

'चंदू' है, डिस्चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा में क्या अंतर है?

दादाश्री : शुद्धात्मा दरअसल आत्मा है और मैं चंदू हूँ, वकील हूँ, शाह हूँ, ऐसे अगली मूर्ति की प्रतिष्ठा कर रहे हो। वह प्रतिष्ठित आत्मा है। दो आत्माएँ हैं; एक है प्रतिष्ठित आत्मा और दूसरा रियल आत्मा, वही शुद्धात्मा है।

ये चक्षुगम्य या इन्द्रियगम्य कोई भी क्रिया शुद्धात्मा की नहीं है, ये सभी क्रियाएँ प्रतिष्ठित आत्मा की हैं। 'शुद्धात्मा' की क्रियाएँ ज्ञानगम्य हैं। अनंत ज्ञानक्रिया, अनंत दर्शनक्रिया वगैरह हैं। वह तो जब 'खुद' शुद्धात्मा स्वरूप हो जाएगा तभी समझ में आएगा। तभी खुद को ऐसा समझ में आएगा कि वह खुद, 'शुद्धात्मा' अक्रिय है। जब तक 'खुद' 'शुद्धात्मा स्वरूप' नहीं हुआ है, तब तक 'वह' प्रतिष्ठित आत्म स्वरूप ही है और इसीलिए कर्ता-भोक्ता पद में है। भोक्ता पद में फिर से कर्ता बन बैठता है और नई प्रतिष्ठा करके नया प्रतिष्ठित आत्मा तैयार करता है, नई मूर्ति तैयार करता है और यह चक्र चलता ही रहता है!

इस (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा में 'मैं' एकाकार हो जाता है इसीलिए कर्म बंधन होता है। 'मैं कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ', उससे परमाणु चिपक जाते हैं। (यह चंदू) यह पूरा ही प्रतिष्ठित आत्मा (डिस्चार्ज स्वरूप) है और अगले जन्म के लिए फिर से (चंदू को, 'मैं हूँ', मानने से) चार्ज होता है।

'मैं हूँ और मेरा है', उससे होती है नई प्रतिष्ठा

'यह मैं हूँ और यह मेरा है', ऐसा कहता है न तू, उससे नए शरीर की प्रतिष्ठा करता है। वह तेरे नए शरीर की प्रतिष्ठा है। 'यह मैं हूँ' कहता है न, तो वह शरीर की ही प्रतिष्ठा है। यदि तू शरीर को ऐसा कहेगा कि 'मैं हूँ' तो तुझे शरीर ही मिलेगा। उसी की प्रतिष्ठा की है और वह प्रतिष्ठित हो चुका आत्मा फिर से वापस अगले जन्म में काम करता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् इस जन्म में जो प्रतिष्ठा, जो मान्यता की हो, अगले जन्म में उसे भुगतना पड़ता है?

दादाश्री : वह अगले जन्म में प्रतिष्ठित आत्मा बनकर फल देती है। फिर वापस नई प्रतिष्ठा होती जाती है। 'मैं हूँ', ऐसा कहा, 'यह शरीर मैं हूँ', ऐसा कहा तो उससे प्रतिष्ठा हो गई।

प्रश्नकर्ता : 'मैं हूँ', क्या ऐसा नहीं कहना चाहिए?

दादाश्री : कह सकते हो। यह भी कहता है न, कि 'मैं हूँ' लेकिन आप ऐसा मानते हो कि, 'मैं हूँ', यह ऐसा नहीं मानता। ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है लेकिन ऐसा कहने के पीछे जो मान्यता है, उसमें दोष है। यह अपने फादर के लिए कहता है कि, 'ये मेरे फादर हैं' लेकिन, 'मेरे फादर हैं', ऐसा मानता नहीं है। ऐसा कहता है कि, 'यह मेरी बॉडी है' लेकिन उसे ऐसा नहीं मानता कि 'मेरी है' और आप ऐसा सब मानते हो। आपको रोंग बिलीफ है, इसे रोंग बिलीफ नहीं है।

'मैं चंदूलाल हूँ, मैं इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', ऐसा जो बोल रहा है, वह पूर्व जन्म का कर्म है। वह कर्म, रूपक में बोलता है। पहले जो योजना के रूप में था न, वह अब रूपक में आया है। अब रूपक में आया तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन फिर से उसे वैसी ही श्रद्धा है, इसलिए वापस उसमें से बीज डलता है। यानी शरीर में ही प्रतिष्ठा करता है कि, 'यह मैं हूँ', तब फिर से शरीर उत्पन्न होता

है। प्रतिष्ठित आत्मा प्रतिष्ठा करता है, प्रतिष्ठा कर-करके, इसलिए वह फल देता ही रहता है।

नई मूर्ति बनती है, 'चंदू' में प्रतिष्ठा होने से

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में जो कुछ भोग रहा है, वह पुराना (पूर्व जन्म का) भोग रहा है, वह तो ऐसा ही मानता है कि 'यह मैंने किया।'

दादाश्री : हाँ। जो कुछ भोग रहा है, उसमें अहंकार नहीं करना है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोग तो ऐसा ही करते हैं न? सामान्य जीवन में तो ऐसा ही होता है न?

दादाश्री : हाँ। वह जो कुछ भोग रहा है, उसका अहंकार करता है कि 'मैंने किया'। कहता है, 'मैं आया गाड़ी में, मैं नहाया अभी, मैं संडास जाकर आया, मैंने चाय पी' और फिर यह सब करेक्ट है, ऐसा विश्वास भी है। ऐसा ड्रामेटिक बोलने में हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह जब ऐसा कहता है तो अगले जन्म के लिए बाँधता है?

दादाश्री : अगला जन्म। वह खुद की प्रतिष्ठा ही कर रहा है। वह छेनी लेकर गढ़ता रहता है, खुद की ही मूर्ति गढ़ता है। चार पैरों वाली, छः पैरों वाली या आठ पैरों वाली या दो पैरों वाली मूर्ति बना रहा है। इस जन्म में अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठा करता है। उससे मूर्ति बनती है। मूर्ति रूपी मानते हो इसलिए मूर्ति में प्रतिष्ठा होती है, मूर्ति का जन्म होगा। आपको जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान होगा तब यह खत्म हो जाएगा।

अहंकार ही कार्य-कारण प्रतिष्ठा का

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा की प्रतिष्ठा कौन करता है?

दादाश्री : 'अहंकार'। वही प्रतिष्ठित आत्मा, दूसरा प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न करता है। वह जो कि (वर्तन में) अहंकार करता है, वह पहले का प्रतिष्ठित आत्मा है। यह फिर से (बिलीफ से) प्रतिष्ठा करता है। 'मैं कर रहा हूँ और मेरा है' तो उससे प्रतिष्ठा होती है। वह नई, अगले जन्म की प्रतिष्ठा है। (वर्तन में) पुरानी प्रतिष्ठा खुलती जाती है और (बिलीफ से) नई प्रतिष्ठा उत्पन्न करता है। यह चक्र चलता ही रहता है। एक तो, ऐसा कहता है कि, 'मैं चंदूलाल हूँ' और फिर, 'इसका मामा हूँ, यह विचार मुझे आया है।' अब पिछली प्रतिष्ठा का जो *आश्रव* (उदयकर्म में तन्मयाकार होना) है, उस *आश्रव* की *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है। *निर्जरा* होते समय वह फिर से वैसी ही मूर्ति गढ़ता है, उसके बाद उसकी *निर्जरा* होती है। अब जिसे यह ज्ञान दिया है, वह क्या कहता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ और इनका मामा हूँ।' ऐसा कहता है, वह पिछली प्रतिष्ठा की वजह से ही है लेकिन आज उसे ज्ञान है इसलिए ऐसी श्रद्धा खत्म हो गई है कि, 'वास्तव में मैं चंदूभाई हूँ', इसलिए नई प्रतिष्ठा नहीं करता है। इसलिए इसे *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) कहा जाता है, जिसमें नया बंधन नहीं होता और *निर्जरा* होती रहती है। बंध (बंधन) किसे कहते हैं? ज्ञान नहीं हो तब कर्म बंधन होता है। अत: हम जैसी प्रतिष्ठा करते हैं, वैसी ही प्रतिष्ठा फिर से हो जाती है।

'मैं कर रहा हूँ, यह मैंने किया, यह मेरा है' ऐसा जो कहते हैं, उससे प्रतिष्ठा करते हैं। उससे अगले जन्म का बीज तैयार हो रहा है। यह पिछले जन्म का जो प्रतिष्ठित आत्मा है उसमें से वापस नया प्रतिष्ठित आत्मा खड़ा करता है और फिर वह प्रतिष्ठित आत्मा उसका फल देता है। वह प्रतिष्ठा अहंकार से होती है। यदि अहंकार नहीं हो तो प्रतिष्ठा नहीं होगी। जब तक अहंकार है तब तक प्रतिष्ठा होती है। वह प्रतिष्ठित अहंकार ही प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न करता है। अब, उस अहंकार के निर्मूल होने के बाद फिर कुछ भी नहीं रहता। यह पूरा खत्म हो जाता है, जगत्।

यह बंधन भी अहंकार ने बनाया है और मुक्ति भी अहंकार ढूँढ रहा है क्योंकि अहंकार को यह पुसाता नहीं है। वह समझता है कि इसमें कुछ स्वाद आएगा लेकिन कुछ भी नहीं आता। इसलिए फिर, मुक्ति इस तरफ है, आत्मा मुक्त ही है, स्वभाव से मुक्त है, इतना यदि उसे समझ में आ जाए तो बस, हो गया! स्वभाव से ही मुक्ति है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार और प्रतिष्ठित आत्मा में क्या अंतर है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा ही अहंकार है। अहंकार का उत्पादन वह है, और फिर से उसका उत्पादन अहंकार है। प्रतिष्ठित आत्मा में से वापस अहंकार उत्पन्न होता है और अहंकार में से प्रतिष्ठित आत्मा बनता है। दोनों कार्य-कारण हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सब से पहला अहंकार किस प्रकार से प्रतिष्ठित हुआ?

दादाश्री : पहले या दूसरे जैसा कुछ नहीं होता। गोल (चीज़) में पहला या दूसरा कुछ होता है? यह जो राउन्ड होता है, उसमें पहला या दूसरा कौन सा होता है?

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ ऐसा हुआ कि प्रतिष्ठा सहित ही है?

दादाश्री : प्रतिष्ठा सहित ही है या नहीं है, उसका कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रतिष्ठा सहित है या रहित है, जैसा मानो वैसा है। यदि यह मान्यता छूट जाए तो कुछ भी नहीं है। बाहर के सभी प्रेशर (संयोगों के दबाव) को लेकर ऐसा मानता है, मानता है इसलिए ऐसा (प्रतिष्ठा) हो जाता है। यदि वह मान्यता छूट जाए तो फिर यह खत्म हो जाएगा। ऐसा कुछ है ही नहीं। बंधा हुआ नहीं है और बंधा नहीं है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन लोग इस प्रकार से एक तरफा ले जाते हैं कि, 'बंध गया है', इसलिए विरोधाभासी लगता है। इसकी आदि नहीं है और अंत भी नहीं है, अनादि अनंत है। राउन्ड का मतलब क्या है? उसकी आदि भी नहीं होती और अंत भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : अहंकार का ही यह टकराव है, वह ठीक है लेकिन पहले तो हम स्वभाव से शुद्ध ही रहे होंगे न?

दादाश्री : शुद्ध ही है, अभी भी है।

प्रश्नकर्ता : यदि शुद्ध ही है, तो यह पूरा प्रतिष्ठित आत्मा कब से उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : अज्ञानता से। यह जानने के बाद यदि फिर से अज्ञान घुस जाए तो नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न हो जाएगा। अज्ञानता ही इगो (अहंकार) है।

नई मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है बंद, शुद्धात्मा की प्रतिष्ठा से

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा और शुद्धात्मा, इन दोनों में आपने फर्क बताया है तो आत्मा के भी प्रकार हो सकते हैं।

दादाश्री : नहीं, आत्मा के प्रकार नहीं होते। आत्मा तो शुद्धात्मा ही है लेकिन जब तक आपको रोंग बिलीफ थी कि, 'यह मैं हूँ, मैं यह चंदूभाई हूँ', लोगों ने यह रोंग बिलीफ घुसा दी थी और आप भी मान बैठे थे कि, 'मैं ही चंदूभाई हूँ।' ऐसी रोंग बिलीफ बैठने के बाद में यह दूसरी रोंग बिलीफ बैठी 'इस स्त्री का पति हूँ', फिर तीसरी रोंग बिलीफ घुसी, 'इस लड़के का मैं पिता हूँ', ऐसी कितनी रोंग बिलीफें बैठी हुई हैं?

प्रश्नकर्ता : बहुत सारी।

दादाश्री : अब, वह रोंग बिलीफ तो बैठ गई और फिर आप वर्तन भी वैसा करने लगे। प्रथम बिलीफ बैठी कि, 'मैं चंदूभाई हूँ।' फिर ऐसा मानकर ही आप काम करने लगे। यानी क्या करने लगे कि इस मूर्ति में आप, 'मैं हूँ', ऐसा मानकर प्रतिष्ठा करने लगे। इससे नई मूर्ति गढ़ती जा रही है। इससे अगले जन्म के लिए फिर से नए प्रतिष्ठित

आत्मा की प्रतिष्ठा हो रही है। आप जैसे-जैसे प्रतिष्ठा करते हो वैसे-वैसे मूर्ति बनती जाती है। अगले जन्म में फिर से प्रतिष्ठित आत्मा और 'आप', दोनों साथ में रहते हो। हम जब यहाँ पर ज्ञान देते हैं तब आपकी रोंग बिलीफ छूट जाती है और आपको शुद्धात्मा का अनुभव हो जाता है। उसके बाद आपके द्वारा नई प्रतिष्ठा होना बंद हो जाता है और पिछले जन्म का जो प्रतिष्ठित आत्मा है, वह पूरा अब इग्जॉस्ट (खत्म) होता रहता है।

यह जो प्रतिष्ठित किया हुआ है, वही आत्मा बोलता रहता है और उसमें से फिर से वापस प्रतिष्ठा करता है। अतः मूर्ति में प्रतिष्ठा करने से मूर्ति फल देती है। आत्मा में इतनी अधिक शक्ति है कि दीवार में प्रतिष्ठा करे तो दीवार भी बोले ऐसा है। हम तो शुद्धात्मा की प्रतिष्ठा करते हैं। वह प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति फल देती है तो फिर आपने अपने शरीर में जो शुद्धात्मा की प्रतिष्ठा की है, वह कैसा फल देगा! वह जड़ है और यह शरीर जीवंत मूर्ति है। यह तो अमूर्त मूर्त है। भगवान की उपस्थिति में कैसा फल देगी!

चंदूलाल रह जाता है यहाँ, 'मैं' जाता है आगे

प्रश्नकर्ता : शरीर बना हुआ है, उसके लिए ऐसा कहता है कि, 'मैं हूँ', इसलिए वह फिर से बंधन में आ जाता है?

दादाश्री : वह उसी को ऐसा कहता है कि, 'मैं हूँ'। 'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा कहता है और फिर मृत्यु के समय तो चंदूलाल खत्म हो जाता है और सिर्फ 'मैं' बचता है। यानी कि यह शरीर छूटता जा रहा है और 'मैं'पन से नया शरीर बन रहा है।

यह चंदूभाई तो प्रतिष्ठित पुरुष हैं। अनंत जन्मों से जो-जो भाव उत्पन्न करते रहे हैं, उनकी आपने प्रतिष्ठा की है। आपने अपने सर्वस्व स्वरूप की प्रतिष्ठा कर ली। पूर्व जन्म में इकट्ठे किए हुए सभी परमाणु आप सत्ता में लेकर आए और इसलिए फिर से माँ के पेट में आए। वहाँ भी प्रतिष्ठा शुरू कर दी। यह सारा प्रतिष्ठा पुरुष का जारी है।

प्रतिष्ठा किसने की? खुद ने भाव करके जो-जो परमाणु इकट्ठे किए हैं, उन्हीं से प्रतिष्ठा हो गई। और जो प्रतिष्ठा हुई है, वह बट नैचुरल (कुदरती)।

प्रश्नकर्ता : आत्मा जीव बनता है और जीव जब शरीर छोड़ता है, तो आत्मा तो अलग है, तब उस आत्मा का क्या होता है?

दादाश्री : ऐसा पूछ रहे हो न, कि आत्मा जीव बनता है, यानी कि जब जन्म हुआ तो जीव ही हुआ न, जीवात्मा हुआ न और फिर जब शरीर का त्याग करता है तब फिर से आत्मा बन जाता है? तब कहेंगे, 'नहीं'। जब तक मोक्ष नहीं हो जाता तब तक इस शरीर में आत्मा अलग ही रहता है, मूल आत्मा। और यह तो प्रतिष्ठित आत्मा है, इसकी तो प्रतिष्ठा की है, 'मैं कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ', ऐसा करके। तो यह प्रतिष्ठित आत्मा जन्म लेता है और मरता है।

पूर्व जन्म में प्रतिष्ठित आत्मा तैयार हो गया था और (अभी) फिर से उसे कहता है कि, 'मैं हूँ', तो अब फिर से अगले जन्म के लिए उसका प्रतिष्ठित आत्मा तैयार होता है।

इस प्रकार होता है जन्म-मरण, प्रतिष्ठित आत्मा का

प्रश्नकर्ता : आपने, शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा इस प्रकार से दो भाग बताए हैं तो वे एक सिक्के के दो पहलू हैं या एक ही तत्त्व के दो नाम बताए हैं?

दादाश्री : शुद्धात्मा मूल वस्तु है और जो प्रतिष्ठित आत्मा है, वह मान्यता है। रोंग मान्यता, रोंग बिलीफ से उत्पन्न हुआ पुतला। वह राइट बिलीफ से खत्म हो जाता है। प्रतिष्ठित आत्मा से यह पुतला उत्पन्न हुआ है, प्रकृति का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या इसका ऐसा अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि शुद्धात्मा ने स्व का भान भूलकर 'पर' से प्रीति की और प्रकृति में आरोपण किया तब प्रतिष्ठित आत्मा बन गया?

दादाश्री : नहीं, नहीं। शुद्धात्मा को ऐसा कुछ नहीं है। यह तो, दो वस्तुओं के साथ में रहने से व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो गए हैं; क्रोध-मान-माया-लोभ और इसी से प्रतिष्ठित आत्मा बनता है। उससे जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रतिष्ठा होने से प्रकृति बनती है और फिर प्रकृति के लिए हम ऐसा कहते हैं कि, 'मैं हूँ, मैं हूँ' उससे वापस बनती है। लेकिन जब ऐसा जान जाए कि, 'मैं खुद कौन हूँ' तब छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'मैं हूँ, मैं हूँ', वह तो चैतन्यघन परमात्मा खुद अपना भाव भूलकर दूसरे का आरोपण करते हैं, तभी वह प्रतिष्ठित आत्मा बनता है न?

दादाश्री : वह खुद के स्वभाव को नहीं भूलता, स्वभाव को नहीं भूलता। चेतन तो चेतन के स्वभाव में है, शुद्ध चेतन है। यह तो भ्रांति है। यह विशेष गुण उत्पन्न हो गया है, व्यतिरेक गुण। उसमें से सभी कुछ उत्पन्न हुआ है। मूल आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जब खुद को यह भान हो जाता है तब फिर इस प्रतिष्ठित का स्वरूप क्या रहता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, लट्टू जैसा। जैसे लट्टू घूमता है न, चेतन नहीं है फिर भी घूमता रहता है, ऐसा कब तक? जब तक उसमें स्टेमिना (टिके रहने की शक्ति) है तब तक घूमता रहेगा, फिर गिर जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपने इसे 'निश्चेतन चेतन' ऐसा नाम दिया है।

दादाश्री : हाँ। मूल चेतन, वह चेतन है और प्रतिष्ठित आत्मा में जो चेतन है, वह निश्चेतन चेतन है। वह क्या है कि जिस प्रकार बैटरी में सेल होते हैं, उसी तरह से इसमें पावर भरा हुआ है। आत्मा की जो शक्ति है, चेतन शक्ति, उसका पावर भरा हुआ है। चैतन्य नहीं भरा हुआ है, चैतन्य पावर भरा हुआ है। जब वह पूरा पावर खत्म हो जाता है तब यह खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह पावर है तो चार्जिंग बैटरी कौन सी है?

दादाश्री : वह चार्जिंग बैटरी यानी 'मैं हूँ, मैं हूँ' जब ऐसा बोलता है तो उससे चार्ज होता है। 'मैंने यह किया, मैंने यह किया', उससे चार्ज होता है और जब, 'मैं नहीं कर रहा हूँ और कौन यह कर रहा है', ऐसा जाने तब चार्ज बंद हो जाता है। इसी से चार्जिंग बैटरी उत्पन्न हो जाती है। आत्मा में कुछ भी नहीं बदलता। आत्मा वैसे का वैसा ही रहता है। उसकी उपस्थिति में 'मैं हूँ, मैं हूँ', बोलने से चार्ज हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो चार्ज नहीं होगा।

'खुद' ही चित्रकार है, चित्रित किया अगला जन्म

'जिसने' जैसे 'प्रतिष्ठित आत्मा' का चित्रण किया, वैसा ही उसका खुद का है। 'प्रतिष्ठा पुरुष' के संकल्प-विकल्प हैं। जिस प्रकार भगवान महावीर की मूर्ति में जैनों को लगता है, महावीर भगवान हैं लेकिन अन्य कितने ही लोगों को वह पत्थर लगता है। खुद 'पुरुष' होकर, मनुष्य देह में होने के बावजूद, स्त्री के आत्मा का चित्रण करता है, गधे के आत्मा का चित्रण करता है, भैंस का चित्रण करता है, कुत्ते का चित्रण करता है। जिसे जो करना हो वैसा हो जाए, ऐसा है यह जगत्। यह नौ साल का लड़का है, मेरे पैर छूता है, उसमें जो प्रतिष्ठित आत्मा है, वह अभी से धर्म का चित्रण कर रहा है।

खेत में तोरई तोड़ने जाता है और आसपास देखता है कि, 'कोई मुझे देख तो नहीं रहा है न!' उसमें यह जो भय घुसा, उस समय जो प्रतिष्ठित आत्मा का चित्रण करता है वह भय वाला आत्मा बनता है। जानवरों को निरंतर भय रहता है। तोरई तोड़ने के लिए चुपचाप घुसा, भय लगा तो उसने भय का चित्रण किया। तो वह अगले जन्म में जानवर बनता है। खुद ही यह सारा चित्रण करता है और उसी अनुसार होता है।

इस जगत् में जो भी जीव घूम रहे हैं, उनके प्रतिष्ठित आत्मा में ज़रा सा भी चेतन नहीं है। इतने लोग ऑफिस में काम करते हैं, इतना

सारा घर का काम करते हैं लेकिन उनके प्रतिष्ठित आत्मा में चेतन बिल्कुल भी है ही नहीं। यह सब चेतन के बिना चल रहा है। तब फिर प्रतिष्ठित आत्मा में कौन काम करता है? तो कहते हैं, 'आत्मा' की उपस्थिति से चल रहा है।

इस शरीर की भी उत्पत्ति होती है न, वह किसी को बनाना नहीं पड़ा है। यह सब, ब्रह्मा या विष्णु किसी ने नहीं बनाया है। यह तो 'हम' अंदर जैसा तय करते हैं न, जैसी प्रतिष्ठा करते हैं न, यह शरीर वैसा ही बन जाता है। पिछले जन्म में जो प्रतिष्ठा की थी, उससे यह शरीर है और इस जन्म में जो प्रतिष्ठा कर रहे हो, उससे अगले जन्म का शरीर है, खुद ही प्रतिष्ठा करके खुद ने ही बनाया है, यह सब। करना नहीं पड़ता कुछ भी। इतना अधिक वैज्ञानिक है कि (चार्ज प्रतिष्ठित) आत्मा जैसा भाव करता है वैसा ही शरीर बन जाता है। जड़ तत्त्व की शक्ति इतनी अधिक है कि आत्मा जैसा भाव करता है वैसा ही तैयार हो जाता है। बाहर आँखें, नाक-वाक, सभी कुछ। देखो न, हाथी जैसा हाथी भी बन जाता है न! और यदि कोई बनाने वाला होता तो सुथार-वुथार का दम निकल जाता न! पूरे हाथी में एक ही आत्मा है। अन्य सारे जीवाणु तो हैं लेकिन उसके (शरीर के) मालिक के रूप में एक ही आत्मा है।

आत्मा अक्रिय है, लेकिन उसकी उपस्थिति से 'प्रतिष्ठित' है सक्रिय

किसी भी व्यक्ति में आत्मा का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता। पूरे दिन में कभी भी व्यवहार में आत्मा का उपयोग नहीं होता। फिर से अगले जन्म के लिए आत्मा (चार्ज प्रतिष्ठित आत्मा) का उपयोग हो रहा है लेकिन इस जन्म के लिए तो आत्मा का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता। और मैंने तो आपका वह सारा चार्ज बंद कर दिया है। इसलिए आपके आत्मा का उपयोग होना बंद हो गया है, संसार हेतु के लिए। इसीलिए तो आपका आत्मा आपके पास ही रहता है, जब देखो तब। क्योंकि वहाँ पर उसका उपयोग होना ही बंद हो गया है।

और दुनिया के लिए तो जन्म से लेकर मरने तक आत्मा का उपयोग अवश्य है ही। आपके आत्मा का उपयोग उसमें होता ही नहीं है। किसमें उपयोग नहीं होता? संसार में, व्यवहार में, खाने में, पीने में, सोने में, किसी भी क्रिया में आत्मा का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता, ज़रा सा भी। सिर्फ अगले जन्म को गढ़ने के लिए ही उसका उपयोग होता है। अगला जन्म गढ़ा जा रहा है। हाँ, खुद की प्रतिष्ठा करके आत्मा खुद ही मूर्ति गढ़ता है, अगले जन्म के लिए। अपने यहाँ अब वह बंद कर दिया है, अगले जन्म की गढ़ाई। अतः हम सब में आत्मा का उपयोग होना बिल्कुल ही बंद हो गया है। इसलिए अब, हम सब निज स्वरूप में ही रह पाते हैं, ऐसा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : जब तक पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता तब तक शरीर छूटने पर दोनों आत्मा साथ में विदाई लेते हैं न?

दादाश्री : नहीं, दूसरा आत्मा है ही नहीं। वह तो हमने प्रतिष्ठित आत्मा नाम दिया है कि भाई, यह क्या है? तो वह है, 'प्रतिष्ठित आत्मा'। लोग प्रतिष्ठित आत्मा को मूल आत्मा मानकर कहते हैं 'मेरे आत्मा में यह सभी, इतने-इतने पाप हैं, उन सब को निकाल देना है।' आत्मा में पाप नहीं होते। जो प्रतिष्ठित है, वह पावर भरा हुआ पुतला है।

प्रश्नकर्ता : तो, प्रतिष्ठित आत्मा एक प्रकार की भावना का नाम है; विचारधारा का नाम है, क्या ऐसा है?

दादाश्री : नहीं, विचारधारा नहीं है, एक्ज़ेक्ट है। प्रतिष्ठा की है इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा है। 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, मैं चंदूलाल हूँ', इस तरह प्रतिष्ठा होती ही रहती है।

है एक ही, लेकिन भ्रांति से हो गए हैं दो

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी तक ऐसी समझ थी कि प्रतिष्ठित आत्मा जो है, वह रोंग बिलीफ के कारण ही है, बाकी आत्मा तो एक ही है।

दादाश्री : हाँ, एक ही है लेकिन अज्ञानता से यह दूसरा आत्मा

उत्पन्न हो गया है, इस प्रकार से दो हैं। तो फिर हम ऐसा कैसे कह सकते हैं कि एक ही है? संसार के लोग तो प्रतिष्ठित आत्मा को ही आत्मा मानते हैं और उसी को स्थिर करना चाहते हैं।

उसे मारे तो कहता है, 'मुझे मारा'। क्योंकि वह बेचारा उसी को आत्मा मानता है। प्रतिष्ठित को ही मूल आत्मा मानता है। 'प्रतिष्ठित' तो हमने कहा है, बाकी, वे लोग 'प्रतिष्ठित' नहीं कहते। 'यही मैं हूँ।' 'अरे भाई, इसके अलावा कुछ और?' तब कहता है, 'नहीं, इसके अलावा मैं और कुछ भी नहीं हूँ, मैं यही हूँ!'

लोग तो इस प्रतिष्ठित आत्मा को ही अलौकिक आत्मा मानते हैं। शुद्ध आत्मा को तो किसी से कोई लेना-देना है ही नहीं। आत्मा तो उसी जगह पर है, जैसा था वैसा ही है लेकिन बिलीफ बदल गई है। सारी रोंग बिलीफें ही बैठ गई हैं। बिलीफ बैठी तो बैठी और फिर कर्ताभाव से कि, 'मैं ही यह सब कर रहा हूँ'।

'मैं चंदू हूँ' से गया आउट, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' से वापस आ जाता है इन

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा कहने वाला भी प्रतिष्ठित आत्मा है? क्या वह प्रतिष्ठित आत्मा, ऐसी *भजना* (उस रूप होना) करता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और फिर प्रतिष्ठित आत्मा शुद्धात्मा बन जाता है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित यानी कि आपका माना हुआ आत्मा है। माना हुआ है और आपने कहा 'मैं चंदूभाई हूँ' तो वह जीवंत हो गया। अब वापस इस तरह से माना हुआ... आप, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ' करते हो न, तो वापस मूल आत्मा में चला जाता है। रोंग बिलीफ से इसमें से बाहर निकला था और राइट बिलीफ से वापस बाहर से अंदर चला जाता है, तो वहाँ पर वह खत्म हो जाता है। जब हम मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं, तब उसमें चेतन की प्रतिष्ठा करते हैं। फिर वापस ऐसा कहता कि, 'मैं ही शुद्धात्मा हूँ' तो शुद्धात्मा में चला जाता है। वह तो

सिर्फ मान्यता थी, लेकिन चेतन की ही मान्यता थी न। उसी से यह पूरी दुनिया खड़ी हो जाती है। चेतन की मान्यता से ही, सिर्फ बिलीफ बैठ गई है उसी से, ज्ञान से नहीं।

जैसे तू रात को सो गया हो और पास वाले रूम में कुछ खड़के तो तेरे मन में ऐसा होता है कि, 'क्या भूत आया?' तो फिर क्या पूरी रात तुझे नींद आएगी, अकेले को? अब वहाँ पर वास्तव में कुछ भी नहीं है लेकिन बिलीफ है, वह बिलीफ कितना कार्य करती है!

इस प्रकार से इस बिलीफ से तू इस संसार में फँस गया था तो देख न, कितना दु:खी हो गया था, नहीं? अब है दु:ख?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

[1.2]

जगत् का अधिष्ठान

जगत् का अधिष्ठान, प्रतिष्ठित आत्मा

प्रश्नकर्ता : इस जगत् का अधिष्ठान क्या है?

दादाश्री : पूरा जगत् अधिष्ठान ढूँढ रहा है लेकिन मिला नहीं। प्रतिष्ठित आत्मा इस दुनिया का सब से बड़ा अधिष्ठान है। आज दुनिया के वास्तविक अधिष्ठान का पता चला है। मूलत: दो प्रकार के अधिष्ठान हैं – एक, जो सभी के हिसाब से आत्मा है, उसका अधिष्ठान। लेकिन कौन सा आत्मा? व्यवहार आत्मा, प्रतिष्ठित आत्मा। और दूसरा अधिष्ठान है अज्ञान।

यदि प्रतिष्ठित आत्मा नहीं है तो कुछ है ही नहीं और प्रतिष्ठित आत्मा, वही अज्ञान है। वास्तव में तो अज्ञान ही है, लेकिन क्या अज्ञान कह सकते हैं? तब कहते हैं, 'नहीं, उसका आत्मा है।' अब, वही प्रतिष्ठित आत्मा है। मूल आत्मा तक लोग पहुँच सके, ऐसा नहीं है।

भगवान ने यह अधिष्ठान तो दिया हुआ था ही लेकिन, लोगों को इस अधिष्ठान को समझने में देर लगेगी, ऐसा है। वीतराग भगवान ने सभी कुछ बताया है, ऐसा नहीं है कि नहीं बताया, लेकिन लोगों को समझ में नहीं आता न! इसे समझना आसान भी नहीं है। इसलिए फिर दूसरा विकल्प करते रहते हैं कि, 'कोई है तो सही।' कोई बाप

भी नहीं है ऊपर। हरि नाम का कोई है ही नहीं इस दुनिया में, वह तो एक बिलीफ है।

अत: यह 'प्रतिष्ठित आत्मा' नामक नया शब्द दिया है, आज के ज़माने में। भगवान ने 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं कहा था। भगवान ने जो कहा, वह लोगों को समझ में नहीं आया, इसलिए हमें 'प्रतिष्ठित आत्मा' शब्द देना पड़ा। इस प्रकार से ताकि लोगों को खुद की भाषा में समझ में आ जाए और भगवान की कही हुई बात को नुकसान न पहुँचे। आपको आपकी भाषा में समझ में आना चाहिए न? समझ में नहीं आएगा तो फिर क्या करोगे?

अज्ञान से किया अधिष्ठान

प्रश्नकर्ता : उपनिषदों में अज्ञान को जगत् का अधिष्ठान कहा गया है।

दादाश्री : हाँ, अज्ञान से। वह भी सिर्फ स्वरूप का अज्ञान। ज्ञान जब विशेष ज्ञान बनता है, तो उसी को अज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में उन्होंने यह स्पष्ट बताया है कि अधिष्ठान अर्थात् जिसमें से वस्तु उत्पन्न हुई, जिसमें वह स्थिर रही और जिसमें उसका लय हो गया, वह। इस परिभाषा का अनुसरण करके जगत् के अधिष्ठान को समझना।

दादाश्री : यह उत्पन्न किसमें से हुई? तब कहते हैं, अज्ञान में से उत्पन्न हुई है यह। अत: विभाविक आत्मा, प्रतिष्ठित आत्मा में से उत्पन्न हुई है और फिर उसी में लय हो जाती है। उसी में से वापस उत्पन्न होती है और उसी में लय हो जाती है। आत्मा को इससे कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा की तो सिर्फ विभाविक दृष्टि उत्पन्न हुई है। यानी कि बिलीफ बदली हुई है। और कुछ भी नहीं बदला है। ज्ञान भी नहीं बदला है और चारित्र भी नहीं बदला है। आत्मा का चारित्र एक क्षण भर के लिए भी नहीं बदलता। नर्क में जाता है तब वहाँ भी

(मूल) आत्मा अपने खुद के चारित्र में रहता है और यह प्रतिष्ठित आत्मा उसके नर्क के चारित्र में रहता है। प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् प्रतिष्ठा की हुई वस्तु, हम मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं न? मूर्ति में की गई वह प्रतिष्ठा फल देती है, वह एक्ज़ेक्टनेस है।

स्वरूप का अज्ञान है, उसे लेकर स्वरूप में कहीं कुछ भी इधर-उधर नहीं हुआ है। तेरा 'मैं'पन बदला हुआ है। वह चाहे किसी के भी धक्के से बदला या ऐनी वे (किसी भी प्रकार से) बदला, लेकिन बदला तो है, एक्ज़ेक्ट। इसलिए जब वह 'मैं'पन अपनी मूल जगह पर सेट हो जाएगा तब फिर (काम) हो जाएगा। इसमें कुछ है ही नहीं। अस्तित्व तो है ही, लेकिन वस्तुत्व का आपको भान नहीं रहा है। अत: यदि तेरा वह भान आ जाएगा तो तू उसी रूप है। यदि आत्मा को फिर से सुधारना पड़ता तो किसी का भी नहीं हो पाता।

निमंत्रित किया है 'खुद' ने ही दुःख-सुख को

प्रतिष्ठित आत्मा इस संसार का अधिष्ठान है। तो आपका यह जो 'चंदूलाल है', उसका प्रतिष्ठित आत्मा कौन है? तब कहते हैं, 'वही, मैं चंदूलाल ही हूँ।' मूल आत्मा के रूप में वर्णन नहीं करता। 'मैं चंदूलाल हूँ, यह शरीर मेरा है, यह मेरा ये हैं, यह मेरा ऐसा है, मन मेरा है।' हम पूछें, 'अमर हो या मरने वाले हो?' तब कहता है, 'मरने वाला हूँ।' वह प्रतिष्ठित आत्मा है। 'वह' ऐसा नहीं जानता कि, 'मैं अमर हूँ।' अत: जो स्वाभाविक आत्मा है, उसे कोई लेना-देना है ही नहीं।

सब बोलता है, चलता है, शादी भी कर आता है। फिर वह विधुर भी हो जाता है। कहता है, 'मैं तो विधुर हो गया।' 'अरे भाई, विधवा हुआ है या विधुर?' तब कहता है, 'विधवा तो मेरी वाइफ होगी न! मैं तो विधुर।' ऐसा सब समझता भी है। कौन विधवा होता है, कौन विधुर होता है, सब समझता है। नहीं समझता? प्रतिष्ठित आत्मा, जो प्रतिष्ठा की हुई है, उसका फल देता है।

यह प्रतिष्ठित आत्मा तेरा ही बनाया हुआ है, 'मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसा है, वैसा है।' देखो वह 'खुद' अपनी कैसी प्रतिष्ठा कर रहा है? अक्लमंद है? बेवकूफ है?

प्रश्नकर्ता : अक्लमंद है, एकदम अक्लमंद है।

दादाश्री : और खुद के जो दु:ख हैं वे खुद ने ही बुलाए हैं। इसमें बीच में किसी का भी दखल नहीं है। तूने ही बुलाया है कि नींद नहीं आएगी तो चलेगा, लेकिन मुझे इतने डॉलर मिलने चाहिए। तो डॉलर मिल गए, लेकिन नींद नहीं आती। अब फिर यदि ऐसा कहे कि, 'नींद चाहिए', तो ऐसा नहीं चलेगा न! अब तय करो कि चिंता रहित जीवन चाहिए और मोक्ष में जाना है।

प्रतिष्ठित आत्मा का कर्तापन

प्रश्नकर्ता : तो जगत् का कर्ता प्रतिष्ठित आत्मा हुआ?

दादाश्री : यह जगत् कर्ता के बिना उत्पन्न हुआ है और इसका कर्ता भावक है। यानी कि प्रतिष्ठित आत्मा का लेना-देना है। लोग उसे 'मूल आत्मा' कहते हैं। हम प्रतिष्ठित आत्मा क्यों कहते हैं? वह इसलिए कि निमित्त के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अत: प्रतिष्ठित आत्मा निमित्त भाव से कर्ता है। जब तक संकल्प-विकल्प रूपी प्रतिष्ठित आत्मा का निमित्तपन है तब तक मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती। निमित्तपन सर्वांश रूप से चला जाए, तभी से मोक्ष है।

प्रश्नकर्ता : तो वह नैमित्तिक कर्ता हुआ न?

दादाश्री : वास्तव में वह कर्ता नहीं है, ऐसा मान बैठा है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जो कर्तापन को मानता है, वह मैं है?

दादाश्री : मान बैठा है अपने मन में कि, 'यह मैं कर रहा हूँ।' लेकिन वास्तव में, एक्ज़ेक्टली ऐसा है नहीं।

प्रश्नकर्ता : कर्तापन उसका नहीं है। वास्तव में वह कर्ता नहीं है?

दादाश्री : वास्तव में कर्ता नहीं है। वह तो ऐसा मान बैठा है कि 'यह मैं ही कर रहा हूँ।'

प्रश्नकर्ता : तो उसकी वह मान्यता छूट सकती है क्या?

दादाश्री : जैसे कि स्टेशन पर मान बैठता है। स्टेशन पर गाड़ी चलती है न, तो वह समझता है कि, 'मैं चला।' गाड़ी इस तरफ जाती है तब लगता है कि खुद उस तरफ जा रहा है। तब क्या हम नहीं समझ जाएँगे कि इसे चक्कर आ गए हैं! वह ऐसा मानता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि हर एक क्रिया में वह 'खुद' सिर्फ मानता ही है। यानी ऐसा कि देखने वाला अलग है और खुद मानता है कि, 'मैं देख रहा हूँ?'

दादाश्री : देखने वाला तो वह है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह खुद नहीं है?

दादाश्री : वह बिल्कुल अंधा ही है।

अज्ञान भाव में कहता है कि, 'मैं कर रहा हूँ', उससे प्रतिष्ठित आत्मा बनता है और प्रतिष्ठित आत्मा ही यह सब करता है। वह व्यवस्थित शक्ति के अधीन करता है।

शुद्धात्मा की सत्ता कितनी है, उसकी हद कितनी है, वह हमें पता है। प्रतिष्ठित आत्मा ने जैसा भाव किया होता है उसी अनुसार होता है, लेकिन उसकी सत्ता कितनी है, वह दुनिया के लोगों को जानना पड़ेगा। उसकी सत्ता में वह प्रतिज्ञा कर सकता है, निश्चय कर सकता है। मात्र अच्छी या खराब प्रतिज्ञा, अच्छा या बुरा निश्चय कर सकता है। उसके अलावा वह और कुछ भी नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स चेतन पर लागू होता है या अचेतन पर?

दादाश्री : मान्यता पर लागू होता है, प्रतिष्ठित आत्मा पर। इस

प्रतिष्ठित आत्मा में भी बहुत शक्तियाँ हैं। आप यहाँ पर बैठे-बैठे औरों के लिए ज़रा सा भी उल्टा सोचने लगो तब भी उसके घर पहुँच जाए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : चेतन भी व्यवस्थित के ताबे में है या सिर्फ *पुद्गल* (अहंकार) ही?

दादाश्री : संसार भाव वाला सभी कुछ व्यवस्थित के ताबे में है। मुक्त होने के बाद व्यवस्थित के ताबे में नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित पूरा ही व्यवस्थित के ताबे में है?

दादाश्री : *पुद्गल* और प्रतिष्ठित आत्मा सभी व्यवस्थित के ताबे में हैं। जब तक बंधन है तब तक व्यवस्थित के ताबे में है।

प्रतिष्ठित आत्मा, व्यवस्थित के ताबे में

प्रश्नकर्ता : व्यवस्थित शक्ति, प्रतिष्ठित आत्मा और (मूल) आत्मा, इनके बीच में क्या संबंध है?

दादाश्री : मूल आत्मा का तो किसी से कोई संबंध ही नहीं है। लेकिन इस प्रतिष्ठित आत्मा का चंदूभाई की प्रकृति से संबंध है और प्रतिष्ठित आत्मा को व्यवस्थित के अनुसार ही चलना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रतिष्ठित आत्मा को व्यवस्थित के अनुसार ही चलना पड़ता है?

दादाश्री : हाँ, और मूल आत्मा का कोई संबंध नहीं है, मूल आत्मा तो ज्ञाता-द्रष्टा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : यदि प्रतिष्ठित आत्मा व्यवस्थित के अनुसार ही कार्य करता है तो उस समय मूल आत्मा की उपस्थिति तो है ही न?

दादाश्री : उपस्थिति यानी देखता और जानता है, उसे और कोई झंझट नहीं है, उसे कोई लेना-देना नहीं है। जो (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित

आत्मा है, वह व्यवस्थित के कहे अनुसार चलता रहता है, वह व्यवस्थित के ताबे में है।

इस दुनिया को चलाने के लिए आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। (चार्ज) 'प्रतिष्ठित आत्माओं' के ये जो सारे परिणाम हैं, वे बड़े 'कम्प्यूटर' में जाते हैं। उसके बाद बाकी सभी 'एविडेन्स' इकट्ठे होने पर उस 'कम्प्यूटर' के माध्यम से बाहर आते हैं, वे रूपक में आते हैं। उसे 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं, ऑन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स!

प्रश्नकर्ता : चेतन यदि उसमें दाखिल हो जाए तभी न? तन्मयाकार हो जाए तभी न?

दादाश्री : नहीं, चेतन को दाखिल करने की, आत्मा को दाखिल करने की ज़रूरत नहीं है। मूल आत्मा को दाखिल नहीं होना है। (सिर्फ उसकी उपस्थिति ही है) जो प्रतिष्ठित आत्मा (चार्ज) है, वह पावर आत्मा कहलाता है। यह सारा उसी का दखल है।

क्रोध-मान-माया-लोभ, हैं खुद की ही प्रतिष्ठा से

प्रश्नकर्ता : तो इन क्रोध-मान-माया-लोभ को प्रतिष्ठित आत्मा ही उत्पन्न करता है?

दादाश्री : लोगों ने आप में प्रतिष्ठा की और 'आपने' भी उस प्रतिष्ठा को मान लिया। 'आपने' भी प्रतिष्ठा की कि, 'मैं चंदूभाई हूँ'। तो जब तक आपने यह प्रतिष्ठा की हुई है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ रहे हुए हैं अंदर।

'क्रोध-मान-माया-लोभ, कषायों की वृत्ति,
खुद की प्रतिष्ठा से खड़ी है मूढ़ सृष्टि।'

यानी कि क्रोध-मान-माया-लोभ की सृष्टि कब तक रहती है? 'मैं चंदूभाई हूँ और यही हूँ', जब तक ऐसा तय है तभी तक वह

रहेगी। तो जब तक इस प्रतिष्ठा में है तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं जाते। उसकी प्रतिष्ठा की वजह से ही (सृष्टि) रही हुई है।

खुद के द्वारा की गई प्रतिष्ठा कब जाती है? 'जब मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान हो जाए, यानी खुद के निज स्वरूप में आ जाए तब प्रतिष्ठा टूटती है, तब क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाते हैं, वर्ना नहीं जाते। मारते रहने पर भी नहीं जाते न, बल्कि ये चारों तो बढ़ते ही जाते हैं। एक को मारे तो दूसरा बढ़ जाता है और दूसरे को मारे तो तीसरा बढ़ जाता है।

लोग क्रोध-मान-माया-लोभ को निकालने में पूरी ज़िंदगी गुज़ार देते हैं, लेकिन उसके आधार को नहीं निकालते। उसके आधार को तो सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। लोग जब क्रोध को निकालते हैं तब मान बढ़ जाता है। उसका आधार तो है, 'मैं चंदूलाल हूँ', वही प्रतिष्ठित आत्मा है। उसे निकाल दिया इसलिए पूरा अज्ञान निराधार हो गया और संसार वृक्ष जड़ से उखड़ गया, जो कि अनंत रोगों की जड़ था। हर एक जन्म में इन्द्रियाँ भोक्ता बनती हैं लेकिन अहंकार कहता है कि 'मैंने खाया, मैंने किया'। अहंकार तो अति सूक्ष्म है, वह किस प्रकार से भोगेगा? एक तो शरीर पर आरोपण करता है कि, 'मैं चंदूलाल हूँ' और फिर अहंकार करके गर्व लेता है कि, 'मैंने इतना अच्छा काम किया', 'मुझे बहुत अच्छी ठंडक महसूस हो रही है।' वास्तव में ठंडक शरीर को मिलती है, उसे शुद्ध आत्मा नहीं भोगता है। अहंकार भी नहीं भोगता है, मात्र इगोइज़्म (अहंकार) करता है कि, 'मुझे ठंडक हो गई है, मैंने ऐसा किया।' वही सूक्ष्म भाव बनता है और वह कॉज़ल बॉडी अगले जन्म में इफेक्टिव बॉडी बनती है। बस ऐसा ही चलता रहता है।

एक प्रतिष्ठा छोड़ता है और वापस दूसरी डालता है

प्रतिष्ठा अर्थात् क्या है कि बेटे की बहू का ससुर बन बैठा है। ससुर ही कहलाएगा न, बेटे की बहू आ जाए तो? लेकिन फिर जब

दीक्षा लेता है तब यहाँ से ससुर की प्रतिष्ठा तोड़ी और वापस, 'मैं उपाध्याय हूँ या मैं साधु हूँ' की प्रतिष्ठा डाली। यह प्रतिष्ठा छोड़ी और फिर दूसरी प्रतिष्ठा की। प्रतिष्ठा तो वही की वही डाली न? यदि 'शुद्धात्मा' हो गया होता तो कोई हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसे उपाध्याय बनने की ज़रूरत नहीं थी?

दादाश्री : हाँ, वही मैं बता रहा हूँ न, कि इस एक प्रतिष्ठा को छोड़ा और दूसरी प्रतिष्ठा डाली। फिर आगे ज़रा शास्त्र पढ़ता है तब फिर साधु की प्रतिष्ठा छुड़वाते हैं और उपाध्याय की देते हैं। उपाध्याय की छुड़वाकर आचार्य की देते हैं। आचार्य की छुड़वाकर सूरी की देते हैं। लेकिन इसी प्रतिष्ठा में रहता है।

बाकी, जब तक ऐसा है कि 'मैं आचार्य महाराज हूँ' तब तक प्रतिष्ठा तो वैसी की वैसी ही है, तब तक वे क्रोध-मान-माया-लोभ रहेंगे ही, हमेशा के लिए। उसका *निकाल* (निपटारा) करना तो कहाँ गया, लेकिन नया उत्पन्न करता है। *निकाल* का सारा सामान तो है ही उसके पास। लेकिन नया व्यापार जारी ही है, राग-द्वेष का व्यापार जारी ही है। राग भी बहुत कमाता है और द्वेष भी कमाता है।

इस आत्मा में से ही प्रतिष्ठा की है, इसीलिए दूसरा इमिटेशन आत्मा उत्पन्न हो गया है। यह चंदूभाई प्रतिष्ठित आत्मा है। मुख्य प्रतिष्ठा में मूल वस्तु नहीं है लेकिन, कंट्रोलर साथ बैठा हुआ है, इसीलिए जब अच्छा लगे तो 'यस' और अच्छा नहीं लगे तब 'नो' कहता है।

प्रश्नकर्ता : मूल आत्मा मोक्ष में है?

दादाश्री : मूल आत्मा मोक्ष में ही है। मूल आत्मा के अलावा जो ये सारे (काम) करता है, ये कौन करता है? ये प्रतिष्ठित आत्मा करता है। इसी को '*पुद्गल*' कहते हैं। ये लोग क्या करते हैं कि 'मैं ही आचार्य हूँ', ऐसा कहते रहते हैं, वे खुद की प्रतिष्ठा करते हैं। वह किसमें करते हैं? *पुद्गल* में। उसी से प्रतिष्ठित आत्मा ज़िंदगी भर काम

करता रहता है। एक जन्म के लिए अगर प्रतिष्ठा करना बंद कर दे तो नया चार्ज नहीं होगा।

'प्रत्यक्ष' ज्ञानी ही हकीकत प्रकाशमान करते हैं

अब, ऐसी बात पुस्तकों में तो लिखी हुई होती नहीं, तो फिर इंसान बदलेगा कैसे? पुस्तक में लिखा हुआ तो कैसा होता है कि कढ़ी में मिर्ची, नमक, हल्दी, गुड़ सबकुछ डालना। लेकिन किस-किस चीज़ को किस तरह से उसके अनुपात में लेना है, ऐसा तो नहीं होता है और इसलिए वास्तव में उसे ये चीज़ें समझ में नहीं आती न! यानी कि इस प्रतिष्ठित आत्मा को ही यह पूरा जगत् आत्मा मान बैठा है और उसे स्थिर करना चाहता है। और वह भी गलत चीज़ नहीं है, स्थिर तो करना ही चाहिए। उसे स्थिर करने से आनंद होता है। जितने समय तक यह प्रतिष्ठित आत्मा स्थिर रहता है, रात को नींद में तो स्थिर हो जाता है लेकिन दिन में भी जितने समय तक स्थिर रहे, उतने समय तक उसे आनंद होता है। लेकिन वह आनंद कैसा है कि स्थिरता टूटते ही वापस जैसा था वैसे का वैसा ही हो जाता है। अब, अगर साथ ही वह ऐसा समझे कि मूल आत्मा तो स्थिर ही है तो 'खुद' एडजस्टमेन्ट ले सकेगा। लेकिन मूल आत्मा की बात का लोगों को पता ही नहीं है। इस प्रतिष्ठित आत्मा को ही 'आत्मा' स्वीकार किया गया है लेकिन वास्तव में 'यह' आत्मा नहीं है। प्रतिष्ठित आत्मा *पुद्गल* है, उसमें चेतन है ही नहीं।

जो स्वभाव से चंचल है, वह अचल कैसे हो सकेगा?

देखो न, ये साधु लोग कितना त्याग-तप करते हैं! 'साहब, तप क्यों करते हो?' तब वे बताते हैं कि, 'आत्मा को जानने के लिए।' अरे, आत्मा वैसा नहीं है। यह तो चंचल को अचल करने जा रहे हो! नहीं, ऐसा कभी भी, किसी भी काल में नहीं हो सकेगा। जो स्वभाव से ही चंचल है, और यह तो प्रतिष्ठित आत्मा है।

क्रमिक मार्ग में तो स्थूल में से कम करते-करते प्रतिष्ठित आत्मा

को 'आत्मा' जानकर ढूँढा है, जो चंचल है उसी को आत्मा माना है। लेकिन भाई! यह प्रतिष्ठित आत्मा तो इस पूरी चंचल मशीनरी का हेड है। पूरी ही दुनिया ने इस चंचल भाग को ही आत्मा माना है और कहा है। अयथार्थ आत्मा को 'आत्मा' कहा है, लेकिन सिर्फ केवलज्ञानियों ने ही यथार्थ आत्मा को 'आत्मा' स्वरूप कहा है और हमने भी आपको उसी यथार्थ आत्मा का निर्णय करवा दिया है। बाहर तो सभी चंचल भाग को ही 'आत्मा' मानते हैं। लेकिन उसमें चेतन का एक भी गुण नहीं है और लोग उसी को चेतन मानकर चल रहे हैं। लेकिन उसमें चेतन का स्वरूप नहीं है और जब मशीनरी बंद हो जाती है तब कहता है 'बाहर निकालो-निकालो'। तब यों ही कह देते हैं, 'आत्मा चला गया।' लेकिन चंचल भाग को ही चेतन आत्मा मानते हैं। चेतन का एक भी गुण चंचल भाग में नहीं है।

जगत् को जो दिखाई देता है, वह निश्चेतन चेतन है, लोग तो उसे 'चेतन' कहते हैं। वह जो 'निश्चेतन चेतन' है, उसी को कहते हैं प्रतिष्ठित आत्मा। कोई साधु चंचल भाग कम करते-करते आगे बढ़े तो अंत में अचल भाग यानी कि 'आत्मा' प्राप्त करेगा। लेकिन ये तो चंचल भाग में ही आत्मा ढूँढते हैं तो कहाँ से मिलेगा? चंचल वस्तु में आत्मा नहीं होता।

क्रमिक में प्रतिष्ठित आत्मा को माना गया है, आत्मा

शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि कषाय वे हैं जो आत्मा को पीड़ित करते हैं! अब, वह कौन सा आत्मा है, वह बात बतानी रह गई। कही तो है, लेकिन वह एक खास तरीके से कही है। उसका इन लोगों को पता नहीं चलता, और भूल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे सब लोग जिसे आत्मा कहते थे, वह प्रतिष्ठित आत्मा को कहते थे?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा को आत्मा मान रहे थे। रोंग बिलीफ का उन्हें पता ही नहीं है।

प्रतिष्ठित को ही 'आत्मा' कहा गया है। इसलिए, इसमें मूल आत्मा तो एक तरफ ही रह गया। और निंदा करते हैं आत्मा की, और मानते हैं कि यही आत्मा है। कहते हैं, 'निंदा करना आत्मा की', हं... तब फिर कहते हैं, 'हाँ, मेरा आत्मा पापी है इसलिए निंदा करनी पड़ती है।'

'मेरा आत्मा पापी है', ऐसा कहते हैं। अरे, क्या अड़ोस-पड़ोस की निंदा कम कर रहा था कि अब आत्मा की निंदा कर रहा है? आत्मा की निंदा कैसे कर सकते हैं? वह आत्मा पापी है, तो कौन सा आत्मा है, उसका इन लोगों को भान नहीं है। ऐसा याद रखना चाहिए कि यह व्यवहार आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) पापी है।

'मेरा आत्मा पापी है', यानी, ऐसा कहने वाले का आत्मा पापी है और वह खुद तो साफ ही है, ऐसा अर्थ हुआ! ऐसा अर्थ लोगों को समझ में नहीं आता। एक बार दोष देखना बंद कर दे तो फिर वे दिखाई नहीं देंगे, भले ही बिल्कुल खुला दोष हो। भगवान ने कहा क्या है और कर क्या रहा है? जो यह भरकर लाया है, वह प्रतिष्ठित आत्मा पापी है, उसका उसे भान ही नहीं है और जो भगवान स्वरूप है, उस आत्मा को पापी कहता है और नर्क के दौने बाँधता है। फिर कभी ऐसा भी कहता है कि, 'मेरा आत्मा महावीर भगवान जैसा है।' अरे! यह कैसा?

शास्त्रों में व्यवहार आत्मा लिखा हुआ है, लेकिन ये लोग व्यवहार आत्मा को भूलकर शुद्धात्मा से चिपक पड़े हैं और शुद्धात्मा पर आरोपण करने लगे हैं। तब फिर वह शुद्धात्मा कहता है कि, 'ले फिर तू भुगत!' लेकिन ऐसा नहीं है, व्यवहार आत्मा ही प्रतिष्ठित आत्मा है। तूने जो प्रतिष्ठा की हुई है, उन सभी को प्रतिष्ठित आत्मा भुगतता है। शुद्धात्मा तो परमानंदी है।

प्रश्नकर्ता : क्या व्यवहारिक आत्मा ही प्रतिष्ठित आत्मा है?

दादाश्री : हाँ, हमने 'प्रतिष्ठित आत्मा' नाम दिया है। बाकी, यों

तो लोगों ने इसे 'व्यवहारिक आत्मा' कहा है। जिसे तू अभी आत्मा मान रहा है, वह आत्मा व्यवहारिक आत्मा है, ऐसा बताया है। लेकिन 'व्यवहारिक आत्मा' में क्या होता है? लोगों को समझ में नहीं आता। इसे फिर से बनाने वाले भी आप ही हो क्योंकि प्रतिष्ठा करते हो। 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं चंदूलाल हूँ', करते रहोगे, 'मैं चंदूलाल ही हूँ', ऐसा करोगे तो फिर से आपका (प्रतिष्ठित) आत्मा बनेगा, नई प्रतिष्ठा हो रही है। पिछले जन्म की प्रतिष्ठा की *निर्जरा* होती रहती है और नई प्रतिष्ठा का बंधन होता है।

व्यवहार आत्मा समझाया, 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहकर

इस क्रमिक मार्ग में सभी, हम जिसे 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहते हैं, उसे वे 'व्यवहार' आत्मा कहते हैं। व्यवहार आत्मा को ही आत्मा मान बैठे हैं, और कहते हैं, 'इसी को स्थिर करना है और इसी को कर्म रहित बनाना है।' और वे ऐसा मानते हैं, 'आत्मा कर्म से बंधा हुआ है और यही आत्मा है।' नहीं, वह आत्मा नहीं है, आत्मा तो कर्म से मुक्त ही है। सिर्फ 'तुझे' उसका भान (पता) नहीं है। तुझे इसका भान होने की ज़रूरत है। हम क्या कहना चाहते हैं? 'तुझे' यह भान नहीं हुआ है, 'तुझे' यह भ्रांति है। जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ तू आरोपण करता है कि यह आत्मा है। अतः 'तू' आत्मा को जान। फिर यह सब मुक्त ही है। वर्ना करोड़ों जन्मों तक भी तेरा अज्ञान जाएगा नहीं।

जो सुख भोगता है वह भी अहंकार है, दुःख भोगता है वह भी अहंकार है। शुद्धात्मा अलग ही है। जिसे अहंकार कहा जाता है न, वह प्रतिष्ठित आत्मा है, बाकी, ऐसे तो तीर्थंकरों ने उसे 'व्यवहार आत्मा' कहा है। अभी तक भगवान महावीर ने व्यवहार से, 'व्यवहार आत्मा' कहा था, वह व्यवहार आत्मा लोगों को समझ में नहीं आया और उल्टा समझ बैठे। अतः मुझे इसे प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् पावर चेतन कहना पड़ा। पावर चेतन अर्थात् जब पावर खत्म हो जाएगा तो वह खत्म हो जाएगा। और वह खुद ही नया

पावर चेतन उत्पन्न करता है। प्रतिष्ठा करता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ', (चार्ज अहंकार) वह खुद ही अपनी मूर्तिमय प्रतिष्ठा करता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', (निर्‌अहंकार) वह अमूर्त की प्रतिष्ठा है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहकर किसकी प्रतिष्ठा करता है? अमूर्त की। यानी कि अब मूर्ति नहीं है, मैं अमूर्त हूँ। और ये मूर्ति की प्रतिष्ठा करते हैं और अगले जन्म वह मूर्ति मिलती है। मूर्ति की भक्ति की जाती है, मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है इसलिए अगले जन्म में मूर्ति ही बनती है।

क्रमिक मार्ग में, 'प्रतिष्ठित आत्मा ही मेरा आत्मा है', ऐसा मानकर एक-एक परमाणु को कम करते-करते आगे बढ़ते हैं। उन्हें मोह के एक-एक परमाणु को कम करके आगे जाना होता है। पच्चीस प्रकार के मोह हैं, पच्चीस प्रकार के मोह चार्ज होते हैं और पच्चीस प्रकार के मोह डिस्चार्ज होते हैं। वह फिर नियम से डिस्चार्ज तो होगा ही और फिर उसके साथ ही साथ चार्ज भी होगा। डिस्चार्ज होता है और फिर चार्ज होता रहता है। अपना, अक्रम में चार्ज होना बंद हो जाता है, सिर्फ डिस्चार्ज बचता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा है कि,

'समता, रमता, ऊरधता, ज्ञायकता, सुखभास,

वेदकता, चैतन्यता, वह सब जीव विलास', यह समझाइए।

दादाश्री : क्रमिक मार्ग प्रतिष्ठित आत्मा को 'आत्मा' कहता है। हम मूल आत्मा को 'आत्मा' कहते हैं। मूल आत्मा में वेदकता नहीं होती। क्योंकि दोनों के कहने की दृष्टि में अंतर है। वे सही कहते हैं कि उसमें (प्रतिष्ठित आत्मा में) वेदकता होती ही है। यह, उसके गुण विलास, ऐसा लिखा है न, तो ऐसा कहते हैं कि इसमें इतने गुण होते हैं। वेदकता का वह गुण प्रतिष्ठित आत्मा में है। इसलिए हमने ऐसा कहा है न, कि अहंकार में यानी कि प्रतिष्ठित आत्मा कहो या अहंकार कहो, जो कहो, वह सब एक ही है।

मूल आत्मा रह गया एक तरफ, प्रतिष्ठित को पकड़ता है क्रमिक

जब नापसंद चीज़ आए तब द्वेष करता है, लेकिन वह कौन सा आत्मा है? प्रतिष्ठित आत्मा (चार्ज)। अक्रम के सिवा इस काल में मूल आत्मा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। अब, क्रमिक मार्ग में प्रतिष्ठित आत्मा को वीतराग बनाना है। हाँ, भावना कर-करके और हर एक जन्म में भावना को बदलते रहना है, भावकर्म से भावना बदलती है, ऐसे करते-करते-करते वीतराग बनते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में प्रतिष्ठित आत्मा को वीतराग बनाना चाहते हैं, और अक्रम में?

दादाश्री : अक्रम में तो हमने आपको ज्ञान दिया है न, तो आप खुद वही हो गए हो। इन सब का *निकाल* कर दो अब।

प्रश्नकर्ता : वास्तविक स्वरूप का भान हो जाए तो नई प्रतिष्ठा होना बंद हो जाता है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठा होना बंद हो जाता है। प्रतिष्ठा होना बंद हो जाए तो उसके बाद फिर बचा ही क्या? तो कहते हैं, (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा।

पहले जो प्रतिष्ठा करके आया है, उससे यह शरीर बना। अब नई प्रतिष्ठा नहीं करता है। 'मैं यह शरीर हूँ', ऐसी प्रतिष्ठा बंद हो गई। 'यह मेरा है', वह प्रतिष्ठा बंद हो गई।

आत्मा-परमात्मा की बात कभी हुई ही नहीं है। आत्मा और *पुद्गल* संबंध की बातें हुई हैं। उस आत्मा शब्द में प्रतिष्ठित आत्मा की ही बात होती है। मूल आत्मा की बात किसी भी जगह पर हुई ही नहीं है। कोई बोला ही नहीं है न! 'यही चेतन है', ऐसा कहा है।

मूल आत्मा को जानते ही नहीं हैं और क्या हकीकत बताना चाहते हैं कि, 'यह जो है, वही शुद्ध होना चाहिए, और फिर उसके

शुद्ध होते ही मोक्ष है।' और कहते हैं कि, 'इसी को शुद्ध करो, प्रतिष्ठित आत्मा को।' तो कब अंत आएगा? संख्या में भूल है तो जवाब कैसे आएगा? इसीलिए कहते हैं, दस लाख सालों में तुरंत इस तरह मक्खन से बना घी हाथ में दे देते हैं। घी को तपा लेना होता है, और वह भी खुद को नहीं तपाना पड़ता, आज्ञापूर्वक रख दिया कि बन गया घी।

कषायाधीन आत्मा - आत्माधीन कषाय

क्रमिक मार्ग में कषायाधीन आत्मा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है और यह आत्माधीन कषाय, वह शुद्धात्मा है और परमात्मा, उसे कषाय रहित आत्मा कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : यानी आत्माधीन कषाय समझ में नहीं आया।

दादाश्री : आपके सभी कषाय आपके अधीन हैं यानी कि आप संयम में आए हो। कषाय आपके अधीन हैं और क्रमिक में वे कषाय के अधीन हैं, उनमें कोई संयम नहीं होता। पूरा जगत् कषायाधीन है, आत्मा के अधीन नहीं है और संयम में आए कि वे आत्माधीन हो जाते हैं।

प्रतिष्ठित आत्मा साधक, मूल आत्मा साध्य

प्रश्नकर्ता : अब निश्चय का साधक आत्मा है और साधन भी आत्मा है और साध्य भी आत्मा है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। आत्मा के लिए साधन और साधक नहीं होते। उसे साधक बनाएँ न, तो वह आत्मा है ही नहीं। यदि व्यवहार आत्मा के लिए मानना हो न, यह जो प्रतिष्ठित आत्मा है, यदि उसे साधक कहना हो तो कहा जा सकता है। लेकिन मूल आत्मा तो साधक नहीं है, परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा की ही बात है।

दादाश्री : हाँ, ठीक है, प्रतिष्ठित आत्मा।

प्रश्नकर्ता : उसमें तो फिर मूल आत्मा साध्य है न?

दादाश्री : हाँ, यानी मूल पद खुद का है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अलग हुआ न?

दादाश्री : अलग ही है, है ही अलग। शब्द भी अलग है और रूप भी अलग है। नहीं बताया कि सुथार के लिए साधन क्या हैं? तो कहते हैं, 'फरसा और बाँस उसके साधन हैं', और साध्य क्या है? तो कहते हैं, 'मूर्ति बनाना।' उसी तरह यह प्रतिष्ठित आत्मा खुद ही खुद को गढ़ता है, मूल आत्मा के साथ रहकर।

प्रश्नकर्ता : लेकिन है अलग चीज़!

दादाश्री : अलग ही है। अलग नहीं है तो साधक नहीं बनेगा। जो साधक बनता है, वह अलग ही है।

प्रश्नकर्ता : वर्ना साधक बनने की ज़रूरत ही कहाँ है?

दादाश्री : साधक अर्थात् प्रैक्टिशनर (अभ्यास करने वाला)।

शास्त्रों की बात, समझाते हैं प्रत्यक्ष ज्ञानी

यह पज़ल है लेकिन नियम सहित पज़ल है, नियम के विरुद्ध नहीं है। बिल्कुल नियम वाली पज़ल है। फिर भी लोगों को लगता ही है न, कि उल्टा हो रहा है! उल्टा नहीं हो रहा है, सीधा ही हो रहा है।

यह मेरी खोज है। हम खुद देखकर बता रहे हैं। यह शास्त्र में नहीं लिखा है। शास्त्रों में तो इसे (प्रतिष्ठित आत्मा को) सुधारने को कहा गया है। 'सुधारते रहो', ऐसा कहा गया है। तो कोई पद्धति तो होनी चाहिए न? सुधारने की पद्धति होती है न? शास्त्रों में जो पद्धति बताई गई है, वह लोगों की समझ में नहीं आया, बहुत सूक्ष्म प्रकार से बताई गई है। लेकिन वह तो शब्दों से बताई गई है न? यानी कि

शब्दों से बताया गया है कि, 'मुंबई जाओगे तो मुबंई में ऐसा है। वहाँ पर जुहू का किनारा ऐसा है, वैसा है', लेकिन शब्दों से। उससे आपको क्या लाभ हुआ? तो शास्त्र क्या बताते हैं? शब्दों से बताते हैं। लेकिन वह अनुभव से नहीं है न? शास्त्रों में अनुभव से नहीं लिखा जा सकता न! अत: 'ज्ञानी पुरुष' की उपस्थिति के बिना, इसकी बिल्कुल भी स्पष्टता नहीं हो सकती।

[1.3]

ज्ञान के बाद जो शेष बचा, वह है प्रतिष्ठित आत्मा

व्यवहार आत्मा करता है चार्ज, प्रतिष्ठित आत्मा है डिस्चार्ज

प्रश्नकर्ता : दादा, ज्ञान मिलने के बाद, हमें इस प्रतिष्ठित आत्मा को किस तरह से समझना है?

दादाश्री : वास्तव में प्रतिष्ठित आत्मा तो, ज्ञान मिलने के बाद जो बाकी बचता है, वह है। लेकिन तब तक प्रतिष्ठित आत्मा नहीं कहा जा सकता, तब तक व्यवहारिक आत्मा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता में व्यवहार आत्मा और प्रतिष्ठित आत्मा को एक ही बताया है आपने?

दादाश्री : हाँ, अज्ञानता में वह एक ही है।

भावसत्ता नहीं है डिस्चार्ज प्रतिष्ठित में

प्रश्नकर्ता : जो चार्ज करने वाला भावमन है, वही प्रतिष्ठित आत्मा है?

दादाश्री : वास्तव में वह प्रतिष्ठित आत्मा नहीं है। भावमन से नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है और द्रव्यमन, वास्तव में वह (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा है। द्रव्यमन अर्थात् डिस्चार्ज मन और

भावमन अर्थात् चार्ज मन। अब चार्ज तो, यदि अहंकार होगा तभी होगा न? अपने अंदर अज्ञान होगा तभी चार्ज होगा न? अर्थात् पूरे जगत् को, जिन्हें यह ज्ञान नहीं मिला हो, तो उनमें भावमन होता है, जिससे उन्हें चार्ज होता ही रहता है। वह चाहे कितने भी प्रयत्न करे, लेकिन चार्ज होगा ही। आपको अब चार्ज नहीं होता है और अगर चार्ज होता है तो एक जन्म के लिए ही, हमारी आज्ञा (पालन करते हो), उतना ही।

प्रश्नकर्ता : तो भावमन से नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा ही। उसकी भावमन से ही शुरुआत होती है। भाव यानी कि स्थापित करना, अस्तित्व स्थापित करना। जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ पर अस्तित्व को स्थापित करना। भावमन से नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है और द्रव्यमन अर्थात् डिस्चार्ज होता हुआ प्रतिष्ठित आत्मा। अहंकार हो, तभी चार्ज होता है।

प्रश्नकर्ता : तो ये सारे भाव प्रतिष्ठित आत्मा नहीं करता?

दादाश्री : वास्तव में (डिस्चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा भाव करता ही नहीं है और शुद्धात्मा भी भाव नहीं करता। यह तो, जो ऐसा मानता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वह (कारण) व्यवहार आत्मा भाव करता है। प्रतिष्ठित आत्मा तो भाव से ही उत्पन्न हुआ है और यदि भाव नहीं होते तो वह प्रतिष्ठित आत्मा होता ही नहीं।

अक्रम की है देन, प्रतिष्ठित आत्मा

प्रश्नकर्ता : ये जो शुभ-अशुभ भाव होते हैं न, वे किसे होते हैं? प्रतिष्ठित आत्मा को?

दादाश्री : ऐसा है कि जब प्रतिष्ठित आत्मा शुभ और अशुभ भाव करता है तब वह प्रतिष्ठित आत्मा नहीं माना जाता, उस क्षण वह 'व्यवहार आत्मा' माना जाता है। प्रतिष्ठित आत्मा तो स्वरूप ज्ञान मिलने के बाद में जो बाकी रहा, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। देह में जो 'मैं'पन

की प्रतिष्ठा की थी, उस प्रतिष्ठा का फल रहा हुआ है। स्वरूप ज्ञान से पहले प्रतिष्ठित आत्मा नहीं कहा जा सकता, व्यवहार आत्मा कहा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, भावसत्ता किसकी है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा के पास भावसत्ता नहीं होती। भावसत्ता होती तो वह प्रतिष्ठित आत्मा कहलाता ही नहीं। अत: क्रमिक में 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं कहा जा सकता। अक्रम में जो बाकी बचा, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। ज्ञान प्राप्त होने के बाद में जो बाकी बचा, जो *निकाली* है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। हाँ, जिसका *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : और क्रमिक मार्ग में क्या कहलाता है?

दादाश्री : तब तक अहंकार खुद, वहाँ पर व्यवहार आत्मा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग, अक्रम से अलग क्यों है?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में तो ठेठ तक अहंकार रहता है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी कुछ भाव तो करना पड़ेगा न?

दादाश्री : फिर क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : फिर भाव नहीं करना पड़ेगा?

दादाश्री : फिर कैसा भाव? रहा ही नहीं। भाव को ही निकाल दिया। इसीलिए तो आपको यह अक्रम ज्ञान हुआ। क्रमिक अर्थात् भावसत्ता। भाव की सत्ता को हटाते रहे, भावसत्ता अर्थात् भ्रांति वाली सत्ता, उसे हटाते रहना, वही कहलाता है क्रमिक। इसमें तो भावसत्ता को उड़ा दिया है। इस अक्रम की सिद्धि विक्रम तक पहुँची हुई है। क्योंकि भावसत्ता पूरी ही उड़ा दी है, एकदम से!

प्रश्नकर्ता : भावातीत है, भाव से अतीत है।

दादाश्री : भावातीत बना दिया।

प्रश्नकर्ता : यानी अक्रम मार्ग के लिए यह एक नया शब्द दिया है आपने।

दादाश्री : हाँ। प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् 'खुद' ने जो प्रतिष्ठा की है, यह वह आत्मा है। मूर्ति में जैसी प्रतिष्ठा करते हैं, मूर्ति वैसा ही फल देती है। उसी प्रकार से इसमें भी प्रतिष्ठा करते हैं तो फल देती रहती है। 'मैं चंदूभाई, चंदूभाई', प्रतिष्ठा करते रहते हो तो अगले जन्म की मूर्ति बनती है। उसमें वह भावसत्ता घुसी तो फिर वह छूटेगी नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा, प्रतिष्ठित आत्मा वाली टर्मिनोलॉजी (परिभाषा) तो इस अक्रम में ही आई है न? यह शास्त्रों में कहीं भी नहीं है।

दादाश्री : यह किसी भी जगह पर नहीं हो सकती। यह तो अपने अक्रम का है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अगर क्रमिक के साथ हम मेल बैठाने जाएँ तो मेल नहीं बैठता। इसका तो यों पूरा ही अलग कम्पोज़िशन (संरचना) है।

दादाश्री : हाँ, इसका कम्पोज़िशन अलग है। अन्य कहीं पर प्रतिष्ठित आत्मा शब्द है ही नहीं। वह तो यहाँ अपने अक्रम में ही है।

अत: वास्तव में (डिस्चार्ज होता हुआ) प्रतिष्ठित आत्मा सभी में नहीं होता। यह प्रतिष्ठित आत्मा तो जिन्हें हमने ज्ञान दिया है न, उन्हीं में जो फिर बाकी रहा, वह है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद में जो आत्मा बचा, जिसका *निकाल* करना है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है और बाहर के लोगों में तो मूढ़ आत्मा है। प्रतिष्ठित आत्मा, वह मूढ़ आत्मा है, बहिर्मुखी आत्मा कहलाता है। मूढ़ अर्थात् जो इन भौतिक सुखों में ही, इन विनाशी सुखों में ही सुख मान बैठा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। साधु

हो, सन्यासी हो लेकिन जब तक ज्ञान प्राप्ति नहीं होती तब तक भौतिक सुखों में सुख मानता है और फिर शास्त्रों में सुख मानता है, वह भी भौतिक सुख कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा और आरोपित आत्मा में क्या अंतर है?

दादाश्री : आरोपित आत्मा (वही व्यवहार आत्मा है) यानी कि यह समझाने के लिए कि, 'भाई, जहाँ तू नहीं है वहाँ तूने यह आरोपण किया है, यह (बिलीफ वाला) आरोपित आत्मा है।' और आरोपण करने के बाद जब स्थिर होता है, (वर्तन में आता है) तब प्रतिष्ठित आत्मा कहलाता है। तब तक वह प्रतिष्ठित आत्मा नहीं कहलाता। हमारे समझाने पर वह आरोपितपन खत्म भी हो सकता है। प्रतिष्ठित आत्मा बनने से पहले खत्म भी हो सकता है। जब वह स्थिर होकर शांत हो जाता है तब प्रतिष्ठित आत्मा बनता है, अगले जन्म में फल देने के लिए तैयार हो जाए, तब।

जब तक हमें ज्ञान नहीं हो जाता तब तक हम आरोपित आत्मा में रहते हैं। जहाँ पर किसी भी चीज़ का सिर्फ आरोपण ही किया होता है। उस समय जिसे-जिसे भी हमने आत्मारूपी माना, उससे प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। इस देह में, 'मैं हूँ', अभी ऐसा कहने से अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठा हो जाती है और, 'इस देह में मैं हूँ, मैं यह देह हूँ', ऐसी मान्यता खत्म हो जाए तो अगले जन्म के लिए प्रतिष्ठा खत्म हो जाएगी। उसके बाद प्रतिष्ठा नहीं होगी। वर्ना प्रतिष्ठित (आत्मा) फल देकर और फिर नई प्रतिष्ठा करके जाता है। प्रतिष्ठा में से प्रतिष्ठा, उसमें से प्रतिष्ठा। आत्मा तो वैसे का वैसा ही है, तीनों काल में वैसे का वैसा ही है, लेकिन प्रतिष्ठा हो जाती है। अब आप में वह प्रतिष्ठा बंद हो गई है, आप सब को ज्ञान दिया है इसलिए। अब आप ड्रामेटिक ऐसा कहते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। नाटकीय बोलते हो न? अब तो आपको यही भान रहता है न, कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

जो पुराना प्रतिष्ठित आत्मा है, वह नए प्रतिष्ठित आत्मा को उत्पन्न

करता है। यह चंदूभाई पुराना प्रतिष्ठित आत्मा है। अब वह कहता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो उससे प्रतिष्ठा बंद हो गई। अपने यहाँ व्यवहार आत्मा (शब्द) को हटाकर प्रतिष्ठित आत्मा (शब्द) देते हैं। 'व्यवहार आत्मा' शब्द से उनके समझने में फर्क आ जाता है, भूल हो जाती है। और हमने जैसा है वैसा ही बता दिया है, जैसी प्रतिष्ठा करता है, वैसा ही प्रतिष्ठित आत्मा बनता जाता है। बाद में फिर वह फल देता है।

प्रतिष्ठित आत्मा की पूँजी और स्थान

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा में क्या-क्या आता है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा में सभी चीज़ें आ गईं। पाँच इन्द्रियाँ, दिमाग़-विमाग़, अंतःकरण, नाम-वाम, सबकुछ आ जाता है उसमें। सूक्ष्म शरीर (तेजस शरीर, इलेक्ट्रिकल बॉडी) नहीं आता।

प्रतिष्ठित आत्मा तो बहुत बड़ा है। उसमें सिर्फ अंतःकरण ही नहीं है, उसे चलाने वाला, चंचलता उत्पन्न करने वाले कई हैं।

अक्ल भी प्रतिष्ठित आत्मा की है और बेवकूफी भी प्रतिष्ठित आत्मा की है। जो सुनता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है, आँखों से जो दिखाई देता, वह प्रतिष्ठित आत्मा है और पाँच इन्द्रियों से जो अनुभव करता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। प्रतिष्ठित आत्मा जो कुछ भी जानता है, उसे शुद्धात्मा जानता है। जो इन्द्रियगम्य ज्ञान है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है और अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : शरीर में प्रतिष्ठित आत्मा का कोई स्थान है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा तालु में है और वहीं पर बैठे-बैठे सारा काम करता है।

वाणी, प्रतिष्ठित आत्मा के भाव में से

यह तेरे साथ कौन बात कर रहा है? क्या तूने कहीं सुना है कि अंदर ऐसा ओरिजनल टेपरिकॉर्डर है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : यह नई बात है। नहीं? तू बोलकर फटाफट फेंकता रहता है, वह जो टेप तैयार हो चुकी है, उसमें से इस तरह बोलता जाता है। इसका मूल कारण तो आत्मा ही है। लेकिन मूल आत्मा नहीं, आत्मा की रोंग बिलीफ, प्रतिष्ठित आत्मा है। उसका मूल कारण क्या है कि वह भाव करता है। भाव अर्थात् संज्ञा!

प्रश्नकर्ता : संज्ञा प्रतिष्ठित आत्मा की?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा की। संज्ञा, कि यह मुझे पसंद नहीं है या पसंद है, दोनों में से एक। वह शब्दों में नहीं बोलता। संज्ञा से कोडवर्ड उत्पन्न हो जाता है, कोडवर्ड में से शॉर्टहैन्ड बनता है और शॉर्टहैन्ड में से यहाँ पर इस तरह होते-होते वह सारी मशीनरी में से होते हुए इस प्रकार से शब्दों के रूप में निकलता है। ऐसा है यह टेपरिकॉर्डर। यह मेरी खोज है, अक्रम विज्ञान की।

प्रश्नकर्ता : मौलिक है!

दादाश्री : हाँ, मौलिक है।

प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव

प्रतिष्ठित आत्मा के बारे में कैसा है, यदि सौ लोगों को रेती में सुलाया जाए तो सभी को एक सरीखा नहीं लगेगा। कोमल व्यक्ति को अलग लगेगा और कठोर को अलग।

प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव कैसा है? वह जैसा देखता है वैसा ही करता है, उसे सिखाना नहीं पड़ता। इसलिए सही पुरुष का, उच्च लोगों का संग होना चाहिए और यदि खराब लोगों का संग होगा तो राक्षसी विचार आएँगे।

प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव यह है कि वह *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना) रखता है। कुछ भी लेना-देना नहीं हो फिर भी *नोंध* रखता है।

शुद्धात्मा में किसी भी प्रकार का भाव ही नहीं है। भाव तो, प्रतिष्ठित आत्मा के भाव को भाव कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो कुछ भी प्रश्न और समस्याएँ आती हैं, वे प्रतिष्ठित आत्मा के ही हैं न?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा का ही है सब। प्रकृति को ही प्रतिष्ठित आत्मा कहते हैं। हम सिर्फ प्रकृति को ही (प्रतिष्ठित आत्मा) कहते हैं, तो ठीक से समझ में नहीं आता। अत: शुद्धात्मा के अलावा बाकी सारा ही प्रतिष्ठित आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : जब शंका होती है तब, वह शंका प्रतिष्ठित आत्मा की है, ऐसा समझना चाहिए? शंका होती है तो क्या वह प्रतिष्ठित आत्मा का काम है?

दादाश्री : शंका होती ही नहीं है इसमें। मूल आत्मा को शंका होती ही नहीं है। और प्रतिष्ठित आत्मा तो शंकालु ही है न!

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा, शुद्धात्मा के प्रति शंका रखता है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय अर्थात् प्रतिष्ठित का अहंकार ही है न?

दादाश्री : हाँ। आत्मा के अलावा बाकी सब मशीनरी ही है। शुद्धात्मा तो है लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा का जैसा अभिप्राय बना है, उसी अनुसार मशीनरी चलेगी।

कोई व्यक्ति मोटर में बैठे तो खुश हो जाता है, कोई परेशान हो जाता है और कोई परेशान भी नहीं होता और उसे आनंद भी नहीं आता। जिसे आनंद हुआ, उस प्रतिष्ठित आत्मा ने उतना स्वाद चखा। इन सब में कुछ भी करने योग्य नहीं है, सिर्फ देखना है। प्रकृति का जितना हिसाब है उतना ही सामने आएगा। लेकिन उसमें एकाकार नहीं होना है।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए कहा है न,

जीवतो-मरतो कोई नथी, ज्ञानीओनी भाषामां,

प्रतिष्ठित आत्मा जीवे-मरे, भ्रांतिरसना सांधामां।

(ज्ञानियों की भाषा में कोई भी जीता या मरता नहीं है, सिर्फ भ्रांतिरस में ही प्रतिष्ठित आत्मा जीता और मरता है।)

दादाश्री : ज्ञानी की भाषा में कोई भी जीता या मरता नहीं है।

अरे, दोषित ही नहीं है न! मुझे कोई दोषित नहीं दिखाई देता। दोषित है ही नहीं। दोषित तो विभक्त अवस्था को लेकर है, विभाजित अवस्था को लेकर, भेद स्वरूप को लेकर है। भेदबुद्धि से दोषित दिखाई देते हैं।

ज्ञान के बाद पिघलता रहता है प्रतिष्ठित

प्रश्नकर्ता : ज्ञान मिलने के बाद प्रतिष्ठित आत्मा की क्या दशा हो जाती है?

दादाश्री : ज्ञान मिलने के बाद यह प्रतिष्ठित आत्मा बर्फ की तरह पिघलता रहता है। और फिर जितनी शुद्धात्मा की प्रतीति रहेगी, वह प्रफुल्लित होकर, एक-दो जन्म में पूर्ण रूप से पिघल जाएगा।

अज्ञान अवस्था में जो मोह डिस्चार्ज होता है तब फिर से चार्ज भी करते हैं। उससे वह प्रतिष्ठित बनता रहता है। चार्ज होता है, इसलिए प्रतिष्ठा होती है। लेकिन ज्ञान मिलने के बाद डिस्चार्ज हो जाता है और फिर उस समय वह चार्ज नहीं करता। अतः (नया) प्रतिष्ठित (आत्मा) नहीं बनता। जो प्रतिष्ठित हो गया है, वह निकलता जाता है और नई प्रतिष्ठा नहीं करता है।

यदि ज्ञान नहीं हो तो पुरानी प्रतिष्ठा फल देती है और फिर से नई प्रतिष्ठा करती जाती है और उससे अगले जन्म तैयार होते हैं। और अब आप में प्रतिष्ठा होना बंद हो गया है और 'मैं चंदूभाई हूँ' चला

गया है व 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वही *लक्ष* (जागृति) रहता है। अतः नई प्रतिष्ठा होनी बंद हो गई। जिसे अलख का *लक्ष* बैठ गया, उसका काम हो गया! फिर भी व्यवहार में इसका फादर, इसका पति, वह तो *लक्ष* में रहता है न! खुद लक्ष्मीचंद है और भर्तृहरि का ड्रामा कर रहा हो तो फिर क्या अपने आपको भूल जाता है कि वह लक्ष्मीचंद है? नहीं भूलता।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आपने यह ज्ञान दिया, उसके बाद से इस प्रतिष्ठित आत्मा का पूरा प्रोसेस ही खत्म कर दिया या नहीं?

दादाश्री : खत्म कर दिया है या दाखिल किया?

प्रश्नकर्ता : अब नया प्रतिष्ठित आत्मा नहीं बनेगा न, दादाजी?

दादाश्री : नहीं बनेगा। हाँ-हाँ! नया उत्पन्न नहीं होने देगा, ठीक है। प्रतिष्ठित आत्मा अर्थात् मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ, तो इस जन्म में तीनों ही बैटरियाँ खाली हो जाएँगी। यानी कि डिस्चार्ज होती रहेंगी, नई चार्ज नहीं होंगी।

हम चार्ज बंद करवा देते हैं इसलिए प्रतिष्ठा बंद हो जाती है। उससे नया संसार खड़ा होना बंद हो गया। अब जो कुछ है उसका *निकाल* कर देंगे। वह *निकाल* होने के लिए ही आया है और उसका *निकाल* करना है। यह जो मृत अहंकार है, वह उसमें दखल करता है तो वह बिगड़ जाता है, वर्ना वह तो अपने आप *निकाल* होने के लिए ही आया है।

सहज रूप से डिस्चार्ज होता जाएगा, यदि नहीं देंगे दखल तो

प्रश्नकर्ता : तो दादा, प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में जो अलग हुआ है, उसमें यदि किसी भी प्रकार का दखल नहीं दिया जाए, तो वह अपने आप ही डिस्चार्ज होता जाएगा, उसका *गलन* हो जाएगा?

दादाश्री : वह तो अपने आप ही सहज रूप से छूटता है, यह

उसमें दखल करता है। पिछला अहंकार दखल करता है। मृत अहंकार दखल करता है और उस मृत अहंकार को बुद्धि प्रोत्साहित करती है। यह बुद्धि उसे परेशान करती है, वर्ना सहज भाव से डिस्चार्ज होता ही जाता है।

प्रतिष्ठित आत्मा की वजह से आपके ज्ञान में यह सब था कि 'मैं चंदूभाई हूँ' और 'इसका फादर हूँ' तभी तक प्रतिष्ठा कहलाती है। लेकिन वह प्रतिष्ठा आपने छोड़ दी है कि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ' और 'चंदूभाई' तो सिर्फ मेरे पिछले कर्म का पुराना फोटो ही है। उसे भुगतना है। वह दंड है मेरा, गुनहगारी है। इस गुनहगारी को भुगतना है। बाकी, मैं वास्तव में चंदूभाई नहीं हूँ। प्रतिष्ठा करोगे, तभी यह (प्रतिष्ठित आत्मा) खड़ा रहेगा, लेकिन 'मैं शुद्धात्मा' हो गए तो प्रतिष्ठा टूट जाएगी। तब फिर वह सब अपने आप ही एक-एक करके विदा होने लगेंगे। विदा तो वे हो ही गए हैं लेकिन यह तो, पिछली जो गुनहगारी है न, उसका *निकाल* करने में टाइम जाता है सारा। हाँ, वह गुनहगारी है, 'इनके साथ ऐसी झंझट की, इन्हें परेशान किया, इसे ऐसे गिराकर आ गया, इसे डाँटा', ये सब हिसाब चुकाने में ही सारा टाइम चला जाता है। अपनी प्रतिष्ठा तो पूरी ही चली गई है, अब वह मूढ़ सृष्टि पूरी ही चली गई है। लेकिन अब इसके *निकाल* के लिए झंझट में रहना पड़ता है।

शुद्धात्मा तो हो गए हो, दादा ने वह पद दे दिया है। 'अब *निकाल* करो', ऐसा कहा है। अब सारा समय *निकाल* करने में बीतता है। *निकाल* तो, अपनी गुनहगारी का क्या कोई और करके देगा?

प्रश्नकर्ता : गुनहगारी लिखवाई है इसलिए वह *निकाल* तो हमें ही करना पड़ेगा।

दादाश्री : वह आपको करना पड़ेगा न! और शायद अगर आपको *निकाल* करना नहीं आए तो ज्ञानी पुरुष से पूछ लेना कि साहब, यह किस प्रकार से है? तो वे रास्ता बताएँगे, चाबियाँ बताएँगे कि

किस तरह से *निकाल* करना है इसका। लेकिन *निकाल* करना है। और कुछ भी काम बाकी नहीं बचा है अब।

अब आप 'फाइलों का *निकाल*' करो। वे फाइलें 'प्रतिष्ठित आत्मा' की हैं। वह अपनी गुनहगारी है। क्योंकि 'हमने' अज्ञानभाव से यह सब खड़ा किया है!

आज्ञापालन नहीं करता है प्रतिष्ठित

आपके प्रतीति में है और *लक्ष* में है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। अनुभव में थोड़ा-बहुत है लेकिन वैसे हो नहीं गए हो। वैसा बनने के लिए, पाँच आज्ञा का पालन करने पर ही वैसे बन पाओगे। इसलिए अब करने को कुछ बाकी नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : आज्ञापालन कौन करता है, प्रतिष्ठित आत्मा पालन करता है न?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा के लिए आज्ञापालन करने का प्रश्न ही कहाँ है, इसमें? यह तो, आपको जिन आज्ञाओं का पालन करना है, वह तो, आपका जो प्रज्ञा स्वभाव है, वह आपसे सब करवाता है। आत्मा की प्रज्ञा नामक शक्ति है, वह। तो फिर और कुछ कहाँ रहा? बीच में कोई दखल ही नहीं है किसी का। वह आज्ञापालन अज्ञाशक्ति नहीं करने देती, वह यह प्रज्ञाशक्ति करने देती है।

अपने इस सामायिक-प्रतिक्रमण में प्रतिष्ठित आत्मा बिल्कुल है ही नहीं। ये साधु-सन्यासी जो कि प्रतिष्ठित आत्मा में ही हैं, वे 'यह' कैसे कर सकेंगे? इसमें तो शुद्धात्मा, यानी प्रज्ञा का ही काम है। प्रतिष्ठित आत्मा इसमें है ही नहीं।

मोक्ष में ले जाने की सारी क्रियाएँ प्रज्ञा करती है, जो भेद डलवाते हैं, वे (बुद्धि) अविश्वसनीय हैं और जो तन्मयाकार होता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है।

ज्ञानी का प्रतिष्ठित आत्मा कैसा होता है?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप में भी प्रतिष्ठित आत्मा है क्या?

दादाश्री : है न। प्रतिष्ठित आत्मा के बिना तो शरीर जी ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : आपका प्रतिष्ठित आत्मा कैसा है?

दादाश्री : ज्ञानियों का प्रतिष्ठित आत्मा भक्ति में है और ज्ञान, ज्ञान में है। 'खुद' शुद्धात्मा में रहते हैं और प्रतिष्ठित आत्मा से उनके खुद के शुद्धात्मा की और दादा की भक्ति करवाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपके और हमारे प्रतिष्ठित आत्मा में क्या अंतर है?

दादाश्री : कोई भी अंतर नहीं है। आप में अज्ञानता थी इसलिए उसकी वजह से चंचलता है। हमारे अंदर नाम मात्र को भी चंचलता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हमारे और आपके प्रतिष्ठित आत्मा में कोई समानता है या कुछ अलग है?

दादाश्री : *भोगवटे* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) में फर्क है।

प्रश्नकर्ता : क्या फर्क है?

दादाश्री : यह आत्मा फर्स्ट क्लास में बैठा है, जबकि वह थर्ड क्लास में बैठा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : धक्के खाने हैं हमें!

दादाश्री : धक्के खाने हैं। गाड़ी से उतरने पर फिर सब का एक जैसा।

प्रश्नकर्ता : चलेगा दादा, तो हर्ज नहीं है। पहुँचेंगे तो सही न? थर्ड क्लास में ही सही, लेकिन पहुँचाएगी तो सही न?

दादाश्री : गाड़ी यानी जो कभी भी पहुँचाए बगैर रहती ही नहीं। उसी को गाड़ी कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा! जो बैठे हुए होंगे, उन्हीं को पहुँचाएगी लेकिन बैठने में और रिज़र्वेशन में अंतर है?

दादाश्री : उसका तो अनुभव करके देख लेना न!

ज्ञानी पर नहीं होता है असर प्रतिष्ठित का

उठने के बाद में शरीर गरम-गरम हो गया और ज्ञानी आत्मा ने देखा और जाना। प्रतिष्ठित आत्मा को अच्छा नहीं लगता। बाकी, हम जानते हैं कि जो हुआ है, वह व्यवस्थित है। ज्ञानी आत्मा स्वाभाविक आत्मा है। वह सिर्फ जानता है, *शाता* (सुख-परिणाम) को भी जानता है और *अशाता* (दुःख-परिणाम) को भी जानता है कि वह कम है या ज़्यादा है। प्रतिष्ठित आत्मा (सूक्ष्मतर अहंकार) *शाता-अशाता* का वेदन करता है। *अशाता* को डिस्लाइक करता है (पसंद नहीं आता) और *शाता* को लाइक करता है (पसंद आता है)। लेकिन ज्ञानी को कषाय नहीं होते। हमारी देह कभी ही कोई शिकायत करती है।

हमारे शब्दों से किसी के मन पर ज़रा सा भी गड्ढा नहीं पड़ता। गड्ढा का मतलब समझे न आप? बर्तन इस तरफ से कहीं टकरा जाए तो क्या होता है? गड्ढा पड़ जाता है। इन लोगों का जो क्रोध है, उससे तो वह बर्तन जल जाता है और हम से तो गड्ढा भी नहीं पड़ता। बिना गड्ढे के होता है, डाँटें-करें फिर भी। प्रतिष्ठित आत्मा अंदर एकाकार हो जाता है और इसीलिए कुरूप लगता है। (सूक्ष्मतर अहंकार) प्रतिष्ठित आत्मा भी एकाकार नहीं होना चाहिए। तब कुरूप नहीं लगेगा न! तब फिर यह सामने वाले को कुरूप कैसे लगेंगे? यानी वीतरागों की यह कैसी खोज है! उसकी अद्भुतता देखकर हमें वह (आश्चर्य) होता है। नहीं?

बन जाए 'खुद' वीतराग तो बनता है 'प्रतिष्ठित' वीतराग

प्रश्नकर्ता : यह सारी प्रतिष्ठित आत्मा की झंझट है न?

दादाश्री : झंझट उसी की है, और कोई झंझट नहीं है। यह आत्मा तो वीतराग ही है। यों भी वीतराग ही है। वह यदि अपने स्वभाव को पहचान जाए तो वह खुद वीतराग ही है। झंझट तो इस प्रतिष्ठित आत्मा की है।

प्रश्नकर्ता : इस प्रतिष्ठित को वीतराग बनाना है, यही झंझट है।

दादाश्री : उसे वीतराग बनाना है, वही झंझट है। अगर 'आप' वीतराग बन जाओगे तो फिर इसे वीतराग होने में देर नहीं लगेगी। जब तक आपकी वीतरागता रुकी हुई है तब तक उसका भी रुका हुआ है। वह आपकी ही परछाई है। अगर आप ऐसे करोगे तो वह भी ऐसे करेगा। यदि आप ऐसा करना बंद कर दोगे तो वह बंद कर देगा।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रतिष्ठित आत्मा भी वीतराग बन सकता है?

दादाश्री : वह पावर आत्मा है। वीतरागता के गुण उसमें आ जाते हैं। वास्तव में वह वीतराग है नहीं। वीतरागता का पावर आता है। महावीर भगवान में था न!

प्रश्नकर्ता : उसे वीतराग बनाने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : 'प्रतिष्ठित आत्मा' मूल आत्मा का प्रतिनिधि है। इसीलिए, दोष 'प्रतिष्ठित आत्मा' करता है और पहुँचता है मूल आत्मा को!

प्रश्नकर्ता : तो दादा, क्या हमें वापस 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' कहकर, उसे साफ कर देना है न?

दादाश्री : नहीं, वह तो चला गया न! सारा साफ हो गया। और जो प्रतिष्ठित आत्मा था, वह इस प्रतिष्ठा का फल देगा। उसे हमें देखते रहना है कि यह क्या फल दे रहा है। यदि चंदूभाई डिप्रेस हो

जाएँ तो आप दर्पण के सामने ले जाकर, उनका कंधा थपथपा देना कि भाई, आप घबराना मत, हम हैं न आपके साथ!

प्रश्नकर्ता : लेकिन नई प्रतिष्ठा तो बंद कर दी है न?

दादाश्री : वह तो बंद हो गई।

प्रश्नकर्ता : और वह जो पुराना है, वह!

दादाश्री : अब सिर्फ पाँच आज्ञापालन करने जितनी प्रतिष्ठा होती है। उससे तो निरे पुण्यानुबंधी पुण्य का बंधन होता है। 'आप' आज्ञा पालन करते हो न, वह मूल आत्मा नहीं करता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : आज्ञा का पालन करने से एक-दो जन्मों के लिए पुण्य बंधता है। उससे तो तीर्थंकरों के पास में बैठे रहने को मिलेगा। कोई मुश्किल नहीं है लेकिन इतना पकड़े रखना है, इतना ध्यान रखना है। बाकी और कुछ नहीं करना है। खाना-पीना सभी कुछ है लेकिन यदि इस स्मृति की (ज्ञान, आज्ञा की) विस्मृति नहीं होगी, तो ऐसा उल्टा समझ में नहीं आएगा।

प्रतिष्ठित से डील करो ऐसे

प्रश्नकर्ता : ऐसा लगता है कि प्रतिष्ठित आत्मा, शुद्धात्मा पर आवरण ला देता है तो क्या यह बात सही है? तो इसका निवारण क्या है? हमने दादा जैसे प्रकट ज्ञानी से पूछे बिना माल भरा था तो वह एकदम से निकल जाएगा या नहीं? शुद्धात्मा अनुभव करने की तीव्र इच्छा होने के बावजूद भी अंतराय आते हैं। उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : माल एकदम से निकल जाएगा तो फिर करोगे क्या? अंतराय तो उपकारी हैं। 'अंतराय आए हैं' ऐसा जाने तो वही जागृति है। शुद्धात्मा में रहकर समभाव से *निकाल* करना है। जो कुछ भी हो

रहा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा कर रहा है। उसे खुद अपने ऊपर नहीं ले लेना है, यही उपाय है। एक साँप को सौ बार शुद्धात्मा की दृष्टि से देखें तो साँप भी नहीं काटेगा।

निश्चय करने के बावजूद भी कमज़ोर पड़ जाओ तो बार-बार निश्चय करना चाहिए। लेकिन, 'मुझसे यह नहीं होता। इस तरह से 'नहीं होता', ऐसा बोलना ही नहीं चाहिए। ऐसा बोलने से तो आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) छिन्न-भिन्न हो जाता है।

अब तो जो भी बचा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। अब प्रतिष्ठित को ज़रा पुश देना पड़ेगा, शक्ति देनी पड़ेगी। आपको बुलवाना है कि 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' तो चल पड़ेगा। पाँच-सात बार ऐसा होने पर श्रद्धा बैठ जाएगी। जैसे-जैसे प्रतिष्ठित अहंकार कम होता जाएगा वैसे-वैसे प्रतिष्ठित (आत्मा का) वीर्य बढ़ता जाएगा।

आत्मशक्तियों को तो आत्मवीर्य कहा जाता है। जिनमें आत्मवीर्य कम होता है वे तप जाते हैं, वह कमज़ोरी है। अहंकार के कारण आत्मवीर्य टूट जाता है। जैसे-जैसे अहंकार विलय होता जाएगा वैसे-वैसे आत्मवीर्य उत्पन्न होता जाएगा। यदि तप जाए तो वीर्य कम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दो आत्मा हैं; प्रतिष्ठित आत्मा और संपूर्ण शुद्ध आत्मा। प्रतिष्ठित आत्मा के सद्गुण व दुर्गुण इन्द्रियों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं और जो शुद्धात्मा है, उसके तो कोई अंग ही नहीं हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं तो फिर उसके गुण किस तरह से व्यक्त होते हैं?

दादाश्री : व्यक्त ही हैं, यदि आवरण हट जाएँ तो। आवरण हटाने हैं। यानी यदि यह प्रतिष्ठित आत्मा बढ़े नहीं (विलय होता जाए) तो वह व्यक्त ही है। दीया तो है ही लेकिन खुद को आवरण हटाने हैं।

प्रतिक्रमण करने वाला, प्रतिष्ठित आत्मा

हमें तो अगर पूर्णाहुति करनी हो तो दो भाग रखने चाहिए। एक

फाइल भाग, प्रतिष्ठित आत्मा और दूसरा मूल भाग, शुद्धात्मा। फाइलों के भूल वाले भाग की वजह से विचार आते हैं, उनके ज्ञाता-द्रष्टा रहना। तो दोनों भागों में यथार्थ रूप से रह पाओगे और यदि उस तरह से नहीं रह पाते तो फाइल को, हो चुकी भूलों के प्रतिक्रमण करने के लिए कह देना चाहिए। मूल भाग के लिए तो प्रतिक्रमण होते ही नहीं हैं।

'क्रोध नहीं करना है हमें', ऐसा कहने वाला भी प्रतिष्ठित आत्मा है। हम देखने और जानने वाले हैं। क्रोध हुआ, ऐसा जाना तो फिर हम ज्ञाता-द्रष्टा हैं। प्रतिष्ठित आत्मा से प्रतिक्रमण करवाना है, तद्रूप-एकाकार होकर नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अतिक्रमण भी वही करता है इसलिए प्रतिक्रमण उसी से करवाने हैं।

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा (अतिक्रमण) करता है और प्रतिष्ठित आत्मा को ही (प्रतिक्रमण) करना है।

राग-द्वेष हैं, प्रतिष्ठित आत्मा के

व्यवहार को देखना और जानना, वह शुद्धात्मा है और जो राग-द्वेष करता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। पत्नी भाग जाए, उसे भी जानना है और शादी करके पत्नी को लाए, उसे भी जानना है। वर्ना फिर भी लोग क्या कर लेंगे? दोनों ही स्थितियाँ आत्मा की स्थितियाँ नहीं हैं, *पुद्गल* की स्थितियाँ हैं। आत्मा तो बस देखता और जानता ही रहता है। आत्मा को इस संसार से कोई लेना भी नहीं है और देना भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसमें उपयोग किसके हैं, शुद्धात्मा के या प्रतिष्ठित आत्मा के?

दादाश्री : तीन उपयोग (शुभ, अशुभ और अशुद्ध) प्रतिष्ठित आत्मा के हैं और शुद्ध उपयोग, वह शुद्धात्मा का, और वह भी वास्तव में प्रज्ञा का है।

प्रतिष्ठित ज्ञेय, शुद्धात्मा ज्ञाता

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा भी देखता और जानता है और शुद्धात्मा भी, तो फिर दोनों के देखने में फर्क क्या है?

दादाश्री : 'शुद्धात्मा' स्व-पर प्रकाशक है जबकि प्रतिष्ठित आत्मा पर प्रकाशक है। 'शुद्धात्मा' प्रतिष्ठित आत्मा को भी देखता है और जानता है। इसीलिए प्रतिष्ठित आत्मा ज्ञेय है। पूरा जगत् ज्ञेय को ज्ञाता मानता है, लेकिन ज्ञेय व ज्ञाता अलग हैं। शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा के बीच मात्र ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध है।

शुद्धात्मा सभी कुछ जानता है जबकि प्रतिष्ठित आत्मा लिमिटेड (मर्यादित) जानता है। प्रतिष्ठित आत्मा, वह भरी (चार्ज की) हुई शक्ति है, उसका *गलन* होता रहता है। आखिर में प्रतिष्ठित आत्मा और शुद्धात्मा दोनों एक साथ ही अलग होंगे।

मन जो पैम्फलेट दिखाता है, उसे प्रतिष्ठित आत्मा पढ़ सकता है और फिर इन सब का मूल ज्ञाता-द्रष्टा तो शुद्धात्मा ही है न! अज्ञानी व्यक्ति भी प्रतिष्ठित आत्मा को मन से अलग करके योगबल से, कुछ शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है।

जहाँ प्रतिष्ठित आत्मा का कार्य है, वहाँ ज्ञेय-ज्ञाता संबंध है ही नहीं। 'यह मेरा' और 'यह मैं', वह विकारी है। अग्नि देखे तो जल ही जाता है, वह विकारी संबंध है इसीलिए जल जाता है। 'यह मैं हूँ भी नहीं' और 'मेरा नहीं है', वह निर्विकारी संबंध है।

ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंद के अलावा सभी भाव प्रतिष्ठित के हैं। प्रतिष्ठित आत्मा का ज्ञाता-द्रष्टापन सीमा सहित है और शुद्ध का ज्ञाता-द्रष्टापन असीम है, स्वतंत्र है।

प्रतिष्ठित आत्मा, सामने वाले के प्रतिष्ठित आत्मा को देखता है और शुद्धात्मा, वह शुद्धात्मा को देखता और जानता है।

सब से अच्छा ज्ञाता-द्रष्टापन आप अपने प्रतिष्ठित आत्मा के प्रति

रखना। आपका चित्रित किया हुआ, आपका बनाया हुआ प्रतिष्ठित आत्मा, वह देखने योग्य है। यह अलग किया हुआ, प्रतिष्ठित आत्मा ज्ञेयरूपी हो गया है, आप उसके ज्ञाता रहना।

प्रश्नकर्ता : जब आत्मा ज्ञायक स्वभाव में रहता है तब फिर प्रतिष्ठित आत्मा जैसी कोई चीज़ रहती ही नहीं है न?

दादाश्री : फिर रहा ही नहीं न कोई। ज्ञायक स्वभाव रहा इसलिए परमात्मा हो गया। फिर कुछ बाकी रहता ही नहीं न! और अगर शरीर है तो भले ही रहे। भगवान की उपस्थिति में शरीर था ही न! संपूर्ण ज्ञायकभाव तो केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जब शुद्धात्मा ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहता है, उस समय प्रतिष्ठित आत्मा क्या कर रहा होता है? उसकी क्रियाएँ क्या होती हैं? क्या उस समय उसका अस्तित्व रहता है?

दादाश्री : वह जो प्रतिष्ठित आत्मा है, उसकी जो अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, वे अवस्थाएँ पर्यायांतरित होती रहती हैं और शुद्धात्मा जो खुद ज्ञायक है, वह इन सभी अवस्थाओं को निहारता है। जो प्रकृति को निहारता है, वह शुद्धात्मा है और यह प्रकृति प्रतिष्ठित आत्मा है। यानी कि प्रकृति को देखना है। अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं है। यह शुद्धात्मा, प्रकृति को निहारता है कि ये मन, बुद्धि वगैरह क्या कर रहे हैं? उन्हें देखता रहता है। वह खुद ज्ञायक स्वभाव में रहता है और यह ज्ञेय स्वभाव में रहता है।

हमें तो मूल चेतन को पहचानकर, मूल चेतन में रहकर, इसका निबेड़ा लाना है। खुद के मूल चेतन में नहीं रहने की वजह से यह खड़ा हो गया है। अब हमें मूल चेतन में रहकर इसका *निकाल* कर देना है। और कुछ भी नहीं करना है।

यह जो शुद्धात्मा है न, जब उसे शुद्धात्मा नहीं बोलना पड़ेगा तब वह भगवान बन जाएगा और जब तक बोलना पड़ता है तब तक कमी है।

प्रश्नकर्ता : तो दोनों का पद एक ही है? शुद्धात्मा पद और भगवान का पद?

दादाश्री : एक ही, एक ही, कोई अंतर नहीं है।

जहाँ अहंकार वहाँ स्वाध्याय, यहाँ पर तो ज्ञाता-द्रष्टा

प्रश्नकर्ता : दादा ने ज्ञान दिया, उसके बाद से प्रतिष्ठित आत्मा अलग हो गया। अब उस प्रतिष्ठित आत्मा में, ये जो डिस्चार्ज अहंकार और मान, बुद्धि वगैरह सब हैं। अब, 'डिस्चार्ज में यह चढ़ा, यह बढ़ा और यह कम हुआ, यह आया'। अब, इन सब को देखता है। वह खुद की इस किताब का जो अध्ययन करता है, उसे स्वाध्याय कहा जा सकता है या नहीं कहा जा सकता?

दादाश्री : नहीं, इसे स्वाध्याय नहीं कह सकते। यह तो ज्ञाता-द्रष्टापन कहलाता है। इसे तो टॉपमोस्ट कहा जाता है, आत्मरमणता कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। क्योंकि यहाँ पर अध्ययन करने वाला गैरहाज़िर है। यहाँ पर अध्ययन करने वाला कोई नहीं है।

दादाश्री : यहाँ पर अध्ययन है ही नहीं। अध्ययन तो अहंकार सहित होता है। या फिर पूरा अहंकार नहीं हो और सीमित अहंकार हो, उपशम हो चुका अहंकार, तब भी वह स्वाध्याय कहलाता है। जहाँ पर अहंकार रहितता है, वहाँ पर स्वाध्याय नहीं है। स्वाध्याय, किसका स्वाध्याय? स्व तो देखता है, फिर उसका अध्ययन कौन करेगा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब इस स्वाध्याय का प्रश्न पूछा तभी हमें यह खुलासा हुआ।

दादाश्री : स्वाध्याय तो बाहर क्रमिक मार्ग में होता है। यहाँ स्वाध्याय शब्द है ही नहीं, यहाँ पर तो ज्ञाता-द्रष्टापन है। 'यह अहंकार बढ़ा, कम हुआ, ऐसा हुआ, वैसा हुआ, पागलपन कर रहा है', आपको

ऐसा लगे तब भी वह ज्ञाता-द्रष्टापन कहलाता है। अब तक वह बाहर ही देख रहा था, ज्ञाता-द्रष्टापन बाहर था उसका। तो अब वह कहाँ देखने लगा? सूक्ष्मातीत भेद को देखने लगा।

अंतिम सलाम! संज्ञा-संज्ञी को

हम तो ये चले मोक्ष में...

अब संज्ञा-संज्ञी को सलाम। हमारा संज्ञी आत्मा अर्थात् प्रतिष्ठित आत्मा। अब प्रतिष्ठा होनी बंद हो गई है। अब दादा की लिफ्ट तो चल पड़ी। हमें संज्ञा भी नहीं चाहिए और संज्ञी भी नहीं चाहिए।

[2]

व्यवहार आत्मा

माना हुआ आत्मा ही व्यवहार आत्मा है

प्रश्नकर्ता : दादा, शास्त्रों में व्यवहार आत्मा का उल्लेख किया गया है तो व्यवहार आत्मा वास्तव में क्या है?

दादाश्री : आप ऐसा मानते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वही व्यवहार आत्मा (सूक्ष्मतम अहंकार) है। वह वास्तविक आत्मा नहीं है। यानी कि एक तो वह, जो व्यवहार में बरतने वाला आत्मा है, और दूसरा जो व्यवहार में नहीं बरतता है, वह मूल आत्मा है। यह व्यवहार में बरतने वाला आत्मा 'चंदू' नामधारण करके घूम रहा है। व्यवहार में लोग आपको इस आत्मा से पहचानते हैं।

अत: व्यवहार आत्मा, वह उनके (लोगों) द्वारा माना हुआ आत्मा है। उन्होंने जिसे आत्मा माना है वह, वह आत्मा है जो उनमें प्रकट हो गया है, और जिसमें वे स्थिरता से रह सकते हैं। वह और कोई फल नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : तो जो आत्मा भौतिक पदार्थों में सहज रूप से लोभायमान हो जाता है, वह कौन सा है?

दादाश्री : अनंत शक्ति वाला आत्मा है। भौतिक पदार्थों में जो

लोभायमान हो जाता है, वह आत्मा अनंत शक्ति वाला नहीं है। अनंत शक्ति वाला तो आपका मूल आत्मा है और यह जो लोभायमान हो जाता है, वह व्यवहार आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : देह के अंदर आत्मा अलग है या बंधा हुआ है?

दादाश्री : अलग ही है, बंधा हुआ नहीं है। व्यवहार आत्मा बंधा हुआ है और वास्तविक आत्मा बंधा हुआ नहीं है। व्यवहार में आप जिसका उपयोग करते हो, वह बंधा हुआ है।

और जिसे आप आत्मा कहते हो न, जगत् के लोग कहते हैं, वह व्यवहारिक आत्मा है। व्यवहार आत्मा, वास्तविक आत्मा नहीं है। व्यवहार आत्मा और निश्चय आत्मा, इस प्रकार से दो हैं। इनमें से निश्चय आत्मा रियल है, एक्ज़ेक्टली है, शुद्ध ही है और व्यवहार आत्मा कर्म सहित है।

दिखाई दिया दर्पण में व्यवहार आत्मा

प्रश्नकर्ता : तो निश्चय आत्मा और व्यवहार आत्मा दोनों अलग हैं?

दादाश्री : मूल आत्मा, निश्चय आत्मा है, उसमें कोई बदलाव नहीं है। निश्चय आत्मा जैसा है वैसा ही है और उसमें से व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है। जिस प्रकार से हम यदि दर्पण के सामने जाएँ तो दो चंदूभाई दिखाई देते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दो दिखाई देते हैं।

दादाश्री : जिस प्रकार दर्पण के पास जाने से तू बाहर भी दिखाई देता है और अंदर चंदूभाई भी दिखाई देता है। दिखाई देते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देते हैं, अलग हैं।

दादाश्री : क्या अलग है?

प्रश्नकर्ता : देखने वाला यहाँ बाहर है, दर्पण में नहीं।

दादाश्री : तू ऐसा कहेगा तो वह भी ऐसा कहेगा। किसकी बात को सही मानें?

प्रश्नकर्ता : वहाँ भी देखता ही है न दर्पण में, वह भी मैं देखता हूँ।

दादाश्री : वह ठीक है। यह जो बाहर है, वह कौन सा आत्मा है? वह निश्चय आत्मा है। निश्चय आत्मा पर आवरण नहीं चढ़ा है और व्यवहार आत्मा वह है जो दर्पण में दिखाई देता है। और वह अपनी भूमिका अदा कर रहा है और इसमें तुझे 'मैंपन' है, मैं कर रहा हूँ, ऐसा है और इसीलिए यह सब खड़ा हो गया है। तो इस प्रकार से अलग हैं। जिस प्रकार तुझे वह दिखाई देता है न? भले ही हैं एक ही। व्यवहार आत्मा अर्थात् जिसकी वृत्तियाँ व्यवहार में डूबी हुई हैं, ऐसा आत्मा। इसलिए अहंकार उत्पन्न हो गया। 'मैं कर रहा हूँ और यह मेरा है', ऐसा भान उत्पन्न हो गया। 'मैं चंदूभाई हूँ और यह मेरा शरीर है' और 'यही आत्मा है और यही मेरा शरीर है', और शरीर को ही आत्मा मानता है। इस देह में आत्मबुद्धि है कि 'यह मैं हूँ।' देह में आत्मबुद्धि को ही भ्रांति कहते हैं। अतः यह भ्रांति वाला आत्मा है, माना हुआ आत्मा है, यह सिर्फ अहंकार है। अहंकार चला जाए तो वापस मूल आत्मा बन जाएगा। यह भ्रांति वाला आत्मा लेपायमान वाला है। यह आत्मा, लेपित हो जाए ऐसा है, लेकिन मूल जो असल आत्मा है, उस पर लेप नहीं चढ़ता। अर्थात् दो आत्मा नहीं हैं, एक ही आत्मा के दो भाग हैं। क्योंकि (व्यवहार) आत्मा में खुद को खुद का रियलाइज़ेशन (भान) नहीं हुआ है इसलिए उसमें अहंकार उत्पन्न हो गया और अहंकार को ऐसा हो गया कि 'यह मैं हूँ और यह मेरा है', उसी से यह नया आत्मा उत्पन्न हो गया, व्यवहार आत्मा।

प्रश्नकर्ता : यह जो दर्पण में दिखाई देता है, वह निश्चय आत्मा है और यह जो बाहर है, वह व्यवहार आत्मा है या फिर जो बाहर है, वह निश्चय आत्मा है और दर्पण में जो दिखाई देता है, वह व्यवहार आत्मा है?

दादाश्री : दर्पण में जो दिखाई देता है, वह व्यवहार आत्मा है और बाहर यह जो है, वह निश्चय आत्मा है। वास्तविक यह है और वह व्यवहार। बाहर वाला यदि नीचे बैठ जाए तो क्या वह दर्पण में दिखाई देगा? तो अब नहीं दिखाई देता। अब यदि यह जो निश्चय आत्मा है, वह सहज है तो व्यवहार आत्मा को सहज करो तो वे दोनों एक हो जाएँगे। फिर हमेशा के लिए परमात्मा बन जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : यह जो व्यवहार आत्मा है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई?

दादाश्री : उसकी उत्पत्ति है ही नहीं न, वह तो पहले से है ही। अनादिकाल से है ही। लेकिन उसका अंत आएगा। जब उसे ज्ञानी पुरुष मिलेंगे तब अंत आएगा।

निश्चय आत्मा के आधार पर करो, व्यवहार आत्मा को क्लियर

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और व्यवहार आत्मा, इन दोनों के अनुभव में डिफरन्स (अंतर) क्या है?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा भ्रांतिमय होता है और निश्चय आत्मा क्लियर (शुद्ध) होता है। यानी ज़्यादा कोई अंतर नहीं है, लेकिन व्यवहार आत्मा पूरा भ्रांतिमय ही है इसलिए उसे क्लियर करना है। किस आधार पर? निश्चय आत्मा क्लियर है, उसके आधार पर व्यवहार आत्मा को क्लियर करना है। वास्तव में तो (निश्चय से) मैं तो शुद्ध ही हूँ। लेकिन अभी भी मुझ में (व्यवहार से) अशुद्धता है, उसे निकालना है, तब फिर क्लियर हो जाएगा वर्ना क्लियर कैसे होगा? अतः यदि ऐसा जाने कि शुद्ध है तो क्लियर हो जाएगा।

'उसका' नहीं है संबंध, मूल आत्मा से

प्रश्नकर्ता : क्या व्यवहार आत्मा मन है?

दादाश्री : सिर्फ मन ही नहीं, व्यवहार आत्मा अर्थात् मन-बुद्धि-

चित्त और अहंकार। जो अंत:करण रूपी व्यवहार आत्मा है, वह व्यवहार आत्मा कैसा है कि उसमें पावर चेतन है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के, व्यवहार आत्मा के और अंत:करण के बीच में क्या संबंध है?

दादाश्री : सिर्फ आत्मा का प्रकाश ही मिलता रहता है, प्रकाश मूल आत्मा का है। वह प्रकाश अंत:करण को मिलता है। उस प्रकाश के आधार पर अंत:करण चलता रहता है। बाकी, आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता है। इस शरीर में आत्मा का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता। सिर्फ उसका प्रकाश ही शरीर को मिलता रहता है और उस प्रकाश से यह सब चलता रहता है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, वे सभी इस प्रकाश के आधार पर काम कर रहे हैं और यह सारा डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : अगर यह सबकुछ मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार ही करता है तो फिर आत्मा को क्या करना है?

दादाश्री : आत्मा को ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद में रहना है। लेकिन वह खुद के गुणधर्मों में आ जाना चाहिए। वह तो जब 'ज्ञानी पुरुष' 'रियल' और 'रिलेटिव' की लाइन ऑफ डिमार्केशन (भेदरेखा) डाल देते हैं, उसके बाद में आत्मा खुद के स्वाभाविक धर्म में आ जाता है। खुद के स्वाभाविक धर्म में आने के बाद में फिर करने को कुछ भी नहीं बचता। फिर एक-दो जन्मों में ही मोक्ष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा गया है कि आत्मा, मन-वाणी और देह से अलग है तो मन के संबंध से जो शुभ-अशुभ विकल्प होते हैं, जैसे कि भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया के भाव, किसी के लिए कुछ करने का भाव, वे जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे आत्मा के हैं या वे भाव आत्मा के विरुद्ध हैं?

दादाश्री : उनका और आत्मा का कोई लेना-देना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यों तो वे भाव आत्मा में होते हों, ऐसा लगता है। जड़ में होते हुए नहीं दिखाई देते।

दादाश्री : नहीं! ऐसा है न, आत्मा दो प्रकार के हैं; एक है व्यवहार आत्मा है और दूसरा दरअसल आत्मा। वह दरअसल आत्मा ही वास्तविक आत्मा है। यह व्यवहार आत्मा, मिश्र चेतन है। इस मिश्र चेतन में ऐसा लगता है कि ये आत्मा के भाव हैं, लेकिन वे मूल आत्मा के नहीं हैं। ये विनाशी आत्मा के हैं, ये भाव अविनाशी आत्मा के नहीं हैं।

संयोगों के दबाव से बना गुनहगार

प्रश्नकर्ता : तो जब व्यवहार आत्मा शुभ-अशुभ भाव करता है तब चैतन्य आत्मा पर यह बला कैसे चिपट जाती है?

दादाश्री : ये जो शुभ-अशुभ भाव होते हैं, उनमें सिर्फ व्यवहार आत्मा ही नहीं है, साथ में निश्चय आत्मा भी है, 'उसकी' मान्यता यही है कि, 'सिर्फ मैं ही हूँ।' निश्चय आत्मा बिगड़ा नहीं है, संयोगों के दबाव से रोंग मान्यता हो गई है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या इसमें निश्चय आत्मा से दोष हुआ, ऐसा माना जाएगा?

दादाश्री : नहीं, खुद का दोष कब कहा जाएगा कि खुद संपूर्ण दोषित हो, तभी दोष कहा जाएगा। नैमित्तिक दोष को दोष नहीं कहा जाएगा। मेरे धक्के से ही आपको धक्का लगा और उससे किसी तीसरे व्यक्ति को लगा, इसलिए वह तीसरा व्यक्ति आपको गुनहगार मानता है। उसी प्रकार से आत्मा खुद इस भाव का कर्ता नहीं है, लेकिन इन नैमित्तिक धक्कों की वजह से, 'साइन्टिफिक सरमकस्टेन्शियल एविडेन्स' की वजह से होता है।

प्रश्नकर्ता : तो निश्चय आत्मा भाव का भी कर्ता नहीं है?

दादाश्री : वह भाव का भी कर्ता नहीं है। भाव का कर्ता स्वरूप की अज्ञानता है।

प्रश्नकर्ता : भाव कब होते हैं?

दादाश्री : जब स्वरूप की अज्ञानता होती है तब भाव और अभाव होते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान हो, तब भाव होते हैं?

दादाश्री : यदि ज्ञान हो तो भाव ही नहीं होते। जहाँ ज्ञान हो वहाँ स्वभाव भाव रहता है और जहाँ ज्ञान नहीं है वहाँ भाव होते हैं। जहाँ मिथ्यात्व है वहाँ भाव और अभाव हैं; जहाँ समकित है वहाँ वे नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : भाव का उद्‌भव होना, वह प्रेरणा कहलाती है?

दादाश्री : नहीं, वह आत्मा का गुण नहीं है। वह आपकी अज्ञानता से हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता कब आती है? ज्ञान की उपस्थिति में ही न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान है तो अज्ञानता है। जैसे कि कोई नगीनदास सेठ नाम का व्यक्ति शराब पी ले, तब फिर वह बोलता है कि 'मैं सयाजीराव गायकवाड़ हूँ।' तभी से क्या हम नहीं समझ जाएँगे कि इस पर शराब का असर है? उसी प्रकार से यह अज्ञान का असर है।

प्रश्नकर्ता : अगर अज्ञान, ज्ञानमय हो जाए तो?

दादाश्री : तब उसे अज्ञान नहीं कहेंगे। फिर तो ज्ञानमय परिणाम ही बरतते रहेंगे और जब तक अज्ञान है तब तक अज्ञानमय परिणाम ही बरतते रहेंगे। फिर वह चाहे तप करे, जप करे, शास्त्र पढ़े या कोई भी क्रिया करे लेकिन उनसे कर्म ही बंधेंगे। लेकिन वे सब भौतिक सुख देने वाले होते हैं।

उपयोग पूरा व्यवहार आत्मा का

प्रश्नकर्ता : अब विभाव अवस्था में खुद उपयोग रखता है

इसलिए आत्मा को कर्म बंधन होता है। यानी कि आत्मा का ही उपयोग विभाव दशा में जाता है। यदि वह स्वभाव में रहे तो उसे कर्म नहीं बंधते, क्या यह ठीक है?

दादाश्री : नहीं, गलत बात है। आत्मा निरंतर स्वभाव में ही रहता है और वही मूल आत्मा है। और जिसमें स्वभाव और विभाव होते रहते हैं, वह व्यवहार आत्मा है। मूल आत्मा तो निरंतर मुक्त ही है, और फिर अंदर बैठा हुआ है। व्यवहार आत्मा अर्थात् अभी जो माना हुआ 'आत्मा' है, वह विभाविक है और व्यवहार आत्मा में इतना सा भी चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उपयोग मूल आत्मा का ही रहता है न?

दादाश्री : नहीं, आत्मा का उपयोग नहीं रहता। आत्मा का उपयोग होता तब तो वह बन जाएगा भंडारी, सर्विसमेन बन जाएगा। यह तो, लोग ऐसा सब सिखाते हैं, लेकिन आत्मा वैसा नहीं है। बाहर तो जो प्रचलित वाक्य हैं, उनमें एक भी जगह पर आत्मा नहीं है। यह आपको मान लेना है। हर कोई अपने स्टैन्डर्ड के अनुसार कहता है, लेकिन स्टैन्डर्डाइज़्ड है। आत्मा को उपयोग भी नहीं है, और कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो उपयोग किसे है?

दादाश्री : उपयोग सारा ही अहंकारी का (व्यवहार आत्मा का) है, आत्मा प्राप्त करने से पहले उपयोग उस तरफ (भौतिक की तरफ) जाता है, वह पर-उपयोग कहलाता है और आत्मा की दृष्टि मिलने के बाद में फिर उपयोग आत्मा की तरफ जाता है, उसे स्व-उपयोग (प्रज्ञा का) कहते हैं, बस। उपयोग अर्थात् जागृति, उसका किस तरफ इस्तेमाल हो रहा है, वह देखना है।

व्यवहार आत्मा अर्थात् अभी आपका जो आत्मा है, वह। और वही स्वाभाविक-विभाविक होता है। व्यवहार आत्मा में एक सेन्ट

(प्रतिशत) भी चेतन नहीं है। मूल आत्मा तो एक ही है, लेकिन उसका यह व्यवहार आत्मा उत्पन्न हो गया है। जब तक वह इस संसार प्रवाह में है तब तक उसका व्यवहार है। व्यवहार मिकेनिकल आत्मा का है। व्यवहार आत्मा को मिकेनिकल आत्मा कहा जाता है।

अज्ञान से एक रूप भासित होते हैं, ज्ञान से हो जाते हैं अलग

'मूल आत्मा' अचल कहलाता है और व्यवहार आत्मा सचर कहलाता है। सचर आत्मा अर्थात् मिकेनिकल आत्मा।

प्रश्नकर्ता : इन दोनों के बीच में कोई कड़ी है क्या?

दादाश्री : नहीं, कड़ी के बिना दोनों यों ही, अलग ही हैं। दोनों कभी भी जॉइन्ट हुए ही नहीं हैं। वे आप में भी जॉइन्ट नहीं हैं। लेकिन ऐसा तो सिर्फ मैं बताता हूँ, इनके अलग होने का कारण क्या है कि जिस मान्यता से बंधनता लगती थी वह मान्यता छूट जाती है। यों तो अलग ही हैं। (मूल) आत्मा बिल्कुल अलग ही है, इस शरीर में। ऐसा आत्मा देखा है मैंने। केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा देखा है मैंने। यानी कि किसी भी जगह पर नहीं हैं ये शब्द। जैनों के आगमों में भी नहीं हैं और वेद-वेदांतों में भी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : मिकेनिकल आत्मा और दरअसल आत्मा के बारे में समझ में नहीं आता। आत्मा एक ही होता है। इस दूसरे आत्मा के बारे में समझाइए, उसे आत्मा कहेंगे ही कैसे?

दादाश्री : क्या कहें फिर? लोग तो उसी को आत्मा मान बैठे हैं न!

प्रश्नकर्ता : लोग भले ही मानते हों, लोकभाषा से कहना पड़ता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है न?

दादाश्री : वास्तव में नहीं है, लेकिन यह पूरा जगत् सिर्फ उसी

को मानता है, फिर यदि सिर्फ हम ही नहीं कहेंगे तो क्या होगा? इसलिए इसे व्यवहार आत्मा कहा है, व्यवहार में प्रचलित।

प्रश्नकर्ता : यह जो व्यवहार आत्मा कहते हैं, क्या वह भ्रांति नहीं है?

दादाश्री : भ्रांति ही है न! भ्रांति में ही है।

प्रश्नकर्ता : तो वास्तव में व्यवहार आत्मा है ही नहीं न?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा जैसी कोई चीज़ है ही नहीं न! व्यवहार आत्मा की तो यह मान्यता खड़ी हो गई है।

'मैं चंदूलाल हूँ', जब तक ऐसी अज्ञान मान्यता है और तब तक उसे मूढ़ात्मा कहते हैं। और जब वह 'रोंग बिलीफ' फ्रैक्चर हो जाए और 'राइट बिलीफ' बैठ जाए तब 'शुद्धात्मा' कहलाता है। वस्तुत्व का भान होने के बाद में पूर्णत्व अपने आप ही होता रहता है।

व्यवहार दृष्टि से मूढ़ात्मा, निश्चय दृष्टि से शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : अब आत्मा का प्रकार नहीं है और आत्मा तो निराकार है तो फिर इस तरह से नहीं होना चाहिए न, मूढ़ात्मा और शुद्धात्मा?

दादाश्री : शुद्धात्मा और मूढ़ात्मा कहने का मतलब क्या है कि आत्मा तो वही का वही है, जैसे कोई व्यक्ति यदि घर पर बैठा हो तो उसे लोग सेठ कहते हैं आइए सेठ, आइए सेठ। लेकिन यदि वह कोर्ट में जाए तो उसे वकील, वकील कहकर बुलाते हैं। कहते हैं या नहीं कहते? क्यों उसके दो नाम हैं?

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर वकील के तौर पर काम करता है इसलिए।

दादाश्री : जब यह (व्यवहार का) वाला काम करता है तब मूढ़ात्मा और खुद का वह (आत्मा का) काम करता है तब शुद्धात्मा। वास्तव में वह, यह वाला काम नहीं करता है, इसके पीछे पूरा विज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस व्यवहार आत्मा के माध्यम से ही निश्चय आत्मा को जाना जा सकता है न?

दादाश्री : (वह उसी का) फोटो है न, इसलिए कभी न कभी पता चलेगा। इन फॉरेन वालों में तो पूरी तरह से व्यवहार आत्मा ही है। अपने यहाँ के ये सभी लोग व्यवहार आत्मा ही माने जाएँगे। लेकिन मन में कुछ है कि समकित जैसा है अथवा मूल वस्तु है और दूसरा आत्मा अलग है, ऐसा *लक्ष* रहता है इसलिए वे तैयारी कर रहे हैं। बाकी, अंदर तो व्यवहार आत्मा ही है। अभी यदि वह धर्मध्यान करे न, तो व्यवहार आत्मा कहा जाएगा। उसी प्रकार से यदि आप व्यवहारिक कार्य में मस्त हो तो आप व्यवहार आत्मा हो और अगर निश्चय में मस्त हो तो निश्चय आत्मा हो। मूल रूप से आप वही के वही हो। अभी यह जो सूझ पड़ती है न, वह व्यवहारिक आत्मा का गुण है और ज्ञानी पुरुष जब सूझ देते हैं तब वह निश्चय आत्मा का गुण है। तब वह समकित कहलाता है जबकि यह मिथ्यात्व कहलाता है।

अज्ञान से चार्ज होता है, नया व्यवहार आत्मा

प्रश्नकर्ता : जब यह शरीर छूटता है तब उसके साथ यह व्यवहार आत्मा भी खत्म हो जाता है?

दादाश्री : यह व्यवहार आत्मा खत्म हो जाता है लेकिन दूसरे व्यवहार आत्मा को चार्ज करते जाते हैं। एक व्यवहार आत्मा डिस्चार्ज हो गया और साथ ही दूसरे व्यवहार आत्मा को चार्ज करके जाता है।

यह जो व्यवहार आत्मा है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। खुद ने प्रतिष्ठा की है, इसलिए। यदि अभी भी प्रतिष्ठा करोगे तो फिर से नया उत्पन्न हो जाएगा। 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा करोगे तो प्रतिष्ठा से वापस नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न हो जाएगा। यदि इस व्यवहार को सत्य मानोगे तो फिर से व्यवहार आत्मा उत्पन्न होगा। असत्य तो है ही नहीं व्यवहार, असत्य नहीं है और सत्य भी नहीं है, रिलेटिव सत्य है। यह सत्य है लेकिन विनाशी सत्य है। 'मैं चंदूभाई हूँ, वह आपका दर्शन

है', 'मैं चंदूभाई हूँ, वह आपका ज्ञान है', 'मैं चंदूभाई हूँ, वह आपका चारित्र है।' ज्ञान, दर्शन व चारित्र, 'मैं चंदूभाई हूँ' उसमें बरतता है, इसलिए व्यवहार आत्मा में ज्ञान, दर्शन और चारित्र बरतते हैं। निश्चय आत्मा का ज्ञान, दर्शन और चारित्र आप में उत्पन्न नहीं हुआ है। क्योंकि ऐसा जानते ही नहीं हैं न, कि दर्शन किसे कहा जाता है, 'मैं यह जो देखता हूँ, वह करेक्ट (सही) है', वह यह मिथ्या दर्शन है। निश्चय आत्मा तो वैसा ही है। यदि उसका स्पर्श हो जाए न, तो कल्याण हो जाएगा। अभी तो आपको व्यवहार आत्मा का ही स्पर्श है, अहंकार खड़ा ही है।

व्यवहार आत्मा को ही मान लिया निश्चय आत्मा

प्रश्नकर्ता : यह जो व्यवहार आत्मा है, क्या वही अहंकार है?

दादाश्री : हाँ, वही अहंकार है। अब इन लोगों ने उसी अहंकार को 'व्यवहार आत्मा' कहा है।

प्रश्नकर्ता : उसी को व्यवहार आत्मा कहा है?

दादाश्री : उसी को कहा है, इसीलिए कहते हैं कि 'मेरा आत्मा पापी है' और 'मेरा आत्मा...'

प्रश्नकर्ता : और उसी का मोक्ष करना है?

दादाश्री : हाँ। इसके बजाय तो यदि उसे आत्मा नहीं कहा होता और इसे अहंकार कहा होता तो हर्ज नहीं था, तब फिर कोई उलझन नहीं होती। मेरा आत्मा शुद्ध ही है, ऐसा भान रहता। अभी तो ऐसा भान ही नहीं है न, और इसी को स्थिर करना चाहते हैं। आत्मा तो स्थिर ही है। हमने इन सब का स्पष्ट विवरण दिया है।

व्यवहार आत्मा की निंदा करने को कहा गया है, जबकि ये लोग निश्चय आत्मा की निंदा कर बैठते हैं। भान ही नहीं है कि किसमें है वह। किसकी निंदा करने को कहा है?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार आत्मा की।

दादाश्री : इसमें निश्चय आत्मा की निंदा हो जाती है। कहते हैं, 'मेरा आत्मा पापी है।' तब मैंने कहा, 'चलो, इसे वकील के पास ले चलूँ। मेरा आत्मा पापी है', ऐसा बोलता है। वकील से पूछें कि 'यह कह रहा है, मेरा आत्मा पापी है', इसका क्या अर्थ है? तब वकील वकालत करेगा, 'आपका आत्मा पापी है तो आप कैसे हो?' पूछेगा या नहीं पूछेगा?

ऐसे भोले हैं लोग बेचारे। बिना जाने कहते हैं, 'मेरा आत्मा पापी है।' अरे भाई, तब तो तू ऐसा कह न, कि 'मैं पापी हूँ, मेरा आत्मा शुद्ध है।' यह तो, व्यवहार आत्मा को 'पापी' मानते-मानते, 'शुद्धात्मा' की तरफ चले गए। मूल आत्मा को 'पापी' कहकर निंदा करने लगे हैं, मूल आत्मा की। व्यवहार आत्मा को अर्पण कर देना है, उसके बजाय मूल आत्मा को ही अर्पण कर दिया है। अत: मूल में ही भूल हो रही है, इसीलिए परिणाम नहीं आता। अब यदि इस व्यवहार आत्मा को, पावर आत्मा को, मूल आत्मा मान लिया जाए तो क्या हो सकता है?

इसीलिए हमने यह पावर आत्मा वगैरह सारे शब्द रखे हैं, वर्ना सही बात समझ में नहीं आ सकती।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में इसे 'व्यवहार आत्मा' कहा है।

दादाश्री : व्यवहार में हम समझ ही नहीं सकते थे न! उसे शब्दों द्वारा पूरी तरह से समझा ही नहीं जा सकता। मुख्य रूप से तो इस व्यवहार आत्मा को ही आत्मा मान लिया है। अन्य कोई आत्मा नहीं है, यही आत्मा है। इसी को शुद्ध करना है।

प्रश्नकर्ता : मेरा ऐसा मानना है कि आत्मा तो वही है। व्यवहार में जाए तब व्यवहार आत्मा कहलाता है और इस तरफ जाए तो उसे दूसरा, मूल आत्मा कहते हैं, इस तरह जनरल समझ ऐसी है।

दादाश्री : आत्मा दो प्रकार से काम कर सकता है। लेकिन यों तो इस तरफ निश्चय आत्मा है, उसे भूल ही गए हैं। व्यवहार को ही मूल वस्तु मान बैठे हैं। इसलिए व्यवहार भी गलत सिद्ध हुआ।

परछाई को पकड़ते हैं, असल हाथ में नहीं आता

व्यवहारिक आत्मा को ही लोगों ने निश्चय आत्मा मान लिया है। और फिर कहते भी हैं, व्यवहारिक आत्मा है लेकिन खुद के ज्ञान में वह उसे निश्चय आत्मा ही समझता है कि यह जो (व्यवहार) आत्मा है, यही वह (मूल) आत्मा है। 'यदि आत्मा नहीं होता तो बोल ही कैसे पाते? चल ही कैसे पाते। यह चलना-फिरना, बातचीत करना, स्वाध्याय करना, पढ़ता हूँ, यह सब याद रहता है, यही वह (मूल) आत्मा है।' वह ऐसा समझता है कि दूसरा कोई आत्मा है ही नहीं। जबकि यह तो आत्मा की परछाई है। इस परछाई को पकड़ने जाएँगे तो करोड़ों जन्मों तक भी आत्मा नहीं मिलेगा, इस दुनिया को। अक्रम विज्ञान से मैंने इस बात का खुलासा किया कि, 'परछाई को क्यों पकड़ रहे हो? आपकी लाइन गलत नहीं है, वह क्रमिक मार्ग है, परछाई को आत्मा मानते हो! आत्मा को आत्मा मानो और परछाई को परछाई मानो।' मैं ऐसा कहना चाहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : मान्यता में ही बहुत बड़ी भूल है।

दादाश्री : मान्यता में भूल हो जाए तो सारा ही भूल, रहा ही क्या फिर?

प्रश्नकर्ता : निश्चय नय से एक ही आत्मा है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन एक आत्मा है, ऐसा कह नहीं सकते हैं न! जब तक व्यवहार में बरतता है तब तक वह आत्मा नहीं है? ये सभी लोग आत्मा नहीं कहलाएँगे?

अज्ञान से माने गए आत्मा और परमात्मा अलग

प्रश्नकर्ता : व्यवहार जगत् में आत्मा और परमात्मा को अलग क्यों मनवाते हैं?

दादाश्री : वे लोग कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा अलग हैं। इसका कारण यह है कि वे व्यवहार आत्मा को आत्मा कहते हैं। यह जो दिखाई देता है, उस आत्मा को; ये जो काम कर रहे हैं न, दान देते हैं, गालियाँ देते हैं, उपदेश देते हैं, उसी को आत्मा मानते हैं। यह तो प्रतिष्ठित आत्मा है, व्यवहार आत्मा है, लोगों द्वारा माना हुआ आत्मा है, वास्तविक आत्मा नहीं है। वास्तविक आत्मा तो जैसा है वैसा ही है, वह परिवर्तित नहीं होता। वास्तविक आत्मा अचल है और व्यवहार आत्मा सचर है। मूल आत्मा तो अचंचल है जबकि माना हुआ आत्मा चंचल है, उसका स्वरूप चंचल है। माने हुए आत्मा को पीड़ा होती है, मूल आत्मा को कुछ भी स्पर्श नहीं करता। अत: आत्मा और परमात्मा अलग नहीं हैं।

कर्ता-भोक्ता, वह है व्यवहार आत्मा

प्रश्नकर्ता : ये कर्म किसे लगते हैं? क्या व्यवहार आत्मा को लगते हैं?

दादाश्री : जो करता है, उसे। व्यवहारिक आत्मा कहता है, 'मैं' और 'मेरा'। करने वाला ऐसा कहता है कि, 'मैंने किया' और भुगतता भी है। कर्ता भी वह है और भोक्ता भी वह है। तो कहते हैं, 'फिर बंधा हुआ कौन है?' वह ऐसा समझता है कि, 'मैं बंधा हुआ हूँ'। मुक्ति भी वही पाता है। जिसे ऐसा भान है, 'मैं बंधा हुआ हूँ', वही मुक्ति पाता है। आत्मा तो मुक्त ही है, अनादि मुक्त है।

प्रश्नकर्ता : तो ये जो कर्म बंधते हैं, तो दिखाई ऐसा देता है कि *पुद्‌गल* ही उन्हें भुगतता है? आत्मा तो भुगतता ही नहीं है न?

दादाश्री : *पुद्‌गल* अर्थात् अहंकार भोगता है। अहंकार कर्म करता है और अहंकार भोगता भी है। वह सारा *पुद्‌गल* ही है। उससे आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा शुद्ध ही है। मूल आत्मा को तो कुछ भी नहीं होता है। यह जो व्यवहार आत्मा है, माना हुआ आत्मा, वही दु:खी होता है।

जब तक व्यवहार आत्मा है तब तक कर्म का कर्ता है और जो निश्चय आत्मा है, वह कर्म का कर्ता नहीं है।

रिलेटिव भाषा में, भ्रांति की भाषा में खुद ही कर्ता-भोक्ता है लेकिन रिलेटिव में रहकर, 'मैं अकर्ता हूँ', ऐसा नहीं बोल सकते। क्योंकि रिलेटिव में खुद को कर्ता-भोक्ता ही मानता है। व्यवहार से कर्ता-भोक्ता कहलाता है, उससे क्या होता है कि वह कुछ पुरुषार्थ कर सकता है। जैसे कि साबुन से मैल धुल जाता है, उस तरह से। यदि कर्ता रहेगा तो गुणस्थानक में आगे बढ़ सकेगा। फिर भी आत्मा कभी भी कर्ता बना ही नहीं है और उसमें कुछ करने की शक्ति भी नहीं है। खुद ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया का ही कर्ता है। यह तो बिलीफ रोंग है इसीलिए ऐसा मानता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ' और इसी वजह से अहंकार करता है कि 'मैंने किया, मैंने भुगता।' यदि अग्नि को दीमक लग सकती तो आत्मा को कर्म लगते।

कर्ताभाव से मुकाम, व्यवहार आत्मा में

प्रश्नकर्ता : यों यदि व्यवहार में देखने जाएँ तो अज्ञानी का मूल आत्मा भी वास्तव में कर्ता नहीं है।

दादाश्री : मूल आत्मा कुछ नहीं कर सकता और 'मूल आत्मा' तो वस्तु ही अलग है। 'उसकी' मान्यता ही ऐसी हो गई है कि मैं करता हूँ। उससे व्यवहार आत्मा खड़ा हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो व्यवहार आत्मा को कर्ता कहा गया है?

दादाश्री : हाँ। व्यवहार आत्मा अर्थात् एक आत्मा जो व्यवहार में आपका काम करता है, व्यवहार चला लेता है, वह आत्मा है। 'आप' अभी उस 'आत्मा' में हो। जब तक आपका कर्ताभाव है तब तक आप उस आत्मा में हो। और जब कर्ताभाव छूट जाएगा तब 'आप' 'मूल आत्मा' में आ जाओगे। क्योंकि मूल आत्मा अक्रिय है। जो दरअसल मूल आत्मा है, वह अक्रिय है। इसलिए यदि आपका अक्रियपन हो

जाएगा तो मूल आत्मा में तन्मयाकार हो जाओगे। जब तक कर्ताभाव है तब तक आपको भ्रांति है, तब तक इस (व्यवहार) आत्मा में रहना है। उससे देहाध्यास का दोष लगता है, और कर्म बंधन होता है। 'मैं कर रहा हूँ', उसी से सारे कर्म बंधन होते हैं। तो ये जो सारे मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार हैं, वे कर्म बंधने की वजह से उत्पन्न हुए हैं। यदि कर्म छूट जाएँगे तो वह सब भी चला जाएगा।

जब आपको ज्ञान होता है तब आप खुद अकर्ता हो, वर्ना जब तक अज्ञान है तब तक तो आप कर्ता हो। 'मैं चंदू हूँ', जब तक ऐसी मान्यता है तब तक इस दुनिया में आप कर्ता ही हो और इसीलिए आपको कर्म बंधन होगा। जब आपको ऐसा रहेगा कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ और चंदूभाई अलग हैं' तब आपका कर्म बंधन रुक जाएगा।

डिस्चार्ज में नहीं है ज़रूरत, व्यवहार आत्मा की

प्रश्नकर्ता : जब कर्मों का उदय आना होता है, डिस्चार्ज का विपाक होना होता है तब भी इस व्यवहार आत्मा की ज़रूरत है या नहीं?

दादाश्री : तब उसकी ज़रूरत ही नहीं है न! उसकी, व्यवहार आत्मा की ज़रूरत ही नहीं है। जैसे कि चार्ज हुई बैटरी होती है न, तो फिर उसे जब (गुड़िया में) लगा देते हैं तब वह डिस्चार्ज होती ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसे तो सिर्फ लगा देते हैं तब भी डिस्चार्ज होती रहती है।

दादाश्री : (यह देह, *पुद्‌गल*) मुर्दा है, फिर भी डिस्चार्ज होता रहता है। मुर्दा क्यों है? तो कहते हैं कि चार्ज करने वाली चीज़ (व्यवहार आत्मा, मिश्र चेतन) से वह अलग है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो *पुद्‌गल* है, उसमें (व्यवहार) आत्मा की उपस्थिति नहीं है, यह ज़रा समझाइए। वह कैसे?

दादाश्री : उपस्थिति के बिना उत्पत्ति, स्थिति और लय होता रहता है। क्योंकि यह *पुद्‌गल* पूरा ही जड़ है। इसी प्रकार से जो डिस्चार्ज चेतन है न, वह पूरा ही जड़ है। उसमें (व्यवहार) आत्मा की कोई ज़रूरत ही नहीं है। मूल आत्मा के प्रकाश से चलता रहता है, बस। क्योंकि इस मुर्दे और इस *पुद्‌गल* में कोई अंतर नहीं है। सिर्फ चार्ज *पुद्‌गल* में अंतर है, डिस्चार्ज में कोई अंतर नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन चार्ज *पुद्‌गल* और डिस्चार्ज *पुद्‌गल* के बीच का अंतर समझाइए न! चार्ज कौन सा है और डिस्चार्ज कौन सा है?

दादाश्री : चार्ज में तो खुद (व्यवहार आत्मा) रहता है। खुद अहंकार है, कर्ता है। वहीं पर (व्यवहार) आत्मा की उपस्थिति है, बाकी डिस्चार्ज को तो मृत ही कहो न, उसे मुर्दा ही कहो। उसे मूर्ति कहेंगे तब भी चलेगा। (व्यवहार) आत्मा को ढक दिया जाए फिर भी यह चलेगा।

बाकी, इस *पुद्‌गल* का तो, रात को नींद में भी जब (व्यवहार) आत्मा की गैरहाज़िरी रहती है, उस समय भी चलता रहता है। वह तो निरंतर व्यय ही होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : नींद में (व्यवहार) आत्मा की गैरहाज़िरी नहीं हुई है न?

दादाश्री : हो जाती है न, नींद में भी।

प्रश्नकर्ता : तब कहाँ जाता है?

दादाश्री : आवरण में। और कहाँ पर? इसकी कोई हेल्प नहीं करे, फिर भी चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : वह शरीर में कहीं पर तो है न?

दादाश्री : हो तब भी क्या है और न हो तब भी क्या? नहीं

होगा तब भी यह सब अपने आप होता रहे, ऐसा है। यह तो मरी हुई चीज़ है। मरी हुई चीज़ को कहीं (व्यवहार) आत्मा की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हृदय चल रहा हो तो उसे मरा हुआ कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : हृदय चलता है, वह भी डिस्चार्ज है। वह चल रहा है तो मिकेनिकल है। मिकेनिकल को (व्यवहार) आत्मा की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, मिकेनिकल है। लेकिन (व्यवहार) आत्मा की उपस्थिति है तभी मिकेनिकल है, वर्ना कैसे चलेगा?

दादाश्री : नहीं, इसमें ऐसा नहीं है। यह जो आगे के लिए चार्ज करता है, वह (व्यवहार) आत्मा की उपस्थिति के बिना नहीं हो सकता। बाकी, इसमें (डिस्चार्ज में) तो कोई ज़रूरत ही नहीं है, यह तो मुर्दा ही है, डिस्चार्ज!

इसमें ऐसा है कि यह जो *पुद्गल* है न, उसमें (व्यवहार) आत्मा की शक्ति, रिलेटिव शक्ति उत्पन्न हो गई है। वह तो अपने आप चले, ऐसा है। यह रिलेटिव शक्ति है इसलिए (व्यवहार) आत्मा की इसमें ज़रूरत नहीं रहती।

(व्यवहार) आत्मा का प्रकाश भी रिलेटिव में है। रिलेटिव प्रकाश अर्थात् यह पूरा मृत ही है। इसके लिए मूल प्रकाश की ज़रूरत नहीं पड़ती। मूल प्रकाश की ज़रूरत सिर्फ अहंकार को है।

संसार में नहीं है कोई भी क्रिया चेतन की

प्रश्नकर्ता : जैसे कि भरत चक्रवर्ती ने लड़ाईयाँ की थीं, फिर भी वे उसी जन्म में मोक्ष में गए! यह उस प्रकार से है?

दादाश्री : वे तो चेतन में रहते थे, वे व्यवहार आत्मा में नहीं रहते थे। देखना यह है कि वे कहाँ रहते थे!

प्रश्नकर्ता : लड़ाई में मार-काट करते थे, फिर भी चेतन में रहते थे?

दादाश्री : हाँ! फिर भी वे खुद चेतन में रहते थे। ये सभी (महात्मा) चेतन में रहकर ही सबकुछ करते हैं न, ये सारे पुतले मारा-मारी करते हैं। खुद उसमें नहीं रहते।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञाता-द्रष्टा कहाँ रहा?

दादाश्री : क्यों? लड़ाई में आत्मा होता ही नहीं है, चेतन होता ही नहीं है। इस संसार में भी चेतन बिल्कुल है ही नहीं। लेकिन भगवान ने ऐसा क्यों कहा कि हिंसा मत करना? क्योंकि पूरा जगत् खुद इसका मालिक बन बैठा है। (अज्ञान दशा में) लोगों ने इसे ऐसा मान लिया है कि 'मैं यह हूँ।' यह मान्यता वाला चेतन है, वास्तविक चेतन नहीं है। उनकी ऐसी मान्यता है कि, 'मैं हूँ', इसलिए पाप लगता है। वास्तव में आत्मा लड़ता भी नहीं है और मारता भी नहीं है और कटता भी नहीं है। इसलिए लड़ाईयाँ करते हुए भी उनकी दृष्टि भगवान पर ही रहती थी।

उपचार-अनुपचार नहीं रहा अक्रम में

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र का वाक्य है कि 'अनुपचरित व्यवहार से आत्मा द्रव्यकर्म का कर्ता है, उपचार से घर, नगर आदि का कर्ता है।' यह समझाइए।

दादाश्री : अपने लिए उपचरित और अनुपचरित कुछ रहा ही नहीं है न! वे शब्द तो क्रमिक मार्ग में सिखाते हैं। किस आधार पर 'तू चंदूभाई है' और किस आधार पर तूने घर बनाया और यह किया, वह किया? वह सब किस आधार पर? वह उपचार व्यवहार से है।

उपचार नहीं करते? खाने-पीने का, वह सब उपचार से नहीं करते हो? सारे काम-धंधे करते हो, वे उपचार से हैं, बूट पॉलिश

भी उपचार से। उपचार से अर्थात् क्या कहना चाहते हैं कि लट्टू की दृष्टि से घर-नगर आदि का कर्ता है। उपचार है इसलिए टॉप्स (लट्टू), टी-ओ-पी-ऐस। और अनुपचरित व्यवहार से वह टॉप्स नहीं है।

'मैं जा रहा हूँ और आ रहा हूँ', वह उपचार है। क्योंकि जो चरित हो चुका है, वह उपचरित हो रहा है। चरित में से ही उपचरित होता है और फंक्शन (कार्य) करना हो तो औपचारिक करना पड़ता है। उपचरित में से फिर औपचारिक। चरित तो हो चुका है और अब उपचरित। वे कहते हैं न, उपचार मात्र है यह सारा।

अज्ञानता में आत्मा (व्यवहार आत्मा) अनुपचरित व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्ता है। अनुपचरित व्यवहार अर्थात् जिसमें किसी भी प्रकार का उपचार ही नहीं करना पड़ता, उसकी योजना नहीं बनी है, डिज़ाइन नहीं बनी है। अनुपचरित व्यवहार से आत्मा द्रव्यकर्म का कर्ता है और स्वरूप का भान होने के बाद हमेशा के लिए, स्वपरिणामी है। उससे वह कहीं विकृत नहीं हुआ है। यदि विकृति हो जाए तो बदल ही जाएगा, खत्म हो जाएगा। इतना ही समझ में आ जाए तो काम हो जाएगा।

अब लोगों को ये सारी बातें कैसे समझ में आएँ? क्यों ऐसा नहीं कहा कि विभाव से द्रव्यकर्म का कर्ता है।

प्रश्नकर्ता : कर्ता है ही नहीं न!

दादाश्री : तो फिर अगर आत्मा कर्ता नहीं है तो किया किसने? और कर्ता के बिना हो नहीं सकता। भले ही वह बेगुनाह होते हुए गुनहगार माना गया हो, लेकिन गुनहगार तो है न? बेगुनाह होगा तो कोर्ट में से छूट जाएगा, लेकिन अभी व्यवहार में तो गुनहगार कहलाएगा न, इस दुनिया में? नहीं कहलाएगा? *पुद्गल* को कोई कहता है? *पुद्गल* निश्चय से गुनहगार है। व्यवहार में तो ऐसा ही कहते हैं न, 'आपने ही किया है यह, आपने पत्थर मारा!' तो मैं क्या कहना चाहता

हूँ? उपचार से वह पत्थर मारता है। जो उपचार से पत्थर मारे, वह लट्टू छाप है। बोलो, मैं आपका वह गुनाह निकाल देना चाहता हूँ। 'उपचार से', लेकिन अगर समझ में आए तब न! अब, अनुपचरित व्यवहार से, यानी वे क्या कहना चाहते हैं? किसी भी प्रकार का उपचार किए बिना, ऐसा व्यवहार। वह कौन सा व्यवहार है? तो कहते हैं, कि यह पूरा शरीर-वरीर बना किस तरह से? ये नाक-वाक गढ़ना, अगर आपको करना होता तो कितनी मुश्किल हो जाती! घर-नगर सबकुछ बना दें, लेकिन अगर यह जोखिमदारी भी सिर पर होती तो कितनी मुश्किल हो जाती! इसलिए देखो न! बिना जोखिमदारी के, किसी भी प्रकार के उपचार के बिना हो गया है।

अनुपचरित व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्ता है, यानी कि आठ कर्म बंधते हैं और आठ कर्मों का जो परिणाम आता है, वह उपचार है। आठ कर्म फल देते हैं, वह उपचार है। उपचार से घर-नगर आदि का कर्ता है और भाव से भावकर्म का कर्ता है, क्रोध-मान-माया-लोभ का। क्रोध-मान-माया-लोभ, भावकर्म कहलाते हैं। भावकर्म मूल आत्मा नहीं करता लेकिन यह व्यवहार आत्मा करता है। व्यवहार में जिसे तू आत्मा मानता है, वह कर्ता है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार से वह कर्ता है।

दादाश्री : व्यवहार आत्मा ही कर्ता है, निश्चय आत्मा कर्ता नहीं है। निश्चय आत्मा तो कुछ कर्म ही नहीं करता। वह निश्चय आत्मा तो क्या कहता है कि, 'जिस प्रकार अज्ञानता से तेरा यह व्यवहार आत्मा उत्पन्न हुआ है, अब ज्ञान से 'तू' समा जा, खुद के स्वरूप में।

अनुपचरित बहुत समझने जैसा है, बहुत गहरा शब्द है लेकिन क्रमिक मार्ग में। यहाँ इसमें तो हमें ज़रूरत ही नहीं है। मैंने आपका उपचार-वुपचार सब निकाल दिया है। रटने को कुछ भी नहीं रखा है। (ज्ञान मिलने के बाद में) अगले दिन से ही आत्मा के अनुभव सहित घूम रहे होते हैं।

पुद्गल बन जाता है, भाव रूपी

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है कि 'होय न चेतन प्रेरणा, तो कोण ग्रहे कर्म?' यह समझाइए।

दादाश्री : यह तो ऐसा है न, कि वह क्रमिक मार्ग है। अब, वह क्रमिक मार्ग चेतन किसे मानता है? व्यवहार आत्मा को चेतन मानता है यानी कि यह सब उस चेतन की प्रेरणा है। जबकि अपने यहाँ क्या कहते हैं कि यह सब इगोइज़म का है। और वे उसे आत्मा कहते हैं कि यह चेतन प्रेरणा देता है। अब वह चेतन तो चेतन है ही, लेकिन अपने यहाँ तो हिसाब निकाल लिया कि यह पावर चेतन है, ऑलराइट चेतन (मूल, शुद्ध चेतन) नहीं है। अगर यह ऑलराइट चेतन होता, उससे प्रेरणा मिली होती तो वह हमेशा के लिए प्रेरक रहता, जहाँ जाओ वहाँ।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) परिवर्तन होता है, इसमें उसे ग्रहण कौन करता है? ग्रहण करने का क्या है इसमें?

दादाश्री : 'होय न चेतन प्रेरणा, तो कोण ग्रहे कर्म?' यह 'मैं कर रहा हूँ', उससे कर्म ग्रहण करता है।

यह 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा मानता है। अरे, तू कहाँ है यहाँ पर? यह तो सचर है, 'मिकेनिकल' आत्मा है, उसमें जो अचर है, वह शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मा कुछ भी ग्रहण नहीं करता लेकिन यह तो मान्यता है।

दादाश्री : ये सारी रोंग बिलीफें ही हैं और फिर *पुद्गल* का स्वरूप वैसा ही हो जाता है। जैसा 'हम' बोलते हैं न, *पुद्गल* का स्वरूप वैसा ही हो जाता है। भाव के फलस्वरूप द्रव्य रूपी फल आता है, *पुद्गल* का ऐसा गुण है। और अगर कहे 'मैं कर्ता नहीं हूँ' तो

फिर उस *पुद्गल* को कुछ भी नहीं होगा। है (*पुद्गल*) तब भी अलग हो जाएगा। ज्ञाता-द्रष्टा हुए कि अलग हो जाएगा। जब तक कर्ता है तभी तक नए *पुद्गल* को ग्रहण भी करता है और पुरानें को छोड़ता भी है। छोड़ने वाला भी 'वह' है और ग्रहण करने वाला भी 'वह'। जबकि इसमें तो ग्रहण करने वाला ही बंद हो गया और छुड़वाने वाला व्यवस्थित है, बीच में 'खुद' फ्री (जिसके पास कोई काम नहीं है) हो गया।

अब ऐसी भारी चीज़ लोगों को कैसे समझ में आए? इसका मेल नहीं बैठता, इसलिए ऐसा ही समझते हैं कि मूल चेतन ही यह सब करता है।

अक्रम ने उड़ा दिया भावकर्म

प्रश्नकर्ता : तो कृपालुदेव ने ऐसा भी कहा है न, 'भावकर्म निजकल्पना, माटे चेतनरूप, जीववीर्यनी स्फूरणा, ग्रहण करे जडधूप।' वह समझाइए।

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। भावकर्म निज कल्पना, इसलिए चेतन रूप। लेकिन जब तक भावकर्म है, तभी तक ऐसा है। भावकर्म व्यवहार आत्मा पर लागू होता है। अपने यहाँ पर भावकर्म को पूरा ही खत्म कर दिया है, बिल्कुल ही।

प्रश्नकर्ता : मूल आत्मा को रखा सिर्फ।

दादाश्री : मूल आत्मा को बिल्कुल अलग ही कर दिया और क्रमिक में जो भावकर्म है, वह 'खुद की' कल्पना है। इसलिए चेतन रूपी अर्थात् मिश्र चेतन बनता है।

निज कल्पना अर्थात् संकल्प-विकल्प। जिसे भावकर्म नहीं है, उसके लिए निर्विकल्प। हमने भावकर्म का पूरा अस्तित्व ही उड़ा दिया। जो क्रमिक मार्ग में अंतिम अवतार में निकलता है, केवलज्ञान होने पर निकलता है, वह हमने यहाँ पर तुरंत ही उड़ा दिया। वर्ना 'आप'

निर्विकल्प कहलाते ही नहीं न! 'मैं चंदूभाई हूँ' वही विकल्प है, 'मैं इंजीनियर हूँ' वही विकल्प है, 'मैं जैन हूँ' वह विकल्प है, 'मैं बनिया हूँ' वह विकल्प है, 'पचास साल का हूँ' वह विकल्प है, ऐसे कितने ही विकल्प हैं। सभी विकल्प फ्रैक्चर हो गए।

अब, सिर्फ ज्ञानी ही इस भाषा को समझते हैं, बाकी, ये अज्ञानी लोग इसे कैसे समझेंगे? इसलिए लोग मूल चेतन को ऐसा समझते हैं कि चेतन ऐसा ही होता है। भाव यानी संकल्प-विकल्प किए बिना रहते ही नहीं।

भावकर्म अर्थात् व्यवहार आत्मा का संकल्प किया, इसे विकल्प करना कहा जाएगा। चेतन की स्फूरणा हुई इसमें, इसलिए इसमें पावर आया, *पुद्गल* में। *पुद्गल* पावर वाला बन गया। अब ज्ञान लेने के बाद में वह (पावर) नहीं भरता है और जो पुरानी बैटरी है, वह डिस्चार्ज होती रहती है।

खुद ने ज्ञान में देखा 'मूल' को और हुए स्तंभित

प्रश्नकर्ता : आपने हमें ज्ञान दिया, उससे पहले तो हमारा आत्मा, व्यवहार आत्मा था न?

दादाश्री : हाँ, नहीं तो और क्या था? इस व्यवहार आत्मा में रहकर आपने मूल आत्मा को देखा। उसे देखते ही स्तंभित हो गए कि, 'ओहोहो! इतना आनंद है!' इसलिए फिर उसी में रमणता चली। पहले रमणता संसार में, भौतिक में चल रही थी।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान भी उसे (व्यवहार आत्मा को) ही होता है?

दादाश्री : भान होता है, ज्ञान नहीं होता है। जो भान चला गया था, वह भान होता है उसे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि उसके बाद वही भान, ज्ञान तक परिणमित होता है? ऐसा है?

दादाश्री : हो गया, भान हुआ तो बस हो गया।

प्रश्नकर्ता : यानी कि, उसके ज्ञान में आ गया, ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : फिर जितने मील उल्टा चला है, उतने मील वापस आ जाए तो हो जाएगा कम्प्लीट, एकदम।

प्रश्नकर्ता : उसी को कहा है न, भान में आया कहा जाता है, ज्ञान नहीं कहा जाता। तो भान में, दर्शन में और ज्ञान में क्या अंतर है?

दादाश्री : वह भान तो दर्शन के बाद की चीज़ है। पहले दर्शन होता है। यानी कि पहले प्रतीति होती है, उसके बाद उसका संपूर्ण भान होता है। उसे भान बाद में होता है, लेकिन पहले प्रतीति बैठ जाती है कि यह जो कह रहे हैं, मैं वैसा ही हूँ। 'मैं वास्तव में चंदूलाल नहीं हूँ', उसे ऐसी प्रतीति बैठ जाती है। फिर उसके बाद में उसे भान होता है।

प्रश्नकर्ता : तब फिर भान होता है उसे। वह भान, और फिर ज्ञान तो उसके भी बाद में है?

दादाश्री : वह जो भान है, वही ज्ञान की निशानी है। रोज़-रोज़ भान होता जाता है। जितना अनुभव होता जाता है उतना ही भान होता जाता है। संपूर्ण भान प्रकट हो जाए, तब वर्तन में आता है। और वह वर्तन, वही केवलज्ञान है।

या तो भान में रहो या फिर ज्ञान में रहो। 'मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से मैं बिल्कुल असंग ही हूँ, मन-वचन-काया की आदतों को मैं जानता हूँ और मेरे स्व-स्वभाव को भी मैं जानता हूँ', ऐसा भान रहना चाहिए। बिलीफ और भान में अंतर है। बिलीफ और *लक्ष* तो, जब आपको ज्ञान दिया था, तभी तय हो गए थे। अब भान रहना चाहिए। बिलीफ आत्मा, *लक्ष* आत्मा, भान आत्मा, ज्ञान

आत्मा और अंत में पूर्ण हो जाता है, वह है चारित्र आत्मा। यह ज्ञान देने के बाद तुरंत ही आप बिलीफ आत्मा, *लक्ष* आत्मा में आ गए, उसके बाद भान आत्मा में आते हो। भान आत्मा में आ जाने के बाद आपको कुछ भी स्पर्श नहीं करता या बाधक नहीं होता। हम निरंतर ज्ञान आत्मा में रहते हैं, चारित्र आत्मा में नहीं आए हैं। चारित्र आत्मा में आ गए तो पूर्णत्व ही हो जाएगा। जो दोष होते हैं या हो चुके हैं, आपको उनका भान हो गया, तो दोष आपको छूएँगे ही नहीं।

टूटा कारण, व्यवहार आत्मा का

प्रश्नकर्ता : ज्ञान देने के बाद में ज्ञान क्रियाशील है इसलिए व्यवहार आत्मा कम होता जाता है?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा का कारण टूट जाता है। व्यवहार आत्मा का कारण भावकर्म है। भावकर्म को हम खत्म कर देते हैं यानी व्यवहार आत्मा खत्म हो गया। भावकर्म को ही खत्म कर दिया।

प्रश्नकर्ता : यानी ज्ञान देने के बाद में फिर व्यवहार आत्मा संपूर्ण रूप से खत्म हो जाता है?

दादाश्री : संपूर्ण रूप से खत्म हो जाता है। जितना आज्ञापालन करते हैं उतने अंशों तक भावकर्म रहता है। बाकी, भावकर्म को खत्म कर दिया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आज्ञा का पालन करने जितना भावकर्म तो रहता है न?

दादाश्री : उतना भावकर्म रहता है, उससे धर्मध्यान उत्पन्न होता है। कोई अगर आज्ञा का पालन न करे या कम पालन कर पाए तो उतना ही, उसे इससे जो सुख आना था न, वह नहीं आता, उससे परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, सफोकेशन होता है।

'मेरे नहीं हैं' करके तोड़ो आधार

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान मिलने के बाद हमें क्या करना बाकी रहा?

दादाश्री : वास्तव में प्रयोग करने चाहिए कि आनादिकाल से यह संसार किस आधार पर खड़ा है, जो आधार अभी तक टूटा नहीं है? उसके आधार को तोड़ते रहना पड़ेगा। अपना ज्ञान लेने के बाद में क्या तोड़ते रहना पड़ेगा? जिस आधार पर यह जगत् खड़ा है, संसार खड़ा है, उस आधार को तोड़ना चाहिए। अब कुछ लोगों का वह आधार टूट जाता है और कुछ का आधार अभी भी है। उस आधार को तोड़ते रहना है, और कुछ भी नहीं है।

अब यह संसार किस आधार पर खड़ा है? तो कहते हैं, मन में जो पर्याय हैं, मन की अवस्थाएँ हैं, उनमें आत्मा (व्यवहार आत्मा) तन्मयाकार हो जाता है इसलिए संसार खड़ा है। न तो बुद्धि परेशान करती है, न ही कोई और परेशान करता है। इसलिए मन के पर्यायों को तोड़ते रहना चाहिए। 'ये मेरे नहीं हैं, मेरे नहीं हैं', वहाँ पर बैठे-बैठे ही उसे हिलाते रहना चाहिए। उन्हें तोड़ता रहेगा, तो वह मुक्त हो जाएगा। अनादि से जो अभ्यास है न, वह मुक्त नहीं होने देता। उसमें उसे मिठास बरतती है। वह शुद्धात्मा को नहीं बरतती, अहंकार को बरतती है। इसलिए उसे तोड़ते रहना पड़ेगा। दोनों को अलग देखना पड़ेगा। 'मेरा नहीं है' कहा तब भी, उसे अलग रखा, कहा जाएगा। फिर उसे देख पाओगे।

पुद्गल ज्ञान पूर्ण होने पर, छूटें दोनों

प्रश्नकर्ता : व्यवहार आत्मा को भी भगवान बनाना है और *पुद्गल* को भी भगवान बनाना है, तो कैसे बनाना है?

दादाश्री : यह जो बना रहे हो, वैसे। ज्ञानी के पास बैठोगे तो फिर आप उतने ही ज्ञानी बनोगे। मैं सर्वज्ञ के पास रहता हूँ तो मैं सर्वज्ञ बनूँगा। आप मेरे साथ रहोगे तो मेरे जैसे बन जाओगे। ऐसे करते-करते, होते-होते सब हो रहा है।

पुद्गल को व्यवहार आत्मा कहते हैं। तो व्यवहार आत्मा का खुद का ज्ञान कितना है? कि इतना हो गया है। लेकिन जब पूर्णाहुति

होगी तब दोनों का छुटकारा हो जाएगा। जब तक दोनों पूर्ण नहीं हो जाते तब तक छुटकारा नहीं होगा।

आत्मा का ज्ञान तो संपूर्ण ही है। आत्मा तो ज्ञानी ही है और जितना *पुद्गल* का आवरण हटता है, उतना ज्ञान प्रकट होता है, बस! अतः *पुद्गल* का ज्ञान वहाँ आकर रुक जाता है। तो (कहते हैं,) इतनी डिग्री तक पहुँचा है यह।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान *पुद्गल* का है या आत्मा का है?

दादाश्री : ज्ञान भी *पुद्गल* का ही है। आत्मा सर्वस्व ज्ञानी है। लेकिन यहाँ इनती डिग्री तक जितना *पुद्गल* का आवरण हटा, उतना ही *पुद्गल* का ज्ञान प्रकट होता है।

प्रश्नकर्ता : आवरण हटने से चेतन का ज्ञान प्रकट हुआ न?

दादाश्री : हाँ, प्रकट हुआ। फिर भी ज्ञान तो आत्मा में है ही पूरा-पूरा। जिसे प्रकट हो गया, उसी का ज्ञान। ज्ञान तो आत्मा का है, लेकिन यह प्रकट किसमें हुआ है कि इतनी डिग्री प्रकट हो गई? ज्ञान, वह ज्ञान *पुद्गल* का है।

प्रश्नकर्ता : वह *पुद्गल* का कहा जाएगा?

दादाश्री : वह *पुद्गल* का है। आत्मा का ज्ञान तो पूर्ण ही है, लेकिन अंत में जब *पुद्गल* का ज्ञान पूर्ण हो जाएगा तब मोक्ष में जाएगा। क्योंकि इन दोनों को बराबर कर देना है। भावना कर-करके, उसी रूप बनाना है। *पुद्गल* को भगवान बनाना है। जब 'खुद', 'उसके' जैसा हो जाएगा, तो मुक्त हो जाएगा। फिर पूर्णाहुति। धीरे-धीरे भावना कर-करके, इस *पुद्गल* को भगवान बनाना है। ज्ञानी बने हैं, इसलिए अभी तो थोड़ा बाकी बचा है, कमी है। अब, ज्ञानी को आत्मा नहीं कह सकते, *पुद्गल* कह सकते हैं। दरअसल आत्मा तो संपूर्ण सर्वज्ञ है।

अंत में जब खुद के स्वरूप को जानेगा, उसके बाद कभी न कभी स्वरूपमय हो जाएगा। पहले श्रद्धा में आता है, फिर धीरे-धीरे ज्ञान में आता है और उसके बाद वर्तन में आता है। जब वर्तन में आ जाएगा तो पूर्ण हो जाएगा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप पूर्ण हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है और स्व-पर प्रकाशक है। जब खुद पूर्ण आत्मस्वभाव में आ जाता है, उसके बाद उसे बाहर के सारे दृश्य देखना बाकी ही नहीं रहता। खुद के आत्मा का ही देखता रहता है।

दादाश्री : नहीं! व्यवहार आत्मा स्व-पर प्रकाशक बनता है। मूल आत्मा खुद स्व का भी नहीं है और पर का भी नहीं है, संपूर्ण प्रकाशक है। उसके लिए कोई विशेषण है ही नहीं। निर्विशेष है। ये सारे जितने भी विशेषण हैं, वे व्यवहार आत्मा के हैं। मूल आत्मा के लिए, यदि भगवान विशेषण होता तब तो विशेषण चले जाने पर फिर भगवान ही कहाँ रहे? विशेषण का स्वभाव ऐसा है कि कुछ समय बाद फिर वह चला जाता है।

[3]
पावर चेतन

[3.1]
पावर चेतन का स्वरूप

शुद्ध चेतन अक्रिय, करे क्रिया पावर चेतन

शुद्ध चेतन इस जगत् में कुछ करता ही नहीं है। चेतन के बिना चलता रहता है। अब यह बात ऐसी है कि समझ में न आए। यह कहीं नहीं बताता। आपके सामने थोड़ी बातें बताई हैं। मूल चेतन का तो उपयोग ही नहीं होता।

आत्मा जितना शुद्ध है न, अंदर भी वह वैसा ही है। उसमें कोई बदलाव नहीं आया है और आप यह जो इंजीनियर के तौर पर काम करते हो, उसमें आत्मा नहीं है, चेतन नहीं है। क्या इसमें चेतन हो सकता है, काम करने में?

प्रश्नकर्ता : यह जो काम करते हैं, उसमें चेतन नहीं है लेकिन चेतन की वजह से काम होता है। हम लिखते हैं तो लिखने में चेतन नहीं है लेकिन चेतन की वजह से लिख पाते हैं। हर एक कार्य चेतन के आधार पर होता है।

दादाश्री : इस तरह यदि उपयोग किया जाए तो चेतन खत्म ही हो जाएगा। अत: यह पूरा जगत् काम कर रहा है न, उसमें चेतन बिल्कुल भी काम नहीं करता है। अर्थात् रियली स्पीकिंग (वास्तव में कहें तो) दे आर टॉप्स, वे लट्टू हैं। मैं आपको यह समझाता हूँ कि सारा काम किस तरह से होता है। यह लगता है चेतन जैसा। लोगों को ऐसा ही लगता है न, कि, 'मैं ही हूँ चेतन। मेरा आत्मा इसी में है!' लेकिन यह आत्मा नहीं है। यह तो, आत्मा की उपस्थिति है इसमें, शरीर में आत्मा हाज़िर है। आत्मा हो, चेतन हो तभी यह शरीर चलता है, वर्ना शरीर बंद हो जाएगा।

लेकिन वह आत्मा इसमें कुछ करता ही नहीं है। जैसे कि सूर्यनारायण की उपस्थिति से ये लोग कई प्रकार के काम करते हैं। उससे ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, कई और चीज़ें करते हैं, ऐसे तरह-तरह के काम कर सकते हैं न!

इसमें जिसे पूरा जगत् चेतन मान रहा है न, वह (इस काल में) सिर्फ मैं अकेला ही कहता हूँ कि आप जो कार्य करते हो, उसमें चेतन नहीं है। अंदर ऐसा आत्मा है जो इन तमाम कार्यों से परे है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या जड़ करता है?

दादाश्री : जड़ भी कुछ नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : हाँ। तो फिर यह कौन करता है?

दादाश्री : वह पावर चेतन करता है। पावर चेतन यानी जो न तो जड़ है और न ही चेतन।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, जड़ भी नहीं करता है और शुद्ध चेतन भी नहीं करता।

दादाश्री : तो कोई करने वाला तो होना चाहिए न? हू इज़ रिस्पॉन्सिबल (कौन ज़िम्मेदार है)? तो क्या परमाणु कर्ता है? तो कहते

हैं कि परमाणु शुद्ध होते हैं, वे कर्ता नहीं हो सकते। उनका भी स्वभाव तो क्रियाकारी है। सक्रिय है स्वभाव, लेकिन कर्तापन नहीं होता वहाँ पर। यह गुण *पुद्गल* का है। तो *पुद्गल* का मतलब क्या है? वह जो कि पावर चेतन वाला है, वह *पुद्गल* करता है। यह पावर चेतन जिसे हमने मिश्रचेतन कहा है। वास्तव में वह चेतन नहीं है, मिश्रचेतन है। वह चेतन जैसे ही सारे कार्य करता है लेकिन चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पावर चेतन कहा न, आपने।

दादाश्री : हाँ, अपनी भाषा में इस विज्ञान का खुला किया है। क्योंकि मिश्रचेतन लोगों को समझ में नहीं आता, इसलिए हमने पावर चेतन कहा। इसका भावार्थ क्या है? कि भाई, चेतन की उपस्थिति में, उसके स्पर्श से *पुद्गल* भी पावर चेतन बन जाता है।

पुद्गल न तो शुद्ध जड़ है न ही शुद्ध चेतन, लेकिन पावर चेतन है

प्रश्नकर्ता : इस *पुद्गल* में और आत्मा में जो भिन्नता है, तो एक में जड़ता है और दूसरे में चैतन्य है?

दादाश्री : नहीं। दोनों में ही चैतन्य है।

प्रश्नकर्ता : यदि दोनों में चैतन्य है, जड़ में भी चैतन्य है और आत्मा में भी चैतन्य है तो फिर भेद ही कहाँ रहा?

दादाश्री : यह जो जड़ में चैतन्य है न, वह पावर चैतन्य है। पावर चैतन्य अर्थात् जैसे टॉर्च में पावर भरे सेल होते हैं तो वह लाइट देती है लेकिन अगर पावर खत्म हो जाए तो? लेकिन मूल चैतन्य तो वही है और यह पावर चैतन्य है।

जिस तरह बैटरी के सेल में पावर भरता है, और पावर भरने वाली जो मशीन है, वह तो वैसी की वैसी ही रह गई लेकिन यह भरा हुआ यहाँ पर आ पड़ा है अब। इसी प्रकार से आत्मा की उपस्थिति से पावर भर जाता है। वह पावर फिर फल देता है।

आत्मा के अलावा बाकी सभी कुछ *पुद्गल* है। अब, वे बेचारे तो यही समझते हैं कि *पुद्गल* यानी कि जड़। अरे भाई! नहीं है यह जड़। आत्मा का जो पावर है, वह इस *पुद्गल* में भर गया और *पुद्गल* पावर वाला बन गया।

प्रश्नकर्ता : तो *पुद्गल* चेतनवंत हो गया?

दादाश्री : चेतन, *पुद्गल* में है ही नहीं। समाज में ऐसी भ्रांति है, उसे केवलज्ञानी के अलावा और कोई नहीं निकाल सकता। चेतन, *पुद्गल* के अंदर रह ही नहीं सकता। यह तो पावर चेतन है। पावर चेतन अर्थात् इस चेतन की उपस्थिति में *पुद्गल* क्रियाकारी हो जाता है।

अब, पावर चेतन को प्रकृति कहते हैं। वह प्रकृति कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट करती रहती है।

प्रश्नकर्ता : इस प्रकृति में पावर चेतन ही है तो क्या उसमें जड़ विभाग बिल्कुल भी नहीं है?

दादाश्री : वास्तव में तो प्रकृति जड़ ही है और उस जड़ में पावर घुस गया है।

इसे सिर्फ जड़ तो कह देते हैं लेकिन सिर्फ जड़ तो कुछ भी नहीं करता लेकिन इसमें पावर चेतन भरा हुआ है। इन (मन-वचन-काया की) तीन बैटरियों का फिर निरंतर डिस्चार्ज होता रहता है। पावर भरी हुई बैटरियों का जो डिस्चार्ज होता है, उसे इफेक्ट कहते हैं।

प्याले में यदि बर्फ हो और प्याले को यहाँ पर रखें, तो बाहर पानी कहाँ से इकट्ठा हो जाता है? उस पर पानी की धाराएँ बनती हैं। बाहर पानी की बूंदे कहाँ से जम गईं? अंदर बर्फ वाला प्याला है। उससे जब हवा स्पर्श हुई, तो हवा में जो मॉइस्चर (नमी) था, उससे पानी बन गया। और वह हमें यों सीधी तरह से दिखाई नहीं देता, बुद्धि से समझ में आता है। लोग समझाते हैं कि ऐसा-ऐसा हो

गया तब फिर उसे समझ में आता है। लेकिन तत्त्वों के बारे में समझ में नहीं आता। यहाँ पर भी ऐसा ही हो गया है, तो फिर लगता है कि ऐसा कैसे हो सकता है? जिस प्रकार विज्ञान से ये पानी की धाराएँ बनती हैं, उसी प्रकार विज्ञान से यह प्रकृति बन गई है। लोग जो समझते हैं, प्रकृति का अर्थ वह नहीं है। प्रकृति तो उत्पन्न हो गई है। लोग ऐसा कहते हैं कि 'यह तो भगवान ने रची'। कहते हैं 'भगवान ने लीला की।'

जड़ कुछ भी नहीं करता, सबकुछ पावर चेतन करता है

प्रश्नकर्ता : चैतन्य, पावर चेतन और जड़, इनमें क्या विशिष्टता समझाई गई हैं?

दादाश्री : इनमें से जो चैतन्य है, वह दरअसल चैतन्य है, 'मूल आत्मा' है, और जड़ में जो पावर भरता है, वह पावर चेतन (मैं चंदू) है। वह पावर भरा इसलिए फिर पावर वाला उछल-कूद करता है और सभी कुछ करता है।

प्रश्नकर्ता : जड़ अकेला ऐसा नहीं करता लेकिन पावर चेतन ऐसा करता है।

दादाश्री : जड़ तो कुछ करता ही नहीं है। जड़ अपने स्वभाव में रहता है। लेकिन यह जो 'पावर चेतन' है न, वह तो गालियाँ देता है, पत्थर मारता है, सभी कुछ करता है। कलेक्टर भी बनता है व प्रधानमंत्री भी बनता है यह पावर चेतन, दरअसल चैतन्य नहीं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जो भावनिद्रा में है, उसे पावर चेतन कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, भावनिद्रा वाला।

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या ऐसा नहीं कह सकते कि ये जो जड़ और चैतन्य हैं, इन दोनों के पास में आने से सामीप्य भाव हुआ और उससे जो विशेष भाव हुआ, वह पावर चेतन कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, विशेष भाव ही पावर चेतन है। चेतन नहीं है फिर भी यह सब चेतन जैसा दिखाई देता है। इस दुनिया में सभी पुतले चेतन नहीं हैं, इसके बावजूद चेतन जैसे दिखाई देते हैं। अर्थात् लोग कहते हैं कि 'मुझे इसने ऐसा किया, इसने वैसा किया।' कोर्टें चलती हैं, कोर्ट में मजिस्ट्रेट भी चेतन नहीं हैं, फिर भी चेतन जैसे दिखाई देते हैं और गाड़ी चलती रहती है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह जो जड़ है, वहाँ जब पावर चेतन आता है, तब चेतन की उपस्थिति में जड़ जीवंत रूप से कुछ काम करता हुआ दिखाई देता है, ऐसा है न?

दादाश्री : चेतन की उपस्थिति में इतनी अधिक जड़ शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह जो चाहे कर सकती है। वह जीवित व्यक्ति जितनी ही उछल-कूद करती है।

प्रश्नकर्ता : जैसे कि यों अपना शरीर चलता है, तो आत्मा तो कुछ करता नहीं है यानी कि आत्मा की उपस्थिति में शरीर काम कर रहा है।

दादाश्री : आत्मा की उपस्थिति में इसमें अंदर पावर उत्पन्न होता है। इस शरीर में पावर प्रवेश करता है और जब तक पावर है, जब तक उस बैटरी में चार्ज है तब तक वह पावर से चलती है। अगर फिर से पावर नहीं भरा जाए तो बैटरी खत्म हो जाएगी।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अलग, व्यवहार अलग

प्रश्नकर्ता : तो फिर हर एक व्यक्ति की बैटरी अलग-अलग क्यों चार्ज होती है? अगर आत्मा एक ही है तो फिर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार अलग-अलग क्यों चार्ज होते हैं?

दादाश्री : अलग-अलग यानी इलेक्ट्रिसिटी एक ही तरह की है, बिजली एक ही तरह की है लेकिन ये लाइट, पंखे, रेडियो, हर एक चीज़ अलग-अलग तरह का काम करती है न! यानी कि जो

साधन हैं, उनकी मारफत। अतः खुद कुछ भी नहीं करता है। खुद जाता भी नहीं है। उसकी खुद की उपस्थिति में इनके जो गुण हैं वे उत्पन्न होते हैं और निरंतर इग्ज़ॉस्ट होते रहते हैं। करवाना नहीं पड़ता, वह इफेक्ट है। इफेक्ट का मतलब क्या है? अपने आप ही उसका परिणाम आता रहता है। अपने आप ही, अगर कॉज़ेज़ हैं तो फिर वापस नया भरता रहता है और फिर इफेक्ट (परिणाम) आता रहता है।

वस्तु तो एक ही प्रकार की है लेकिन उसके साथ वाली चार वस्तुओं में फर्क है। हर एक जीव अपने क्षेत्र पर खड़ा है। आपका क्षेत्र अलग है, मेरा क्षेत्र अलग है, जीवमात्र का क्षेत्र अलग है। इसलिए उसे अलग-अलग क्षेत्र से फल मिलता है, और फिर काल अलग है। जब काल बदलता है, मेरा काल बदलता है तो मुझे वह अलग क्षेत्र देता है, आपको अलग देता है। काल तो एक ही प्रकार का लागू होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। अब, द्रव्य क्या है? तो कहते हैं कि जो पिछले जन्म की प्रकृति थी वह। फिर यह उसका क्षेत्र, यह काल, और फिर भाव उत्पन्न होता है उसे। जो रिश्वत नहीं लेता है, उसमें कैसा भाव उत्पन्न होता कि, 'अब लेनी चाहिए।' अर्थात् हर एक का अलग-अलग ही होता है, उसी वजह से सारा व्यवहार है। आत्मा तो, चेतन तो एक ही प्रकार का है, व्यवहार अलग-अलग है। और व्यवहार चेतन नहीं है। व्यवहार निश्चेतन चेतन है। और उसी को चेतन मानते हैं, वही यह भ्रांति है।

आत्मा की उपस्थिति से चलती है, देह रूपी मशीनरी

प्रश्नकर्ता : कोई बॉडी (शरीर) पड़ी हुई हो, उसमें से आत्मा निकल गया है, तो उस पर कोई इफेक्ट नहीं होता। लातें मारी जाएँ या चाहे कुछ भी किया जाए। अब, आत्मा के साथ क्या ऐसी अन्य कोई चीज़ है जो कि *लागणी* (सुख-दुःख का असर, भावुकता वाला प्रेम) प्रदर्शित करती है?

दादाश्री : हाँ, आत्मा की उपस्थिति की वजह से ही वे भावनाएँ *(लागणी)* दिखाई देती हैं, वर्ना भावनाएँ दिखाई नहीं देंगी।

प्रश्नकर्ता : वे कौन सी चीज़ें हैं?

दादाश्री : यही सब, अंत:करण और क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह, वही इन्हें (*लागणी* को) दर्शाते हैं, आत्मा की उपस्थिति की वजह से। आत्मा नहीं होगा तो ये नहीं रहेंगे। आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता। यह सब यों ही आत्मा की उपस्थिति से चल रहा है। आत्मा की उपस्थिति से क्या-क्या नहीं हो सकता?

ममत्व से, जड़ बना चेतन

प्रश्नकर्ता : आत्मा अमर है, मरता नहीं है, कटता नहीं है, जलता नहीं है जबकि यह शरीर तो जड़ है लेकिन जब इस शरीर को कोई चोट लगती है, हाथ कट जाता है या ऐसा कुछ होता है, तो फिर उससे दु:ख क्यों होता है?

दादाश्री : ऐसा है न, शरीर बिल्कुल ही जड़ नहीं है। हाँ, पावर भरा हुआ है इसलिए दु:ख होता है। जीवमात्र सुख या दु:ख, किसी एक असर में, इफेक्ट में रहता ही है और जड़ अर्थात् जिस पर सुख और दु:ख दोनों का असर नहीं होता।

जड़ तो कब कहा जाएगा? अंदर से आत्मा निकल जाए, उसके बाद में जड़ कहलाता है। फिर चाहे उसे काटा जाए तब भी कोई दिक्कत नहीं। जबकि इसमें तो पावर भरा हुआ है।

और दूसरा, इस जड़ में चेतन बिल्कुल भी नहीं है, लेकिन जितनी ममता है उतना ही इसमें चेतन है। हम इसे (तिपाई को) दूसरी जगह पर रख दें तब अगर सेठ को उस पर ममता है तो उसे दु:ख होगा। अगर ममता नहीं है तो कोई परेशानी नहीं होगी।

अर्थात् जड़ में ममत्व चेतन है। रेडियो पर ममता हो तो उसमें चेतन है और अगर ममता चली जाए तो उसमें चेतन नहीं है, यानी कि आप बदल सकते हो।

प्रश्नकर्ता : और अगर ममता है तो चेतन है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : यदि ममता है तो मुझे दु:ख होगा, और दु:ख होता है इसलिए उस हद तक वह चेतन है।

बिलीफ के रूप में आया, पावर चेतन का पावर

वह पावर चेतन यानी 'मैं', सुख-दु:ख का वेदन करता है। फिर जब दु:ख ही मिलता है तब दु:ख में से छुटकारा ढूँढता है, वही मोक्ष।

उस 'मैं' पर जब दु:ख पड़ता है तब आत्मा को कुछ भी स्पर्श नहीं करता लेकिन अब उसे यह दु:ख होना बंद कैसे हो सकता है? उस दु:ख का अनुभव होता है न! क्योंकि मैंपन की बिलीफ है। बिलीफ का मतलब क्या है कि इसमें चेतन का पावर भरा हुआ है, (मैं यह हूँ ऐसा) मान लिया है इसलिए। कैसा पावर आया चेतन का? बिलीफ रूपी। उस पावर का दु:ख है। वह पावर इसमें है न, इसलिए दु:ख है। अगर पावर निकल जाए तो दु:ख चला जाएगा। यानी कि सेल में से पावर खत्म हो जाने के बाद सेल खाली! व्यतिरेक गुणों से यह पावर उत्पन्न हुआ है। इसे व्यवहार आत्मा कहा जाता है। वास्तव में आत्मा नहीं है, प्रतिष्ठित आत्मा है।

अब 'उसे' शुद्ध आत्मा की बिलीफ नहीं बैठती, उसे पावर चेतन की बिलीफ बैठती है। इसलिए उस अज्ञानता को लेकर अपना यह संसार खड़ा हो गया है। बाकी, आत्मा तो भगवान ही है। लेकिन इन संयोगों की वजह से आज उसकी यह मूढ़ दशा उत्पन्न हो गई है। मूढ़ दशा का मतलब यह कि 'उसे' भौतिक सुखों की इच्छा हुई। खुद निरा सुख का धाम है, निरंतर सुख का धाम है खुद ही, फिर भी आज ऐसी दशा हो गई है। यानी कि 'उसे' इन भौतिक सुखों की भावना हुई है, मूल आत्मा को नहीं। आत्मा में से उत्पन्न हुआ है, पावर चेतन। उस पावर चेतन से यह सब चलता है।

जो प्रतिष्ठित आत्मा है, वह पावर आत्मा है। उसमें पावर उत्पन्न

हो गया है। यह सबकुछ पावर आत्मा ही चलाता है। शुद्ध चैतन्य तो यों ही ज्ञाता-द्रष्टा के रूप में रहता है, हमेशा के लिए। उसमें कोई बदलाव नहीं होता। और जो शुद्ध चैतन्य है, वही परमात्मा है और पावर आत्मा, वह जीव है। जबकि मूल आत्मा शिव है। यह जीव, अगर अपने जीवपन को समझ जाए तो शिव बन जाएगा। जीव *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख, परेशानी) स्वरूप है और चेतन निरुपाधि स्वरूप है। दोनों तत्त्व एकाकार हो गए हैं, और वह तो फिर जब ज्ञान से इन दोनों तत्त्वों को अलग किया जाता है तब छूटते हैं।

व्यवहार आत्मा नहीं समझ में आता, इसलिए कहा पावर चेतन

प्रश्नकर्ता : वह पावर चेतन कहाँ है?

दादाश्री : अंदर ही है। जो खाता है और संडास जाता है, पानी पीता है और बाथरूम जाता है, जो श्वास लेता है, वह पावर चेतन है। पावर चेतन चंचल है। मूल चेतन चंचल नहीं है, अचल है वह। इसीलिए आत्मा को सचराचर कहा गया है। इसे अगर चेतन कहते हो तो उसका कब हल आएगा?

प्रश्नकर्ता : सही है, शास्त्रों में आत्मा को सचराचर कहा गया है।

दादाश्री : दो आत्मा हैं, इसे व्यवहार आत्मा माना जाता है और उसे निश्चय आत्मा कहा जाता है। अब व्यवहार आत्मा में चेतन कहाँ से आया? निश्चय आत्मा कहीं चेतन नहीं देता, न ही निश्चय आत्मा की पार्टनरशिप (साझेदारी) है, तब फिर व्यवहार (आत्मा) में चेतन कहाँ से आया? तो वहीं पर यह पूरा विज्ञान है कि, 'यह आत्मा है और आसपास बाकी का सारा *पुद्गल* है'। तो आत्मा की उपस्थिति से, उसमें अंदर पावर भर जाता है। मन-वचन-काया की बैटरियों में पावर भरा जाता है। जब नया भरना बंद हो जाएगा तब मोक्ष हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा हुआ न, कि यह जो भाव करवाता है, इस दुनिया का लालच करवाता है, वह सारा व्यवहार आत्मा करवाता है?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा। व्यवहार आत्मा का ही दखल है यह सारा। अब इसमें से पावर चेतना उत्पन्न हुई, उसे क्या कहते हैं, उस चेतना को? तो कहते हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ। व्यवहार आत्मा है, वही पावर आत्मा है। व्यवहार आत्मा विनाशी है और निश्चय आत्मा अविनाशी है। (आत्मा) सचराचर है। सचर अर्थात् यह पावर आत्मा और अचल अर्थात् मूल आत्मा। मूल आत्मा अचल ही है, स्थिर ही है और यह अस्थिर है। भगवान ने उसे व्यवहार आत्मा कहा है और निश्चय आत्मा को अचर कहा है।

भगवान ने अन्य जिन शब्दों में बताया है, अभी यदि उन शब्दों में बताएँगे तो लोगों को समझ में नहीं आएगा, इसलिए मैं पावर आत्मा कहता हूँ। इन्हें समझ में आ जाए, उस प्रकार से।

हमें तो अनुभव हुआ है, वही हम बताते हैं और वही गीता है और वही चार अनुयोग हैं। हम देखकर बोलते हैं और उसकी जोखिमदारी रहती है न? क्या हम भगवान महावीर की जोखिमदारी पर बोल रहे हैं? बोलें हम, और जोखिमदारी भगवान महावीर की?

भगवान ने व्यवहार आत्मा और निश्चय आत्मा, ये दो बताए हैं। जब तक खुद अज्ञान को जानता है तब तक वह व्यवहार आत्मा है और जब खुद ज्ञान को जानता है तब वह निश्चय आत्मा है। जब तक अज्ञान को जानता है तब तक पावर आत्मा है और जब ज्ञान को जानता है तब वास्तविक आत्मा है, बस। जब तक अज्ञान को जानता है तब तक सचल है और जब ज्ञान को जानता है तब अचल है।

यह सचर ही है! इसे पावर आत्मा कहा गया है। सभी बैटरियाँ देख ली हैं न, अब तो? इसलिए समझ में आ जाएगा। स्पष्टता हो जानी चाहिए न, पूरी? ये तीन पुरानी बैटरियाँ खत्म हो जाती हैं और

नई बैटरियाँ चार्ज होती हैं। तो हम नई बैटरियों का चार्ज होना बंद कर देते हैं। बैटरियाँ चार्ज ही नहीं होंगी तो चलेंगी कैसे? कितने जन्म लेने हैं अब? एक-दो जन्मों में निबेड़ा लाना है या नहीं?

व्यवहार पूरा ही पावर चेतन का है, मिकेनिकल

प्रश्नकर्ता : दादा, पावर चेतन चलता किस तरह से है?

दादाश्री : यह पावर चेतन है, यह वास्तविक चेतन नहीं है। यह मिकेनिकल चेतन है। पावर चेतन अर्थात् उसमें अगर पेट्रोल डालते हैं या ऑइल डालते हैं, गर्मी देते हैं, तभी वह चलता है।

पूरी दुनिया की मशीनें जितना काम कर रही हैं, उनसे भी बड़ी कोई मशीनरी हो तो वह (शरीर के) अंदर है। जो अंदर यों ही चलती रहती है। तो ये बाहर का करने वाले आए हैं बड़े, देखो तो सही! सभी नैमित्तिक दिखाई देते हैं, इस चक्कर में घूमते रहते हैं। फिर उसमें खुद कहता है, 'मैं हूँ'। अरे, यह तो मिकेनिकल है, इसमें तेरा क्या है?

इस शरीर में, इन्द्रियों में, बोलने-करने में, व्यवहार करने में, किसी में भी चेतन है ही नहीं, पावर चेतन है। दिस इज़ द न्यू इन्वेन्शन, टॉपमोस्ट! (यह नई खोज है, सर्वोत्तम!)

प्रश्नकर्ता : ये जो हाथ हिलाते हैं या पैर हिलाते हैं, वह सारा पावर चेतन है?

दादाश्री : हाँ, पावर चेतन है। जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं, कलेक्टर बनते हैं, डॉक्टर बनते हैं, प्रधानमंत्री बनते हैं, ज्ञानी बनते हैं, वे सभी पावर चेतन हैं। ज्ञानी अर्थात् पावर चेतन।

यह संसार चलता रहता है। विवाह करते हैं, शादी करते हैं, खाते हैं, कलेक्टर बनते हैं, पढ़ाई करते हैं, बैरिस्टर बनते हैं, वकील बनते हैं, डॉक्टर बनते हैं, वह सारा पावर चेतन है। वह वास्तविक चेतन नहीं है। चाबी लगाए हुए पुतले हैं, ये जो पावर भरे हुए खिलौने

हैं, उनका इलाज करते हैं ये डॉक्टर। वे चेतन का इलाज नहीं करते, इन खिलौनों का इलाज करते हैं और इसीलिए ऑपरेशन हो पाते हैं। वर्ना चेतन का ऑपरेशन तो हो ही नहीं सकता। यह समझने जैसा है। यह ज्ञान लेने के बाद में जब मुझसे मिलोगे न, तो सब समझाऊँगा।

यह इतना सबकुछ किसी पुस्तक में नहीं है, हम जो बात बता रहे हैं, वह। इस साइन्स को तो मैंने देखा है, एक्ज़ेक्ट है यह तो।

अंश ज्ञान पर जाने से खोया सर्वांश

प्रश्नकर्ता : तो अभी यह जो डॉक्टरी ज्ञान है, वकील का ज्ञान है, यह सब पढ़ते हैं तो यह सारा ज्ञान पावर चेतन में आता है?

दादाश्री : नहीं तो और किसमें? अरे, किसी डॉक्टर ने हज़ारों लोगों के यूरिन (पेशाब) के रोग मिटाए हों तब भी वह डॉक्टर अस्सी साल की उम्र में क्या कहता है? 'अरे दादाजी, क्या बात कर रहे हैं? पेशाब की एक बूंद भी नहीं निकलती। एक बूंद निकालते-निकालते तो मुझे कितनी घबराहट हो जाती है!' अरे भाई, कई लोगों को तूने पेशाब करवाया है, तो अब क्या है? 'एक बूंद भी नहीं निकलती', ऐसा कहता है। बोलो!

प्रश्नकर्ता : तो फिर वहाँ पर पावर चेतन का फंक्शन (कार्य) है?

दादाश्री : नहीं तो और किसका?

प्रश्नकर्ता : वैसा जो कहते हैं न, 'पूरे जगत् के सभी जीवों के ज्ञान का समावेश एक आत्मा में है, ऐसा देखें तो फिर वह ज्ञान और यह हमने जो अभी बात की, कि यह डॉक्टर का ज्ञान भी पावर चेतन है, वकील का ज्ञान भी पावर चेतन है, तो इन दोनों चीज़ों के बीच में क्या संबंध है?

दादाश्री : जैसा पावर चेतन उत्पन्न करना हो वैसा हो सकता है, लेकिन इसलिए हो सकता है क्योंकि चेतन की उपस्थिति है।

प्रश्नकर्ता : तो मूल चेतन में यह सारा ज्ञान है?

दादाश्री : तमाम प्रकार के ज्ञान हैं, इसीलिए पावर चेतन उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : तो मूल चेतन में वह ज्ञान हमेशा ही रहता है?

दादाश्री : वह तो सारा, पूरी दुनिया का, ब्रह्मांड का ही ज्ञान है उसमें। लेकिन एक अंश की ओर गया इसीलिए उसने उस सर्वांश को खो दिया।

प्रश्नकर्ता : एक अंश की ओर गया, मतलब?

दादाश्री : अर्थात् सिर्फ डॉक्टर के ज्ञान को ही निरावृत्त करने जाता है इसलिए बाकी सारे पर अंधेरा छा जाता है।

अनंत जन्मों से अंदर चेतन के होने के बावजूद एक प्रतिशत भी उपयोग नहीं हुआ है। उसे यदि जानना है तो यह लास्ट फिलोसॉफी (अंतिम तत्त्वज्ञान) है। अत: इस संसार में जानने योग्य वस्तु बस इतनी ही है, और ये सब खोज हुई हैं, तो इनमें चेतन का एक सेन्ट भी उपयोग नहीं हुआ है, वह आपको कैसे समझ में आएगा?

उपस्थिति से होते हैं कार्य, फिर भी आत्मा रहा है अक्रिय

प्रश्नकर्ता : चेतन यदि कुछ भी नहीं कर सकता तो उसे चेतन कैसे कहा जा सकता है?

दादाश्री : चेतन तो है ही, चेतन के बिना तो काम ही नहीं हो सकता न! यह तो ऐसा है कि यदि आत्मा इस शरीर में है, तभी आप जीवित रह सकते हो और तभी आप ये सारे कार्य कर सकते हो। आत्मा कुछ भी नहीं करता है, उपस्थिति ही है सिर्फ। आत्मा की उपस्थिति से अंदर सभी काम होते हैं। उपदेश दिए जा सकते हैं, सब दिया जा सकता है लेकिन आत्मा नहीं देता है। आत्मा की उपस्थिति से ही होता है यह।

जिस प्रकार सूर्य का उपयोग करके हम यहाँ पर किसी भी प्रकार का पावर उत्पन्न कर सकते हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि सूर्य हमें पावर देता है। सूर्य इसमें हाथ भी नहीं डालता। और उस पावर से हम यहाँ भोजन बनाते हैं, नहाने-धोने का पानी गर्म करते हैं और सब काम करते हैं तो इससे सूर्य को कोई लेना-देना नहीं है। उसकी उपस्थिति से ही सबकुछ हो रहा है। उसी प्रकार से आत्मा की उपस्थिति से यह सब हो रहा है। आत्मा खुद कर्ता नहीं है। खुद अक्रिय है। जो कुछ भी नहीं कर सकता, उसे कहते हैं चेतन। कुछ करना हो फिर भी कर नहीं सकता और अगर करना हो तो इस पावर चेतन से यदि पुतला बने तो वह कर पाएगा, वर्ना हो ही नहीं सकता।

ये तो बहुत गहरी बातें हैं। हमने तो लोगों से इतना कह दिया है कि इंसान में जहाँ चेतन मानते हैं, वहाँ पर चेतन नहीं है और जहाँ चेतन को जानते नहीं हैं, उस जगह पर चेतन है और चेतन तो खुद परमात्मा है। चेतन कभी भी अचेतन नहीं बन सकता और अचेतन कभी भी चेतन नहीं बन सकता।

प्रश्नकर्ता : तो इतनी सारी क्रियाएँ होती हैं, इनमें आत्मा करता क्या है?

दादाश्री : आत्मा सारी क्रियाओं का ज्ञाता-द्रष्टा ही है, ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी है। उसमें क्रियाशक्ति नहीं है और लोग आरोप लगाते हैं कि उसी ने किया है। लेकिन आत्मा में क्रियाशक्ति है ही नहीं, ज्ञाता-द्रष्टा शक्ति ही है। उसमें अन्य कोई कर्ता शक्ति है ही नहीं। कर्ता शक्ति जड़ में है। यह बात इन लोगों को कैसे समझ में आएगी?

गुप्त विज्ञान तीर्थंकरों का, खोल दिया दादा ने

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन मूल आत्मा है तभी यह सारा पावर चेतन और बाकी सब उत्पन्न हुआ तो यह सारी रामायण मूल आत्मा की नहीं कही जाएगी?

दादाश्री : नहीं, यह मूल आत्मा की रामायण नहीं है। *पुद्गल* में पावर आत्मा उत्पन्न हो गया है, उसी की यह सारी रामायण है। पावर आत्मा, उस आत्मा जैसा ही फल देता है।

पहला एडजस्टमेन्ट यह है कि चेतन की उपस्थिति से पावर चेतन उत्पन्न होता है और उसी से आगे सारी मशीन चलती है। पावर चेतन में 'खुद' उसका कर्ता नहीं है, उसकी उपस्थिति से होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मूल आत्मा की सिर्फ उपस्थिति ही है लेकिन पावर चेतन उत्पन्न हो गया, उसमें उसका कर्तापन नहीं है?

दादाश्री : वह खुद पावर नहीं भरता है। बैटरी का स्वभाव ही ऐसा है कि आत्मा को देखकर, वह पावरफुल (पावर वाला) हो जाती है। और फिर वह पावर धीरे-धीरे-धीरे, जैसे सेल खर्च हो जाता है न, उसी तरह, सेल की तरह काम करता रहता है।

यानी कि मन-वचन-काया की ये तीन बैटरियाँ पावर चेतन से चार्ज होती हैं और फिर वे डिस्चार्ज होती हैं और वापस नई चार्ज होती हैं, लेकिन यह सब आत्मा की उपस्थिति से ही होता रहता है। अत: पावर चेतन की प्रेरणा है यह, (मूल) चेतन की नहीं है। यदि चेतन की प्रेरणा होती तो चेतन बंधन में आ जाता।

प्रश्नकर्ता : तो पावर और चेतन दोनों अलग-अलग हैं?

दादाश्री : हाँ! जैसे सूर्य के कारण यहाँ पर ऊर्जा उत्पन्न होती है तो उसमें सूर्य का कोई कर्तापन नहीं है। दूसरी चीज़ मिली इसलिए ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है। यदि आप यहाँ पर एक बड़ा मोटा काँच रख दो, तो उस काँच की वजह से, क्योंकि दूसरी चीज़ उसके सामने आई, तो उस काँच के नीचे वह सब जलने लगेगा। उससे सूर्य को कोई लेना-देना नहीं है। यह जो दूसरी चीज़ मिली, यह सब उसके कारण है। उसे हटा लेंगे तो फिर कुछ भी नहीं। अब, यह हटे किस तरह से?

जिस प्रकार सूर्य से हम ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, उसी से सब चलता है तो क्या उसे ऐसा कहेंगे कि सूर्य ने चलाया? आरोप सूर्य पर लगता है न, कि यह सूर्य ने किया है! वह रोंग बिलीफ है। बाकी, उसमें से तो हमने पावर पैदा किया। मूल सूर्यनारायण को तो ऐसा है ही नहीं, कि तू पावर पैदा कर या जो करना हो वह कर। वे कुछ भी नहीं कहते हैं, ऑर्डर नहीं करते हैं, कुछ भी नहीं और फिर भी उसका उपयोग हो सकता है, लेकिन वह उनकी उपस्थिति से ही कुदरती रूप से हो जाता है। उनकी कोई क्रिया नहीं है। उसमें उनकी उदासीनता है। उसी प्रकार से आत्मा की उदासीनता से यह जगत् उत्पन्न हुआ है। उसमें एक अंश भी चेतन नहीं है। देखो, कितना अद्भुत चल रहा है!

सूर्य की उपस्थिति में हमने पावर उत्पन्न किया, और उस पावर से अगर यहाँ कोई मशीन काम कर रही हो तब हम समझ जाते हैं कि उनकी तो सिर्फ उपस्थिति थी। लेकिन वह काम, वह खुद मशीन ही कर रही है। तो ये सारी *लागणी-वागणी,* वगैरह सब *पुद्गल* ही करता है, चेतन की मात्र उपस्थिति से ही।

नहीं है कोई कर्ता, मात्र मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट

'हवा' का स्वभाव है, बहते रहना। उसे ऐसा नहीं है कि मुझे किसी जगह पर पवन चक्की घुमानी है और ये 'लोग' पवन चक्की लगाते हैं, उससे 'पावर' उत्पन्न होता है और पावर से 'मशीनें' काम करती हैं। उसी प्रकार से पावर चेतन उत्पन्न हो गया है और जगत् चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : यह पवन चक्की घूमने की जो प्रक्रिया होती है, फिर उस समय इसका आयोजन करने वाला कौन है?

दादाश्री : मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट। मशीनरी को मशीनरी चलाती है और जो मशीनरी चलती है, उसे भी फिर मशीनरी चलाती है। यह पूरा मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट है। चेतन को इसमें हाथ डालना ही नहीं पड़ता।

पावर चेतन और चेतन में कितना अधिक फर्क है, समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : समझ में आया।

दादाश्री : बैटरी (टॉर्च) में तीन सेल डालते हैं और फिर बटन दबाते ही तुरंत चलने लगती है। बैटरी का उपयोग करने वाला यह जानता है। छः महीने बाद, आठ महीने बाद बंद हो जाती है तो वह खुद समझ जाता है कि पावर खत्म हो गया। बैटरी का उपयोग करने वाला यह समझ जाता है। किसी से बिल्कुल भी पूछने नहीं जाना पड़ता कि मेरे यहाँ यह अचानक क्या हो गया! पावर खत्म हो गया, ऐसा समझ जाता है। तो फिर तब अंदर क्या था? पावर था। तब कहते हैं, पावर यानी इलेक्ट्रिसिटी थी? तो कहते हैं, 'नहीं! पावर, पावर है और इलेक्ट्रिसिटी, इलेक्ट्रिसिटी है।' वर्ना यदि इलेक्ट्रिसिटी होती तो कम ही नहीं पड़ती न! यह तो आत्मा की उपस्थिति से पावर उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार जनरेटर में से पावर आकर फिर लाइट में जाता है?

दादाश्री : उसी प्रकार से चेतन की उपस्थिति से यह पावर चेतन है और पावर चेतन से मन-वचन-काया की तीन बैटरियों में पावर भरता है। ये तीन बैटरियाँ डिस्चार्ज होती रहती हैं रात-दिन और वापस नई तीन बैटरियाँ चार्ज होती रहती हैं। ये तीन डिस्चार्ज होती रहती हैं और वे नई तीन चार्ज होती रहती हैं।

प्रश्नकर्ता : एक बात तय हो गई कि यह जो पावर है, वह जनरेटर में से आता है।

दादाश्री : हाँ, जनरेटर में से आता है। लेकिन यह जनरेटर कैसा है? आत्मा की उपस्थिति से ही उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् चैतन्य और पावर, वे दोनों अलग हैं?

दादाश्री : अलग ही हैं, पावर अलग चीज़ है। पावर खत्म हो जाता है, चैतन्य खत्म नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : यदि उस पावर का मतलब शक्ति है तो जब तक चैतन्य है तब तक शक्ति है।

दादाश्री : पावर अर्थात् शक्ति उत्पन्न होती है इसमें, 'उसकी' उपस्थिति से। इसमें चैतन्य है न, वह सूर्यनारायण जैसे वीतराग भाव से रहा हुआ है। तो अपने यहाँ पावर उत्पन्न होता है और फिर उसका उपयोग होता है। 'उसकी' उपस्थिति में तीन बैटरियाँ चार्ज होती हैं। 'आपके' राग-द्वेष करने से पावर चार्ज होता है। अगर राग-द्वेष न किए जाएँ तो उसमें नया पावर भरना बंद हो जाएगा और पुराने पावर का उपयोग हो जाएगा।

बहुत सूक्ष्म बात है। अभी तक दुनिया में कोई भी इसे समझ नहीं सका है। शास्त्रकार भी नहीं समझ सके हैं, इतनी सूक्ष्म बात है। चेतन का इसमें स्पर्श ही नहीं है, उसकी उपस्थिति ही है। यदि वह नहीं होगा तो नहीं चलेगा। उसकी उपस्थिति से ही इसमें यह पावर भरता रहता है। अब पावर चेतन को तो चेतन नहीं कह सकते न! आपको क्या लगता है? बैटरी में पावर भरा, उसे मूल वस्तु तो नहीं कहा जाएगा न! वह इससे उत्पन्न हुई चीज़ है और उत्पन्न हुई चीज़ का विनाश हो जाता है। जिसका विनाश होता है, वह चेतन है ही नहीं। यानी कि चेतन की उपस्थिति से ही यह सब हो रहा है, वह कुछ करता ही नहीं है।

कितनी गहन बात है! कितनी अधिक गहनता है! गुह्य ज्ञान है न!

उसका पूरण-गलन है स्वाभाविक

प्रश्नकर्ता : यों पावर का भरना और खाली होना, वह (जड़ की) खुद की शक्ति से है?

दादाश्री : वह उसकी खुद की शक्ति से है। भरना, *पूरण* होना और *गलन* होना, वह खुद (पुद्गल) की शक्ति से है।

प्रश्नकर्ता : खुद की शक्ति से है लेकिन यदि सामने कोई चीज़ होगी तभी न? भरने की चीज़ होगी तभी न?

दादाश्री : नहीं, कोई भरने वाला नहीं है। स्वयं ही भर जाता है और स्वयं ही *गलन* होता है। उसका स्वभाव ही है, *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना) होने का। उसमें बीच में किसी एजेन्ट की ज़रूरत नहीं है। उसमें (मूल) आत्मा का कार्य नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा की उपस्थिति तो है न?

दादाश्री : उपस्थिति से तो सिर्फ पावर मिलता है।

पावर चेतन जन्म देता है, दूसरे पावर चेतन को

प्रश्नकर्ता : ये तीन चार्ज हो चुकीं बैटरियाँ जब डिस्चार्ज होती हैं तब क्या वही नई बैटरियाँ चार्ज कर देती हैं?

दादाश्री : वह तो निश्चेतन चेतन (यह डिस्चार्ज *पुद्गल*) है। चेतन कैसा है? निश्चेतन चेतन। और फिर दोबारा दूसरा उत्पन्न नहीं करता। यह जो चेतन है न, निश्चेतन चेतन, उसमें फिर से दूसरा उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। तो फिर दूसरे को कौन उत्पन्न करता है? शुद्ध चेतन? तो कहते हैं, 'नहीं, वह भी नहीं करता।' पावर चेतन ही फिर से दूसरे पावर चेतन को उत्पन्न करता है? तो मैंने तुम सब का वह पावर चेतन निकाल दिया है। ऑपरेशन करके (स्वरूप ज्ञान देकर) बिल्कुल ही निकाल दिया है। अब निश्चेतन चेतन बाकी है, वह दूसरे (पावर चेतन) को उत्पन्न नहीं कर सकता। पावर चेतन को निकाल दिया है। अब शुद्ध चेतन और निश्चेतन चेतन है। निश्चेतन चेतन तो, जैसे-जैसे उसके पावर का उपयोग होता जाएगा, वैसे-वैसे पावर खत्म होता जाएगा। पावर खत्म हो जाएगा, बस, हो चुका! इतना ही है।

नया पावर नहीं भरेगा। अतः पावर चेतन तो पावर भरता है, वह सबकुछ करता है। नई बैटरियाँ चार्ज कर देता है फिर से, सभी सेल चार्ज कर देता है और हमें बल्कि फिर से बोझ महसूस होता है। जबकि इससे तो हल्के हो जाते हैं।

भरे हुए पावर का उपयोग होता है, डिस्चार्ज अहंकार से

प्रश्नकर्ता : तो अब ज्ञान के बाद में इसमें 'मैं' की क्या भूमिका है? 'मैं' क्या करता है?

दादाश्री : मैं (यह डिस्चार्ज होता हुआ मैं है) (सूक्ष्मतर अहंकार) तो अहंकार ही करता है, और कुछ भी नहीं करता। वह अंधा है और कुछ भी नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' यानी यह जो अहंकार है, वह कौन सी शक्ति कहलाती है?

दादाश्री : वही भ्रांत शक्ति है, वह डिस्चार्ज शक्ति है। बैटरी के सेल्स चार्ज करवाकर ले आएँ, तो फिर उनका जहाँ उपयोग करना हो वहाँ उपयोग किया जा सकता है, उस समय वे डिस्चार्ज होते रहते हैं। तो यह डिस्चार्ज होती हुई शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : अब वह जो शक्ति है, वह आत्मा से अलग है न?

दादाश्री : हाँ, अलग है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे गवर्न (संचालित) कौन करता है?

दादाश्री : भ्रांति को तो उसके काम ही गवर्न करते हैं और उस कर्म का, उदयकर्म का स्वभाव ही है कि उदयकर्म ही काम करते रहते हैं। उसमें अहंकार से जो कर्म किए थे, डिस्चार्ज होते समय वे वैसे ही फल देकर जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : उन्हें कौन पहचान सकता है?

दादाश्री : सभी पहचान सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि पहचान पाता तो वह ऐसा करने नहीं जाता, ऐसा नहीं कहता।

दादाश्री : लेकिन फिर उसके खुद के हाथ में सत्ता ही नहीं है न! इस अहंकार में चेतन शक्ति का पावर भरा हुआ है। तो वह अपने आप ही, जब तक पावर है तब तक कार्य करता रहेगा। उसके बाद खत्म हो जाएगा। अत: ऐसा नहीं है कि आत्मा से और कुछ लेना पड़ता है। आत्मा तो जीव मात्र को सिर्फ प्रकाश देता है, लेकिन पावर इसका है। पावर भरा हुआ है, बैटरी की तरह।

प्रश्नकर्ता : वह पावर किसका कहलाएगा?

दादाश्री : अहंकार का ही कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, अहंकार तो जड़ स्वरूप है न?

दादाश्री : नहीं, वैसा जड़ नहीं है। वह निश्चेतन चेतन है। इसलिए अंदर बैटरी की तरह पावर भरा हुआ है। अत: उसमें आत्मा की किसी मदद की ज़रूरत नहीं है। वर्ना फिर उसका आत्मा कर्ता-भोक्ता बन जाएगा, तो फिर *उपाधि* (परेशानी) होगी उसे। लेकिन नहीं, *उपाधि* नहीं है। आत्मा निरुपाधि स्वरूप है। आत्मा तो स्वयं प्रकाशित है इसलिए उसका खुद का प्रकाश फैलता है और प्रकाश के आधार पर लोग काम करते हैं।

जीव में जो चेतन है, वह बिलीफ चेतन

प्रश्नकर्ता : तो दादा, इसमें जीव किसे कहेंगे?

दादाश्री : जीवभाग तो उसी को कहा जाता है, वह जो पावर चेतन है, उसे। जो जीता है और मरता है। जिसका पावर खत्म हो जाता है और भरता है, उसे जीवभाग कहा जाता है। और ये लोग जीवात्मा कहते हैं। जीव प्लस आत्मा। अब आत्मा खुद कभी भी बदला

ही नहीं है। उसके इस शरीर में होने के बावजूद भी जीवभाग तैयार होता है और जीवभाग यह सब करता रहता है।

इस जीव में आत्मा नहीं है। यह बात सिर्फ हमने ही बताई है कि जीव पावर चेतन है, अन्य कुछ भी नहीं है। यह वास्तविक चेतन है ही नहीं।

लेकिन यह बाहर के लोगों को नहीं बताना है। यह प्राइवेटली (निजी रूप से) हमें समझ लेना है। क्योंकि चेतन दो जगहों पर नहीं हो सकता। चेतन के टुकड़े नहीं हो सकते। मूल चेतन तो एक्ज़ेक्ट वही का वही है और यह चेतन तो बिलीफ चेतन है। बिलीफ में पावर चेतन उत्पन्न हो गया।

पकड़ते हैं पावर चेतन को, नहीं ढूँढते मूल को

यह मूल चेतन नहीं है, पावर चेतन है। इतना ही यदि पता होता न, तो लोगों ने कभी से आत्मा को ढूँढ निकाला होता। लेकिन लोग क्या मानते हैं कि यही चेतन है, इसी को सीधा करो, इसी को स्थिर करो, इसी को निराहारी बनाओ और निर्विषयी बना दो। इसलिए पद्मासन लगाकर स्थिर करते हैं। पद्मासन लगाना गुनाह नहीं है, वे सब मन को एकाग्र करने के साधन हैं। लेकिन वह इसे यही समझता है कि यह आत्मा है और इसे स्थिर करेंगे तो आत्मा प्राप्त हो जाएगा। यह तो पावर आत्मा है, तेरी मेहनत बेकार जाएगी।

अब, यह बात ऐसी है कि समझ में नहीं आ सकती, मनुष्य के बस की बात नहीं है कि इस बात को समझ सके। वास्तव में तो इसमें चेतन है ही नहीं।

ये धर्म करते हैं, यों भक्ति करते हैं, सब करते हैं, वह सारा पावर से चलता रहता है, फिर भी ये लोग क्या समझते हैं कि ये जो शास्त्र पढ़ता है, वह चेतन पढ़ता है। जो शास्त्र समझाते हैं, उन बड़े-बड़े आचार्यों में भी चेतन है ही नहीं।

इस जगत् के लोग जहाँ, 'आत्मा है', ऐसा मानते हैं और जहाँ 'चेतन है', ऐसा मानते हैं, वहाँ पर चेतन है ही नहीं। जगत् के लोग जहाँ पर, चेतन है, ऐसा मानते हैं... कि, 'ज्ञान को सुनने में, शास्त्र पढ़ने में, व्याख्यान करने में या फिर व्याख्यान सुनने में, सभी में चेतन तो है ही न?' मैंने कहा, 'नहीं, इनमें चेतन नहीं है। चेतन किसी का सुन नहीं पाता है।' यह पावर चेतन है। अब लोग क्या मानते हैं और कहाँ पहुँचे हैं!

यह अभी आप जो पूछ रहे हो, उसमें चेतन है ही कहाँ? कोई मुझसे कुछ पूछता है, तो उसमें चेतन नहीं है। अभी ये महाराज पूछते हैं तो उनमें चेतन है ही नहीं। वे जो बोलते हैं, वह चेतन नहीं है। वे अभ्यास करते हैं, ध्यान करते हैं तो उन सब में चेतन बिल्कुल भी है ही नहीं। ये पुतले बिना चेतन के खेलते हैं, कूदते हैं, राग-द्वेष करते हैं। यह तो पावर चेतन है। इसमें मूल चेतन तो अपने आप ही सेपरेट (अलग) स्वभाव में है, खुद के स्वभाव में है। उसका विभाव नहीं हुआ है, यह तो पावर चेतन उत्पन्न हो गया है।

अब, भगवान क्या कहना चाहते हैं? कि चेतन तो चेतन है, और इसके अलावा तुझे जो समझ में आए, वह करना, बाकी ज्ञानी पुरुष से पूछ लेना। ज्ञानी पुरुष बताएँगे कि इसमें एक सेन्ट भी चेतन नहीं है। यह इतना बड़ा संसार है, कॉलेज-वॉलेज, पूरा ही संसार, दुनिया चल रही है, और यह एक सेन्ट भी चेतन के बिना, चलती रहती है। अब, यह सब तो मैंने ही बताया है। किसी क्रमिक मार्ग के ज्ञानी को यह पता ही नहीं चलता न! वे भी जानते हैं कि अंदर आत्मा रहा हुआ है। इसलिए त्याग करवाओ, फलाना करवाओ। मैं क्या कहता हूँ कि इसमें जो आत्मा है, वह पावर चेतन सहित है।

मोक्षमार्ग को समझना है। बाकी, ये स्वाध्याय करना, तप करना, जप करना, वह सब *पुद्गल* करता है। इससे क्या लाभ? करता है *पुद्गल* और आप कहते हो कि, 'मैंने किया।'

प्रश्नकर्ता : शरीर करता है?

दादाश्री : *पुद्गल* करता है, पावर चेतन काम कर रहा है।

पावर चेतन ने ही अहंकार करके बाहर यह बनाया है, यानी कि वह काम करता है। पावर चेतन ने ही पावर भरा है।

समझ में आए, ऐसी बात है न? जो मुझे दिखाई देता है, वह आपको समझाया नहीं जा सकता। ये मेरे पास जितने शब्द हाथ में आते हैं, उनसे आपको समझाने की कोशिश करता हूँ, बाकी, इसके लिए शब्द नहीं हैं। ये शब्द तो ढूँढ-ढूँढकर इकट्ठे करने पड़ते हैं। मुझे दिखाई देता है लेकिन आपको समझ में आया है या नहीं, वह बताओ मुझे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आया, मुझे।

जो 'रहस्य' गुप्त है शास्त्रों से, खोला भेदविज्ञानी ने

दादाश्री : यह वर्ल्ड बहुत जानने जैसा है, लंबा-चौड़ा है। यह शब्दों में किस प्रकार से आ सकता है? पुस्तकों में किस प्रकार से हो सकता है? 'पावर चेतन है', ऐसा किसी भी जगह पर कैसे जानने मिलेगा? अतः कभी भी निबेड़ा नहीं आएगा। पावर चेतन है यह।

पावर चेतन को अगर समझ जाए न, तो बहुत हो गया। इन लोगों ने व्यवहार चेतन और यह व्यवहार आत्मा वगैरह, इसे तो लोग बेहिसाब उलझाते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : परफेक्ट विज्ञान है इस पावर चेतन का तो!

दादाश्री : परफेक्ट, उसके साथ कैसे हुआ यह सब, ऐसा मैं देखकर बता रहा हूँ। ये सब तो हम देखकर बता रहे हैं इसलिए बता सकते हैं, वर्ना शास्त्रों में किसी भी जगह पर यह शब्द नहीं है। यदि ऐसा स्पष्ट विवरण होता न, तो लोग कभी के समझ गए होते।

इस स्पष्ट समझ को कैसे समझेंगे लोग? उनकी क्या बिसात?

यह चीज़ बुद्धि से परे है। जहाँ बुद्धि का एक अक्षर भी नहीं पहुँच सकता। जहाँ पर दृष्टि ही नहीं पहुँच सकती, कुछ भी नहीं पहुँचता, वहाँ पर ज्ञानी पहुँच जाते हैं। बहुत छोटी सी बात और बहुत सूक्ष्म बात। जगत् को तो यह बात समझ में आ ही नहीं सकती।

अब, इस रहस्य को वे क्या समझें बेचारे? कोई शास्त्र ज्ञानी भी क्या समझेगा उसे? शास्त्रों में लिखा नहीं गया है, शास्त्र यह नहीं जानते। शास्त्र इसे शाब्दिक रूप में जानते हैं। जितना शब्दों में आ सकता है, उतना ही जानते हैं, उससे आगे का नहीं जानते। जब तक रहस्य नहीं जानते तब तक। यह तो वही जान सकते हैं जो केवलज्ञान के नज़दीक पहुँचे हैं। एब्सल्यूट (पूर्ण) ज्ञान के नज़दीक। हम भेदविज्ञानी हैं इसलिए ऐसे सारे भेद डाल देते हैं कि यह आत्मा है और यह नहीं है। सब दिखाई देता है आत्मा जैसा ही, लेकिन इनमें आत्मा नहीं है। इसलिए यह पूरा जगत् फँसा हुआ है न।

जहाँ चेतन मात्र... चेतन जैसी वस्तु ही नहीं है। बिना चेतन के यह पूरा शरीर चलता है। ऐसा सब कोई बताता नहीं है। कौन बता सकता है? यह जगत् ऐसा मानता है कि मेरे हाथ में ही है यह। मैं ही हूँ, इसे रिपेयर करना है। जिस प्रकार इस घर को रिपयेर करते हैं न, वैसे। प्लास्टर-व्लास्टर लगाकर, सहारा देकर स्थिर करते हैं। तप करने से स्थिर हो जाएगा क्या? ऐसा मानता रहता है और जगत् पिसता ही रहता है। अज्ञान की घानी में पिसता ही रहता है। और ज्ञानी यह बताते नहीं हैं, जो सचमुच में ज्ञानी हैं, वे इसे बताते नहीं हैं। यदि यह बता देंगे तो सब खत्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, पूरा व्यवहार वो (उलट-सुलट) हो जाएगा।

दादाश्री : हालांकि सभी लोगों को नहीं, लेकिन कुछ लोगों को नुकसान हो जाएगा। बुद्धिशाली मार खा जाएँगे।

समझ में आ रही है कुछ बात? अब, ऐसी सारी उच्च बातें... जो वहाँ तक पहुँच चुके हैं, वही ऐसी सारी बातें कर सकते हैं, बाकी

और कोई वह नहीं कर सकता और समझ भी नहीं सकता। यह जो आप समझ सकते हो न वह, आपने बहुत ही सोचा है इसलिए समझ सकते हो। अंदर साफ है इसलिए ग्रास्पिंग कर सकते हो, वर्ना ग्रास्पिंग भी नहीं हो पाती। और यदि बुद्धि की बहुत पकड़ हो न, तब भी परेशानी आती है। लेकिन पकड़ नहीं रखी है इस तरह से, ओपन माइन्ड रखा है इसलिए समझ में आता है।

इस जगत् में लोगों को तो यह कैसे पता चल सकता है कि, 'ओहो! पावर से चल रहा है?' इसमें क्या समझेंगे? काम ही नहीं है न किसी का यह तो। यह तो सिर्फ ऐसे लोग जो खुद देखकर बताते हैं। यह मैं पढ़ा हुआ नहीं बताता हूँ। इनमें से एक भी शब्द मेरा पढ़ा हुआ नहीं है और यथार्थ, हंड्रेड परसेन्ट, आपका आत्मा कबूल करे, ऐसी बात है। हम तो क्या कहते हैं, मानना ही मत। यह मानने के लिए नहीं है, आपका आत्मा कबूल कर ले और वह विकल्प उत्पन्न न करवाए, बुद्धि उछल-कूद न करे, तभी इसे मानना। यदि विवाद वाली हो न, तो वहाँ पर बुद्धि उछल-कूद मचाकर रख देती है।

यह मैं देखकर बताता हूँ। शास्त्रों में नहीं मिलेगी ये बातें। इसका थर्मामीटर क्या है? तो कहते हैं कि आपके आत्मा को कबूल हो जाना चाहिए। आपको आनंद उत्पन्न होना चाहिए। इस बात को सुनते ही आनंद होना चाहिए। अगर आपको समझ में आए तो थर्मामीटर की मानना!

[3.2]

पावर चेतन विराम पाता है, आत्मज्ञान के बाद

'मैं कर रहा हूँ', ऐसे देहाध्यास से भर जाता है पावर

प्रश्नकर्ता : यह जो पावर चेतन है, क्या वही (चार्ज) प्रतिष्ठित आत्मा है?

दादाश्री : वही प्रतिष्ठित आत्मा है। वही सचर है, वही मिकेनिकल आत्मा है, वही इन्द्रिय आत्मा है, कषाय आत्मा (वही सूक्ष्मतम अहंकार है)। उसी को पावर चेतन कहते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ और इन्द्रियाँ, यह सब पावर चेतन है। पावर चेतन आपके हाथ में नहीं है। क्रोध नहीं करना हो फिर भी हो जाता है। इन्द्रियाँ आपके काबू में नहीं रहतीं। वह पावर चेतन है।

यह चार्ज हो चुका पावर है। 'देयर आर थ्री बैटरीज़', यह स्थूल बैटरी अर्थात् देह, सूक्ष्म बैटरी अर्थात् मन, अत:करण वगैरह सब और यह स्पीच (वाणी)। ये तीन बैटरियाँ डिस्चार्ज होती हैं और नई चार्ज होती हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या कर्मों के उदय की वजह से बैटरियाँ चार्ज होती हैं?

दादाश्री : नहीं। चार्ज हो चुकी बैटरियों के आधार पर उदयकर्म

आते हैं और उदयकर्म तो आएँगे। यदि उदयकर्म से बैटरियाँ चार्ज होती हों तो उदयकर्म तो भगवान महावीर के भी थे। लेकिन बैटरियाँ कषाय से चार्ज होती हैं। उदयकर्म में हम जो कषाय करते हैं, उससे बैटरियाँ चार्ज होती हैं। उदयकर्म तो हमारे भी हैं लेकिन यदि अंदर कषाय करेंगे तब चार्ज होगा न!

जब तक देहाध्यास है तब तक पावर भरता रहता है। अत: जब तक देहाध्यास है तब तक यह पावर है। उसका उपयोग होता है, उसी को इफेक्ट कहते हैं। पावर इफेक्टिव है, इफेक्ट देकर चला जाता है और नई बैटरियाँ उत्पन्न होती हैं, कॉज़ेज़ की वजह से। अत: हम जब कॉज़ेज़ बंद कर देते हैं तब उसका छुटकारा हो जाता है। कॉज़ेज़ बंद करने के लिए देहाध्यास छूट जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, जब तक यह देहाध्यास बंद नहीं हो जाता तब तक क्या आत्मा की उपस्थिति में इन तीनों बैटरियों का चार्ज-डिस्चार्ज, चार्ज-डिस्चार्ज चलता ही रहता है?

दादाश्री : चलता ही रहता है, ऑटोमैटिकली (अपने आप ही)। किसी को चलाना नहीं पड़ता। विज्ञान है यह सारा।

अंतिम बात है यह। अंतिम स्टेशन की बात है, टू द पॉइन्ट। तीन बैटरियाँ डिस्चार्ज हो जाती हैं और फिर से तीन नई बैटरियाँ चार्ज होती हैं। अगर चार्ज करना बंद कर दें तो मोक्ष में जाएँगे। चार्ज कैसे होता है? इगोइज़म (अहंकार) से, 'मैंने किया', कि तुरंत चार्ज हो जाता है। 'यह मेरा है' कि चार्ज हो जाता है। बस इतना ही है। और अगर इन 'दोनों' को बंद कर दिया जाए तो फिर चार्ज बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो पावर चेतन कहाँ है?

दादाश्री : जो ऐसा कहता है कि, 'यह क्रिया मैं कर रहा हूँ', वहाँ पर पावर चेतन है। 'मैंने दरवाज़ा बंद किया' कहता है न, वहाँ पावर चेतन है। परीक्षा दी, वह पावर चेतन है और रिज़ल्ट (परिणाम) आया, वह पावर चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन परीक्षा देने से पहले पावर चेतन का उपयोग हुआ, इसीलिए यह क्रिया आई न?

दादाश्री : पावर चेतन का उपयोग हुआ, उसी से यह रिज़ल्ट आया है।

प्रश्नकर्ता : कौन सा?

दादाश्री : यह, कि फेल हो गया।

प्रश्नकर्ता : नहीं, यहाँ पर आपने उदाहरण दिया है न, कि परीक्षा देते हैं और उसका रिज़ल्ट आता है, तो परीक्षा देने को पावर चेतन कहा है।

दादाश्री : जिसमें कुछ भी, **'**मैं कर रहा हूँ**'** ऐसा मानता है, वह पावर चेतन है। 'मैं चंदू' (सूक्ष्मतम अहंकार), वह पावर चेतन है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं कर रहा हूँ', उससे पावर चेतन उत्पन्न होता है या पावर चेतन की वजह से ऐसा मानते हैं?

दादाश्री : ऐसा, खुद पावर चेतन ही बोलता है।

प्रश्नकर्ता : पावर चेतन खुद कहता है कि, 'यह मैंने किया'।

दादाश्री : जब परिणाम आता है तब यदि हम पावर चेतन से कहें कि 'भाई, तूने किया।' तब वह कहेगा, 'नहीं, यह तो रिज़ल्ट आया, मैं क्या करूँ? मैं क्या ऐसा परिणाम लाऊँगा? मैं तो पास होने का ही लाऊँगा न।'

प्रश्नकर्ता : यानी कि मैं को ही पावर चेतन कहा है आपने?

दादाश्री : नहीं, अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं और पावर चेतन अलग हैं?

दादाश्री : मैं और पावर चेतन अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : और 'मैं कर रहा हूँ', उसे पावर चेतन कहा है?

दादाश्री : हाँ। पावर चेतन ऐसा बुलवाता है (जो वाणी बोलते हैं, वह)।

खर्च हो रहा है, बैटरी का पावर निरंतर

प्रश्नकर्ता : वह पावर अलग-अलग प्रकार से खत्म होता है?

दादाश्री : वह तो रोज़-रोज़ खर्च होता ही रहता है न! वह कन्टिन्युअस (सतत) सेल है इसलिए वह पावर खर्च हो जाएगा। पचास-साठ-सत्तर साल के होने पर वह पावर खत्म हो जाता है। अगर इसे अधिक खर्च किया जाए तो जल्दी खत्म हो जाता है। कम खर्च किया जाए तो देर से खत्म होता है। जितना पावर खर्च करोगे, बैटरी उतनी ही जल्दी खत्म हो जाएगी। कम खर्च करोगे तो देर से खत्म होगी, लेकिन खत्म तो होगी। कुछ समय तक ही रहती है। उसके बाद खत्म हो ही जाती है। अतः ये जो मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ हैं, वे डिस्चार्ज होती ही रहती हैं और आपका संसार चलता रहता है। तू जब सो जाता है तब भी डिस्चार्ज होती ही रहती हैं और जागते हुए यहाँ पर घूमता रहे तब भी डिस्चार्ज होती रहती हैं।

यह जो चेतन है, वह पावर चेतन है और वह ऐसा है, जो डिस्चार्ज हो जाता है और मूल चेतन डिस्चार्ज नहीं होता। मूल चेतन ऐसा कोई काम नहीं करता और जड़ भी काम नहीं करता। लेकिन इसे जड़ कहा जाता है, इसे मूल चेतन कह ही नहीं सकते। यों माना जाता है जड़, लेकिन है पावर चेतन।

प्रश्नकर्ता : दादा, ये जो पावर भरे हुए सेल हैं, वे पहले से चार्ज होकर आए हैं या अभी चार्ज हो रहे हैं?

दादाश्री : नहीं, चार्ज होकर आए हैं यानी कि वहाँ पर चार्ज हुआ और यहाँ पर ये डिस्चार्ज होते हैं। जिस तरह से ये बैटरियाँ डिस्चार्ज होती रहती हैं, उसी तरह मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ

भी डिस्चार्ज होती रहती हैं। अब, ऐसा है कि उसमें (टॉर्च में) जब डिस्चार्ज होती हैं तो बटन दबाने से डिस्चार्ज होती है जबकि इसका बटन निरंतर दबा हुआ ही रहता है। श्वास-उच्छवास से निरंतर डिस्चार्ज होती ही रहती हैं। अत: यदि आपको लंबे समय तक टिकाए रखना हो फिर भी नहीं टिकेंगी। (अंत आएगा ही, हमेशा के लिए नहीं रहेगा)। उसमें जब बटन दबाते हैं तब डिस्चार्ज होता है, और अगर कोई किफायती इंसान हो तो वह पाँच साल तक बैटरी चलाता है और फिज़ूलखर्च इंसान की तो छ: महीने में ही खत्म हो जाती है। लेकिन यह तो निरंतर चल ही रही है। रात-दिन यह बैटरी तो चल रही है, डिस्चार्ज होती ही रहती है। तुझे सोना हो तो सो, और जागना हो तो जाग, शादी करनी हो तो कर और विधुर होना हो तो हो, लेकिन यह बैटरी तो चल ही रही है!

प्रश्नकर्ता : अब, जब शुद्धात्मा अंदर है तो शरीर काम बंद क्यों कर देता है? काम नहीं करता और आत्मा अलग निकल जाता है?

दादाश्री : क्योंकि फिर यह काम में नहीं आ सकता। खत्म हो चुका है इसलिए छोड़ देता है और वापस नया उत्पन्न करता है, कुदरती रूप से। वह खुद कुछ भी नहीं करता है लेकिन कुदरत का नियम ही ऐसा है कि यह सब पुराना हो जाता है, जर्जर जैसा हो जाता है, उसका टाइम आने पर उसका पावर भी खत्म हो जाता है और फिर दूसरा नया उत्पन्न करता है। अत: इफेक्ट खत्म हो जाने पर यह पूरा खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो यह *गलन* वगैरह सारा पावर चेतन का विभाग है?

दादाश्री : नहीं, वह सब अपने आप ही, सहज है।

चलती है साइकिल चार्ज-डिस्चार्ज की, पावर चेतन से

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने सिमिली (उपमा) बहुत अच्छी दी कि ये चार्ज हो चुकी बैटरियाँ हैं।

दादाश्री : हाँ, पुरानी डिस्चार्ज होती रहती हैं और नई चार्ज होती हैं। यह चेतन तो है लेकिन पावर चेतन है। (जैसे उसमें) पावर खत्म हो जाता है, उसी तरह इसमें भी पावर खत्म हो जाने पर इसे जला देते हैं, मरने के बाद। और जब पावर खत्म हो जाता है तब जीभ का लकवा हो जाता है (चाह कर भी बोल नहीं पाता)। उ उ उ लल... करता रहता है। 'क्यों भाई, क्या हो गया?' तो कहता है कि, 'पावर गायब हो गया।' आप जानते होंगे न, कि जीभ में लकवा हो जाता है?

उसकी बोलने की शक्ति चली जाती है, कान की शक्ति चली जाती है, आँखों की शक्ति चली जाती है, सभी शक्तियाँ चली जाती हैं। तब तक दीया एकदम बुझता नहीं है न! मूल दीया नहीं बुझता। मूल आत्मा तो आत्मा ही रहता है लेकिन यह दीया बुझ जाता है।

बैटरियों में वह पावर भरा हुआ है। यदि वह चालीस साल में खत्म हो जाए तो चालीस साल बाद चले जाते हैं (गुज़र जाते हैं)। अगर पावर ज़्यादा भरा हुआ हो, लेकिन फिर भी अगर कर्म का उदय ऐसा हो कि कट के मर जाना हो तो उस समय पूरा पावर चला जाता है, पूरा निकल जाता है तुरंत।

प्रश्नकर्ता : अभी इस पावर के फंक्शन को किस तरह से पहचान सकते हैं?

दादाश्री : जो खत्म हो जाता है, उसी को पावर कहते हैं। वह कम होता जाता है। मूल चेतन का तो उपयोग ही नहीं होता न! इसका तो उपयोग हो जाता है इसलिए पावर कहलाता है। पावर खत्म हो जाए तो लोग उस सेल (शरीर) को जला देते हैं या गाड़ देते हैं।

मूल चेतन की चेतना से भिन्न है, पावर चेतना

चैतन्य खुद ही भगवान है। (स्वाभाविक) चेतना तो खुद ही भगवान है। जगत् के लोग चेतन की चेतना को नहीं देखते हैं, चेतना

की अवस्थाओं को देखते हैं। वास्तव में तो चेतना की अवस्थाओं को नहीं देखते, *पुद्गल* की अवस्थाओं को देखते हैं। वह *पुद्गल* की अवस्था भी नहीं है, (विभाविक) चेतना का स्पर्श है अंदर, पावर चेतन का स्पर्श है।

आत्मा के अलावा, बाकी सब मिकेनिकल है, पूरी पावर चेतना। यदि इस पावर चेतना को लोग समझ जाएँ न, तो बहुत काम हो जाएगा। ये तो इसे असल चेतन मानते हैं कि इसमें तो इसे सुधारना है। इस आत्मा को, जो कि बिगड़ गया है, उसे निर्ग्रंथ बनाना है, ऐसा कहते हैं। यह जो अशुद्ध हो चुका चेतन है, उसे शुद्ध करना है।

प्रश्नकर्ता : जबकि अपने यहाँ, अक्रम में तो चेतन शुद्ध ही है।

दादाश्री : शुद्ध ही है।

प्रश्नकर्ता : और निश्चेतन चेतन जो है, उसे तो डिस्चार्ज के रूप में खाली कर देना है।

दादाश्री : शुद्ध चेतन के कारण यह खड़ा हो गया है। तो अब उसका *निकाल* (निपटारा) कर देना है। पहले जब खुद अशुद्ध चेतन था तब हमने कहा, 'यह अशुद्ध चेतन तू नहीं है, तू तो शुद्ध ही है लेकिन यह (चंदू) अशुद्ध है।' अतः उसका फिर इस तरह से समभाव से *निकाल* कर देना है। अक्रम का तरीका अलग है।

मूल आत्मा, पावर चेतन से बिल्कुल अलग ही है। वह बिल्कुल अलग कार्य कर रहा है। कहीं पर अगर उसकी लिंक होती तो उसे अलग नहीं कर पाते। जब यह ज्ञान देते हैं तब अलग ही हो जाता है। यह तो पूरा विज्ञान है!

एन्ट्री-एग्ज़िट दोनों होते हैं, पावर चेतन से

प्रश्नकर्ता : आपका चेतन तत्त्व अर्थात् जो सब की विधि करते हैं, ज्ञान देते हैं, वह है?

दादाश्री : यह जड़ तत्त्व, जड़ तत्त्व के लिए करता है, चेतन तत्त्व इसमें कुछ करता ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो हमें इस जड़ तत्त्व का ही आसरा लेना है न? जड़ तत्त्व को, जड़ तत्त्व का ही आसरा लेना है?

दादाश्री : वह जड़ तत्त्व है लेकिन यों वह जड़ तत्त्व अलग है, पावर चेतन है, लेकिन लाइट पूरी चेतन की ही है यह।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह ठीक से दिमाग़ में नहीं बैठ रहा है। मैं अभी अपनी नज़र के सामने देख रहा हूँ कि आप विधि करवा रहे हैं, आप लोगों के सुख-दुःख के बारे में पूछ रहे हैं। हम यह पूरा परिवर्तन होते हुए देखते हैं, जड़ द्रव्य की बैटरी से ही यह पूरा परिवर्तन हो रहा है?

दादाश्री : वह तो, यह ऐसा है न, यह भी बैटरियों की वजह से ही खराब हुआ था और बैटरियों से ही सुधरता है। वे रोंग बैटरियाँ थीं, वे रोंग बैटरियाँ अज्ञान में ले गई थीं। अब राइट बैटरियाँ हैं तो राइट में ले जाएँगी। अतः जिस दरवाज़े से अंदर 'इन'... वह 'इन' (अंदर आने) का दरवाज़ा था, यह 'आउट' का दरवाज़ा है। 'इन' दरवाज़े में से कौन ले गया? तो कहते हैं, वह जड़ तत्त्व ही ले गया, *पुद्गल* तत्त्व। और फिर आगे जाने के बाद 'आउट' का दरवाज़ा मिलता है, तो वही तत्त्व बाहर ले जाता है। उसके बाद 'आउट' करके मुक्ति में ले जाता है। इसमें आत्मा को, खुद को कुछ भी नहीं करना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : आप बोलते हैं, वह भी *पुद्गल* ही है न?

दादाश्री : हाँ, ये शब्द आवरण तोड़ देते हैं, शब्द भी *पुद्गल* हैं। मैल भी खुद है, साबुन भी खुद है और कपड़ा भी खुद है और अंत में खुद साफ हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसमें बहादुरी सिर्फ जड़ तत्त्व की, खुद की है? यानी कि जड़ तत्त्व ही खुद के जड़ तत्त्व को सुधारता है?

दादाश्री : जड़ तत्त्व नहीं, *पुद्‌गल,* जिसमें पावर भरा हुआ है चेतन का।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो उस पावर की साधना अलग से करनी है न? उसकी साधना आत्मा की साधना से अलग है न?

दादाश्री : वह साधना करते-करते, आत्मा प्राप्त होता है। आत्मा क्या है, यह समझना चाहिए। उसके बाद में साधना तो *पुद्‌गल* को करनी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यदि आत्मा को जान लें तो हमारे जड़ तत्त्व में परिवर्तन होगा या नहीं? मेरा मूल सवाल यह है।

दादाश्री : परिवर्तन होता ही रहता है न! निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है। अज्ञानता से जो बंध पड़ गए, वे ज्ञान से छूटेंगे। बंधन और छूटना, दोनों *पुद्‌गल* में होता रहता है। आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है, आत्मा इनसे अलग है।

प्रश्नकर्ता : यानी आप ऐसा कहना चाहते हैं कि आत्मा सीधी तरह से कुछ भी नहीं करता है?

दादाश्री : टेढ़ी तरह से भी नहीं करता। यदि वह कर्ता होता तो उस पर जोखिमदारी आती और यह *पुद्‌गल* भी कर्ता नहीं है। *पुद्‌गल* भी स्वतंत्र कर्ता नहीं है, यह तो पावर भर गया है।

ज्ञान से शुद्ध हो जाता है, अशुद्ध पावर चेतन

प्रश्नकर्ता : ये जो अपने ज्ञान लिए हुए महात्मा हैं, वे पावर चेतन बनते हैं? आप विधि करके जो पावर डालते हैं, वही पावर चेतन है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो वह चेतन ही हुआ न? चेतन का मूल स्वरूप ही हुआ न?

दादाश्री : यह जो पावर चेतन है, वह अज्ञानता वाला पावर चेतन है और मैंने जो ज्ञान दिया है, उसके बाद से 'वह' पावर चेतन ही रहता है, 'मूल चेतन' नहीं बनता। खुद, खुद के ही अज्ञान से बंधता है और खुद, खुद के ही ज्ञान से छूट जाता है। आत्मा तो खुद ज्ञान वाला ही है लेकिन 'यह' जो है, वह ज्ञान वाला हो जाए तो दोनों अलग हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो आप इस पावर चेतन को ज्ञान वाला बनाते हैं?

दादाश्री : हाँ! नहीं तो और किसे? और वह (मूल) आत्मा तो आज भी ज्ञानी ही है न!

प्रश्नकर्ता : यह पावर चेतन ज्ञान वाला हो जाए तो आवरण चले जाते हैं?

दादाश्री : हाँ! आवरण चले जाते हैं, बस। ये आवरण हट जाते हैं, और जो अव्यक्त है, वह व्यक्त हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञानी कौन बनता है?

दादाश्री : जो अज्ञानी है, वही ज्ञानी बनता है। आत्मा तो ज्ञानी ही है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी कौन है?

दादाश्री : ''यह 'मैं' और 'मेरा''। जो बंधा हुआ है, वह कहता है न, 'मुझे दु:ख है', वह अज्ञानी है।

प्रश्नकर्ता : तो दूसरी भाषा में अशुद्ध चेतन को शुद्ध चेतन बनाते हैं, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : हाँ, अशुद्ध चेतन को शुद्ध करते हैं और यह जो अशुद्ध चेतन है, वह फिर मूल चेतन नहीं है, वह पावर चेतन है। अत: हम उसे शुद्ध कर देते हैं। वह संपूर्ण शुद्ध हो जाए तो दोनों अलग हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : आप शुद्धात्मा बोलते हैं तब, वह जो पावर चेतन है, क्या उसका पावर बढ़ता जाता है?

दादाश्री : नहीं! जो उल्टा पावर था, वही सीधा हो जाता है। जो अज्ञान पावर था, वह उल्टा करता था, वही सीधा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह उल्टा पावर किसमें रहता है?

दादाश्री : वह अहंकार में है। अज्ञानी इंसान होता है न, वह जो भी हो उसका उल्टा ही कर आता है और जब हम ज्ञान देते हैं न, उसके बाद से अगर किसी ने उल्टा किया हो, फिर भी वह सीधा कर देता है। क्योंकि उसकी समझ सीधी हो गई।

प्रज्ञाशक्ति आत्मा की, बुद्धिशक्ति पावर चेतन की

प्रश्नकर्ता : उसे प्रज्ञा कहते हैं?

दादाश्री : अब, प्रज्ञा जो है, वह मूल आत्मा की शक्ति है। और इन (आत्मा-अनात्मा) दोनों का संपूर्ण डिविज़न हो जाने के बाद, पूरी तरह से अलग हो जाने के बाद, अलग हो जाने के बाद, वह आत्मा में समा जाती है। तब तक, मोक्ष में ले जाने के लिए वह अलग रहती है, आत्मा से।

प्रश्नकर्ता : तो प्रज्ञाशक्ति आत्मा की ही है?

दादाश्री : हाँ! प्रज्ञाशक्ति आत्मा की है और बुद्धिशक्ति इस पावर चेतन की है।

प्रश्नकर्ता : तो बुद्धि में से प्रज्ञा हो जाती है?

दादाश्री : नहीं, बुद्धि में से प्रज्ञा नहीं होती। बुद्धि, बुद्धि की जगह पर रहती है और प्रज्ञा प्रकट होती है। हमारे ज्ञान देते ही तुरंत प्रज्ञा प्रकट हो जाती है। प्रज्ञा आपको निरंतर मोक्ष में ले जाना चाहती है और बुद्धि आपको इस तरफ नीचे ले जाने की कोशिश करती है।

यह अंदर जो सावधान करती है न, वह प्रज्ञा सावधान करती है, 'ऐसा नहीं, ऐसा', इस तरह से सावधान करती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा भी पावर चेतन ही है न?

दादाश्री : नहीं, पावर चेतन नहीं है, वह मूल चेतन है। लेकिन मूल चेतन में से अलग हो गई, वह भी सिर्फ इस कार्य के लिए ही। उसके बाद वापस मूल आत्मा के साथ एक हो जाएगी।

अज्ञान को जानता है पावर आत्मा, ज्ञान को जानता है दरअसल आत्मा

प्रश्नकर्ता : पहले तो अज्ञान दशा में हमारी जो दृष्टि है, वह *पुद्गल* पर रहती थी, जिसमें देखने और जानने का गुण ही नहीं था। लेकिन अब आपने ज्ञान दिया, तब से हम दृष्टि उस पर रखते हैं, जिसमें देखने व जानने की शक्ति है इसलिए हमारी दृष्टि स्थिर हो गई!

दादाश्री : इसलिए स्थिर हो गई, और उस अस्थिर में भी देखने-जानने की क्रिया है लेकिन संयोगों को देखने-जानने की क्रिया है। मूल देखने व जानने की क्रिया तो वहाँ, आत्मा में ही है। लेकिन आत्मा की क्रिया असंयोगिक है जबकि यह संयोगी क्रिया है। यहाँ पर जिसे देखने-जानने की क्रिया कहते हैं न, कि यह पेड़ आया, पत्ते आए, गाय आई, भैंस आई। ऐसा सब कहते हैं न, और लोग उसे आत्मा मानते हैं। इस देखने-जानने की क्रिया में बिल्कुल भी चेतन नहीं है। तो फिर पूछते हैं कि, 'यह किससे चल रहा है? चेतन के बिना कैसे चल रहा है?' तो कहते हैं, 'आत्मा की उपस्थिति से पावर चेतन उत्पन्न होता है।'

अवस्थाओं को जो पाँच इन्द्रियों से जानता है न, वह भी आत्मा नहीं है। पूरा जगत् उसे आत्मा कहता है।

जो अज्ञान को जानता है, वह पावर आत्मा है और ज्ञान को जानता है, वह दरअसल आत्मा है। यानी यह पावर आत्मा जानता है।

पावर आत्मा का क्या करना है? उसका तो जब पावर खत्म हो जाएगा, फिर अंतिम स्टेशन (श्मशान) पर पहुँचा देंगे, सोते-सोते, लोग आराम से पहुँचा देंगे।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, कि ये जो चीज़ें हैं, पेड़ हैं, पत्ते हैं, इन सब को देखने और जानने की यह क्रिया पावर चेतन की है। अब यह देखने-जानने की क्रिया, और आत्मा के प्रकाश में ये सारे ज्ञेय झलकते हैं तो ये एक ही हैं या अलग-अलग हैं?

दादाश्री : आत्मा के प्रकाश में अंदर झलकता है। यानी वहाँ शब्द नहीं हैं। वहाँ पर देखना और जानना है, प्रकाश तक पहुँचने तक शब्द हैं। उसके बाद शब्द चले जाते हैं, अपने घर!

फिर तो ज्ञायक भाव। देखने-जानने के भाव में रहा, वह आनंद। खुद की अन्य कोई ज़रूरत नहीं। देखने-जानने के भाव में तो कुछ भी नहीं करना है। अंदर झलकता है, खुद के अंदर ही। क्रिया नहीं है किसी भी प्रकार की, अक्रिय। क्रिया करने से तो थकान महसूस होती है, सो जाना पड़ता है, सो जाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले भी वह जो कुछ भी जानता है, वह आत्मा के गुणों के कारण ही जानता है न, यदि जानता है तो?

दादाश्री : नहीं, वह भरे हुए पावर से जानता है।

प्रश्नकर्ता : और अब, इस ज्ञानपन से बार-बार जानपन का जो अनुभव होता है, वह आत्मा का ही अनुभव है न?

दादाश्री : सब आत्मा का ही है। लेकिन इसमें बाहर के इस ज्ञान को जो दिखाता है, वह पावर चेतन (मिश्र चेतन) है।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो मूल आत्मा की जो देखने-जानने की क्रिया है और मिश्र चेतन की (पावर चेतन की) देखने-जानने की क्रिया है, उनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : मिश्र चेतन सिर्फ विनाशी को ही देख सकता है और मूल चेतन, विनाशी और अविनाशी दोनों को देख सकता है, दोनों को जानता और देखता है।

'भाव' से अशुद्ध हुए पुद्‌गल, 'देखने' से होंगे शुद्ध

हम अपने आप को शुद्धात्मा कहते हैं न, तो यह बाहर वाला जो भौतिक भाग है न, जिसे '*पुद्‌गल*' कहते हैं, तो यह *पुद्‌गल* क्या कहता है कि 'हमारा क्या? अब आप शुद्धात्मा हो गए लेकिन मुक्त नहीं हो सकोगे। जब तक हमारा निबेड़ा नहीं आएगा तब तक आप मुक्त नहीं हो सकोगे।' वह क्या कहता है कि, 'जब तक हमें हमारी मूल स्थिति में नहीं ला दोगे तब तक हम आपको छोड़ेंगे नहीं। क्योंकि मेरी मूल स्थिति को खराब करने वाले आप ही हो, और अब आप ही हमें हमारी मूल स्थिति में ला दो!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो हमें अंदर कहता है कि ये चमड़ी है, खून है, हड्डियाँ हैं, माँस हैं। यह पंचभूत से बना हुआ है, हमें इससे क्या? इसका क्या करना है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। चंदूभाई जीवित हैं। आप शुद्धात्मा हो और चंदूभाई जीवित हैं। यह रक्त, माँस और पीप का पुतला नहीं है, यह जीवित है। निबेड़ा लाना पड़ेगा इसका तो!

प्रश्नकर्ता : हम किसी का नहीं बिगाड़ते, व्यवस्थित के अनुसार होता रहता है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। ये क्या कहते हैं कि ''आपने' हमें बिगाड़ा है, 'आपने' हमें विकृत किया है। हम जो कि साफ *पुद्‌गल* थे, प्योर थे, शुद्ध थे, उसके बजाय हमें अशुद्ध कर दिया, इम्प्योर कर दिया, विकृत कर दिया आपने। 'आपने' भाव किए, तभी विकृत हुए न!''

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, *पुद्‌गल* की, जड़ की भला स्वकृति क्या और विकृति क्या?

दादाश्री : अंदर पावर चेतन है न! आप अलग हो और यह चेतन भाव वाला *पुद्गल* अलग है। *पुद्गल* में पावर चेतन है, वास्तविक चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* को खराब किसने किया?

दादाश्री : 'आपने' जो भाव किए, उसी भावकर्म ने। उसी से *पुद्गल* उत्पन्न हुआ। यदि भावकर्म नहीं हुए होते तो यह *पुद्गल* उत्पन्न नहीं होता। *पुद्गल* को कोई लेना-देना नहीं है। वह तो वीतराग ही है बेचारा। 'आप' भाव करते हो तो तुरंत ही उसका परिणमन हो जाता है। इसलिए जो परमाणु अशुद्ध हो गए हैं, उन्हें शुद्धता से शुद्ध करना है, और कुछ भी नहीं है।

अत: जितने डिस्चार्ज बाकी हैं, उतने अशुद्ध रहे हैं। उन्हें भी अगर आप अभी देख-देखकर जाने दोगे तो वे शुद्ध होकर चले जाएँगे।

शुद्धिकरण पुद्गल का, होता है आज्ञापालन से

प्रश्नकर्ता : उस समय उसे ऐसा तो विचार आता है न, कि "अभी तक *पुद्गल* को ही 'मैं हूँ' ऐसा मानकर चला, वह भी मेरी भूल है, अब मैं भूल सुधार रहा हूँ और तेरे साथ ही संयोग हुआ तो अब मेहरबानी करके, तू संयोग को छोड़ दे", इसके सिवा और क्या है?

दादाश्री : नहीं-नहीं। वह क्या छोड़ेगा, पावर चेतन बेचारा? किस तरह से, कितना कर सकेगा? वह कैसे छोड़ सकेगा? अपने देखने से वह छूट ही जाएगा। एक-एक धागा छूटता जाएगा। अगर ऐसे लाखों धागे होंगे तो वे लाखों भी छूटते जाएँगे, फिर से नहीं बंधेंगे। हम मुक्त हो जाएँगे। धागा, धागे के घर चला जाएगा और हम अपने घर, बाकी क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : तो हमें यह सब जो बोलना है, वह अपने *पुद्गल* को शुद्ध करने के लिए ही बोलना है न?

दादाश्री : सबकुछ *पुद्गल* की शुद्धि के लिए। हाँ, तब तक पूर्ण दशा नहीं आएगी। आपको दादा ने शुद्ध कर दिया है, अब इस *पुद्गल* का शुद्धिकरण बाकी है। उसका अशुद्ध होना बंद हो चुका है। अब अभी अगर ऐसा शुद्धिकरण हो जाएगा न, तो एक जन्म तक ही चलेगा, ऐसा है। आज्ञा में रहने से शुद्धिकरण होता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : यह पूरा साइन्स *पुद्गल* को शुद्ध करने का है न? ये आज्ञारूपी जो पाँच वाक्य हैं या यह सारा जो विज्ञान है, वह *पुद्गल* को शुद्ध करने के लिए है न? आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है।

दादाश्री : वास्तव में तो *पुद्गल* को भी शुद्ध करने की (यानी कि कर्तापन की क्रिया की) हमें कोई ज़रूरत नहीं है। हमें यदि हमारी जो शुद्ध दशा (ज्ञाता-द्रष्टा) है, उसमें अशुद्धि (मैं कर रहा हूँ) नहीं मानी जाए, तो *पुद्गल* तो शुद्ध हो ही जाएगा। *पुद्गल* तो अपने आप ही शुद्ध होता रहेगा।

पुद्गल में यदि दखलंदाज़ी नहीं की जाए तो यह तो शुद्ध होता ही रहेगा लेकिन यह दखलंदाज़ी करता है। यह दखल देता है और फिर गड़बड़ हो जाती है! दखलंदाज़ी करने वाला कौन है? अज्ञान मान्यताएँ।

पावर चेतन से गुणा किया था, ज्ञान से भाग लगाना है

प्रश्नकर्ता : अब, जो कुछ भी साधना करता है, वह सब *पुद्गल* करता है, और प्राप्त करना है आत्मा, जो कि कुछ भी नहीं करता। तो अब ऐसी कोई लिंक बताइए ताकि इस *पुद्गल* में जो मेरापन है, कर्तृत्वपन है, उसमें से निकलकर खुद के आत्मा में आ जाएँ।

दादाश्री : आपको अगर यहाँ से आधा मील दूर कॉलेज जाना हो, और आप सात सौ मील तक गए, फिर भी कॉलेज नहीं आया तो आपको क्या करना पड़ेगा? अगर सात सौ मील चले गए तो? वे लोग अनाउन्स करते हैं कि भाई, आधा मील ही दूर था। अब, आप कहाँ

चले गए? और अगर वहाँ पर कहा जाए कि आधे मील के बाद आ जाएगा, तो आ जाएगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं आएगा।

दादाश्री : उल्टे चले हो, उसी वजह से यह प्रयोग है। यह सब जो करना पड़ रहा है वह, जितना उल्टा चले हो उसी में भाग लगाना है। जितने से गुणा किया है उतने से भाग लगाना पड़ेगा। रकम निःशेष, शेष रहित रकम ले आनी है। जितने से गुणा किया, उतने से भाग लगाने पर निःशेष हो जाएगा या नहीं? तो क्या ऐसा लगता है कि अभी तक गुणा नहीं किया था?

प्रश्नकर्ता : गुणा तो बहुत किए हैं।

दादाश्री : तो आज इस गुणाकार में ही भाग लगाना है और भागकार से भाग लगा देना है, खत्म कर देना है।

प्रश्नकर्ता : यह जो भाग लगाना है, वह भाग लगाने वाला भी... उसमें भी मेरापन तो *पुद्गल* का ही है न? वही करेगा न?

दादाश्री : वह *पुद्गल* का है। *पुद्गल* उत्पन्न करता है और तोड़ता भी वही है। तो आप (आत्मा) प्रकट हो जाओगे। *पुद्गल* में सिर्फ *पुद्गल* ही नहीं है। सिर्फ *पुद्गल* ही ऐसा नहीं कर सकता। वह नई डिज़ाइन वाला बना सकता है लेकिन मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को बंद नहीं कर सकता। अतः अंदर चेतन का जो भाग है, वह चेतन, कौन सा चेतन है? वह पावर चेतन है। सिर्फ *पुद्गल* तो कर ही नहीं सकता यह। क्या आपको ऐसा लगता है कि सिर्फ *पुद्गल* से ही यह हुआ है?

प्रश्नकर्ता : नहीं हो सकता, लेकिन उसमें जो चेतन पड़ा हुआ है, वह तो आत्मा का ही कुछ प्रकाश होना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ! प्रकाश है लेकिन प्रकाश ही आत्मा है। अतः वस्तुस्थिति में हमें क्या कहना है कि यह सिर्फ *पुद्गल* नहीं है। यदि

सिर्फ *पुद्‌गल* होता न, तो फिर इस (जड़) जैसा होता। उससे आप पर कोई असर नहीं होता। लेकिन यह तो असर वाला है, इफेक्टिव है, यानी कि उसमें पावर भरा हुआ है। तो अब आपको इसे कैसे शुद्ध करना है? वह कहता है कि, 'मुझे शुद्ध करो', तो चंदूभाई के पास जो फाइल आई, उसका यदि हम समभाव से *निकाल* करेंगे तो चंदूभाई के सारे परमाणु खत्म हो जाएँगे। साफ हो जाएगा अंदर।

इसलिए अब ज्ञान के बाद समभाव से *निकाल* करना है। जैसे वे पावर के सेल होते हैं न, तो ये मन-वचन-काया के भी तीन सेल ही हैं, वे सेल अपने आप खर्च हो जाएँगे तो खत्म। आपको इसका समभाव से *निकाल* करना है, तो फिर यह शुद्ध होता जाएगा। अगर आप समभाव से *निकाल* करो.. और शुद्ध होता जाएगा। और शुद्ध होते होते होते पावर खत्म हो गया तो आप भी मुक्त और वह भी मुक्त।

पावर भरे हुए पुतले को 'देखना' है अंतिम कक्षा में

प्रश्नकर्ता : यानी जब भी कोई अच्छा या खराब विचार आए तब 'यह मैं नहीं हूँ, मेरा नहीं है, यह ज्ञेय है और मैं शुद्धात्मा हूँ, उसका ज्ञाता-द्रष्टा हूँ', ऐसा भाव करना है या विचारों को भी देखना है? क्या उस समय विचारों की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए?

दादाश्री : खराब विचार आए या अच्छा विचार आए, उसे 'मैं नहीं हूँ, मेरा नहीं है, यह ज्ञेय है', ऐसा कहने में हर्ज नहीं है लेकिन एक हद तक ही यह बोलना है। उसके बाद वास्तव में तो क्या है? शुद्धात्मा अलग हो गया, उसके बाद यह जो चंदूभाई है, वह तो पावर भरा हुआ पुतला है। अंदर साथ में अगर शुद्धात्मा होगा तो पावर भरेगा और खाली होगा। और अब (ज्ञान के बाद) पावर नहीं भरेगा और अब जो सेल रहे हुए हैं, वे खाली हो जाएँगे। वे सेल क्या काम करते हैं, यही देखना है हमें। तो एक मन की बैटरी, एक वाणी की बैटरी और एक काया की बैटरी है। तो हमें देखते रहना है कि बैटरियाँ क्या-क्या करती हैं, कैसा प्रकाश देती हैं, ज़्यादा देती हैं या कम देती

हैं? दखलंदाज़ी भी करती हैं। बोलता भी है फिर, लेकिन वह टेपरिकॉर्डर है। इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति खुद के बोल नहीं बोल सकता। कोई जानवर भी नहीं बोल सकता। स्थूल हो या सूक्ष्म, वह क्या काम कर रहा है, वह देखना है। शुरुआत की कक्षा में 'नहीं है-नहीं है' करना, 'यह मैं नहीं हूँ', और जब आगे बढ़ोगे तब सिर्फ देखना है। क्योंकि पुतला अलग है और आप अलग हो। यह तो पावर भरा हुआ पुतला है।

पावर खत्म होने पर होती है परमाणुओं की निर्जरा

प्रश्नकर्ता : यानी यह आत्मा अलग होने के बाद में परमाणु और पावर, ये दोनों चंदूभाई के साथ ही रहे हुए हैं?

दादाश्री : हाँ! जैसे-जैसे पावर खर्च होता जाएगा न, वैसे-वैसे परमाणु खत्म हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : पावर यानी हमारे जो पुराने सारे कर्म हैं, वे पावर कहलाते हैं न?

दादाश्री : उन कर्मों में पावर-वावर सबकुछ आ गया।

प्रश्नकर्ता : पावर में, कर्म के अलावा और क्या आता है?

दादाश्री : और कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : कर्म ही न? परमाणु और कर्म एक तरफ हो गए और आत्मा अलग हो गया, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : उन परमाणुओं और पावर को कुल मिलाकर कर्म कहते हैं और आत्मा सेपरेट (अलग) हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो अब पावर खत्म होने के बाद परमाणु?

दादाश्री : पावर खत्म हो जाता है तो परमाणु अलग हो जाते हैं, बस।

प्रश्नकर्ता : जो प्योर परमाणु हैं, विश्रसा और जो चार्ज हो चुके मिश्रसा परमाणु हैं, इनमें फर्क तो है न?

दादाश्री : कोई और फर्क है ही नहीं। फर्क इतना ही है कि वे हैं पावर खत्म हो चुके सेल और ये हैं पावर भरे हुए सेल। सिर्फ इतना है कि उनका (विश्रसा परमाणु का) पावर खर्च हो चुका है जबकि इनका (मिश्रसा परमाणु का) पावर खर्च नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : इतनी सी बात से ही तो यह सब खड़ा हो गया न, दादाजी?

दादाश्री : हाँ, लेकिन इतनी सी बात से ही यह सब हो गया न!

प्रश्नकर्ता : नहीं तो सभी प्योर (शुद्ध) द्रव्य हैं।

दादाश्री : प्योर ही हैं न! पावर चेतन की वजह से, पावर की वजह से अटक गया है सब।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका पावर तो खत्म हो गया है न?

दादाश्री : नहीं। मेरा पावर खत्म हो गया है, इसका मतलब क्या है? मेरा मूल (चार्ज) पावर खत्म हो गया है, लेकिन यह बैटरी वाला पावर खत्म नहीं हुआ है अभी।

प्रश्नकर्ता : हमारा भी मूल पावर खत्म हो गया है न?

दादाश्री : मूल पावर तो मैंने कहा न, आप शुद्धात्मा, लेकिन आपका अभी एक तरफ शुद्धात्मा में है और एक तरफ... दूसरी तरफ भी है आपका अभी। इसलिए आपकी जागृति उसमें भी चली जाती है। मेरी जागृति नहीं जाती। अभी तो आप जैसे-जैसे आगे इस अनुसार फाइलों का *निकाल* करोगे न, वैसे-वैसे वापस जागृति आती जाएगी। तब फिर अलग रहेगा। फिर, अलग-अलग रहेगा तो आपको परेशान नहीं करेगा, तब तक ज़रा दखल देता रहेगा।

हमारी दृष्टि से देखना चाहो तो आपको, हमारी जैसी दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी कि यह पूरा जगत् निर्दोष है। दोषित दिखाई देता है, वही भ्रांति है। आपको गालियाँ देने वाला, आपको दोषित दिखाई देता है, वह भ्रांति है। क्योंकि गालियाँ देने वाला तो पावर चेतन है और दरअसल चेतन तो शुद्धात्मा है। यानी कि वह गालियाँ दे फिर भी आपको तो उसे शुद्धात्मा ही देखना होगा। सामने वाले का पावर चेतन आपके हिसाब के अधीन है। वे हिसाब चुकाने पड़ेंगे। हिसाब चुक जाने के बाद कुछ भी नहीं रहता।

[4]
मिश्र चेतन

अचेतन विनाशी, चेतन अविनाशी

प्रश्नकर्ता : आत्मतत्त्व चेतन में है या अचेतन में, या दोनों में है?

दादाश्री : चेतन, चेतन में है और अचेतन, अचेतन में है। अचेतन विनाशी है और चेतन अविनाशी है। यानी कि चेतन इसमें, आत्मा में भी है और उसमें भी है, दोनों में है? नहीं, वह दोनों में नहीं है। अगर दोनों में होता न, तो विनाशी के साथ उसका भी विनाश हो जाता। आत्मा, चेतन में ही है। अब अचेतन किसे कहा जाता है?

प्रश्नकर्ता : बॉडी, शरीर।

दादाश्री : शरीर, और क्रोध-मान-माया-लोभ व अहंकार और ये बुद्धि, चित्त, मन वगैरह सब चेतन हैं या अचेतन हैं?

प्रश्नकर्ता : चेतन।

दादाश्री : तब तो फिर यह मूल चेतन हुआ, और यह चेतन है तो फिर इस चेतन को ही पकड़कर बैठो और उस चेतन की ज़रूरत ही क्या है हमें? इसलिए सुन लो, क्रोध में चेतन नहीं है, मान में चेतन नहीं है, लोभ में चेतन नहीं है, माया में चेतन नहीं है, बुद्धि में

चेतन नहीं है, अहंकार में चेतन नहीं है, मन में चेतन नहीं है, चित्त में चेतन नहीं है और देह में भी चेतन नहीं है।

व्यतिरेक गुण, न तो चेतन के हैं, न ही जड़ के

प्रश्नकर्ता : तो क्रोध-मान-माया-लोभ, ये जड़ के गुण कहलाते हैं?

दादाश्री : यदि जड़ के गुण होते तो इसे (टेपरिकॉर्डर को) गुस्सा आना चाहिए लेकिन वैसा नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : इस जड़ और चेतन में पड़ने की वजह से सबकुछ बहुत खिंच जाता है, ऐसा है। ये सारी बातें उलझाने वाली हैं।

दादाश्री : नहीं, उलझा हुआ नहीं है, करेक्ट है लेकिन समझ में नहीं आने की वजह से उलझ जाता है। यदि यह जड़ का गुण होता तो यह (टेपरिकॉर्डर) गुस्सा हो जाता, लेकिन नहीं होता। यदि यह चेतन का गुण होता तो कोई भी मोक्ष में नहीं जा पाता। क्योंकि मूल स्वभाव में यानी चेतन में ये क्रोध-मान-माया-लोभ हैं ही नहीं। यह जो निर्बलता है, वह उसमें नहीं है, इसमें (जड़ में) भी निर्बलता नहीं हैं। तो कोई पूछे कि, 'भाई, यह ऐसा क्यों है?' तो कहते हैं, 'आत्मा की उपस्थिति में... आत्मा और जड़ दोनों नज़दीक आ गए इसलिए व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जो न तो आत्मा के गुण हैं और न ही अनात्मा के गुण। ऐसे व्यतिरेक गुण उत्पन्न होते हैं और इस व्यतिरेक से यह जगत् चल रहा है।

दर्शन आवृत होने से हुई 'बिलीफ' रोंग

प्रश्नकर्ता : दो तत्त्वों के नज़दीक आने से आत्मा में क्या बदलाव हुआ?

दादाश्री : उसका दर्शन, मूल आत्मा का जो दर्शन है, वह पूरा ही दर्शन आवृत हो गया है, बाहर के इस अज्ञान प्रदान से। जन्म होते

ही बाहर के लोग उसे अज्ञान देते हैं। खुद अज्ञानी और बच्चे को भी अज्ञान के रास्ते पर ले जाते हैं। इसलिए वह ऐसा मान बैठता है और उससे दर्शन आवृत हो जाता है। दर्शन के आवृत होने से ही 'ये मेरे मामा और ये मेरे चाचा और ये मेरे ससुर', ऐसा कहता है। फिर मैं बताता हूँ, 'ये सारी रोंग बिलीफें हैं।'

अब, 'मैं चंदूलाल हूँ', वही रोंग बिलीफ है। शरीर के लिए अहंकार ऐसा कहता है कि, 'मैं हूँ' और 'मेरा शरीर है'। यह सारा दुःख भुगतता है, अहंकार। 'मैं ही यह कर रहा हूँ' और भुगतता भी वही है। यह सब अहंकार (का) ही है। यदि अहंकार चला जाए और दृष्टि बदल जाए तो यह सब खत्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : रोंग बिलीफ से इतना बड़ा परिणाम आता है?

दादाश्री : बिलीफ यानी भगवान की बिलीफ, भगवान की यह बिलीफ क्या ऐसी-वैसी कही जाएगी! बिलीफ का मतलब तो जो वस्तु को तोड़ दे। उस बिलीफ में चेतन घुस गया है। उसे 'मिश्र चेतन' कहना पड़ता है।

मिश्र चेतन है तो जड़, लेकिन नाटक करता है 'चेतन' जैसा

प्रश्नकर्ता : उस मिश्र चेतन की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : मिश्र चेतन यानी कि जो चेतन नहीं है, जड़ है। है जड़ और चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। लक्षण भी दिखाई देते हैं और चारित्र भी वैसा ही दिखाई देता है। यानी कि वर्तन भी वैसा ही दिखाई देता है, चेतन जैसा लेकिन है जड़।

जड़ में कभी भी 'चेतन' नहीं हो सकता और चेतन में कभी भी जड़ नहीं हो सकता। सिर्फ यह शरीर ही 'मिश्र चेतन' है। (अज्ञानी के लिए) चेतन की तरह काम करता है, लेकिन वास्तव में चेतन नहीं है। ये जो चेतन दिखाई देते हैं न, वे सब मिश्र चेतन ही हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे चैतन्य से ही देखा जा सकता है न?

दादाश्री : चैतन्य से ही यह पूरा जगत् दिखाई देता है। लेकिन जो चैतन्य, जगत् को देखता है, वह मिश्र चेतन है। शुद्ध चेतन नहीं देख सकता, मिश्र चेतन देख सकता है।

यह शरीर, चेतन और मिश्र चेतन से बना हुआ है। वह चेतन खुद परमात्मा है और मिश्र चेतन में यह बॉडी है, मन है, वाणी है। यह जो पूरा अंत:करण है, वह पूरा ही मिश्र चेतन है।

प्रश्नकर्ता : उस मिश्र चेतन के बारे में ज़रा और स्पष्टता कीजिए न?

दादाश्री : *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) में जो मैंपन मानता है, वह मिश्र चेतन है। मैंपन के जो भाव रहे हुए हैं 'मैं, मैं', यह जो उल्टी मान्यता है, वही यह है।

रोंग मान्यता से उत्पन्न हुआ मिश्र चेतन

यह मिश्र चेतन कैसे उत्पन्न होता है, कि जब ज्ञान नहीं होता तब मनुष्य ऐसा ही कहता है न, कि, 'मैं चंदूभाई हूँ' और चंदूभाई के तौर पर बोला, है रियल और रिलेटिव है ऐसा कहता है, यानी कि वह भ्रांति से ऐसा कहता है, इसलिए वह इगोइज़म है, उसे अहंकार है। जहाँ पर खुद नहीं है, वहाँ पर *पोतापन* (मैं और मेरा ऐसा आरोपण, मेरापन) मानना, *पोतापन* का आरोपण करना, वही है (सूक्ष्मतम) अहंकार। उस मिश्र चेतन से कर्म बंधते हैं। उसके ऐसा कहते ही कि, 'मैंने यह किया', कर्म बंधन होता है। क्योंकि वह खुद कर्ता नहीं है। और उसे ऐसा गलत आभास होता है, सिर्फ भास्यमान परिणाम है। उसी को वास्तविक परिणाम मानता है।

प्रश्नकर्ता : जब कर्म के रजकण चार्ज होते हैं तो अब, जब व्यवहार आत्मा (मिश्र चेतन) भाव करता है (अज्ञान दशा में) क्या तब चार्ज होता है?

दादाश्री : उसी भाव से उत्पन्न हुआ है, और वह व्यवहार आत्मा का विशेष भाव है।

प्रश्नकर्ता : वह व्यवहार आत्मा का विशेष भाव है, क्योंकि दोनों साथ में आए इसलिए यह उत्पन्न हुआ।

दादाश्री : विशेष भाव है वह। मिश्र चेतन का जन्म यों ही नहीं हो गया, व्यवहार आत्मा की बिलीफ बिगड़ी है।

प्रश्नकर्ता : बिलीफ बिगड़ गई है कि, 'यह मैं हूँ'।

दादाश्री : हाँ, वह उसकी वजह से उत्पन्न हुआ है। फिर भी मूल आत्मा वैसे का वैसा ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन चार्ज के समय... अब, वह जो चार्ज करता है तब मूल आत्मा उसमें एकाकार ही रहता है?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : नहीं न! क्या व्यवहार आत्मा चार्ज करता है उसे?

दादाश्री : व्यवहार आत्मा (मिश्र चेतन), उसकी बिलीफ बिगड़ी हुई है, वही चार्ज करता रहता है।

प्रश्नकर्ता : जो मिश्र चेतन है, उसमें शुद्ध चेतन का कोई भाग तो है या नहीं?

दादाश्री : बिल्कुल भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वह शुद्ध चेतन के भाव में से पैदा हुआ है? यह मिश्र चेतन पैदा कहाँ से हुआ है?

दादाश्री : मान्यता से पैदा हुआ है। जैसे कि कोई व्यक्ति एक रूम में सो गया, उसने एक दिन पहले भूत की किताब पढ़ी हो, और फिर सो गया रूम में, और घर में कोई है नहीं, और दूसरे रूम में कोई प्याला खड़के, रात को बारह एक बजे, तो उसे ऐसा लगता है

कि यह कुछ है, यह आया, भूत आया। वह जो बिलीफ घुस गई, वह बिलीफ कब निकलेगी?

प्रश्नकर्ता : वह लाइट जलाए और कुछ देखे, तो निकलेगी।

दादाश्री : लाइट जलाने की उसमें हिम्मत ही नहीं रही, मुँह ढककर सोया हुआ है। सोचता है, 'अगर चादर हटाऊँगा तो देख लेगा, फिर क्या होगा?' सुबह उठकर सब तरफ उजाला देखता है, तब फिर चादर हटाता है। फिर अंदर जाकर पता लगाता है तो, 'ओहोहो! यह तो चूहे ने गिरा दिया है।' चूहे ने कुछ-कुछ लेंडियाँ की होती हैं। जब वह रोंग बिलीफ निकल जाती है तब उसे हल मिलता है। उसी तरह यह रोंग बिलीफ घुस गई है, उससे मिश्र चेतन शुरू हो गया है।

प्रश्नकर्ता : तो यह मिश्र चेतन किस स्वरूप में है?

दादाश्री : रोंग बिलीफ के रूप में है। सभी रोंग बिलीफें, मिश्र चेतन या मन-वन सभी कुछ रोंग बिलीफें।

रोंग बिलीफ फल देकर जाती है। पूरी रात अंदर घबराहट रहती है। वह फल देती है और फिर चली जाती है। इसी तरह से ये सारी रोंग बिलीफें फल देकर चली जाती हैं। मिश्र चेतन फल देकर जाता है, कुछ और नहीं करता। फल देने के बाद, वह *पुद्गल* शुद्ध हो जाता है।

मिश्र चेतन कड़वे-मीठे फल देकर खुद शुद्ध *पुद्गल* हो जाता है। ये कड़वे-मीठे फल मान्यता के फल हैं।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा वैसे का वैसा ही रहा है?

दादाश्री : आत्मा तो आत्मा रहा है, लेकिन साथ-साथ मिश्र चेतन बन गया। उसी से ये *लागणियाँ* होती हैं, याददाश्त रहती है। इस टेपरिकॉर्डर का बोलना, ये सभी मिश्र चेतन के गुण हैं। यह मूल चेतन नहीं है और मूल परमाणु भी नहीं है, दोनों का मिक्स्चर हो गया है इसमें।

आत्मा के खुद के असल गुण उसके खुद के स्वभाव में हैं, लेकिन सारे व्यतिरेक गुणों वाली प्रकृति उत्पन्न हो गई है। उस प्रकृति से सब चलता है फिर। बिलीफ वैसी की वैसी रहती है कि, 'यह हूँ या वह हूँ', इसका उसे पता नहीं चलता। क्योंकि जन्म से ही ऐसे संस्कार दिए जाते हैं कि पहले उसे बाबा कहा जाता है और फिर उसे नाम दिया जाता है, उस नाम को फिर भतीजा, मामा, चाचा कहा जाता है। उसे भयंकर अज्ञानता वाले संस्कार दिए जाते हैं। संसार अर्थात् अज्ञानता में ही फँसाते रहना। पिछले जन्म के कोई जो ज्ञानी हों न, उन्हें भी इस जन्म में फिर से अज्ञान के प्रतिस्पंदन आते हैं। बाद में उदय आने पर वापस उसमें से निकल जाते हैं। लेकिन इस संसार का क्रम ही ऐसा है कि लोग रोंग बिलीफ फिट कर देते हैं।

रोंग बिलीफ खत्म हो जाए तो भक्षक ही बन जाएगा रक्षक

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर भी अज्ञान के लिए जो मिश्र भाग में चेतन है वह ज़िम्मेदार नहीं है?

दादाश्री : वह ज़िम्मेदार नहीं है लेकिन ज़िम्मेदार कौन है, यह तो जानना पड़ेगा न? अहंकार। वह मान्यता, जो रोंग बिलीफ थी, वही ज़िम्मेदार थी। रोंग बिलीफ खत्म हो गई तो फिर आप ज़िम्मेदार नहीं हो। रोंग बिलीफ खत्म हो गई तो वही का वही पुलिस वाला, सरकारी ऑफिसर, वही सबकुछ। कुछ भी नहीं बदलता। रोंग बिलीफ चली जाए तो जो सरकारी ऑफिसर पहले भक्षण कर रहे थे, वही फिर रक्षण करने लगेंगे। रोंग बिलीफ की वजह से ऐसा सब था। बाकी, वही ऑफिसर जो परेशान और पूरे दिन दुःखी रहा करते थे, वही हैं ये, ऑफिसर कहीं बदले नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : ऑफिसर के तौर पर तो रहे न?

दादाश्री : रहना पड़ेगा न! लेकिन वे खुद का, खुद ही खुद का विनाश कर रहे हैं। मन इस तरफ नहीं मुड़ता, धर्म की तरफ। क्या

कारण है? यदि जान जाए कि यहाँ पर मेरी मौत है तो नहीं मुड़ेगा, और अगर मुड़ जाए तो कोई हर्ज नहीं है। एक बार समझा-बुझाकर मोड़ना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उसे लगता है कि मेरी मौत है, इसीलिए वहाँ जाता ही नहीं है न!

दादाश्री : कुछ अच्छा-अच्छा खिला-पिलाकर ही सही, लेकिन उसे मोड़ना पड़ेगा। फिर वह उसी तरफ दौड़ता रहेगा। लेकिन अगर पहली बार में पता चल जाए, गंध आ जाए कि, 'ये मुझे मार देंगे', तो वह इसमें घुसेगा ही नहीं। मन का स्वभाव है, इसमें घुसेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : जो आत्मभाव उत्पन्न हुआ होगा, उसे भी खोद देगा।

दादाश्री : हाँ! वह सबकुछ उड़ा देगा। क्योंकि वह जानता है कि मेरा नाश हो जाएगा। लेकिन यदि उसे समझा-बुझाकर इसमें डाल दिया जाए तो फिर इसे भी छोड़ेगा नहीं वह।

'मिश्र चेतन' में नहीं मिलता चेतन का छींटा भी

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन कौन से द्रव्य में आता है?

दादाश्री : मिश्र चेतन तो, सभी द्रव्यों के इकट्ठे होने पर नया आत्मा उत्पन्न होता है और वह काम कर रहा है।

प्रश्नकर्ता : पहले मिश्र चेतन को ही आत्मा मानते थे।

दादाश्री : पूरा जगत् उसी को आत्मा कहता है, मिश्र चेतन जिसमें कि चेतन की एक छींटा भी नहीं है, उसे आत्मा कहते हैं। यह कैसे समझ में आएगा कि इसमें चेतन का छींटा भी नहीं है? इसलिए हमें कहना पड़ा कि मिश्र चेतन है। शास्त्रकारों ने मिश्र चेतन कहा है, इसलिए ऐसा समझे कि अंदर यह मिक्सचर किया हुआ होगा। अरे

भाई! इसमें आत्मा मिक्स नहीं हो सकता। आत्मा टंकोत्कीर्ण वस्तु है। वह मिक्स हो ही नहीं सकता।

यह तो मिश्र लिखा है, इसलिए लोगों ने अब क्या माना कि अपना जो चेतन आत्मा है, उसमें अंदर मिक्स हो गया है। इसलिए उसके बाद शास्त्रकारों ने एक तरफ क्या लिखा? कि तेल और पानी दोनों इकट्ठे हो गए हैं, अब उन्हें अलग करने को कह रहे हैं। इसलिए लोगों ने समझा कि यह मिक्सचर हो गया है। अरे, मिक्सचर नहीं है। यह आत्मा कभी भी मिक्स नहीं हो सकता। आत्मा स्वाभाविक वस्तु है। स्वाभाविक वस्तु किसी और के साथ में मिक्स हो ही नहीं सकती। यह तो दूसरी वस्तुओं का संयोग हुआ है।

प्रश्नकर्ता : यों तो मिश्र चेतन को भी वास्तव में सही शब्द नहीं माना जा सकता। क्योंकि इसमें चेतन है ही नहीं, तो फिर उसे मिश्र चेतन कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, इसे शास्त्र की तरह रख सकते हैं न! चेतन तो कहना ही पड़ेगा न! चेतन जैसा काम करता हुआ दिखाई देता है इसलिए चेतन तो कहना पड़ेगा, नहीं तो उसे भ्रम हो जाएगा। वह तो, ज्ञानी पुरुष इस तरह स्पष्टता करते हैं कि 'इसमें चेतन का छींटा भी नहीं है, पावर चेतन है'। जब तक बैटरी में पावर होता है न, सेल में, तब तक उसका उपयोग होता है। खत्म हो जाने के बाद में सेल को निकाल देते हैं। सेल सुंदर व चमकीला दिखाई देता हो, बिगड़ा हुआ नहीं हो, सड़ नहीं गया हो, फिर भी काम नहीं आता।

यह पूरी दुनिया जिसे 'आत्मा' कहती है, उसे तीर्थंकरों ने 'मिश्र चेतन' कहा है। अब, जब 'मिश्र चेतन' कहते हैं तो लोग क्या समझते हैं? आधा चेतन है न, तो आधा निकाल देंगे तो आधा बचेगा, ऐसा कहते हैं। अरे, इसमें चेतन है ही नहीं, निश्चेतन चेतन है। चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं, लेकिन चेतन नहीं है। जिस तरह लट्टू पर एक बार डोरी लपेटकर नीचे फेंकने के बाद में वह घूमता है। और उसमें

अगर कोई कहे कि इसमें चेतन है, तो वास्तव में वैसा नहीं है। उसी तरह यह लट्टू की तरह घूम रहा है। तीर्थंकरों को तो पद्धतिपूर्वक लिखना (बताना) पड़ता है, लेकिन मुझे तो आपको समझ में आए, वैसी भाषा में बोलना पड़ेगा न? वर्ना फिर आप कहोगे, मिश्र चेतन है तो हर्ज नहीं है। कहेंगे, इकट्ठा ही है न अंदर, थोड़ा-बहुत तो है ही। इसमें इतना सा भी चेतन नहीं है, इसलिए हमने इसे 'निश्चेतन चेतन' कहा।

प्रश्नकर्ता : तो उसे मिश्र चेतन कहना चाहिए या निश्चेतन चेतन?

दादाश्री : वे दोनों एक ही हैं। निश्चेतन चेतन कहने का भावार्थ यह है कि यह जो मिश्र चेतन कह रहे थे न, इस मिश्र चेतन को वे क्या समझते हैं कि जैसे, कैसा भी पानी मिलाया हुआ दूध हो, लेकिन वह दूध तो दूध ही है। ऐसा समझते हैं कि दूध ही है। उसी प्रकार इस मिश्र चेतन से क्या समझते हैं? चेतन तो है ही। इसीलिए मैंने उन्हें समझाने के लिए कहा था कि यह तो निश्चेतन चेतन है, लट्टू जैसा चेतन है। उसमें ज़रा सा भी चेतन नहीं है। कुल मिलाकर देखने जाएँ तो ज़रा सा भी चेतन नहीं है।

ये लोग बाह्य विज्ञान में सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों के फैसले ले आए हैं, जबकि इसमें तो स्थूल बातों में भी फैसला नहीं कर पाए। अभी तो वे ऐसा ही समझते हैं कि जो यह सब करता है, वही चेतन है।

मिश्र चेतन है कार्यरत, चेतन की उपस्थिति से ही

प्रश्नकर्ता : ऐसा सब जो करता है, वह चेतन के आधार पर ही तो है न?

दादाश्री : चेतन की उपस्थिति है, आधार कुछ भी नहीं है, सिर्फ उपस्थिति।

आपने एक भी काम चेतन के तौर पर नहीं किया है। और यदि चेतन के तौर पर काम कर रहे होते तो अनंत जन्मों से अंदर चेतन घिसता ही रहता, तो फिर उसकी वेल्डिंग कहाँ से हो पाती?

पूरा जगत् क्रिया में आत्मा है, ऐसा मानता है। क्रिया में आत्मा नहीं हो सकता और आत्मा में क्रिया नहीं हो सकती। लेकिन ऐसी बात कब समझ में आ सकती है? दुनिया को तो अचेतन-चेतन चला रहा है। चेतन अलग है, अचेतन भी अलग है और जगत् को जो चला रहा है, वह भी अलग है। वह विभाविक गुण है, वह अचेतन-चेतन है। विभाविक गुण यानी कि वह आत्मा की भ्रांति से उत्पन्न होता है, चलायमान हो चुका मिश्र चेतन।

प्रश्नकर्ता : यह जो मिश्र चेतन है, उसमें आत्मा की क्या भूमिका है?

दादाश्री : मिश्र चेतन में आत्मा कोई भूमिका अदा नहीं करता। मिश्र चेतन तो आत्मा की उपस्थिति से ही चल रहा है। यदि उपस्थिति नहीं होगी तो नहीं चलेगा। क्योंकि उपस्थिति से ही इन्डायरेक्ट प्रकाश उत्पन्न होता है। उसकी उपस्थिति से ही इस अहंकार के थ्रू होकर, जो प्रकाश उत्पन्न होता है, वह इन्डायरेक्ट प्रकाश है। उस प्रकाश के उत्पन्न होने से सबकुछ गतिमान हो जाता है।

मिश्र चेतन अर्थात् पावर चेतन। चेतन की उपस्थिति से ही पावर उत्पन्न हो जाता है। चेतन का इसमें कुछ भी नहीं जाता और यह पावर वाला बन जाता है। जैसे कि सूर्य की उपस्थिति से आप ऊर्जा उत्पन्न करते हो, और भी काम करते हो, जिसे जो ठीक लगता है, वही करता है, उसमें सूर्य खुद उदासीन है। उसी प्रकार से आत्मा (शरीर में) उदासीन है और यह मिश्र चेतन काम कर रहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शुद्धात्मा का कोई भाव होता होगा इसलिए वह चलता है, या नहीं?

दादाश्री : वह भाव भी मिश्र चेतन है, यह शुद्धात्मा ही चेतन है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर चेतन नहीं होगा तो फिर वह (मिश्र चेतन) चलेगा कैसे?

दादाश्री : चेतन है, लेकिन उसका ज़रा सा भी उपयोग हुए बिना, एक प्रतिशत भी उसका उपयोग हुए बिना यह जगत् चल रहा है।

प्रश्नकर्ता : उपयोग हुए बिना, लेकिन उसे आधार तो चेतन का ही है न?

दादाश्री : उपस्थिति ही है उसकी। दुनिया क्या मान बैठी है कि इसमें चेतन का ही उपयोग हो रहा है, और चेतन का उपयोग होने से ही यह सारा हिलना, डुलना, चलना, खाना, पीना, बोलना और बातचीत होती है। हम क्या कहते हैं कि इसमें चेतन का उपयोग हुआ ही नहीं है, चेतन का एक परसेन्ट भी उपयोग नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि चेतन कॉन्स्टन्ट (हमेशा) यों ही रहता है और उसकी उपस्थिति से ही चल रहा है वह?

दादाश्री : उपस्थिति से ही चलता रहता है, वर्ना काम ही नहीं हो पाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह एक बहुत बड़ी बात है।

दादाश्री : सब से बड़ी बात। उसकी उपस्थिति होगी तभी यह चलेगा, वर्ना नहीं चलेगा। उसमें चेतन कुछ भी नहीं करता। उसकी उपस्थिति ही है, बस, और कुछ नहीं है।

विभाविक पुद्गल, वह है मिश्र चेतन

सब ऐसा समझते हैं न, कि *पुद्गल* जड़ है। लेकिन कौन सा *पुद्गल?* स्वाभाविक *पुद्गल*। यह जो *पुद्गल* दिखाई देता है, यानी क्या कि वह पूरा जड़ नहीं है, वह मिश्र चेतन है। यह विभाविक *पुद्गल* कहलाता है। विभाविक अर्थात् विशेष भाव से परिणमित हुआ *पुद्गल,* वही सब करवाता है। जो शुद्ध *पुद्गल* है, वह *पुद्गल* ऐसा सब नहीं करवाता। यह *पुद्गल* तो मिश्र चेतन हो गया है। आत्मा का विशेष भाव और इसका (जड़ का) विशेष भाव, दोनों के मिलने पर

तीसरा रूप बना - प्रकृति स्वरूप बना। प्रकृति *पुद्‌गल* है। प्रकृति ने चेतन भाव को प्राप्त किया है, मिश्र चेतन है।

चेतन, मिश्र चेतन और जड़, सभी का कार्यक्षेत्र अलग

प्रश्नकर्ता : हम तो ऐसा समझते थे कि *पुद्‌गल* अचेत है।

दादाश्री : *पुद्‌गल* अचेत है ही नहीं, मिश्र चेतन है। जिस प्रकार चाबी घुमाने पर बच्चों की वह गाड़ी चलती है, उसी तरह चैतन्य डाला, चाबी घुमाते समय। वही यह मिश्र चैतन्य है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् देह सिर्फ जड़ नहीं है?

दादाश्री : नहीं, वह जड़ नहीं है। अगर वह जड़ है तो जब हम आलपिन चुभाते हैं, तब? यानी कि जब आलपिन चुभाते हैं तब सहन नहीं होता। यानी यह पूरा उसी का रूप है। मिश्र चेतन का ही रूप है और इसमें आत्मा का कुछ है ही नहीं।

आत्मा इससे बिल्कुल अलग है, इस शरीर से बिल्कुल निराला है। लेकिन फिर भी यह शरीर मिश्र चेतन है। चेतन जैसा काम करता ज़रूर है, लेकिन चेतन नहीं है। देखने में यह चेतन जैसा ही सारा काम करता है। और यह जो कुदरती क्रिएशन हुआ है, उसमें मिलावट नहीं हुई है।

प्रश्नकर्ता : इसके साथ-साथ एक और भी विचार आता है कि जड़ (कम्प्यूटर) मिश्र चेतन द्वारा बनाया हुआ है, वह जड़ चीज़ जो काम कर सकती है, वह मिश्र चेतन कर ही नहीं सकता।

दादाश्री : वह तो सब अपना-अपना करते हैं। हर एक का कार्य अलग है न! सब का कार्यक्षेत्र अलग है। इसका कार्यक्षेत्र अलग, उसका कार्यक्षेत्र अलग। भगवान का कार्यक्षेत्र अलग। सभी के कार्यक्षेत्र अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जो कम्प्यूटर बनाए हैं, तो जो काम मनुष्य नहीं

कर सकता, वे कम्प्यूटर कर सकता है और कम्प्यूटर, खोजने वाले के हाथ में ही है, वह बहुत बड़ी पज़ल है न?

दादाश्री : यह दुनिया पज़ल ही है। कम्प्यूटर में जो प्रश्न डालते हैं, वह मिश्र चेतन का प्रश्न है और कम्प्यूटर जो जवाब देता है, वह जड़ का जवाब है। उसमें चेतन बिल्कुल भी है ही नहीं। अतः यह जो सर्जन होता है, वह मिश्र चेतन का है और विसर्जन पूरा ही जड़ है। विसर्जन जड़ शक्ति की क्रिया है।

अब, जन्म से ही विसर्जन शक्ति की शुरुआत हो जाती है। मृत्यु तक विसर्जन शक्ति ही चलती है। बड़े हुए, बूढ़े हुए, सारी विसर्जन शक्ति है।

मिश्र चेतन है रिलेटिव-रियल

प्रश्नकर्ता : आत्मा सभी *पुद्गलों* को ग्रहण करके लाता है और नया शरीर धारण करता है। यहाँ पर भी जो कुछ ग्रहण करता है, यह तेजस, कारण (शरीर), यह सब जो नया ग्रहण करता, वह कौन करता है?

दादाश्री : इसमें आत्मा ज़रा सा भी, कुछ भी ग्रहण नहीं करता, त्याग नहीं करता, लेप नहीं लगने देता। निर्लेप रहता है, निरंतर।

नए शरीर को आत्मा भी ग्रहण नहीं करता और *पुद्गल* भी ग्रहण नहीं करता, उसे मिश्र चेतन ग्रहण करता है। आत्मा को बीच में लाना ही मत। बाहर ऐसा ही कहना पड़ेगा कि आत्मा कर रहा है। यहाँ पर जो विज्ञान है, इसमें वहाँ पर आत्मा नहीं करता है। वह आत्मा भी नहीं है और जड़ भी नहीं है। चेतन भी नहीं है और जड़ भी नहीं है। यह निश्चेतन चेतन है, जिसे मिश्र चेतन कहा गया है। वही यह सब करता है और मिश्र चेतन को नहीं पहचानने की वजह से यह सारी झंझट खड़ी हो गई है। मिश्र चेतन को ही खुद का स्वरूप मान लिया है।

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन कैसे चलता है?

दादाश्री : यांत्रिक। और नहीं तो क्या! यांत्रिक, उसे भी फिर खुद नहीं चलाना है। खुद यंत्र के आधार पर चलता है। जिस तरह से यंत्र चलाता है, उसी तरह से खुद चलता है।

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन की खुद की शक्तियाँ हैं या नहीं, *पुद्गल* की?

दादाश्री : कोई शक्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : या फिर उसका यह चक्कर व्यवस्थित के आधार पर ही चल रहा है?

दादाश्री : हाँ, व्यवस्थित के आधार पर।

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन को रिलेटिव मानें या रियल?

दादाश्री : वह एक्ज़ेक्टली (वास्तव में) रिलेटिव-रियल है।

मिश्र चेतन को होना है अभेद, चेतन के साथ

प्रश्नकर्ता : आत्मा को जानने का भाव कौन करता है?

दादाश्री : वह *पुद्गल* का भाव है। आत्मा के साथ अभेद होने का भाव *पुद्गल* का है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* में से कौन सा *पुद्गल?*

दादाश्री : जो मिश्र चेतन है, वह। जब तक अहंकार है न, तब तक अभेद होने की बात करता है। अहंकार मूल जगह पर समा जाने की बात करता है।

प्रश्नकर्ता : और जिसे अर्पणता कहा गया है, वह क्या है? अर्पण कौन करता है?

दादाश्री : यही *पुद्गल,* वही समा जाना चाहता है। एक ही

चीज़ समझ लेनी है कि यह (मिश्र) चेतन, (मूल) चेतन में एकाकार हो जाना चाहता है और (विभाविक) *पुद्गल, पुद्गल* में (जड़ तत्त्व में) एकाकार हो जाना चाहता है।

मिश्र चेतन है पेरेन्ट, निश्चेतन चेतन का

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन और निश्चेतन चेतन में भेद किया गया है न?

दादाश्री : यह तो, चेतन के हमने तीन विभाग किए हैं। शुद्ध चेतन, मिश्र चेतन और निश्चेतन चेतन! किसलिए? एक्ज़ेटली जो है, उसे समझने के लिए। अगर नहीं समझेंगे तो हल ही नहीं आएगा न!

यह जो निश्चेतन चेतन है, वह इफेक्टिव वस्तु है। इस चेतन का (विभाविक) भाव, 'मैं हूँ, यह मैंने किया', वह भाव और उसकी वजह से परमाणु खिंचे, उससे बना मिक्स्चर यानी कि निश्चेतन चेतन बना। चेतन नहीं, चेतन के गुणधर्म नहीं हैं फिर भी चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। लोगों को ऐसा ही लगता है इसीलिए ऐसा कहते हैं न, कि यह जीवित ही है। नहीं, कोई भी जीवंत नहीं हैं, यह तो पुतलों की सरकार ही है सिर्फ। यदि जीवंत होते न, तब तो क्रोध-मान-माया-लोभ रखते ही नहीं न, सभी निकाल देते। जो अच्छा नहीं लगे उसे निकाल देते, लेकिन नहीं! मरने तक वैसे का वैसा ही।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वास्तव में 'मिश्र चेतन' और 'निश्चेतन चेतन', इन दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : वास्तव में मिश्र चेतन तो शुरुआत में कहते हैं, तब 'निश्चेतन चेतन' नहीं होता। लेकिन जब 'डिस्चार्ज' होता है तब 'निश्चेतन चेतन' हो जाता है। जब अच्छी तरह जम जाता है, उसके बाद वह 'डिस्चार्ज' स्वरूप हो जाता है, तब वह 'निश्चेतन चेतन' हो जाता है। शुरू में 'निश्चेतन चेतन' नहीं होता।

जब से उल्टे विचार करने लगता है, तभी से वह मिश्र चेतन बनने

लगता है। बाद में वह जम जाता है, उसके बाद जब अगले जन्म में फल आते हैं, तब वह 'निश्चेतन चेतन' कहलाता है। अभी 'निश्चेतन चेतन' नहीं कहलाता। मिश्र चेतन कुछ 'टाइम' बाद 'निश्चेतन चेतन' कहलाता है। शुरू में 'निश्चतेन चेतन' नहीं कहलाता है। जब 'डिस्चार्ज' होने लगता है, तब 'निश्चेतन चेतन' कहलाता है, वह 'डिस्चार्ज' होता हुआ चेतन है।

प्रश्नकर्ता : तो इन दोनों में अहंकार की क्या स्थिति रहती है?

दादाश्री : निश्चेतन चेतन में अहंकार मरा हुआ है और मिश्र चेतन में जीवित अहंकार है। मिश्र चेतन जीवित है।

प्रश्नकर्ता : जीवित का मतलब क्या?

दादाश्री : वह खुद सब कर सकता है। क्रोध-मान-माया-लोभ, वगैरह कर सकता है।

जबकि इस निश्चेतन चेतन के क्रोध-मान-माया-लोभ उसके खुद के नहीं माने जाते। जिनमें अहंकार एकाकार नहीं होता, वे सब तो मुर्दे के हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अहंकार को मिश्र चेतन कहा गया है?

दादाश्री : हाँ, अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ, जहाँ पर जीवंत है, सुलगता हुआ है, कर्ताभाव है। मान अर्थात् कर्ताभाव, उसमें सबकुछ आ गया, वह सारा मिश्र चेतन है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् चार्ज और डिस्चार्ज, तो जो चार्ज भाग है, वह मिश्र चेतन और डिस्चार्ज भाग पूरा ही निश्चेतन चेतन है?

दादाश्री : हाँ, डिस्चार्ज होता हुआ निश्चेतन चेतन है और चार्ज मिश्र चेतन।

पुद्‌गल के मालिकीभाव से होता है चार्ज

प्रश्नकर्ता : यह मिश्र चेतन खुद ही चार्ज है या मिश्र चेतन में से चार्ज होता है?

दादाश्री : मिश्र चेतन बन गया इसलिए...

प्रश्नकर्ता : ये क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हुए, उनमें से फिर चार्ज होता है न, पूरा?

दादाश्री : हाँ, उसमें से, वर्ना और किसमें से?

प्रश्नकर्ता : यानी कि वह खुद चार्ज स्वरूप नहीं है?

दादाश्री : नहीं। उसमें जब कर्ता बनता है तब होता है, अगर कर्ता नहीं बने तो (कर्म) खत्म हो जाता है। सब यों ही सूख जाता है।

प्रश्नकर्ता : यों तो इन क्रोध-मान-माया-लोभ को पर-परिणाम कहा गया है न?

दादाश्री : वे परिणाम तो इसमें, मुर्दे में है।

प्रश्नकर्ता : मुर्दे में जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, उसका भी यदि खुद को कर्ताभाव हो तो चार्ज होता है न?

दादाश्री : उसका मालिक बनता है।

प्रश्नकर्ता : उसका मालिक बनने से चार्ज होता है?

दादाश्री : 'मुझे हो रहा है', ऐसा कहा कि चिपट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह मालिकीभाव अहंकारी का है?

दादाश्री : अहंकारी का, जो 'मैं' है न उसका।

प्रश्नकर्ता : 'मैं' का मालिकीभाव है?

दादाश्री : मैं उल्टी जगह पर बैठ जाए तो *पुद्गल* का मालिकीभाव आता है और अगर मैं सही जगह पर बैठ जाए तो खुद के गुणों का मालिकीभाव आता है।

प्रश्नकर्ता : यानी इस निश्चेतन चेतन पर मालिकीभाव होने पर मिश्र चेतन बना न?

दादाश्री : मालिकीभाव हुआ यानी फिर हो चुका। उससे फिर संसार उत्पन्न हो गया। मालिकीभाव हो तो जीवित, मालिकीभाव नहीं हो तो मृत।

प्रश्नकर्ता : यानी मालिकीभाव नहीं हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ भी पूरे निश्चेतन चेतन ही हो गए न?

दादाश्री : हाँ, वे सब तो (ज्ञान होने के बाद में) मृत ही कहे जाएँगे फिर। वह निश्चेतन चेतन ही है न! फिर, तुझे और क्या जानना है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, यानी कि ये मन-वचन-काया और यह सब, इन्हें निश्चेतन चेतन कहा गया है?

दादाश्री : सबकुछ मृत।

प्रश्नकर्ता : हाँ, मृत कहा गया है, तो यह जो मिश्र चेतन है और दूसरा, निश्चेतन चेतन है, तो दोनों में अंतर क्या है?

दादाश्री : वह उगता हुआ है और यह अस्त होता हुआ है। सूर्यनारायण उगते हुए दिखाई देते हैं और अस्त होते हुए दिखाई देते हैं, तब दोनों समय एक सरीखा ही दिखाई देता है न!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मिश्र चेतन में से उत्पन्न होकर, फिर निश्चेतन चेतन में परिणमित होता है, ऐसा ही है? मिश्र चेतन में से उत्पन्न होता है सब?

दादाश्री : फिर मिश्र चेतन में से निश्चेतन चेतन उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : और फिर उसकी वहाँ *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) हो जाती है?

दादाश्री : सिर्फ मिश्र चेतन में से ही नहीं, मिश्र चेतन और निश्चेतन चेतन, दोनों की फिर साथ में ही *निर्जरा* होती है (जिसने ज्ञान नहीं लिया उसमें)।

प्रश्नकर्ता : *निर्जरा,* दोनों की साथ में ही *निर्जरा* होती है!

दादाश्री : इस जगत् के लोगों में।

कॉज़ेज़ के रूप में मिश्र चेतन जाता है साथ में

प्रश्नकर्ता : जब एक जीव मरने के बाद नया जन्म लेता है, तब उसके पास क्या रहता है?

दादाश्री : उसके पास सिर्फ चार कषाय और सारे कॉज़ेज़ और आत्मा, बस।

प्रश्नकर्ता : वहाँ मिश्र चेतन नहीं होता? कषाय मिश्र चेतन रूपी नहीं कहलाते?

दादाश्री : वही मिश्र चेतन है न! कषाय और कॉज़ेज़, वे मिश्र चेतन हैं। वे जो कॉज़ेज़ हैं, वे ही बाद में इफेक्ट के रूप में आते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जो मर जाता है, वह मिश्र चेतन है और जो साथ में जाता है, वह भी मिश्र चेतन?

दादाश्री : इस निश्चेतन चेतन से छूट जाने के बाद में वह मिश्र चेतन में चला जाता है, अज्ञान दशा में।

प्रश्नकर्ता : नहीं, क्या मरने पर मिश्र चेतन भी मर जाता है और निश्चेतन चेतन भी मर जाता है?

दादाश्री : मरने पर तो यह निश्चेतन चेतन और मिश्र चेतन, 'मैं कर्ता हूँ', ऐसे भान वाला, वह सब मर जाता है।

प्रश्नकर्ता : और फिर साथ में कौन जाता है?

दादाश्री : और वहाँ पर ज़रा सा मिश्र चेतन जाता है, यानी कि कॉज़ेज़ के रूप में। बाद में वे कॉज़ेज़ इफेक्टिव हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : उन कॉज़ेज़ में से वापस मिश्र चेतन उत्पन्न होता है, ऐसा है?

दादाश्री : हाँ, हाँ, फिर से। वे सारे कॉज़ेज़ मिश्र चेतन ही हैं। उनमें से, मिश्र चेतन में से फिर से इफेक्टिव होते समय निश्चेतन चेतन अलग हो जाता है और मिश्र चेतन रहता है, वह फिर से चार्ज करता रहता है वापस।

निश्चेतन चेतन है, वह चेतन नहीं है। चेतन जैसा दिखाई देता है लेकिन चेतन नहीं है। मिश्र चेतन में चेतन जैसा दिखाई देता है, लेकिन अंदर चेतन है मिक्स्चर के रूप में। इसमें तो चेतन है ही नहीं।

खत्म हुआ मिश्र चेतन, रहा शुद्ध और निश्चेतन चेतन

आपको यह ज्ञान देने के बाद आपका अहंकार सेंके हुए बीज जैसा रह गया है। वह पूरा अचेतन-चेतन है। लेकिन जो उग सके ऐसा अहंकार है, वह मिश्र चेतन है।

क्रमिक मार्ग में एक शुद्ध चेतन होता है और दूसरा मिश्र चेतन होता है। और अपने यहाँ अक्रम में मिश्र चेतन है तो सही, लेकिन ज्ञान के बाद वह काम नहीं करता और तीसरा है निश्चेतन चेतन। शुद्ध चेतन, मिश्र चेतन, निश्चेतन चेतन, बाहर की दुनिया वालों के लिए है। आपके लिए तो शुद्ध चेतन और निश्चेतन चेतन दो ही हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि मिश्र चेतन नहीं लेकिन निश्चेतन चेतन है?

दादाश्री : हाँ, निश्चेतन चेतन है। घूमता-फिरता है, काम करता है, बोलता है, चलता है, चिढ़ता है, गुस्सा करता है, स्वाद लेता है, सभी कुछ करता है, लेकिन वह निश्चेतन चेतन है। उसमें चेतन बिल्कुल भी नहीं है। मिश्र चेतन में (बिलीफ) चेतन है। वह अन्य क्रियाएँ कर सकता है, यह निश्चेतन चेतन अन्य क्रियाएँ नहीं कर सकता। जो डिज़ाइन है, उस डिज़ाइन के अनुसार ही चलता है। इस डिज़ाइन से बाहर नहीं जा सकता और अज्ञान दशा में मिश्र चेतन डिज़ाइन बदल देता है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध चेतन वही का वही है?

दादाश्री : हाँ, और आपको निश्चेतन चेतन से काम लेना है, आपको उसे बस देखते रहना है। क्योंकि वह खुद ही निश्चेतन चेतन है। लक्षण चेतन जैसे दिखाई देते हैं लेकिन नाम मात्र को भी चेतन नहीं है उसमें, मृत कहेंगे तो चलेगा। आप में अब शुद्धात्मा के अलावा जो कुछ भी भाग बचा है, वह पूरा निश्चेतन चेतन है। मिश्र चेतन खत्म हो गया।

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन खत्म हो गया, निश्चेतन चेतन बचा।

दादाश्री : मिश्र चेतन तो क्रियाकारी है। करता है और भुगतता है, दोनों ही करता है।

प्रश्नकर्ता : वह जीवित अहंकार है!

दादाश्री : हाँ, वह पूरा ही खत्म हो गया। आपका मिश्र चेतन खत्म हो चुका है। सिर्फ निश्चेतन चेतन ही बचा है। बीच की जो पार्टी थी, वह पूरी ही खत्म हो गई। बीच की पच्चर (फाँस) खत्म हो गई। दोनों के बीच जो जोड़ने वाली पच्चर थी न, जो क्रियाकारी पच्चर थी, वह खत्म हो चुकी है।

प्रश्नकर्ता : अब निश्चेतन चेतन यानी मृत, और आत्मा ही बाकी बचा।

दादाश्री : आप शुद्धात्मा हो और बाकी का सब मृत है। बस, इतना ही बचा।

ममता को मारकर, जीवित किया ज्ञानी ने

अपने अंदर अहंकार मरा हुआ है, डिस्चार्ज अहंकार। अहंकार है लेकिन डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : जीवित नहीं है?

दादाश्री : जीवित नहीं है।

अगर जीवित इंसान हो और फिर रात को जग रहा हो और क्रॉकरी के बर्तन टूट जाएँ, दो सौ–पाँच सौ के तो क्या होगा? जीता–जागता और जिसे ज्ञान नहीं मिला हो तो उसे क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : *कढ़ापा–अजंपा* (कुढ़न, क्लेश–अशांति)।

दादाश्री : नींद ही नहीं आएगी उसे।

प्रश्नकर्ता : नींद नहीं आएगी, ठीक है।

दादाश्री : और जिसने तोड़े हों न, उसे कुछ कहने जाएगा तो झगड़ा हो जाएगा। इसलिए मन ही मन चिढ़ता रहता है, 'यह कहाँ से, यह मुआ, मेरे साथ! ऐसा बेटा कहाँ से पैदा हुआ?' अगर कहने जाए तो झगड़ा हो जाएगा। बोल नहीं पाता और पूरी रात परेशान होता रहता है। अब अगर वह सो रहा होता तो? सुबह सारे टूटे हुए टुकड़े बाहर फेंक आते तो चलता या नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : चलता, उसे पता ही नहीं चलता। उसकी नींद भी पूरी हो जाती और सारे टुकड़े भी ठिकाने लग जाते।

दादाश्री : और यदि वह मृत होता तो?

प्रश्नकर्ता : अगर मृत होता तब फिर उसका कुछ रहा ही नहीं न, दादा!

दादाश्री : और अगर मरकर जी रहा होता तो? जो मरने के बाद जीए, वह?

प्रश्नकर्ता : वह तो ज्ञानी, अमर हो जाएगा!

दादाश्री : नहीं! मरने के बाद जीवित रहेगा तो सिर्फ देखेगा और जानेगा, बस इतना ही। फिर ममता मर जाती है।

प्रश्नकर्ता : हम मरे हुए ही हैं न, दादा?

दादाश्री : आपको मारकर जिंदा किया है, मैंने।

निर्दोष दृष्टि, मिश्र चेतन से छूटने की चाबी

किसी का दोष देखना ही मत। मुझे इस पूरी दुनिया में किसी का भी दोष नहीं दिखाई देता। आपको भी दोष नहीं दिखाई देना चाहिए। जब दोष नहीं है तभी तो दादा कहते हैं न, कि 'भाई, दोष नहीं है, किसी का जगत् में।' तो आपको भी निर्दोष दिखना चाहिए। फिर अगर झगड़ा हो जाए तो वह बात अलग है लेकिन दिखना चाहिए निर्दोष।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि निर्दोष वाली होनी चाहिए।

दादाश्री : निर्दोष दृष्टि प्रज्ञा का गुण है और दोषित दृष्टि मिश्र चेतन का गुण है। यानी कि आपका पूरा ही मिश्र चेतन खत्म कर दिया है और आप में वापस फिर से उत्पन्न नहीं होगा। निश्चेतन चेतन भले ही लड़े, फिर भी दृष्टि निर्दोष, कि भाई, कर्म के उदय के अधीन हैं, इसमें इनका क्या दोष? लड़ते-झगड़ते हैं फिर भी वे कर्म के उदय के अधीन लड़ते हैं। वह उनका आज का दोष नहीं है। इसलिए निर्दोष दृष्टि से देखा।

[5]
निश्चेतन चेतन

दिखाई देता है चेतन, लेकिन विनाशी में है निश्चेतन चेतन

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा और आत्मा में फर्क है क्या?

दादाश्री : जीवात्मा, निश्चेतन चेतन है और आत्मा, शुद्ध चेतन है।

प्रश्नकर्ता : निश्चेतन चेतन का मतलब क्या है?

दादाश्री : वास्तव में क्या है? मूल आत्मा, यथार्थ आत्मा, शुद्ध चेतन, वही परमात्मा है और पूरा जगत् जिसे चेतन मानता है, वह निश्चेतन चेतन है। लोहे का गोला तपने पर अग्नि जैसा हो जाता है, वैसा ही यह निश्चेतन चेतन है। चेतन दिखाई देता है लेकिन जिसका विनाश हो जाना है, उसी को जगत् 'चेतन' कहता है। वास्तव में वह 'चेतन' नहीं है, 'निश्चेतन चेतन' है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वास्तविक चेतन कहाँ है?

दादाश्री : वास्तविक चेतन पूरे शरीर में है और उसके अलावा अंदर बाकी सब मिकेनिकल है। यह मिकेनिकल चेतन तो सिर्फ ऊपर की परत है और वह निश्चेतन चेतन है।

जो निश्चेतन चेतन भाग है, वह पूरा ही मूर्त है और उस मूर्त में

आत्मा नहीं है। आत्मा अमूर्त है, मूर्ति में रहा हुआ है। यह जो मूर्त है, वह रिलेटिव है। रिलेटिव अर्थात् विनाशी भाग। तो यह जितना विनाशी भाग है, वह चेतन जैसा दिखाई ज़रूर देता है, लेकिन वह निश्चेतन चेतन है।

गुणों से निश्चेतन, लक्षणों से चेतन

इस शुद्धात्मा के अलावा अंदर सब मिकेनिकल है और निश्चेतन चेतन है। जो निश्चेतन चेतन है, वह चेतन है ही नहीं। सारे लक्षण चेतन जैसे दिखाई देते हैं लेकिन गुणधर्म नहीं हैं। उसमें एक भी गुणधर्म दिखाई नहीं देता। जैसे कि अगर सोना और पीतल हो तो क्या उनके लक्षण सब एक जैसे दिखाई देते हैं? सोना और पीतल दोनों को छाछ में डाला जाए तो पीतल काला पड़ जाता है और सोना वैसे का वैसा ही रहता है। इस पीतल के लोटे को अच्छी तरह चमकाएँ तो सोने जैसा दिखाई देता है या नहीं? लेकिन जब बेचने जाएँ तब क्या मिलता है? कुछ भी नहीं। उसी प्रकार लक्षण एक सरीखे दिखाई दें, लेकिन यदि गुणधर्म नहीं दिखाई दें तो वह किस काम का? गुणधर्म रहित चीज़ एक्सेप्ट नहीं की जा सकती।

ये सभी मनुष्य चेतन वाले हैं लेकिन वह निश्चेतन चेतन है। जैसे गिलट चढ़ी हुई चीज़ पर सोने के लक्षण दिखाई देते हैं, लेकिन उसमें सोने के गुणधर्म नहीं होते, उसी प्रकार इन मनुष्यों में चेतन के लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन गुणधर्म नहीं हैं, इसलिए निश्चेतन चेतन कहते हैं। आत्मा स्व-स्वाभाविक गुणधर्म वाला है। हर एक वस्तु उसके गुणधर्म से पहचानी जाती है।

निश्चेतन चेतन अर्थात् गुणों को लेकर निश्चेतन है और लक्षणों को लेकर चेतन। यदि कोई पूछे कि दान देने के विचार आते हैं तो वह चेतन नहीं कहलाएगा? नहीं, विचार चेतन के गुण नहीं हैं। वे विनाशी हैं। निरंतर साथ रहने वाला अगर एक भी लक्षण हो तो वह, चेतन है। निश्चेतन चेतन के सभी लक्षण विनाशी हैं और चेतन के सभी

लक्षण अविनाशी हैं। आत्मा का एक भी गुण घटता-बढ़ता नहीं है और निश्चेतन चेतन के गुण घटते-बढ़ते हैं।

मनुष्यों में चेतन जैसे लक्षण हैं लेकिन है निश्चेतन चेतन। उन लक्षणों की वजह से इस दुनिया के साधु-आचार्य, सभी ऐसा समझते हैं कि 'मैं ही आत्मा हूँ'। इतनी भावना तो आत्मा की होनी ही चाहिए न, ऐसा कहते हैं। अब वे जिसे आत्मा मान रहे हैं, उसके लिए मैं ऐसा कहता हूँ कि वह तो निश्चेतन चेतन है।

लोग तो जहाँ आत्मा है वहाँ नहीं ढूँढते, और जहाँ पर नहीं है, वहाँ पर आत्मा को ढूँढते हैं और वे गलत भी नहीं हैं, क्योंकि वे जहाँ ढूँढते हैं, वह निश्चेतन चेतन है अर्थात् उनमें लक्षण है लेकिन हूबहू चेतन नहीं है।

निश्चेतन चेतन अर्थात् जिसमें चेतन का एक भी गुणधर्म नहीं है लेकिन लक्षण उस जैसे दिखाई देते हैं, अत: वे इस निश्चेतन चेतन को, 'यह मैं ही हूँ', ऐसा मानते हैं। खुद ही न्यायाधीश, खुद वकील, खुद ही वादी और खुद ही प्रतिवादी है। ऐसे यह जगत् चल रहा है।

लोग ऐसा मानते हैं कि चलना, फिरना, बोलना, चेहरे पर हाव-भाव दिखाना, वे सभी चेतन के लक्षण हैं। क्योंकि मरने के बाद वह चलता-फिरता नहीं है। इसलिए चलते-फिरते जीव को चेतन मानते हैं, लेकिन वह तो निश्चेतन चेतन है।

ज्ञानी ही जानते हैं कि चेतन के गुणधर्म कौन से हैं और निश्चेतन चेतन के गुणधर्म कौन से? भ्रांति से ऐसा जो कहता है कि, 'मैंने यह किया, वह किया, संसार का त्याग किया', वे सभी निश्चेतन चेतन के गुण हैं, देखने में चेतन जैसा दिखाई देता है, फिर भी! इसीलिए हम कहते हैं कि यह 'निश्चेतन चेतन' है।

चंचल निश्चेतन चेतन नहीं होगा स्थिर कभी भी

प्रश्नकर्ता : हमारे अंदर जो सभान (जाग्रत) अवस्था है, जो हमें अच्छा और बुरा दिखाती है, उसे चेतन कहेंगे?

दादाश्री : नहीं, वह सारा निश्चेतन चेतन है, वह चेतन है ही नहीं। इसीलिए मैं कहता हूँ न, कि चेतन को जानना तो अति-अति मुश्किल खेल है। यह जो जाना है न, वह तो 'निश्चेतन चेतन' है, वह दरअसल चेतन नहीं है। कुछ लोग इसे स्थिर करते हैं। अरे, क्यों स्थिर कर रहा है? तू मूल स्वरूप को ढूँढ निकाल न! मूल स्वरूप स्थिर ही है। अब फिर से इसे स्थिर करने की आदत क्यों डाल रहा है? यह निश्चेतन चेतन तो मूल रूप से चंचल स्वभाव वाला ही है। मिकेनिकल का अर्थ ही चंचल है। इस चंचल को स्थिर करना चाहते हैं, लोगों ने कितना उल्टा रास्ता पकड़ा है! इसीलिए तो अनंत जन्मों से भटक रहे हैं!

निश्चेतन चेतन की माया से उलझा है जगत्

प्रश्नकर्ता : उसे निश्चेतन चेतन क्यों कहा है?

दादाश्री : निश्चेतन तो चेतन का विशेषण है, द्वंद्व नहीं है। चेतन भाव वाला है, चार्ज हो चुका है, मिकेनिकल चेतन है। उसे निश्चेतन चेतन इसलिए कहना पड़ता कि, है जड़, लेकिन फिर भी चलता-फिरता है। इसलिए लोग क्या कहते हैं कि, 'इसे जड़ कैसे कह सकते हैं?' क्योंकि लोग चलते-फिरते हैं, बड़े वकील जजमेन्ट देते हैं, केस चलाते हैं, ये लोग, वादी-प्रतिवादी ऐसा मानते हैं कि, 'खुद ही चेतन है।' यानी कि दिखाई देता है चेतन फिर भी रियली (वास्तव में) वह है जड़।

यह निश्चेतन चेतन माया है, मायावी चीज़ है। इसलिए जगत् इस माया में उलझा है। दिखने में यह पूरा चेतन जैसा ही है। इसलिए सभी, निश्चेतन चेतन को ही चेतन मानते हैं। वह एक तरह का चेतन ही है न! चलने-फिरने लगे, इसका मतलब चेतन नहीं, लेकिन निश्चेतन चेतन है। वास्तविक शुद्ध चेतन नहीं है वह। यह तो चेतन का असर है। यह निश्चेतन चेतन है, यह चेतन की तरह डराता है।

एक रूम में ऊपर-नीचे, चारों तरफ आईने लगा दिए जाएँ और

कोई आखें बंद करके उसमें प्रवेश करे तो उस पर कुछ भी असर नहीं होगा लेकिन अगर देखते-देखते प्रवेश करे तो उसे तरह-तरह का दिखाई देगा। इसलिए तरह-तरह से असर होगा, उससे चार्ज होगा। यह जो चार्ज हो चुका है, वह डिस्चार्ज हो रहा है। वह जो डिस्चार्ज है, वह चेतन नहीं है, वह मात्र निश्चेतन चेतन है।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ आत्मा ही चेतन है?

दादाश्री : सिर्फ आत्मा ही चेतन है और जीवात्मा निश्चेतन चेतन है।

यदि नहीं है ज्ञान-दर्शन, तो वह है निश्चेतन चेतन

इस शरीर में निश्चेतन चेतन के गुण हैं। छिपकली की कटी हुई पूँछ देखी है आपने? जब छिपकली की पूँछ कट जाती है तब पूँछ की क्या दशा होती है?

प्रश्नकर्ता : वह छटपटाती है, ज़ोर-ज़ोर से हिलती है।

दादाश्री : हाँ, उस समय लोग उसे क्या डिसिज़न (निर्णय) देते हैं कि यह क्या हो रहा है?

प्रश्नकर्ता : अंदर जीव रह गया है, ऐसा कहते हैं।

दादाश्री : हाँ, यानी कि लोगों को पता नहीं है कि जीव क्या है इसलिए वे पूँछ में जीव का आरोपण करते हैं। वह छटपटाती है न, ज़ोर-ज़ोर से हिलती है न, तो उसके लिए लोग क्या कहते हैं? कि जीव निकलने लगा है। अरे, जीव तो उस छिपकली के साथ चला गया। जीव के क्या दो टुकड़े हैं? जब छिपकली की पूँछ कटती है, तब पता चलता है क्या कि आत्मा इसमें है या उसमें है? आपने देखा है या नहीं देखा? छिपकली की पूँछ निश्चेतन चेतन है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा तो, वह छिपकली चली गई न, उसके साथ चला गया और यह निश्चेतन चेतन है। इस निश्चेतन चेतन को पूरी ही दुनिया चेतन मान बैठी है, इसलिए फँस गई है।

प्रश्नकर्ता : पूँछ में निश्चेतन चेतन है?

दादाश्री : हाँ, निश्चेतन चेतन है। चेतन छिपकली में चला गया। और ऐसा कहते हैं कि पूँछ में 'चेतन ही है'। मैंने कहा, 'इसमें कैसा चेतन'? समझ में ही नहीं आता न! किस हिसाब से यह हिल रही है? किस आधार पर हिली, ऐसा पूछते हैं। तब मैंने कहा, हमेशा के लिए अगर हिलती रहे तो हम कहेंगे कि यह चेतन है, लेकिन यह तो रुक जाती है जबकि छिपकली तो घूमती ही रहती है, इधर कूदती है, उधर कूदती है।

अब, पूँछ कटने के बाद छिपकली चली गई, आत्मा का स्वभाव कैसा है कि एक भाग कट जाए तो उतना संकुचित हो जाता है। उस पूँछ में ज़रा सा भी जीव (आत्मा) नहीं है। जीव के अलावा सभी चीज़ें हैं उसमें। जिसे मैं निश्चेतन चेतन कहता हूँ।

छिपकली की पूँछ कटने पर, वह पूँछ कौन से कर्तापद से कूदती है, वह बताओ।

प्रश्नकर्ता : जो उसमें चार्ज रहा हुआ है न!

दादाश्री : हाँ, वह जो चार्ज रहा हुआ है, वह चार्ज कूदता है। वह डिस्चार्ज होता रहता है। बाकी, छिपकली तो आगे चली गई। अतः जहाँ पर ज्ञान-दर्शन है, वहाँ आत्मा है। छिपकली में ज्ञान व दर्शन दोनों हैं, इसलिए वह देखते-देखते चलती है। जहाँ ज्ञान-दर्शन है, वहाँ आत्मा है।

जहाँ ज्ञान-दर्शन नहीं है वहाँ पर ईश्वर नहीं हैं, परमात्मा नहीं हैं, भगवान भी नहीं हैं। जहाँ पर ज्ञान-दर्शन नहीं हैं, फिर छिपकली की कटी हुई पूँछ छिपकली की तरह ही उछल-कूद करती है, फिर भी उसमें जीव नहीं है।

चेतन की उपस्थिति से लागणी का उद्‌भव होता है निश्चेतन चेतन में

चेतन किसे कहा जाता है? जहाँ किसी भी प्रकार की *लागणी*

(सुख-दु:ख की अनुभूति) उत्पन्न होती है, वहाँ चेतन है। जिसमें *लागणी* उत्पन्न होती है, वह चेतन नहीं है लेकिन जहाँ पर *लागणी* उत्पन्न होती है वहाँ चेतन है और जहाँ *लागणी* उत्पन्न नहीं होती, वहाँ चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिस आधार पर *लागणी* उत्पन्न होती है, वह चेतन है या फिर जहाँ *लागणी* उत्पन्न होती है उस जगह पर चेतन है?

दादाश्री : जिसके आधार पर होती है, वह चेतन है? वह भी जिसके आधार पर होता है, इस तरह उसका आधार कहेंगे तो वापस नई गड़बड़ हो जाएगी। अत: उसकी उपस्थिति से *लागणी* उत्पन्न होती है। जहाँ *लागणी* उत्पन्न होती है, वहाँ चेतन है।

प्रश्नकर्ता : वह जो *लागणी* उत्पन्न हुई और जो अभिव्यक्त हुआ, वह चेतन अभिव्यक्त नहीं हुआ न?

दादाश्री : वह अभिव्यक्त भी पूरा निश्चेतन चेतन से है, लेकिन जहाँ *लागणी* है वहाँ चेतन है। चेतन है इसीलिए ये सारी क्रियाएँ होती हैं।

निश्चेतन चेतन उपस्थित तो 'चेतन' उपस्थित

प्रश्नकर्ता : उसकी उपस्थिति की अभिव्यक्ति निश्चेतन चेतन से होती है तो क्या ऐसा हुआ कि जहाँ पर निश्चेतन चेतन है, वहाँ पर शुद्ध चेतन रहता ही है?

दादाश्री : हाँ! जहाँ निश्चेतन चेतन है, वहाँ शुद्ध चेतन है।

प्रश्नकर्ता : जहाँ निश्चेतन चेतन है, वहाँ पर शुद्ध चेतन है, यह ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : इसमें (टेबल में) निश्चेतन चेतन नहीं है तो यहाँ शुद्ध चेतन नहीं हो सकता। एक पेड़, वह अगर जीवित नहीं है और सूख चुका है तो उसमें निश्चेतन चेतन नहीं है, अत: वहाँ पर चेतन भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि वह जड़ है? निश्चेतन हो गया अर्थात् जड़ हो गया है?

दादाश्री : हाँ, और निश्चेतन चेतन यानी क्या कि निश्चेतन चेतन जड़ है फिर भी चेतन जैसा दिखाई देता है। 'जहाँ पर ऐसे लक्षण हों, चेतन जैसे, तो वहाँ पर चेतन है', ऐसा कहना चाहता हूँ। और जब पेड़ सूख जाता है या इंसान मर जाता है, तब हाथ नहीं हिलते, आँखें भी नहीं हिलतीं, कोई बातचीत नहीं हो पाती, सुनते भी नहीं हैं, वह सब बंद हो जाता है, निश्चेतन चेतन के सभी गुण बंद हो जाते हैं, इसका मतलब कि वहाँ से चेतन रवाना हो गया है।

निश्चेतन चेतन, वह डिस्चार्ज चेतन है, मिला अंतिम संधि स्थान

यह जगत् जिसे आत्मा मान रहा है न, वह निश्चेतन चेतन है। निश्चेतन चेतन अर्थात् डिस्चार्ज होता हुआ चेतन है। जगत् के इन सब लोगों में भी डिस्चार्ज चेतन है, सिर्फ इतना ही है कि वे ऐसा मानते हैं, 'यह मैं हूँ'। 'मैं हूँ', ऐसा जो मानते हैं, वह उसकी रोंग बिलीफ है और रोंग बिलीफ यानी कि अगला जन्म मिलता है। अगर राइट बिलीफ बैठ जाए तो अगला जन्म सर्जित ही नहीं होगा और अपना काम हो जाएगा। डिस्चार्ज तो होता ही रहेगा। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के हिसाब से डिस्चार्ज होता ही रहेगा। फिर, उसका मालिक हो या न हो, फिर भी होता रहेगा।

इस देह में चेतन है तो सही, लेकिन वह 'इफेक्टिव चेतन' है, 'चार्ज' हो चुका चेतन है। अब 'चार्ज' चेतन को मूल चेतन तो कहा ही नहीं जा सकता न! कुछ भूल है या नहीं? अभी तक भूल से चलता रहा है, ऐसा पता चला आपको? सभी मान्यताएँ भूल भरी हुई ही थीं। कुछ 'एक्ज़ेक्टनेस' तो आनी चाहिए न?

उसी प्रकार से इसमें जो चार्ज हुआ चेतन है, वह डिस्चार्ज हो रहा है। यह बहुत सूक्ष्म बात है, यह तो सब से अंतिम बात है, जिसे अंतिम संधान (कनेक्शन) कहा गया है।

कर्तृत्वपन, वह है प्रकृति स्वभाव

प्रश्नकर्ता : यह जो चार्ज हुआ निश्चेतन चेतन है, वह खुलेगा (डिस्चार्ज होना) किस प्रकार से?

दादाश्री : टाइम (काल) नामक तत्त्व है, उसके अणु भी हैं। इन अणुओं को कालाणु कहा जाता है। तो वह टाइम नामक तत्त्व इसका हल ला ही देता है। यह जो रील (पट्टी) गुथी हुई है, वह जन्म लेते ही खुलती जाती है लेकिन खुद, अपनी भ्रांति से ही 'मैं यही हूँ, मैं चंदूलाल ही हूँ', ऐसा इगोइज़म और ममता करके खुली हुई रील को फिर से लपेटता है। क्योंकि खुद इगोइज़म से निश्चेतन चेतन में प्रतिष्ठा करता है।

निश्चेतन चेतन वाले एक गुनहगारी पद में से मुक्त होते हैं और दूसरी गुनहगारी उत्पन्न करते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यदि ऐसा *लक्ष* (जागृति) रहे तो फिर से निश्चेतन चेतन में नहीं जाएगा। 'शुद्धात्मा' प्राप्त हो जाने पर ही शुद्ध चेतन समझ में आता है, तभी गुनहगारी वाले पद में से पूर्ण रूप से छूटता है।

शुद्ध चेतन तो कुछ और ही है! चेतन कभी भी खाता नहीं है, पीता नहीं है, सुनता नहीं है, बोलता नहीं है। निश्चेतन चेतन ही खाता है, पीता है, बोलता है, सोचता है, सुनता है, सबकुछ करता है। यह जो गतिमान दिखाई देता है, वह चेतन नहीं है। चेतन को कोई बाप भी नहीं देख सकता।

निश्चेतन चेतन, हम इसे अंग्रेजी में क्या कहते हैं? डिस्चार्ज (खाली होता हुआ) चेतन। वह डिस्चार्ज होता हुआ चेतन है। एक चेतन चार्ज होता हुआ है, दूसरा डिस्चार्ज होता हुआ है और उस तरफ शुद्ध चेतन है। चेतन चार्ज होता है, उसके लिए हम ऐसा कहते हैं कि कर्म बंधते हैं और डिस्चार्ज होता है, उसमें कर्म छूटते हैं।

अत: वास्तव में कर्म जड़ भी नहीं हैं और चेतन भी नहीं हैं परंतु निश्चेतन चेतन हैं। कर्मों का फल मिलता है, वह इसलिए मिलता

है क्योंकि अंदर आत्मा बैठा हुआ है। कर्म को निश्चेतन चेतन क्यों कहा गया है? निश्चेतन चेतन को शुद्ध चेतन का स्पर्श होने से कर्म चार्ज होते हैं। यदि खुद के स्वरूप को जान ले तो कर्म चार्ज होने बंद हो जाएँगे।

मिकेनिकल चेतन खुल रहा है ऑटोमैटिक

प्रश्नकर्ता : क्या निश्चेतन चेतन को मिकेनिकल चेतन कहा है आपने?

दादाश्री : वह मिकेनिकल चेतन है। साँस हम लेते हैं क्या? कौन लेता है?

प्रश्नकर्ता : जो अंदर है, वह लेता है।

दादाश्री : ऑटोमैटिक है, खुद नहीं लेता है। कब तक ऑटोमैटिक चलेगा? तो कहते हैं, जितने श्वास-निःश्वास वाली आयु बनी (लेकर आया) है, उतने दिन तक चलेगा, सालों के हिसाब से नहीं। अतः जो निश्चेतन चेतन है, वह सचर है।

जैसे कि बाहर यह जो मशीन चलती है न, इंजन नहीं चलते?

प्रश्नकर्ता : वह तो स्टिम्युलेटेड (उद्दीप्त किया) हुआ है न?

दादाश्री : क्यों?

प्रश्नकर्ता : खुद नहीं चलता है न? वह तो बनाया हुआ है।

दादाश्री : यह भी बनाया हुआ है। इसमें बनाने वाला नेचर है जबकि मशीनरी मनुष्य द्वारा बनाई गई है। जो मैन मेड (मानव निर्मित) है, वह भी मशीनरी है और यह भी मशीनरी है। इसमें तो पेट्रोल, हवा, सबकुछ चाहिए। उससे चलती है। जिसमें पेट्रोल डालना पड़े, वह सारी मशीनरी है। आपको डालना पड़ता है, कभी? नहीं डालोगे तो क्या होगा? तीन दिन तक अगर नहीं डालोगे तो? वह मशीनरी है। इसमें अगर नहीं डालेंगे तो सबकुछ खत्म हो जाएगा। उसे मशीनरी

कहते हैं। और यह खाने-पीने की बात तो अलग है, लेकिन दो ही घंटे अगर मुँह बंद कर दिया जाए या नाक दबाकर रखी जाए तो क्या होगा? फिर 'अंदर वाले' पूरा रूम खाली करके चले जाएँगे। उसे चेतन कैसे कह सकते हैं? वह 'मिकेनिकल चेतन' है। यदि इस दुनिया ने दरअसल चेतन को समझा होता तो आज कल्याण हो जाता! उसे जान सके ऐसी स्थिति में भी नहीं हैं।

अत: निश्चेतन चेतन तो मिकेनिकल चेतन है। बाहर का पूरा ही भाग मिकेनिकल है। स्थूल मशीनरी में हैन्डल घुमाना पड़ता है, जबकि सूक्ष्म मशीनरी में तो तू हैन्डल घुमाकर ही लाया है। अभी इंधन डालता ही रहता है लेकिन हैन्डल नहीं घुमाना पड़ता। सूक्ष्म मशीनरी मिकेनिकल चेतन है लेकिन वहाँ पर गर्व लेता है कि, 'यह मैंने किया' इसलिए चार्ज होता है और अगले जन्म के बीज डलते हैं।

निश्चेतन चेतन को कहा है लट्टू वाला चेतन

प्रश्नकर्ता : यह शरीर सजीव है तो इसे मिकेनिकल क्यों कहते हैं? सजीव है न?

दादाश्री : हाँ, शरीर सजीव है, मन सजीव है, बुद्धि सजीव है लेकिन प्रकृति है। यह प्रकृति है, तो इसमें कितनी सजीवता है? जितना निश्चेतन चेतन है, उतनी। लट्टू पर डोरी लपेटकर उसे फेंकने के बाद वह किस आधार पर घूमता है? वह लट्टू अपने आप ही घूमता है। हमने उस पर डोरी लपेटी थी इसलिए घूमता है। वह डोरी के ज़ोर से घूमता है। यह लट्टू जब घूमता है तब इसमें चेतन होता है? फिर भी घूमता है, यह बात तो पक्की है न! फेंकने के बाद लट्टू चेतन जैसा दिखाई देता है, लेकिन है निश्चेतन चेतन।

निश्चेतन चेतन अर्थात् लट्टू में जो चेतन है, वह। जो लट्टू होता है न, वह यों घूमता हुआ लगता है, इसलिए कहीं उसमें चेतन नहीं है। अभी यहाँ पर लट्टू फेंकने के बाद कोई व्यक्ति अगर एकदम से देखे तो उसके मन में ऐसा लगेगा कि, 'यह क्या घूम रहा है? और

यह किस प्रकार से घूम रहा होगा? क्या इसमें चेतन है?' नहीं, उसमें तो कोई पराई शक्ति चार्ज हो चुकी है, इसलिए घूम सकता है। उसी प्रकार से ये सारे मनुष्य डिस्चार्ज हो रहे हैं और फिर से जो चार्ज होता है, उसका उसे भान नहीं है। यह तो निश्चेतन चेतन है। पहले जो चार्ज हो चुका है, उसके डिस्चार्ज के रूप में गतिमान है और डिस्चार्ज किसी से भी बदला नहीं जा सकता। यह लट्टू पराई शक्ति से चल रहा है।

लट्टू घूमता है, व्यवस्थित शक्ति के अधीन

प्रश्नकर्ता : इस लट्टू को घुमाने वाली जो शक्ति है, पराशक्ति, वह क्या है?

दादाश्री : पराई शक्ति है, पराशक्ति नहीं है। बाकी, इस लट्टू को पराशक्ति घुमाती ही नहीं है। इस लट्टू को तो साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स घुमाते हैं और वे फिर हर एक के लिए अलग-अलग हैं। पराशक्ति तो एक ही प्रकार की होती है।

यह जो प्रकृति है न, इसकी डोरी पिछले जन्म में लपेटी थी। उसी से यह लट्टू घूमता रहता है। यहाँ पर जन्म से लेकर मृत्यु तक लट्टू घूमता रहेगा। और उसमें भी फिर यह लट्टू क्या कहता है? 'यह मैंने किया, यह मैंने किया।' 'मैंने किया', वह इगोइज़म है। इसलिए पूरे जगत् को टी-ओ-पी-एस कहता हूँ। ये टॉप्स घूमते रहते हैं और फिर ऐसा कहते हैं कि, 'मैं घूमा'। अरे भाई, तू घूमा है या तुझे इस डोरी से बाँधकर घुमाया है! और फिर इगोइज़म करता है!

वह इन्डायरेक्ट प्रकाश से गतिमान है, आत्मा से नहीं

प्रश्नकर्ता : हकीकत सिर्फ यह है कि चेतन की उपस्थिति है इसलिए यह निश्चेतन चेतन बनता है।

दादाश्री : उपस्थिति से ही चल रहा है यह सबकुछ। क्योंकि उपस्थिति से इन्डायरेक्ट प्रकाश उत्पन्न होता है। अहंकार के थ्रू होकर

जो प्रकाश उत्पन्न होता है, वह इन्डायरेक्ट प्रकाश है। उसके उत्पन्न होने से यह सब गतिमान हो जाता है। अब यह इन्डायरेक्ट प्रकाश से गतिमान है, आत्मा से गतिमान नहीं है यह। जबकि जगत् क्या मान बैठा है कि आत्मा से गतिमान है।

प्रश्नकर्ता : क्या इनडॉयरेक्ट प्रकाश से ही गतिमान है, सीधे प्रकाश से नहीं?

दादाश्री : तब तो ज़िम्मेदार आत्मा माना जाता। रिस्पॉसिबिलिटी (ज़िम्मेदारी) उसके सिर पर आ जाती। अब लोग ऐसा समझते हैं कि यह रिस्पॉसिबिलिटी आत्मा की ही है। क्योंकि वे ऐसा ही समझते हैं कि इसी की वजह से ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा ही मानते हैं सब।

दादाश्री : ऐसी कितनी ही सारी गलतियाँ हुई हैं कि यह किस गाँव पहुँचेंगे उसका भी ठिकाना ही नहीं है।

इफेक्टिव चेतन, वह है निश्चेतन चेतन

प्रश्नकर्ता : हम तो ऐसा मानते थे कि चेतन प्रेरणा की वजह से *पुद्‌गल* प्रवर्तमान है न?

दादाश्री : इस *पुद्‌गल* की जितनी भी प्रवर्तना है, वह सारा ही निश्चेतन चेतन है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति को यह कर्तृत्व शक्ति कौन देता है? अंत में तो वह जड़ में से ही पैदा हुई है न?

दादाश्री : नहीं, यह प्रकृति बिल्कुल ही जड़ नहीं है, यह निश्चेतन चेतन है और निश्चेतन चेतन, वह कहीं अचेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उसे निरंतर परिवर्तनशील कहा जा सकता है?

दादाश्री : वह तो बदलती ही रहती है लेकिन यह प्रकृति निश्चेतन चेतन है।

प्रश्नकर्ता : निश्चेतन चेतन अर्थात् उसे कौन सी शक्ति कहा जा सकता है?

दादाश्री : निश्चेतन चेतन अर्थात् डिस्चार्ज चेतन। 'हम' किसी भी चीज़ को चार्ज करें तो फिर वह अपने आप ही डिस्चार्ज होती है या नहीं? उसके लिए 'हमें' कुछ करना पड़ता है? अपने आप ही क्रिया होती रहती है। इसमें किसी को कुछ भी नहीं करना पड़ता। अत: यह सारा डिस्चार्ज है, इफेक्टिव है और इफेक्टिव शक्ति को मैं निश्चेतन चेतन कहता हूँ। इफेक्टिव में चेतन नहीं होने के बावजूद भी चेतन जैसा दिखाई देता है, इसलिए निश्चेतन चेतन कहता हूँ।

चेतन के दो भाग हैं : 1) ज्ञान चेतन, वह शुद्ध चेतन है और 2) इफेक्टिव चेतन। संसार वाला चेतन, वह इफेक्टिव चेतन है। इस इफेक्टिव चेतन के दो भाग हैं। 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा कहने से बंधन होता है और दूसरा, 'मैं भोग रहा हूँ', उससे बंधन नहीं होता, लेकिन उसमें से अन्य इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इच्छा करते ही दियासलाई जलाई। जब तक इच्छा पूरी नहीं हो जाती तब तक जलता ही रहता है। जब तक इच्छा का कारखाना चल रहा है, तब तक जलता ही रहता है। तब तक संसार कैसे रुकेगा? पूरा ही जगत् इफेक्टिव चेतन में बरतता है। अपने अंदर इफेक्टिव चेतन है तो सही, लेकिन वह फल देकर निकल जाता है, छूट जाता है, बंधन का बीज नहीं डलता। क्योंकि अंदर से स्वरूप सुख आने की वजह से अन्य इच्छाएँ उत्पन्न नहीं होतीं।

आत्म भान से 'तू' शुद्ध चेतन है, वर्ना निश्चेतन चेतन

प्रश्नकर्ता : अब, आप निश्चेतन चेतन किसे कहते हैं? पुरुष को (मनुष्य को) कहते हैं या सभी को?

दादाश्री : सभी को।

प्रश्नकर्ता : क्या पेड़ को भी निश्चेतन चेतन कह सकते हैं?

दादाश्री : पेड़ को भी निश्चेतन चेतन ही। जो चेतन नहीं है फिर भी चेतन जैसे ही सारे लक्षणों वाला है।

अपना शरीर निश्चेतन चेतन है और हम 'खुद' शुद्ध चेतन हैं। जब तक शुद्ध चेतन नहीं हुआ है तब तक तू निश्चेतन चेतन है। सभी निश्चेतन चेतन हैं, फिर चाहे साधु हो या संन्यासी। मनुष्य, तिर्यंच, नारकी जीव और देवता, सभी निश्चेतन चेतन यानी कि लट्टू ही कहे जाएँगे। जब तक निज का भान करवाने वाले ज्ञानी नहीं मिल जाते तब तक तू निश्चेतन चेतन है।

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि पूरा ही जगत्, साधु–आचार्य सभी जिसे चेतन मानते हैं, वह तो निश्चेतन चेतन है। वे तुझे क्या दे सकेंगे? वे तुझे मोक्ष फल नहीं दे सकते। अतः चेतन को पकड़ और जिनमें चेतन प्रकट हो चुका है, वही तुझे दे पाएँगे।

मोक्ष कब होगा? जब खुद चेतन बन जाएगा तब। लेकिन सभी कहेंगे कि हम चेतन हैं। लेकिन सिर्फ मैं ही ऐसा कहता हूँ कि वह निश्चेतन चेतन है। पूरे वर्ल्ड के लोग निश्चेतन चेतन हैं। जब तक आत्मा का भान नहीं हो जाता तब तक सभी निश्चेतन चेतन कहे जाएँगे।

हमारी बात को नहीं समझते, वे भी और जो समझते हैं, वे भी, सभी निश्चेतन चेतन हैं। सिर्फ हमारे महात्मा ही शुद्ध चेतन हैं।

इगोइज़म है, लेकिन साधन के रूप में

प्रश्नकर्ता : जिसे आपने 'निश्चेतन चेतन' भाग कहा है या जिसकी अभिव्यक्ति जगत् में सभी को दिखाई देती है, वह 'निश्चेतन चेतन' ऐसा मानता है कि हम 'चेतन' को समझ सकेंगे, पकड़ सकेंगे, बुद्धि के क्षेत्र में ला सकेंगे। उनका यह दावा कितने अंश तक सही है?

दादाश्री : उनके पास इसके अलावा और क्या साधन है? उनमें भले ही 'निश्चेतन चेतन' है लेकिन अंदर 'इगोइज़म' है। वह 'इगोइज़म' काम कर रहा है और 'इगोइज़म' है तो वे ज़रूर प्राप्ति करेंगे, वर्ना सिर्फ 'निश्चेतन चेतन' से 'चेतन' प्राप्त नहीं किया जा सकता।

अचल - चंचल - अचेतन चेतन

प्रश्नकर्ता : मिश्र चेतन और निश्चेतन चेतन में क्या फर्क है?

दादाश्री : जिसमें नाम मात्र को भी चंचलता नहीं है, वह चेतन है और चंचलता वाला भाग मिश्र चेतन (सूक्ष्मतम अहंकार) है। उससे भी बाहर वाला जो भाग है, वह निश्चेतन चेतन (सूक्ष्मतर अहंकार) है। जीव मात्र का जो बाहर वाला भाग है, जिसे हम 'फाइल' कहते हैं। वह फाइल निर्जीव नहीं है फिर भी अचेतन चेतन (निश्चेतन चेतन) है।

प्रश्नकर्ता : निर्जीव नहीं है फिर भी अचेतन चेतन है?

दादाश्री : वह निर्जीव नहीं है, निर्जीव के साथ सजीव भी रहा हुआ है। सब अपने-अपने रूम में हैं। सजीव अपने रूम में है, निर्जीव अपने रूम में है।

प्रश्नकर्ता : इसे ज़रा विस्तारपूर्वक समझाइए न।

दादाश्री : बाइ रिलेटिव व्यू पॉइन्ट, वह निर्जीव नहीं है। फिर भी अचेतन चेतन है। सिर्फ मान्यता ही है कि यह जीव है, बस इतना ही है, सचमुच में कुछ भी नहीं है। इसलिए कहा है न, कि अचेतन चेतन ही है, इसमें चेतन नहीं है। यह सब ऐसा ही है जैसे खिलौनों को लड़वाते हैं और खिलौने गुस्सा करते हैं, और आमने-सामने उछल-कूद मचाते हैं। खुद के हाथ में कोई भी पावर (सत्ता) नहीं है। इस बात को एक्ज़ेक्ट बताने जैसा नहीं है। क्योंकि लोगों को समझ में नहीं आएगा और उल्टा समझ बैठेंगे। यह तो, हमने आपको अन्य कारण दिए हैं इसलिए आप खुद इसे समझ जाते हो। ऐसा खुले तौर पर नहीं बताते, लेकिन अन्य लोग समझ जाएँगे कि 'मैं बोला'। कोई पूछे कि 'कौन बोला?' तब अगर कहे, 'टेपरिकॉर्डर बोला'। तो खुद का वह (जीवित भाग) खत्म हो गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी कि ऐसा पूरा (जीवित) भाग उड़ा दिया है। वह नहीं करता है, यदि वह जीवित होता तो वह करता। यह तो व्यवस्थित करवाता है। ऐसे कितने ही शब्द मैंने कहे हैं कि यदि इन सब को इकट्ठा किया जाए तो सार क्या निकलेगा? इसका निष्कर्ष निकालने पर सार क्या निकलेगा?

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है, वही।

दादाश्री : इसमें चेतन नहीं है और यदि वास्तव में चेतन ही होता तब तो बच्चे के मरने पर सभी रोते। लेकिन इसमें तो ऐसा है कि कुछ लोग रोते हैं, कुछ लोग नहीं रोते। कुछ लोग, जो ज्ञानी होते हैं, वे तो इसे कुछ भी नहीं मानते। यानी कि वह सिर्फ मान्यता ही है, रोंग बिलीफ ही है सिर्फ। और कुछ भी नहीं है। इसीलिए मैंने कहा है न, 'आप क्या हो?' तो कहते हैं, 'यह है।' वह रोंग बिलीफ है।

यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। यह कोई सादी बात नहीं है। शास्त्रों में ऐसी बातें लिखी हुई नहीं हैं! यह तो साइन्स है न!

वीतरागों को नहीं पड़ी ज़रूरत, ज्ञानी ने स्पष्ट किया प्रथम बार

इस दुनिया में इस 'निश्चेतन चेतन' की स्पष्टता तो सब से पहले हमने ही की है। आज तक किसी ने यह बात स्पष्ट रूप से बताई ही नहीं, क्योंकि वीतरागों को तो इसकी ज़रूरत ही नहीं थी क्योंकि वे उल्टे रास्ते जाते ही नहीं थे। वे तो मूल चेतन से बाहर नहीं जाते थे। इसलिए उन्हें 'निश्चेतन चेतन' शब्द का उपयोग नहीं करना पड़ा था। लेकिन अभी तो 'निश्चेतन चेतन' को ही 'चेतन' मानकर विश्राम करने बैठे हैं! तो भाई, तुझे मूल चेतन का कब पता चलेगा? वीतरागों के समय में उल्टी समझ थी ही नहीं। अभी तो उल्टी समझ है इसलिए हमें 'निश्चेतन चेतन' शब्द का उपयोग करके स्पष्टीकरण करना पड़ा है!

❖❖❖❖❖

[6]

मिकेनिकल आत्मा

आत्मा की परछाई स्वरूप, मिकेनिकल आत्मा

प्रश्नकर्ता : मिकेनिकल आत्मा किसे कहते हैं?

दादाश्री : दो प्रकार के आत्मा हैं : सचराचर। एक सचर यानी कि मिकेनिकल आत्मा है और दूसरा अचर यानी मूल आत्मा। मूल आत्मा की अज्ञानता की वजह से (सूक्ष्मतम) अहंकार उत्पन्न हो गया है और अहंकार की वजह से मिकेनिकल आत्मा (सूक्ष्मतर, सूक्ष्म, स्थूल अहंकार) उत्पन्न हो गया है। मिकेनिकल आत्मा वास्तविक आत्मा नहीं है। जैसे मनुष्य और मनुष्य की परछाई होती है, वैसा ही वास्तविक आत्मा और मिकेनिकल आत्मा है।

ये जो जीव दिखाई देते हैं, इनमें से कोई भी (मूल) आत्मा नहीं है, ये सब मिकेनिकल आत्मा हैं। यह वास्तविक चेतन नहीं है, डिस्चार्ज चेतन है। यह जो आप चंदूभाई के तौर पर रहते हो, वह मिकेनिकल आत्मा है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो व्यवहार आत्मा है। लोग व्यवहार से जानते हैं कि यह इनका आत्मा है। वास्तव में वह आत्मा नहीं है। अब, व्यवहार के आत्मा को 'सचर' कहते हैं और वास्तविक आत्मा, रियल आत्मा को 'अचल' कहते हैं। अर्थात् यह जगत् 'सचराचर' है। आप खुद अचल हो लेकिन आरोपण करते हो कि मैं चंदू हूँ, इसलिए चंचल हो जाते हो।

आप अभी मिकेनिकल आत्मा में 'मैं'पन मान बैठे हो। इसलिए भ्रांति उत्पन्न हो गई है। उस मिकेनिकल आत्मा में 'मैं'पन मानने को ही भ्रांति कहते हैं और उसी को विकल्प कहते हैं और कर्तापन मानते हैं इसलिए वह भ्रांति कहलाती है। यह मिकेनिकल आत्मा तो अहंकार से उत्पन्न हुआ है। जब अहंकार विलय हो जाएगा तो मिकेनिकल आत्मा खत्म हो जाएगा।

खुद अगर मिकेनिकल चेतन से बाहर रहे तो वह बांधेगा नहीं। मिकेनिकल चेतन ऐसा हो या वैसा हो या चाहे कैसा भी हो, लेकिन अगर खुद उसमें तन्मयाकार नहीं होगा तो खुद बंधेगा नहीं। वीतरागों ने यह मार्ग प्राप्त कर लिया था।

मिकेनिकल को करते हैं शुद्ध, लेकिन 'मूल' रह गया उस पार

निश्चय आत्मा ही वास्तविक आत्मा है। अभी आपके पास और कौन सा आत्मा है? आप जिसे आत्मा मानते हो, वह मिकेनिकल आत्मा है।

ये लोग व्यवहार व निश्चय को एक ही समझते हैं। इस रिलेटिव को शुद्ध करेंगे तो खुद शुद्ध हो जाएँगे। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है? अरे, तू जिसे शुद्ध करने जा रहा है, वह तो मिकेनिकल आत्मा है। जो यह सारा व्यवहार करता है न, वह मिकेनिकल आत्मा है। जप, तप, शास्त्रों का पठन, ध्यान, जो करता है, वह सब मिकेनिकल आत्मा करता है। वह किसलिए? तो कहते हैं, अविचल आत्मा को प्राप्त करने के लिए। लेकिन मूल भूल यह है कि इस मिकेनिकल आत्मा को ही 'मैं हूँ, यही आत्मा है', ऐसा मानता है। और उसे सुधारने की कोशिश करता है, वह भूल है। आत्मा इसके उस पार है। यह जगत् जिस आत्मा को ढूँढ रहा है न, कि आत्मा का ज्ञान पाऊँ तो वह मिकेनिकल आत्मा का ज्ञान पाता है। मूल आत्मा का तो भान ही नहीं है कि मूल आत्मा जैसी वस्तु क्या है? मूल आत्मा परमात्मा है। एक

सेकन्ड के लिए भी आप में यह आत्मा नहीं आया है। अभी वास्तव में आत्मा है तो सही अंदर, लेकिन कैसे हाज़िर होगा वह? जब से आप सेल्फ को (खुद के आत्मा को) जानोगे, तभी से वह हाज़िर हो जाएगा, तब तक वह हाज़िर नहीं होगा, तब तक मिकेनिकल आत्मा है। प्रकृति से चलता रहता है सब।

जहाँ पूरण-गलन, वहाँ मिकेनिकल समझेंगे तो आएगा हल

इस मिकेनिकल आत्मा को कैसे पहचान सकते हैं? तो कहते हैं, 'वह *पूरण-गलन* स्वभाव वाला है'। मिकेनिकल अर्थात् *पूरण-गलन*। *पूरण-गलन* यानी यहाँ से आपने खाना डाला तो आपको सुबह संडास जाना पड़ता है, यहाँ से पानी डाला तो बाथरूम में जाना पड़ता है, यहाँ से श्वास लिया तो श्वास छोड़ना पड़ता है। बैंक में जो क्रेडिट करवाकर आएँ हैं, वह डेबिट होता ही रहता है। *पूरण-गलन, पूरण-गलन, पूरण-गलन* ही है यह पूरा जगत्। बस, *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा, दो ही हैं, अन्य कोई चीज़ है ही नहीं। आत्मा के अलावा बाकी सब *पूरण-गलन* है। इस एक ही शब्द पर आ जाओ तो इसका हल आ सकता है, वर्ना कभी भी हल नहीं आएगा। एक ही शब्द, विदिन वन वर्ड, कि यह *पूरण-गलन* है। जितना *पूरण-गलन* होता रहता है, वह पूरा ही *पुद्गल* है। पूरा ही *पुद्गल* का है, इसमें चेतन जैसा कुछ दिखाई नहीं देता। चेतन दिखाई ज़रूर देता है यह पुतला, लेकिन यह चेतन है नहीं। चेतन की उपस्थिति से चलता है यह।

पकड़ो सचमुच के अपराधी को तो होगा शुद्ध

इन लोगों ने जिसे आत्मा माना है, लौकिक मान्यता से आत्मा मानते हैं, वह तो मिकेनिकल आत्मा है। यह मिकेनिकल आत्मा राग-द्वेष वाला आत्मा है। जो खाता है, पीता है, क्रोध करता है, जो धर्मध्यान करता है और दर्शन करता है, वह भी मिकेनिकल आत्मा है। आप मूल स्वरूपी हो, और वे (मूल स्वरूप) कुछ भी नहीं करते हैं। जबकि यह मिकेनिकल आत्मा जो रात को सो जाता है, थक जाता है, गुस्सा

करता है, चिढ़ता है, लोभ करता है, चिंता करता है, यह जो पैर दबाता है, माफी माँगता है, यह भी मिकेनिकल है।

जो घूमता है, फिरता है, शास्त्र पढ़ता है। शास्त्रों का उपदेश देता है, उपदेश ग्रहण करता है, पढ़ाई करता है, डॉक्टर बनता है, डॉक्टरी लाइन लेता है, योग करता है, उसे ये लोग चेतन मानते हैं। इसमें बिल्कुल भी चेतन नहीं है, सेन्ट परसेन्ट चेतन नहीं है। अब बोलो, ऐसी उल्टी समझ से यह जगत् कितनी मार खाता है? मिकेनिकल आत्मा को खुद का आत्मा मान लेंगे तो कब समझ आएगा? वास्तविक आत्मा को कोई नहीं जान सकता, ज्ञानी के अलावा। वह वास्तविक आत्मा मिकेनिकल के उस तरफ है, शरीर में ही रहा हुआ है। वास्तविक आत्मा हिलने-डुलने वाली स्थिति में है ही नहीं। वह क्रिया कर ही नहीं सकता।

फिर, मन में यदि ऐसा भान हो कि 'मैं पापी हूँ', 'मैं अशुद्ध हूँ' तो अब यह मिकेनिकल आत्मा का दोष है। मूल आत्मा का दोष नहीं है यह। मूल आत्मा अपराधी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि मूल आत्मा अशुद्ध नहीं होता, मूल आत्मा शुद्ध ही है न?

दादाश्री : मूल आत्मा शुद्ध ही है। यह अपराध इसका है। अत: यदि इस अपराध में से मुक्त हो जाएँगे तो फिर शुद्ध रहेंगे।

आत्मा जो क्रिया करता है, वह कोई देख नहीं सकता। यह शरीर तो पूरा ही मशीन है। यह जो स्वाध्याय करता है, पढ़ता है, वह सब मशीन है। ये संत पुरुष भी मशीन हैं और वह पूजा करने वाला भी मशीन है। मिकेनिकल, मशीन की तरह चलता ही रहता है। अपनी इच्छा नहीं हो फिर भी मन में विचार आते हैं। आपको मन में ऐसा लगता है कि विचार न आए तो अच्छा लेकिन फिर भी आते रहते हैं। यह जो बुद्धि वाला आत्मा है न, वह मिकेनिकल है। मिकेनिकल मशीनरी है।

भ्रांति से माना 'निर्जीव' को सजीव

इस संसार को जो चला रहा है, वह कौन है, कौन सा भाग है? वह निर्जीव भाग है। यहाँ पर जन्म हुआ तभी से निर्जीव भाग ही यह सब करता है। निर्जीव भाग करता है और हम अहंकार करते हैं कि 'मैंने किया'। आप वकील बने, वकालत की, अभी तक पढ़े-करे, सभी कुछ किया, वह सबकुछ इस निर्जीव भाग ने ही किया है।

प्रश्नकर्ता : निर्जीव पढ़ सकता है?

दादाश्री : यह सारी पढ़ाई निर्जीव ने ही की है। 'यह निर्जीव अलग है और वह निर्जीव अलग है।' दो प्रकार के निर्जीव हैं : एक स्वाभाविक *पुद्गल* और दूसरा विभाविक *पुद्गल*। विभाविक *पुद्गल* वाले निर्जीव से ही यह संसार चल रहा है।

प्रश्नकर्ता : जीवित दिखाई देता है, लेकिन है निर्जीव!

दादाश्री : यह निर्जीव ही काम कर रहा है। इसीलिए मैं कहता हूँ न, 'क्या चेतन दिखाई देता है?' तो कहते हैं, 'नहीं'। यह निर्जीव ही काम कर रहा है और इसे सजीव मानते हैं, यही भ्रांति है। क्रमिक मार्ग में आत्मा और अहंकार दोनों साथ में रह सकते हैं जबकि अक्रम में दोनों साथ में नहीं रह सकते। यानी कि जब ज्ञान होता है तब सजीव अहंकार चला जाता है। सिर्फ संसार व्यवहार चलाने लायक निर्जीव अहंकार बचता है।

'जीवित' दिखाई नहीं देता है और जो दिखाई देता है, वह जीवित नहीं है

प्रश्नकर्ता : दादा, यानी कि जो जीव दिखाई देता है, जो जीता-जागता दिखाई देता है, वह जीवित नहीं है?

दादाश्री : वह जीवित नहीं है।

प्रश्नकर्ता : और जो दिखाई नहीं देता, वह जीवित है?

दादाश्री : हाँ! जो दिखाई नहीं देता, वह जीवित है। जो अदृश्य है, वही आत्मा है। इस दृश्य में तो आत्मा है ही नहीं, किसी भी जगह पर। अतः यह मूल चेतन नहीं है, शुद्ध चेतन नहीं है, यह निश्चेतन (मिकेनिकल) चेतन है।

प्रश्नकर्ता : यदि इस शरीर के अंगों को काटकर अलग किया जाए तो उनमें जीव रहता है?

दादाश्री : वे जीवंत नहीं कहलाते। उन्हें जीव नहीं माना जाता। इसमें से अगर काटकर अलग कर दिया जाए तो उस उतने भाग में जीव रहता ही नहीं है। अगर ऊँगली कट जाए और जैसे ही अलग हो जाए तो उसमें जीव नहीं रहता। यहाँ से हृदय अगर बाहर निकाल दिया जाए तो उसमें जीव नहीं रहेगा। हृदय चलता ज़रूर रहेगा।

प्रश्नकर्ता : वह किससे चलता है?

दादाश्री : वह मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट है। यह बॉडी ही मिकेनिकल है पूरी।

प्रश्नकर्ता : काटकर दूसरी जगह लगा दिया गया और वहाँ पर खा-पीकर सभी क्रियाएँ करता है तो वह सब मिकेनिकल है? ऐसा है?

दादाश्री : सब मिकेनिकल है, यह दरअसल आत्मा नहीं है।

इसमें शक्ति सिर्फ उल्टी मान्यता की ही है

प्रश्नकर्ता : यह मिकेनिकल चेतन आ क्यों गया है? उसकी ज़रूरत क्या है?

दादाश्री : आपको इस दुनिया की जो भौतिक इच्छाएँ हैं, यदि आपकी ये भौतिक इच्छाएँ बंद हो जाएँ तो मिकेनिकल चेतन बंद हो जाएगा। आप अपने स्वरूप में आ जाओगे।

प्रश्नकर्ता : मिकेनिकल आत्मा में शुद्धात्मा की कोई शक्ति होती है क्या?

दादाश्री : उसकी कोई भी शक्ति नहीं है, सिर्फ मान्यता की शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : मान्यता को हटा लिया जाए तो यह सब बंद हो जाएगा।

दादाश्री : यानी कि आत्मा की शक्ति वहाँ पर नहीं गई है। लेकिन मान्यता है, मान्यता रूपी शक्ति है। वह मान्यता यदि बदल जाए, उल्टी मान्यता की जो शक्ति है, यदि वह सीधी हो जाए तो मोक्ष की तरफ ले जाएगी और उल्टी मान्यता संसार की ओर ले जाएगी।

नहीं मिलेगी अचलता मिकेनिकल में, आत्मा स्वभाव से अचल

प्रश्नकर्ता : मिकेनिकल आत्मा और शुद्धात्मा में क्या फर्क है?

दादाश्री : मिकेनिकल आत्मा, आत्मा की वजह से उत्पन्न हुआ प्रतिबिंब है और उसी जैसा दिखाई देता है। इसमें गुणधर्म नहीं होते, लेकिन वैसे लक्षण दिखाई देते हैं। यानी कि पूरा जगत् इसी में है। इसमें अचलता नहीं है, अन्य गुणधर्म तो हैं ही नहीं लेकिन मुख्य गुणधर्म अचलता नहीं है।

प्रश्नकता : अचलता हो जाए तो चारित्र कहलाएगा न?

दादाश्री : लोग अचलता को अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं। ज्ञाता-द्रष्टा भाव ही वास्तविक चारित्र है। हम चंचल को मिकेनिकल कहते हैं और अचल यानी कि दरअसल। लोग अचल यानी ऐसा समझते हैं कि जो चलता-फिरता नहीं है। लेकिन अचल किसे कहते हैं? जो आत्मा स्वभाव से अचल है, उसे अचलता कहते हैं। लेकिन ये तो नासमझी से इसे खुद की भाषा में ले गए। अतः इन लोगों ने अस्वाभाविक अचलता प्राप्त की।

स्वाभाविक चंचलता को पकड़ा जाए तब भी काम हो जाएगा। लेकिन एक तरफ पकड़ में आए तो दूसरी तरफ का छूट जाए, ऐसा है। अत: उसमें तो वह ठेठ निन्यानवे प्रतिशत तक पहुँच पाता है, लेकिन पूरी तरह से नहीं पहुँच सकता न! उसके लिए किसी की छत्रछाया की ज़रूरत है, वचनबल वाले और सिद्ध पुरुष होने चाहिए। मार्ग है बहुत कठिन लेकिन यदि किसी की छत्रछाया हो तो लोग उस मार्ग से भी पहुँच जाते हैं।

आत्मा क्या है, वह हमने आसानी से ओपन कर दिया है न! चंचल को हम निश्चेतन चेतन कहते हैं। चेतन है ज़रूर, लेकिन चेतन के गुणधर्म नहीं हैं। बाकी सारे लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन समझ में कैसे आएगा? मनुष्य की बस की बात नहीं है न! यह तो ज्ञानी पुरुष का ही काम है!

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि, 'स्त्री, पुत्र, मन-वचन-काया मेरे नहीं हैं, मैं शुद्धात्मा हूँ', इससे क्या कुछ बदल जाएगा? नहीं। एक्ज़ेक्ट (यथार्थ) स्पष्टता होनी चाहिए, डिमार्केशन (भेदरेखा) होना चाहिए। यह निश्चेतन चेतन तो कभी भी (शुद्धात्मा में) जाने ही नहीं देगा।

जब वीतराग यहाँ पर हाज़िर रहते हैं तब अचल आत्मा के दर्शन होते हैं। लेकिन वे सभी को नहीं होते। जिसके निन्यानवे हो चुके हैं, उसे 'सौ' के दर्शन होते हैं। लेकिन जो अड़सठ पर होता है, उसे तो उनहत्तर के ही दर्शन होते हैं। वीतराग की उपस्थिति नहीं होने पर सभी कुछ चंचल ही, अचलता के दर्शन नहीं हो पाते।

इस चंचल को आत्मा मानते हैं, और जो आत्मा है, उससे जगत् परिचित नहीं है। आत्मा को अचल मानते हैं और अक्रिय मानते हैं, लेकिन खुद जिसे आत्मा मानते हैं, वह मिकेनिकल आत्मा ही है और उसकी सभी क्रियाएँ चंचल होती हैं। यदि अविरोधाभास प्राप्त कर लेगा तो सिद्धांत प्राप्त हो जाएगा!

आत्म प्राप्ति : क्रमिक मार्ग में अहंकार शुद्ध करने पर, अक्रम में कृपा से

क्रमिक मार्ग में 'मिकेनिकल आत्मा' को ही आत्मा माना गया है। जब अहंकार शुद्ध हो जाता है यानी कि जब क्रोध-मान-माया-लोभ अहंकार में नहीं समाते, जब अहंकार इतना शुद्ध हो जाता है, संपूर्ण शुद्ध हो जाता है तब 'शुद्धात्मा' और 'शुद्ध अहंकार' एकाकार हो जाते हैं। यानी कि क्रमिक मार्ग में ऐसा है लेकिन यह तो 'अक्रम विज्ञान' है। इसलिए यहाँ पर तो 'ज्ञानी पुरुष' आपके हाथ में शुद्धात्मा ही दे देते हैं, अचल आत्मा ही, नाम मात्र को भी मिकेनिकल नहीं, ऐसा निर्लेप आत्मा दे देते हैं।

वास्तव में लोगों ने जिसे आत्मा माना है, वह मिकेनिकल आत्मा है। हम मिकेनिकल आत्मा नहीं देते हैं, मैं तो आपको अचल आत्मा देता हूँ। अचल आत्मा ही परमात्मा है। उसे पहचानने से तो अपना काम हो जाता है, वर्ना तब तक काम नहीं हो सकता।

[7]
मुर्दा

शुद्धात्मा के अलावा शेष पूरा मुर्दा

इस शुद्धात्मा के अलग होने के बाद में क्या बाकी रहा? अब शेष में क्या बचा है अपने पास?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नहीं रहा।

दादाश्री : यह जो खाता है, पीता है, लोगों को गालियाँ देता है, झगड़े करता है, गुस्सा करता है, यह सब कौन करता है?

प्रश्नकर्ता : गुनहगारियाँ, पिछली गुनहगारियाँ।

दादाश्री : हाँ, गुनहगारियाँ लेकिन जीवित है या मृत?

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा।

दादाश्री : हाँ, लेकिन जीवित है या मृत?

प्रश्नकर्ता : जीवित!

दादाश्री : नहीं, यह बिल्कुल मृत है। यह मुर्दा बचा फिर।

यह ज्ञान मिलने के बाद में शेष क्या बचा? तो कहते हैं, मुर्दा। मुर्दा यानी क्या? जिसका चेतन के साथ बिल्कुल भी व्यवहार नहीं रहा है, वैसा मुर्दा है यह।

मुर्दा बचा है अब। वह चार्ज किया हुआ मुर्दा कूदेगा, हँसेगा, बातें करेगा, मारामारी करेगा, गुस्सा करेगा, मुँह चढ़ाएगा, चिढ़ेगा, चिल्लाएगा, रोएगा, परेशान करेगा, लोगों को गालियाँ देगा, सब करेगा लेकिन मुर्दा ही है। यह मुर्दा कहेगा, 'मुझे अकुलाहट हो रही है'। अरे, तुझे अकुलाहट कैसे हो सकती है? मुर्दे को होती है। अकुलाहट हो रही है, परेशानी हो रही है, सफोकेशन हो रहा है, ऐसा सब जो होता है, वह सब मुर्दे में ही होता है। बोलता भी वह है और गुस्सा भी उसी को आता है, मुर्दे को ही। वह क्या मानता था कि, 'मुझे ही गुस्सा आया है'। मैंने कहा, 'नहीं, बस, इतना ही है कि तू ऐसा मान लेता है। उतनी तुझ पर जोखिमदारी आएगी।'

ज्ञानी की दृष्टि से देखेंगे मुर्दा, तो मिटे सर्वस्व जोखिमदारी

मुर्दा का मतलब क्या है? उसमें नाम मात्र को भी चेतन नहीं है। हमने 'मुर्दा' नहीं कहा है और अलंकारिक भाषा में क्या कहा है, 'निश्चेतन चेतन'। निश्चेतन चेतन अर्थात् चेतन निश्चेतन हो चुका है, मुर्दा हो चुका है। चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन मुर्दा है यह। उसे हमने 'निश्चेतन चेतन' कहा है, मुर्दा नहीं कहा है, क्योंकि 'मुर्दा' कहेंगे तो लोगों को भ्रम हो जाएगा। यह तो आप पढ़े-लिखे लोगों को समझा रहे हैं, बाकी लोगों को नहीं समझा सकते ये मुर्दे वाली बात। लोग समझेंगे नहीं और कुछ का कुछ उल्टा कर बैठेंगे न, इसलिए नहीं बताता हूँ। वर्ना अगर यह समझ में आ जाए तो बिल्कुल भी परेशानी नहीं आएगी।

अगर मुर्दा कहेंगे तो लोग कहेंगे कि यह भला कैसे ज्ञानी हैं कि इस तरह मुर्दा कह रहे हैं! अन्य कहीं मुर्दा कहते हैं क्या? अरे, उलझन में पड़ जाएगा बेचारा। और बुद्धि तक नहीं पहुँचती यह बात। यह कभी भी मति तक नहीं पहुँच सकती। उसे मति नापती रहती है, नापने पर भी समझ में न आ सके, ऐसी चीज़ है। उसे मति से समझ में नहीं आता और मुझे दिखाई देता है कि यह मुर्दा चल-फिर रहा है, बातें कर रहा है। मुर्दे के कितने भाग हैं, 'वाणी टेपरिकॉर्डर है', ऐसा कहा तो फिर वह मुर्दा हो गया या नहीं?

पूरी दुनिया मुर्दे में ही पड़ी हुई है। इसमें आत्मा का उपयोग नहीं किया जाए फिर भी यह मुर्दा चलेगा ही। चलता-फिरता मुर्दा है यह। लोग फिर ऐसा कहते हैं कि ये चलते-फिरते पुतले हैं, डोरी से नचाए हुए। तो भाई, पुतले का मतलब ही है मुर्दा।

लेकिन अगर इस तरह मुर्दा कहेंगे तो उलझन में पड़ जाएँगे और समझदार इंसान इसमें से ढूँढ निकालेगा। अगर मुर्दा कहेंगे तो कहेगा कि, 'इसमें गहरे उतरने जैसा नहीं है।' यदि ऐसा ही है तो गहरे उतरने जैसा है ही कहाँ फिर?

इस मुर्दे को मुर्दा समझने से नासमझी चली जाती है, सारी। लेकिन बाहर यही कहना कि निश्चेतन चेतन है।

प्रश्नकर्ता : दादा, खुद के समझने के लिए तो यह बहुत अच्छा वाक्य है। हमारी खुद की समझ के लिए बहुत अच्छा बताया है।

दादाश्री : यह तो समझाने के लिए बता रहे हैं। बाकी, यदि कोई पूछे तो कहेंगे, 'निश्चेतन चेतन है'। हाँ, वह बात तो सही है। चेतन ही है लेकिन निश्चेतन चेतन है। समझ गया, वह निश्चेतन चेतन। जिसने यह ज्ञान नहीं लिया हो, उसके लिए वह मिश्र चेतन है। मिश्र चेतन को मुर्दा नहीं कह सकते। वह तो रात को किसी को मारने के विचार तक कर देता है। अहंकार सहित है न! हाँ, जीवित है न!

क्या तुझे ऐसा लगता है कि मुर्दा है? यह चाहे कुछ भी करे, फिर भी उस काम की जोखिमदारी आत्मा की नहीं है। इसका क्या कारण है? आत्मा को जोखिमदारी नहीं लेनी हो तो... जिसे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जोखिमदारी नहीं ले सकता, चाहे कुछ भी करे फिर भी। उसका कारण यह है कि वह तो मुर्दा है।

व्यवहार दिखाई देता है 'जीवित', लेकिन वास्तव में है मुर्दा ही

प्रश्नकर्ता : दादा, क्रमिक मार्ग में तो ऐसा कहते हैं कि आत्मा मोह-माया-मत्सर-मद, सभी कुछ छोड़ दे तो उसे ज्ञान प्राप्त हो जाएगा?

दादाश्री : लेकिन छोड़ने वाला कौन है, जीवित व्यक्ति छोड़ सकता है या मृत?

प्रश्नकर्ता : जीवित ही छोड़ेगा न!

दादाश्री : नहीं! जो चलता-फिरता है, वह मृत है। जो संसार चलाता है न...

प्रश्नकर्ता : जीवित व्यक्ति छोड़ेगा तभी फिर प्रकट होगा न? आत्मा के दर्शन कब होते हैं?

दादाश्री : हाँ। लेकिन कैसे हो पाएँगे? इस संसार में, व्यवहार में जो है न, गुरु-शिष्य साथ में बैठते हैं तो दोनों ही मरे हुए हैं। यह पूरा मृत व्यवहार ही चल रहा है।

प्रश्नकर्ता : सब मृत है?

दादाश्री : पूरा ही व्यवहार मृत चल रहा है और फिर कहता है कि 'मैंने किया', वही भ्रांति है। अरे भाई, तू मृत है तो तू क्या कर सकता है? जो लोग कुछ भी कर सकते हैं न, वे सब मृत हैं और वे अपने आप को ऐसा मानते हैं कि 'मैं जीवित हूँ', बस इतना ही। और 'मैं मर गया', वह भी कल्पना है, और 'मैं जीवित हूँ', वह भी कल्पना है।

और फिर सिर्फ इतना ही नहीं कहता है कि 'जीवित हूँ', कहता है, 'मैं तो समधी हूँ इनका।' ओहोहो! आए, बड़े समधी! संडास जाने की शक्ति नहीं है। संडास जाने की शक्ति है किसी में?

यदि कोई गाली दे तो हम कहते हैं कि इसने मुझे गाली दी। तो भाई, मकान पर से जब पत्थर गिरता है और खून निकलता है तो गुस्सा नहीं करता और यहाँ पर कहता है कि, 'इसने मुझे मारा'।

प्रश्नकर्ता : उस दूसरे व्यक्ति में चेतन था इसीलिए ऐसा कहता है कि, 'इसने मुझे मारा'।

दादाश्री : हाँ... जो मारता है, वह भी चेतन नहीं है और जो दान देता है, वह भी चेतन नहीं है। किसी भी क्रिया में चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्रिया करने वाले में भी चेतन नहीं है और पत्थर फेंकने वाले में भी चेतन नहीं है न?

दादाश्री : नहीं, उसमें भी चेतन नहीं है। जो करवाता है, उसमें भी चेतन नहीं है।

निश्चेतन चेतन को कह दिया मुर्दा

प्रश्नकर्ता : इंसान जब मरता है और जीवित रहता है, उसके बीच में कोई चेतन तो है ही न? वर्ना इन दोनों में फर्क क्या रहा?

दादाश्री : चेतन नाम मात्र को भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मुर्दा पड़ा हुआ हो और जीवित हो, उसमें क्या फर्क है?

दादाश्री : उसमें चेतन नहीं है। अभी यदि कोई व्यक्ति उठापटक कर रहा हो तो फिर वह चेतन के बिना ही कर रहा है और कोई सुन भी रहा हो तब भी चेतन के बिना ही सुनता है। बड़ी-बड़ी कथाएँ करता है तब भी चेतन के बिना करता है।

प्रश्नकर्ता : तो फर्क क्यों है, एक मृत है और दूसरा जीवित है?

दादाश्री : वह तो निश्चेतन कहलाता है, लेकिन यह निश्चेतन चेतन है। इसमें चेतन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं लेकिन यह चेतन नहीं है। वह मिकेनिकल चेतन, यानी कि यह जो मशीन होती है, उसे मुर्दा ही कहा जाएगा न! अगर यह मशीन बंद हो जाए तो क्या उसे मुर्दा नहीं कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, अगर मशीन बंद हो जाए तो फिर मुर्दा।

दादाश्री : मिकेनिकल बंद हो जाता है, बाकी और कुछ नहीं होता। पूरी मशीनरी ही बंद हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : एक मशीनरी बंद हो गई और दूसरी मशीनरी चल रही है तो उस मशीनरी में जो इलेक्ट्रिक वाला भाग था तो क्या वह अलग से था उसमें?

दादाश्री : इलेक्ट्रिक (पावर) तो रहेगा ही न! इलेक्ट्रिक तो मशीनरी का ही भाग है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसे चेतन नहीं मानना है?

दादाश्री : नहीं, (मूल) चेतन नहीं है, वह निश्चेतन चेतन है।

अर्थात् इन बाहर के मनुष्यों में भी मुर्दा ही है। गाय-भैंसों में भी मुर्दा ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बाहर वाले लोगों को कर्म चार्ज होते हैं और यहाँ पर हमारे कर्म चार्ज नहीं होते न?

दादाश्री : हाँ, उनमें चार्ज और डिस्चार्ज होता रहता है। डिस्चार्ज भाग मुर्दा है और चार्ज भाग चेतन है, वह भी मिश्र चेतन। वह मिश्र चेतन है और यह जो है मुर्दे में, यह निश्चेतन चेतन है।

जगत् के लोगों में भी एक तरफ जो निश्चेतन चेतन है, वह मुर्दा ही है। लेकिन अब उनके अंदर चार्ज करने वाला मिश्र चेतन तो साथ में है ही। इसलिए फिर उन्हें चार्ज होता है और हमें यह (ज्ञान के बाद) चार्ज नहीं होता।

डिस्चार्ज हो गया मुर्दा, न रही झंझट

प्रश्नकर्ता : जब आप ज्ञान देते हैं, उसके बाद फिर तो डिस्चार्ज ही रहता है, उसके बाद चार्ज होता ही नहीं है, तो वास्तव में क्या यह मुर्दा ही है? अन्य कुछ भी नहीं है अब?

दादाश्री : मुर्दा ही है। अब यों आप डिस्चार्ज स्वरूप को और मुर्दे को, दोनों को एक सरीखा नहीं समझते हो, लेकिन किसी भी चीज़ का डिस्चार्ज अर्थात् मुर्दा। जिसमें अब (ज्ञान के बाद) चार्ज नहीं होगा और अपने आप डिस्चार्ज ही होता रहता है, उसे मुर्दा कहते हैं।

जिसमें डिस्चार्ज होने की शुरुआत हो गई, उसे हम मुर्दा ही कहते हैं। तो अपना यह जो डिस्चार्ज भाग रहा है, वह पूरा ही मुर्दा है। जिसमें चार्ज और डिस्चार्ज दोनों साथ में हैं, तब वह चेतन (मिश्र चेतन) कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अब अपनी जो डिस्चार्ज क्रियाएँ होती हैं, उनमें कोई न कोई सूक्ष्म, सूक्ष्मतर रस और आनंद रहा हुआ है न, जीवन में?

दादाश्री : कुछ भी नहीं रहा है। सभी कुछ मुर्दा ही है यह, डिस्चार्ज ही है। जिस प्रकार बैटरी (टॉर्च) होती है न, तो उसके सेल लाते हैं, तो उन्हें डिस्चार्ज होने के लिए ही लाते हैं हम। रिचार्ज होने के लिए नहीं, लेकिन डिस्चार्ज होने के लिए हैं।

प्रश्नकर्ता : जो डिस्चार्ज क्रियाएँ हैं, उनमें हमें रस (interest) नहीं रहता न?

दादाश्री : डिस्चार्ज मानेंगे तो सब विलय हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : रस खत्म हो जाता है न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : उसमें यदि रस दिखाई दे तो वह चार्ज कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं, जो रस दिखाई देता है, वह भी डिस्चार्ज में है और रस नहीं दिखाई देता, वह भी डिस्चार्ज में आता है। आम पसंद है, वह भी डिस्चार्ज में और जो नहीं पसंद, वह भी डिस्चार्ज

में। मीठा खाते हैं और मीठा छोड़ देते हैं, वे दोनों भी डिस्चार्ज हैं। इस डिस्चार्ज को यदि समझ जाए न, तो बहुत हो गया।

एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'अंदर कुछ उठापटक होती रहती है'। मैंने कहा, अंदर उठापटक किसमें हो रही है? चार्ज में हो रही है या डिस्चार्ज में? देखो, चार्ज नहीं बचा है, डिस्चार्ज बचा है। डिस्चार्ज में हो रहा है, उससे तुझे क्या लेना-देना? तुझे देखते रहना है। तुम्हारे सेल किस तरह से खर्च हो रहे हैं, यही देखते रहना है।

इसमें और कोई झंझट ही कहाँ रही? यह विज्ञान अलग ही प्रकार का है! वह (क्रमिक मार्ग) विज्ञान नहीं है। वर्ना मुर्दा कह ही नहीं सकते न! उसे मुर्दा कहना तो भयंकर गुनाह है लेकिन यह डिस्चार्ज है, मुर्दा कहलाता है। यानी मुर्दा क्यों कहना पड़ता है कि, 'भाई, अब क्यों इसमें हस्तक्षेप कर रहे हो?'

इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि *निकाल* (निपटारा) करो। मुर्दा नहीं होता तो क्या कोई *निकाल* करने को कहता कि समभाव से *निकाल* करो? यदि यह मुर्दा नहीं होता तो मैं आपको *निकाल* करने को नहीं कहता। इस डिस्चार्ज का *निकाल* करने को नहीं कहता।

देखना है असर मुर्दे पर, तो नहीं रहेगा दखल

प्रश्नकर्ता : दादा, वह ठीक है लेकिन अब कई बार ऐसा हो जाता है कि अब क्या बचा है? किसलिए जीना है? अब बाकी क्या रहा है?

दादाश्री : लेकिन जी ही रहे हो न, परमानेन्ट जीवित हो, फिर अब, 'ज़रूरत ही क्या है', ऐसा बोलते हो?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, अब ऐसे विचार आते हैं, सामान्य रूप से जब हमारी उम्र हो जाती है तब ऐसा लगता है कि अब पाँच-दस साल और जी लें। मुझे तो बल्कि उल्टे विचार आते हैं कि किसलिए जीना है? यहाँ किसलिए पड़े रहना है?

दादाश्री : वह तो, वे हस्ताक्षर करवा जाता है, ऐसा करके। वह हस्ताक्षर के बिना लेकर नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर करवा ले, तब भी क्या है?

दादाश्री : इस तरह से उलझन में डालकर हस्ताक्षर करवा लेता है। अगर मुर्दा परेशान हो जाए तो क्या अपने सिर पर ले लेना है? मुर्दे का क्या हो रहा है, उसे सिर्फ देखते ही रहना है।

यानी कि हमें यह देखते रहना है कि यह मुर्दा क्या कर रहा है। अकुलाहट होती है तो वह मुर्दे को। खुशी हो जाए, वह भी मुर्दे को। किसी पर खुश हो जाए, वह भी मुर्दे का और किसी को तमाचा मार दे, वह भी मुर्दे का। एक बार ऐसा समझ लें कि मुर्दा है तो फिर दखल नहीं देगा। वह तो कहेगा, 'मुझे ऐसा हो रहा है'। 'अरे भाई, भले ही हो, लेकिन यह मुर्दे को ही हो रहा है। तू तो इसे जानने वाला है। तू अलग है और यह मुर्दा अलग है।'

और इसमें तो कुछ उल्टा होगा नहीं, यदि उसे देखता रहे तो। आप क्या करते हो? देखते रहते हो?

प्रश्नकर्ता : हाँ, देखते ही रहता हूँ।

दादाश्री : महावीर भगवान एक *पुद्गल* को देखते रहते थे, *पुद्गल* यानी कि मुर्दे को।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सब एक ही।

दादाश्री : मुर्दे को ही देखते रहते थे। ये सब मुर्दे ही हैं, वही देखते रहते थे। कोई गाली दे, वह भी मुर्दा है और सुनने वाला भी मुर्दा है। जो चिढ़ता है, वह भी मुर्दा है और जो नहीं चिढ़ता, वह भी मुर्दा है।

'मुर्दा' नहीं जीवित, उस दृष्टि से जगत् निर्दोष

कृपालुदेव ने कहा है कि, 'मर कर जीओ', तो यह मर कर

जीने जैसा है। उसके बाद अगर प्याला फूट जाए तो? मरा हुआ इंसान जीए तो उसके बाद उसे प्याले से क्या लेना-देना? इसीलिए कृपालुदेव ने यह जो कहा है, यह तो विकल्पी कहा है कि, 'भाई, तू मर जा और उसके बाद में जी'। तो लोगों ने तो उसका भी विकल्प करके देखा, लेकिन विकल्प काम नहीं आता। यह तो एक्ज़ेक्ट है, फिर इसमें क्या दिक्कत है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष के सामने जीते जी ही मर जाना चाहिए।

दादाश्री : जीते जी मरना है। जीते जी मर जाए तो फिर से मरना नहीं पड़ता और अगर मर कर जीए तब फिर अगर प्याले टूट जाएँ तो, मर कर जीने वाले व्यक्ति को प्याले टूटने से कोई परेशानी नहीं है। जीवित व्यक्ति को प्याले टूटने से परेशानी है।

प्रश्नकर्ता : अपनी भाषा में तो ऐसा हुआ कि मरा हुआ भाग चाहे जीवित दिखाई देता है लेकिन वह मरा हुआ ही है।

दादाश्री : मरा हुआ ही है। लोग तो मरे हुए *पुद्गल* के प्रति स्ट्रोंग (सख्त) हो जाते हैं, वह *पुद्गल* जीवित नहीं है। यदि वह जीवित होता तो ठीक था, लेकिन मरे हुए के प्रति क्या स्ट्रोंग होना? मरे हुए का अपमान क्यों करना है? जगत् को जो जीवित लगता है, भगवान को जीवित नहीं लगता। जो जीवित नहीं है, उसे गालियाँ देने का क्या अर्थ है? अपना बिगड़ेगा न? किसका बिगड़ेगा? किच-किच करने वाले का बिगड़ेगा?

दुनिया को कैसा लगता है? वही है, यही है, उसके अलावा और किसने किया है, और भगवान को कैसा लगा था यह संसार?

प्रश्नकर्ता : निर्दोष।

दादाश्री : निर्दोष क्यों लगा? यह जीवित नहीं है इसलिए। लोग तो जो जीवित नहीं है, उसे जीवित कहते हैं।

वह चाबी के खिलौने वाला साँप काटता है क्या? क्यों नहीं काटता, यों दौड़ता हुआ आए तो? नहीं काटता क्या चाबी वाला साँप?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : ऐसा ही है यह सब। जैसी चाबी होगी न, उसी तरह से घूमता रहेगा।

रात को सोने गया, ग्यारह बजे हो और जब ओढ़कर सो जाता है तो तुरंत उसे विचार आया कि, 'ये लाख रुपये खाते में डालने रह गए। यदि वे खाते में नहीं डालेगा तो क्या होगा?' तो बस हो गया, हो गया काम भाई का! फिर वह जीवित मुर्दा जैसा बन जाता है।

यानी कि यह जीवित नहीं है, ऐसा समझकर हमें सयाने बन जाना है। कोई गालियाँ दें तो हमें समझना चाहिए कि जीवित नहीं है। ऐसा समझो तो आपको कोई हर्ज नहीं है न!

नासमझी से असर को लेता है सिर पर, उससे आता है आवरण

यह ज्ञान तो सभी सुनते हैं लेकिन फिर भूल जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : ऐसा ज्ञान दीजिए न, कि भूलें ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, हमने वैसा ही दिया है लेकिन भूल जाते हो, उसके वे पिछले कर्म जत्थे में हैं न, इसलिए। ज्ञान तो बहुत अच्छा दिया है। इस पर तो यदि सोचते ही रहोगे न, तब फिर यह याद रहेगा और फिर हमेशा के लिए पक्का हो जाएगा। अगर नहीं सोचोगे तो फिर उलझा हुआ ही रह जाएगा।

क्या तू यह समझता था कि यह मुर्दे का है, मेरा नहीं है?

प्रश्नकर्ता : उसका ठीक से पूरा विवरण नहीं हुआ था।

दादाश्री : किसका?

प्रश्नकर्ता : असर का, यह मुर्दा है, वगैरह।

दादाश्री : विवरण हो ही चुका है, पूरा विवरण हो ही चुका है। कोई विवरण करना बाकी ही नहीं रखा है।

प्रश्नकर्ता : नहीं! दादा ने तो वह करवाया है, दादा ने बताया भी है लेकिन ऐसा नहीं हो पाया कि यह याद रहे।

दादाश्री : समझ में नहीं आता तो फिर उल्टा चलता है, खुद की समझ से।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन ऐसा यह ज्ञान है, यानी कि डिस्चार्ज भाग मुर्दा है और इसमें ज़रा सा भी चेतन है ही नहीं, लेकिन पूरा व्यवहार इसी भाग में है, ऐसा समझ में रहना चाहिए न?

दादाश्री : कुछ भी व्यवहार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह डिस्चार्ज भाग मुर्दा है लेकिन व्यवहार में आमने-सामने सभी तरह का असर होता है, दुःख की *लागणियाँ*, सुख की *लागणियाँ*।

दादाश्री : वे सारे असर जो होते हैं, वे मुर्दे को ही होते हैं। आप उसे स्वीकार कर लेते हो कि, 'यह मुझे हुआ'। इसीलिए हम कहते हैं न, 'शंका हुई यानी स्वीकार कर लिया, उससे जोखिमदारी आती है।' वह कुछ करे और आपको शंका होने लगे तो आपको कर्म चिपकेंगे।

प्रश्नकर्ता : शंका होगी तो कर्म चिपकेंगे?

दादाश्री : हाँ, शंका होगी तो तुरंत पुलिस वाला पकड़ लेगा। कहेगा, इस व्यक्ति ने कोई गुनाह किया है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह चार्ज हो जाएगा?

दादाश्री : चार्ज नहीं, लेकिन जोखिम आएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, जोखिम आने में और चार्ज नहीं होने में क्या फर्क है?

दादाश्री : उसमें फर्क है। चार्ज में आधारपूर्वक कर्ता बनता है जबकि इसमें तो साधारण फल मिलेगा। जो भी असर वगैरह होता है, क्या वह चेतन पर होता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं। ठीक है। मिकेनिकल चेतन पर असर होता है। चेतन पर असर नहीं होता।

दादाश्री : इफेक्टिव ही है यह मुर्दा। इफेक्टिव अर्थात् असर वाला ही है। सारा असर उसी को है, और अगर तू अपने सिर पर लेगा तो तुझसे चिपकेंगे। इसके अलावा कुछ भी नहीं है। चार्ज किया हुआ तो ठीक है लेकिन ऐसे शंका करना गलत है। नई ही तरह की एक गांठ पड़ जाती है।

प्रश्नकर्ता : यह क्या कहा, दादा?

दादाश्री : इससे तो उल्टी समझ की पूरी ही गांठ बन जाती है। यानी कि उल्टी समझ उत्पन्न होती है। असर होता है मुर्दे पर, और खुद स्वीकार कर लेता है, तब फिर उल्टा ही हो जाएगा न अंदर! ज्ञान-दर्शन पर आवरण आ जाता है।

फाइलों को देखेगा 'मुर्दा', तो नहीं रहेगी ममता

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद भी ममता तो उतनी की उतनी ही है। जो गाढ़ ममता होती है न, वह गाढ़ ममता घटती क्यों नहीं?

दादाश्री : उसे घटाने का प्रयोग तो करना चाहिए न! ममता कैसे बढ़ी? तो कहते हैं, 'मेरा है, मेरा है', करके बढ़ी। 'नहीं है मेरा', करने से घट जाएगी। वह साइकोलॉजिकल इफेक्ट ही है, और कुछ भी नहीं है। यह गाढ़ साइकोलॉजिकल इफेक्ट है, उसे ममता कहते हैं। 'मेरा, मेरा' करके ममता गाढ़ हो गई। 'मेरा नहीं है' कहने से यह

गाढ़ापन खत्म हो जाएगा। 'मेरा, मेरा' करके इस तरह से लपेटते हैं तो उससे ममता हो गई और इस तरह से खोलेंगे तो ममता छूट जाएगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वहाँ पर बुद्धि ऐसा बताती है कि ममता भले ही रहे! क्या वह हमें खाना चाह रही है? मार देती है क्या?

दादाश्री : नहीं, ममता होगी तब तो *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) हो जाती है फिर!

प्रश्नकर्ता : तब तो अब परिवार की ममता निकल जानी चाहिए न?

दादाश्री : यह जो घड़ी है, उसके लिए अगर सौ बार ऐसा बोला जाए न, कि, 'मेरी नहीं है, मेरी नहीं है' तो फिर वह खो जाने पर कोई चिंता नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : मुझे इन सभी भौतिक चीज़ों पर ममता नहीं है।

दादाश्री : नहीं-नहीं, मनुष्यों के लिए भी ऐसा ही है। मनुष्य भी भौतिक ही है न! क्या वे जीवित हैं? आपने कभी किसी जीवित मनुष्य को देखा है?

प्रश्नकर्ता : फिर भी उस ममता की तीव्रता, ममता की इन्टेन्सिटी कम नहीं होती।

दादाश्री : कम क्यों नहीं होगी? आप आत्मा के तौर पर हाज़िर रहेंगे तो उन पर से, हर एक चीज़ पर ममता कम होगी। रोने का नियम नहीं है, ऐसी है यह सारी ममता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी तो रुलाती है, दादा।

दादाश्री : नगीन भाई नाम के किसी पड़ोसी के मरने के बाद, क्या आप रोते नहीं थे? उस समय ममता थी? अब वैसी ही ममता रहनी चाहिए सभी जगह। रोने का नियम नहीं हो, वैसी ममता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर किसी भी व्यवहार में यह सारी ममता, यह सब कमर्शियल ही है, आप ऐसा कह रहे हैं?

दादाश्री : मुर्दे के साथ का व्यवहार है, उसमें क्या ममता! मुर्दे पर क्या ममता आए?

प्रश्नकर्ता : नहीं, उसमें यह जो ममता है न, वह फिर दूसरा स्वरूप ले लेती है। मुझे अब यहाँ आने के बाद से दूसरी ममता उत्पन्न हो गई है कि सभी में शुद्धात्मा देखने हैं और अनुभव करना है। वापस यह दूसरा लफड़ा आ गया।

दादाश्री : यह तो सही बात है।

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं, लेकिन उस समय अगर इन्हें शुद्धात्मा देखें और मुर्दा भी कहें तो क्या दोनों साथ में हो सकता है?

दादाश्री : मुर्दे में शुद्धात्मा। यह जो व्यवहार कर रहा है, यह सबकुछ मुर्दा कर रहा है। जो ये बातें कर रहा है, गुस्सा करवा रहा है, क्रोध कर रहा है, पैसे कमा रहा है, वह सबकुछ मुर्दा ही कर रहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर अगर मैं उसमें शुद्धात्मा देखूँ तो उतना अभी...

दादाश्री : अंदर जो शुद्धात्मा है, वह आपको दिखा दिया है, अलग हो गया है, वह इस मुर्दे से।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन अब वह शुद्धात्मा का रूप है न, तो फिर मुझे जो यह बहुत ही ज़्यादा ममता, मोह वगैरह, रस-रंग-रूप-गंध, बुद्धि-मन-चित्त सब हैं, वह...

दादाश्री : वे सब तो मुर्दे में है, सारा राग-द्वेष। इस राग-द्वेष से ही दु:ख होता है। वीतराग को स्वाभाविक सुख उत्पन्न होता है।

ज्ञान के बाद आज्ञापालन करेगा तभी मुर्दा

प्रश्नकर्ता : ये जो ज्ञान ले जाते हैं लेकिन वापस यहाँ पर नहीं आते, मान लीजिए कि कोई नहीं आ सका तो?

दादाश्री : वह मुर्दा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो उसके लिए क्या है?

दादाश्री : उसका अहंकार फिर से जाग्रत हो जाता है, जीवित हो जाता है। वह तो ऐसा है कि यदि आज्ञा पालन करेगा तभी मुर्दा है। ज्ञान लिया, सिर्फ उसी को ज्ञान लेना नहीं कहते, क्योंकि ज्ञान किसे कहते हैं कि एक-एक शब्द बोला हो और उसका एक्ज़ेक्ट परिणाम आया हो और फिर वह आज्ञा में रहने लगे, तब। यह तो, एक-एक शब्द, लोग आधे शब्द तो बोलते भी नहीं हैं, तो फिर जैसा चाहिए वैसा परिणाम नहीं आता!

बिल्कुल नई बात, प्रकट हुई जग कल्याण के लिए

प्रश्नकर्ता : अब, यह साइन्स कितना अधिक समझने जैसा है कि ऐसा सब होने के बावजूद भी मुर्दा कहते हैं!

दादाश्री : मुर्दे पर तो पूरे जगत् का व्यापार चल रहा है! फिर भी अगर इस ज्ञान को उजागर कर देंगे तो बहुत गलत हो जाएगा।

तीर्थंकरों ने यह नहीं बताया कि जीव में चेतन नहीं है। ऐसा नहीं बताया जा सकता। बहुत बड़ा जोखम है। प्राइवेटली (निजी तौर पर) बताया जा सकता है, वर्ना लोग कैसे भी मार देंगे लोगों को। फिर मारने में डर ही नहीं लगेगा, दुरुपयोग ही करेंगे न! इसलिए तीर्थंकरों ने भी नहीं बताया।

इसलिए अभी तक हमने यह नहीं बताया कि, 'जीवंत नहीं है'। अभी तक हम कहते थे कि यह रिकॉर्ड है। वास्तव में रिकॉर्ड ही है और यह जीवंत भी नहीं है। हमने इसे निश्चेतन चेतन कहा है न! मिकेनिकल आत्मा है, यह वास्तविक वस्तु है ही नहीं।

अब, यह तो हमने पहली बार ही बताया है। दुनिया में इस बात को कोई नहीं जानता। 'यह मुर्दा है', ऐसा नहीं जानते। इसलिए हम इस बारे में बात ही नहीं करते। ऐसा कभी भी बताया ही नहीं गया है न! हम यह जो बात बता रहे हैं न, यह बात कभी बताई ही नहीं गई। बिल्कुल नई ही बात है!

अरे! इस दुनिया के किसी भी मनुष्य के *लक्ष* में नहीं है, इसीलिए यह अक्रम विज्ञान कहलाता है!

[8]

चल-अचल-सचराचर

न तो सिर्फ सचल है और न सिर्फ अचल है लेकिन है सचराचर

प्रश्नकर्ता : इस शरीर में पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियाँ, तीन गुण, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, इन सब के नाम-गुण व दशा हैं, तो इनमें से आत्मा किसे कहेंगे?

दादाश्री : इनमें आत्मा है ही नहीं। ये पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियाँ, तीन गुण, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, इन सब में जो आत्मा है, वह सचल आत्मा है और मूल आत्मा अचल है, सचराचर आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : सचराचर का अर्थ यह हुआ कि सर्वव्यापी है?

दादाश्री : नहीं, सर्वव्यापी नहीं। वह सचल और अचल, हर एक देहधारी में दोनों साथ में रहे हुए हैं। यानी कि इस शरीर में आत्मा के दो विभाग हैं **;** एक परमानेन्ट आत्मा और दूसरा टेम्परेरी आत्मा। परमानेन्ट आत्मा को अचल कहते हैं और टेम्परेरी आत्मा को सचल कहते हैं। सचल, वह व्यवहार आत्मा है और अचल, वह निश्चय आत्मा है। लोगों द्वारा माना हुआ आत्मा सचल है और भगवान द्वारा माना हुआ आत्मा अचल है। यह जो बाहर दिखाई देने वाला आत्मा है, वह

सचल है। बाहर के भाग को सचर कहा जाता है और जो बिल्कुल अलग है, उसे अचल कहा जाता है। ये दो भाग हैं, सचराचर से यह जगत् चल रहा है। दुनिया दो आत्माओं के बिना नहीं चल सकती। कोई जीव सिर्फ सचल नहीं हो सकता, न ही कोई जीव सिर्फ अचल हो सकता है, अत: रिलेटिव और रियल। जो सचल है, वह रिलेटिव है, विनाशी है; और अचल, रियल है, अविनाशी है। सचर अर्थात् पावर आत्मा और अचर अर्थात् मूल आत्मा। मूल आत्मा स्थिर ही है जबकि यह अस्थिर है। यह प्राण के आधार पर जीवित रहता है जबकि मूल आत्मा खुद अपने आधार से ही जीवित है। मूल आत्मा किसी भी तरह से मर सके, ऐसा नहीं है। उसे तो किसी भी चीज़ की, हवा की भी ज़रूरत नहीं है और वह निरालंब है, वह निरालंब पद मैंने देखा है।

आत्मा है एक ही, लेकिन दूसरा उत्पन्न हो गया है

प्रश्नकर्ता : यह आत्मा जो दो भागों में है, यह क्या शरीर में ही रहता है?

दादाश्री : हाँ! शरीर में ही, और अचल व सचर, दोनों साथ में ही हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मा एक है और उसे दो भागों में देखा जाता है?

दादाश्री : इस शरीर में दो आत्मा नहीं हैं। आत्मा एक ही है और दूसरा, उस आत्मा की उपस्थिति से पावर उत्पन्न हो गया है। सचर कैसे हो गया यह चेतन के बिना? यहीं पर लोग उलझ जाते हैं, सचर बना कैसे? तो कहते हैं, आत्मा के स्पर्श से पावर उत्पन्न होता है।

यह सचर कब तक है? जब तक उसे भौतिक सुखों की वांछनाएँ हैं, तब तक वह उस सचर आत्मा में रहता है कि, 'यह मैं हूँ'।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा जाता है कि अंदर जो बैठे हैं, वे तो

सचराचर हैं। यानी कि क्या ऐसा कहना चाहते हैं, 'जैसा बाहर है वैसा ही अंदर है?'

दादाश्री : हाँ! वह तो, जैसा बाहर है वैसा ही अंदर है, ऐसा कहने का भावार्थ क्या है? कि बाहर बहुत गहराई में मत उतरना। अंदर देख लो न, तो बाहर भी वैसा ही है।

सचल-अचल, दोनों एक-दूसरे के आधार से

प्रश्नकर्ता : सचल-अचल दोनों साथ में ही रहते हैं न?

दादाश्री : जहाँ पर अचल है, वहाँ पर सचल रहता ही है। यानी कि जहाँ सचल है वहाँ आत्मा है। किसी भी वस्तु में जहाँ सचल है तो समझना कि वहाँ पर आत्मा है। यह जो चौले का दाना होता है, उसमें कोई आत्मा दिखाई नहीं देता लेकिन रात को अगर उसे भिगो दें और बाँध दें, तो सुबह वह सचल लगने लगे तो समझना कि यहाँ आत्मा है। वह *लागणियाँ* दिखाता है जबकि यह (माइक) है न, छः महीने भिगोए रखो, फिर भी कोई *लागणी* नहीं दिखाता। अतः जहाँ पर आत्मा है वहाँ सचल भाग होता ही है। वह सचल भाग *लागणियाँ* दिखाता है।

प्रश्नकर्ता : सचल के आधार पर अचल है या अचल के आधार पर सचल है?

दादाश्री : वे दोनों एक-दूसरे के आधार पर हैं। सत्य के बेस (आधार) पर असत्य खड़ा है। यदि असत्य नहीं होता तो सत्य का नाश हो चुका होता। अतः असत्य है तो हमारा सत्य रहा हुआ है। असत्य की भी ज़रूरत है। यानी कि यह सचल-अचल है।

मूल आत्मा 'अचल', जीवात्मा 'सचल'

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा सचर है और आत्मा अचल है।

दादाश्री : जीव यानी मिकेनिकल चेतन, और दरअसल आत्मा,

वह आत्मा है। आत्मा के अलावा बाकी का सारा भाग सचर भाग है, मिकेनिकल है और शुद्धात्मा अचर है। शुद्धात्मा ज्ञायक स्वभाव में है और यह सचर अर्थात् मिकेनिकल बनेंगे, क्रियाकारी बनेंगे। यह मिकेनिकल आत्मा जीवित दिखाई ज़रूर देता है, मन में ऐसा लगता है कि यही जीव है, लेकिन वह जीव नहीं है। उस जीव की बात अगर समझ में आ जाए न, तो मनुष्य परमात्मा बन जाए। दरअसल आत्मा, वही शुद्धात्मा है, वही परमात्मा है और वह अचल है और यह बाकी का सारा आत्मा, वह सचर है, मिकेनिकल है। चर अर्थात् मिकेनिकल, यंत्रवत्, चंचल। विचर, चर, सारे शब्द मात्र मिकेनिकल हैं।

प्रश्नकर्ता : चर यानी मिकेनिकल, तो वह एक का दृष्टिबिंदु हुआ?

दादाश्री : नहीं, सभी का। चर यानी मिकेनिकल, सभी को ऐसा माने बिना कोई चारा ही नहीं है न! और विचर यानी और अधिक मिकेनिकल हो गया। सचर यानी जीव। जिसे तू अपनी जात (खुद) मानता है, वह तेरा मिकेनिकल पार्ट है और आत्मा अलग है, अचल है।

जन्म-मरण हैं सचर के, अज्ञान-आवरण के कारण

आप, 'मैं चंदू हूँ', ऐसा मानते हो न, वह मिकेनिकल चेतन है। यह वास्तविक चेतन नहीं है। मिकेनिकल चेतन कैसा होता है? सचर होता है। सचर अर्थात् दिन भर दखल-दखल-दखल। सोने के बाद भी साँस चलती ही रहती है। अंदर सबकुछ चलता ही रहता है अपना। पूरे दिन सचर ही, जब देखो तब नाड़ी चलती रहती है और नाड़ी बंद हो जाए तो कहता है, सचर चले गए। जन्म हुआ तब से लेकर मरने तक सचर और अंदर जो चेतन है, वह अचल है।

प्रश्नकर्ता : मृत्यु यानी कि मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार, अंतःकरण का निकल जाना, वह है?

दादाश्री : सचर। पंचेन्द्रियाँ और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, सबकुछ यहीं पर खत्म हो जाता है और कारण शरीर के साथ आत्मा खुद की पूरी वंशावली लेकर जाता है। क्योंकि आत्मा क्रोध-मान-माया-लोभ के आवरणों से दबा हुआ है, कारण स्वरूपी आवरण होते हैं। जब आवरण मुक्त हो जाता है तब सचराचर जगत् में व्याप्त हो जाता है (पूरे ब्रह्मांड में फैल जाता है)। जब तक आवरणों में है तब तक आवरणों के साथ ही जाना होता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा निकल जाए तब यह सब बंद हो जाता है?

दादाश्री : यदि आत्मा की उपस्थिति न हो तो सबकुछ बंद। आत्मा की वजह से ही यह सब है, वही परमात्मा है। अत: यह सब सचल से चल रहा है और अचल तो अंदर है ही, भगवान। भगवान इसमें फँस गए हैं। बात को समझेंगे तो निबेड़ा आएगा, वर्ना किसी भी कामकाज में निबेड़ा नहीं आएगा।

आवागमन अचल का, है सचल के कारण ही

प्रश्नकर्ता : आत्मा अचल है, तो एक देह में से दूसरी देह में क्यों जाता है?

दादाश्री : आत्मा अचल है, वह तो मूल स्वभाव की अपेक्षा से है। लेकिन अभी संसारी तौर पर सचराचर ही है, सचर और अचर दोनों ही है। अर्थात् अचल तो अचल ही है और जो सचर है, वह यह मिकेनिकल आत्मा है। वह यहाँ से किसी और योनि में जाता है, किसी और देह में। उस मिकेनिकल आत्मा की वजह से इस अचल को भी साथ में जाना पड़ता है।

जब तक 'उसे' मूल आत्मा के दर्शन नहीं हो जाते, उसे सम्यक् दर्शन नहीं हो जाता तब तक यहाँ पर आना पड़ता है। जब तक व्यवहार आत्मा को सत्य माना जाता है तब तक भटकना है और यदि वास्तविक आत्मा के दर्शन हो जाएँ, सम्यक्त्व हो जाए तो हल आ जाएगा।

भ्रांति उत्पन्न होने से खोया भान

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो अलग ही है अपने से, तो आत्मा को खुद का भान क्यों नहीं होता?

दादाश्री : आत्मा को नहीं, आपको नहीं होता है यह भान। ऐसा है कि आप खुद मिकेनिकल को ऐसा मानते हो कि, 'यह मैं हूँ'। इस मिकेनिकल में अभी तक मान्यता रखी कि, 'यह मैं ही हूँ', वह भूल थी। अब उस भूल को निकाल देना है।

'आपकी' जो 'रोंग बिलीफ' है, उससे 'मैं'पन का आरोप हुआ है कि, 'यह मैं हूँ'। जहाँ पर 'आप' नहीं हो वहाँ पर आरोपण किया गया है। इसमें *पोतापन* माना है और भ्रांति हो गई है। भ्रांति से यह खड़ा हो गया है। भ्रांति से मानते हो कि, 'यही मेरा चेतन है'। सचल आत्मा में 'मैं-पन' मानते हो, वह विकल्प है और कर्तापन मानते हो, वह भ्रांति कहलाती है।

यह सचल मिथ्या है, भ्रांति है। उसे भ्रांति उत्पन्न हो गई है, खुद ने की नहीं है, किसी ने करवाई नहीं है। यदि भ्रांति किसी ने करवाई होती तो उसे जोखिम आता। आपने यदि भ्रांति खड़ी की होती तो आप छोड़ पाते। भ्रांति खड़ी हो गई है। अब कैसे मुक्त होंगे? तो कहते हैं कि जो भ्रांति से मुक्त हो चुके हैं, उनके पास जाकर इसका रास्ता माँगें तो फिर मुक्त हो जाएँगे। यही रास्ता (तरीका) है इसका।

सचर में मुकाम से सुख-दुःख, अचर में मुकाम से स्व-सुख

प्रश्नकर्ता : आत्मा शुद्ध कहलाता है तो ये सभी आत्मा शुद्ध ही हैं न?

दादाश्री : हाँ, सभी में शुद्ध आत्मा।

प्रश्नकर्ता : सभी के शुद्ध हैं तो फिर किसी को दुःख, किसी को सुख, ऐसा सब होने का कारण क्या है?

दादाश्री : दो आत्मा हैं। अचर आत्मा शुद्ध है और सचर आत्मा अशुद्ध है। सचर में मुकाम है इसलिए सुख-दु:ख आते हैं, जब अचल में मुकाम हो जाएगा तब सुख-दु:ख नहीं आएँगे। अर्थात् सचर आत्मा यानी व्यवहार में जिसे आत्मा मानते हैं, वह है। वही दु:ख भुगतता है, वही अहंकार है। मूल आत्मा नहीं भुगतता। दरअसल आत्मा को दु:ख स्पर्श नहीं करते, बल्कि दु:ख भी सुख बन जाता है। अचल, वह होम डिपार्टमेन्ट है और सचर फॉरेन है। फॉरेन को होम माना है, उसी से दु:ख है। फॉरेन को होम मानता है इसलिए दु:ख आया है। अगर होम को होम माने तो सुख आ ही जाएगा।

प्रकृति आत्मा का अशुद्ध स्वरूप है

प्रश्नकर्ता : आत्मा शुद्ध है तो क्या आत्मा का अशुद्ध स्वरूप भी है? कौन सा?

दादाश्री : आत्मा का अशुद्ध स्वरूप अर्थात् यह जो प्रकृति स्वरूप है, वह आत्मा का अशुद्ध स्वरूप है। इस सचराचर में जो अचल है, वह पुरुष है और जो सचर है, वह प्रकृति है। अब, 'पुरुष' अचल ही है हमेशा के लिए। अभी भी अचल है और प्रकृति 'मिकेनिकल' है, इसलिए इसे चंचल कहा गया है। प्रकृति का यह 'मिकेनिकल'पन कभी छूटेगा ही नहीं।

आत्मा का स्वभाव निरंतर स्थिर ही है। वह चंचल हो सकता है क्या?

प्रश्नकर्ता : प्रकृति चंचल हो जाती है।

दादाश्री : हाँ, वह आत्मा चंचल नहीं हुआ है। वह जो आत्मा है, वह अचल है और यह व्यवहार आत्मा सचर है। अब यह जो सचर है, वह मिकेनिकल आत्मा है। यहाँ से, मुँह में खाना डालो तो चलेगा, वर्ना बंद हो जाएगा। वह आत्मा मिकेनिकल आत्मा कहलाता है, वह प्रकृति कहलाती है।

सभी धर्मों की पुस्तकें आत्मा का ज्ञान जानने के लिए लिखी गई हैं, लेकिन प्रकृति को जान तो आत्मा को जान सकेगा। यदि तेल और पानी इकट्ठे हो गए हों तो पानी को पानी समझ और अलग कर तो तेल को तू समझ जाएगा। इसलिए अब हम कहते हैं कि प्रकृति ज्ञान को समझो। यह जो चंचल भाग है, वह पूरा ही प्रकृति है। उसे तू समझ। चंचल में क्या-क्या आया? पाँच इन्द्रियाँ; नहीं देखना हो फिर भी आँखें देख लेती हैं, बांद्रा की खाड़ी आए तब नहीं सूँघना हो फिर भी नाक सूँघ लेती है। देह चंचल है, वह किस प्रकार से? सामने से अगर मोटर टकराने आए तो फट से एक तरफ हट जाता है। तब मन कुछ भी नहीं करता। मन चंचल है, चित्त चंचल है, इसलिए यहाँ पर बैठे हुए हो और यह (मन, चित्त) स्टेशन चला जाता है। बुद्धि भी चंचल है, स्त्री नहा रही हो तो नहीं देखना है, ऐसा कहता है, फिर भी बुद्धि ऐसा दिखा देती है। और यदि कोई ऐसा कहे कि, 'चंदूभाई आओ' तो एकदम छाती फुलाता है, वह अहंकार की चंचलता है।

दया, मान, अहंकार, शोक, हर्ष, सुख-दुःख, ये सभी द्वंद गुण हैं, ये सब प्रकृति के ही गुण हैं। यह प्राकृत धर्म है। प्रकृति अर्थात् चंचल विभाग, रिलेटिव विभाग है और आत्मा, पुरुष वह अचंचल है, रियल है। यदि पुरुष को जान लोगे तब आत्मज्ञान होगा, तब परमात्मा हो सकोगे।

अचेतन चंचल और उसके उस पार है चेतन अचंचल

प्रश्नकर्ता : चंचल अर्थात् क्या? इसकी विशेष स्पष्टता कीजिए, दादा।

दादाश्री : यह जो चंचल हो जाता है, वह तो पूरा ही मिकेनिकल आत्मा है। मिकेनिकल चंचल स्वभाव वाला है, निरंतर चंचल। सचर अर्थात् चंचल। इस शरीर के सभी भाग चंचल हैं। कोई साइन्टिस्ट इस शरीर में से चंचल भाग पूरी तरह से निकाल दे तब शुद्धात्मा, अचंचल

भाग रह जाएगा। पंचेन्द्रिय, मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार वगैरह सब चंचल हैं और जहाँ चंचल भाग होता है वहाँ पर शुद्धात्मा नहीं होता। चंचल भाग में नाम मात्र को भी आत्मा नहीं है, एक प्रतिशत भी आत्मा चंचल भाग में नहीं है। ये सभी पढ़ने-करने की क्रियाएँ तो चंचल भाग की हैं। यह चंचल भाग कितना बड़ा है, वह इन लोगों को दिखाई दे, ऐसा नहीं है। तन चंचल, मन चंचल, वाणी चंचल, बुद्धि चंचल, अहंकार चंचल, चित्त चंचल। यह चंचलता का पूरा गाँव है। एक तरफ अचल आत्मा है और दूसरी तरफ सचर। सचराचर जगत् है। आत्मा की उपस्थिति की वजह से चंचलता है और वह भी फिर कम्प्लीट है, ऑटोमैटिक है। यह तो ऐसा है कि एक गरारी खुलती है और दूसरी पर लिपटती जाती है और जब मोक्ष में जाता है तब आत्मा-अनात्मा, चेतन-अचेतन, दोनों अलग हो जाते हैं। गरारी पर नई डोरी नहीं लिपटती और पुरानी खुल जाती है, अर्थात् मोक्ष।

चल अर्थात् अस्थिर, जंगम। अचल अर्थात् स्थिर, वह स्थावर है। अंतःकरण तो चलता ही रहेगा। वह अस्थिर ही है। अवस्था तो अचेतन का गुण है और अचेतन चंचल है, मिकेनिकल है और उसके उस पार चेतन है। है तो सब अंदर ही अंदर, लेकिन जब ज्ञानी बताते हैं तब पता चलता है।

केवलज्ञानियों ने कैसा आत्मा देखा होगा? मूल आत्मा चेतन स्वरूप है। चेतन कभी भी खर्च नहीं होता और चेतन खत्म नहीं होता, चेतन का नाश नहीं होता। और फिर वह चेतन कैसे स्वभाव वाला है? अचल स्वभाव वाला है। दरअसल आत्मा अचल है, बिल्कुल भी चंचल नहीं है। जो कभी भी चंचल नहीं होता, उसे कहते हैं आत्मा।

सचर है परछाई स्वरूप, अचल है सनातन

यह पूरी दुनिया जिसे आत्मा समझती है, वह आत्मा है ही नहीं। वह आत्मा की परछाई है। अर्थात् एक यह शुद्धात्मा है और दूसरा परछाई की तरह खड़ा हो गया है। परछाई पड़ती है न, इंसान के पीछे?

जब सूर्यनारायण आते हैं तब परछाई उत्पन्न होती है या नहीं? उसी प्रकार परछाई की तरह यह आत्मा उत्पन्न हो गया है, जिसे वह खुद का स्वरूप मानता है। जैसे एक चिड़िया दर्पण पर चोंच मारती है, उस प्रकार की यह भ्रमणा उत्पन्न हो गई है। बाकी, मूल आत्मा तो शुद्ध ही है निरंतर। लोग परछाई को पकड़ते हैं। वास्तविक आत्मा को पकड़ें न, तो कल्याण हो जाएगा! अतः अपना स्वरूप कैसा कहलाता है? सचराचर कहलाता है। सचर, वह परछाई है और अचल, आत्मा है। क्रिया में आत्मा नहीं है। जगत् जिसे आत्मा मानता है, वहाँ पर आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसे ज़रा स्पष्ट कीजिए न।

दादाश्री : यानी कि यह जो परछाई दिखाई देती है, यह मिकेनिकल आत्मा है। उसमें यदि भोजन डालो तो जीवित रहेगा, वर्ना खत्म हो जाएगा। वास्तविक आत्मा को कुछ चाहिए ही नहीं, उसे कुछ होता ही नहीं है, सनातन चीज़ है। जबकि यह मिकेनिकल, एडजस्टमेन्ट है। अगर दस-पंद्रह दिन तक खाना नहीं दिया जाए, पानी नहीं दिया जाए तो भाई चले जाएँगे। अरे! अगर दो घंटे तक नाक दबाकर रखी जाए न, तो भाई चले जाएँगे। तो इसे लोग आत्मा मानते हैं। आत्मा जाता नहीं है, मरता नहीं है। जो सनातन वस्तु है, उसे कुछ भी नहीं होता। लेकिन यह जो दिखाई देता है, वह आत्मा नहीं है, आत्मा अंदर है और यह जो सचर भाग, चंचल भाग है, वह आत्मा नहीं है। वह आत्मा की परछाई है, और आत्मा तो दरअसल आत्मा है, अचर है। उसमें कोई चेन्ज होता ही नहीं है। आत्मा में यदि चेन्ज करना हो फिर भी नहीं होगा, वह चेन्जलेस (बदला नहीं जा सकता) है।

अचल आत्मा अक्रिय, सचल आत्मा सक्रिय

आत्मा दो प्रकार के हैं ; पहला है अकर्ता आत्मा, अक्रिय आत्मा और दूसरा है सक्रिय आत्मा। सक्रिय आत्मा मिकेनिकल आत्मा है। मूल आत्मा के प्रभाव से यह मिकेनिकल आत्मा चल रहा है। आत्मा

खुद इसमें कर्ता नहीं है। ज़रा सा भी नहीं किया है। करने का गुण ही नहीं है उसमें। अक्रिय स्वभाव वाला ही है। यह जो व्यवहारिक आत्मा है, यह मिकेनिकल है, और मिकेनिकल आत्मा में अहंकार है। अहंकार सचल को हर प्रकार से नहीं जान सकता। आत्मा खुद अचल है, वह सचल को हर प्रकार से जानता है।

दरअसल आत्मा के आधार पर मिकेनिकल आत्मा है। यह जो मिकेनिकल आत्मा है, यह चंचल कहलाता है, चलायमान कहलाता है। यह जो ऐसा मानता है और कहता कि, 'मैं पापी हूँ', वह मिकेनिकल आत्मा है। चंचल विभाग वाला जो संसार को चलाता है, संसार में ही रचा-बसा रहता है, वह आत्मा, वह पूरा मिकेनिकल चेतन है। उसे खुद को नहीं चलाना हो फिर भी मशीनरी चलती रहती है। यह मिकेनिकल आत्मा विज्ञान से उत्पन्न हो गया है।

आत्मा अचल, खुद अचल और 'मैं चंदू', वह सचल

प्रश्नकर्ता : सचराचर सृष्टि में मनुष्य का मूल्य क्या है?

दादाश्री : यहाँ (सचराचर सृष्टि में) आने के बाद उसे खुद का भान हो जाए तो मूल्य है, नहीं तो कुछ भी नहीं। यहाँ आने के बाद में मार्ग मिल जाए और अक्रिय मार्ग को प्राप्त कर ले तो मोक्ष होगा। सचर तो आपकी बाह्य लिमिट (सीमा) है, बाह्य भाव की लिमिट है। वह आपकी रोंग बिलीफ से उत्पन्न हुआ है।

प्रश्नकर्ता : और उसमें हम रचे-बसे रहते हैं।

दादाश्री : उस चंचल में खुद तन्मयाकार हो जाता है इसलिए स्पंदन होते हैं।

प्रश्नकर्ता : चंचल और तन्मयाकार होने वाले व्यक्ति विशेष, दोनों अलग हैं?

दादाश्री : जो तन्मयाकार होता है, वह मूल स्वरूप से अचल है। वह स्वभाव से अचल है और यह चंचल, सचर है। यानी कि

चंदूभाई सचर हैं और मूल स्वरूप में आप खुद अचल हो और बीच में वह, यह जो करता है न, वह आपकी रोंग बिलीफ, इगोइज़म है। मात्र उतना ही भान हो जाए कि अचल भाग में आत्मा है तो देहाभिमान का छींटा भी नहीं रहेगा, सर्वसंग परित्याग हो जाएगा।

चंदूभाई (नामधारी, देहधारी) सचल है और 'आप' अचल हो। अब, जब तक आपकी सचल की मान्यता है तब तक आप गाफ़िल रहते हो और अचल की मान्यता, अगर आपकी बिलीफ बदल जाए तो एक्ज़ेक्ट जगह पर आ जाओगे। उसे सम्यक्त्व कहा जाता है। सचल में आपकी जो बिलीफ है, उसे रोंग बिलीफ कहा जाता है, मिथ्यात्व कहा जाता है और यदि बिलीफ अचल में आ जाए कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो वह राइट बिलीफ है, उसे सम्यक् दर्शन कहते हैं।

मान्यता टूटे सचर की, तो पाएगा भेद अचर का

सचराचर जगत् में जो अचर का भेद पा जाएगा, वह सचर का भी भेद पा लेगा, और जो अचर का भेद नहीं पाता, वह सचर का भेद भी नहीं पा सकता। जब तक सचर में रहेगा तब तक अचल प्राप्त नहीं कर सकेगा और अचल की प्राप्ति के बाद में सचल रहेगा ही नहीं। जब तक तू सचल है तब तक भटकते रहना है और यदि तू अचल हो गया तो बात ही खत्म हो गई (मूल वस्तु प्राप्त हो गई)।

वास्तव में आत्मा खुद अचल ही है और आपकी यह मान्यता सचर है। अतः जब तक मिकेनिकल की *भजना* (उस रूप होना) करोगे तब तक मिकेनिकल रहोगे। जब दरअसल की *भजना* करोगे तब दरअसल हो जाओगे और तभी इस मिकेनिकल आत्मा में कॉज़ेज़ बंद हो जाएँगे। 'मैं कौन हूँ', ऐसा ज़रा सा भान हो जाए तो तुरंत ही उस तरफ मुड़ जाएगा, फिर ये सारे कॉज़ेज़ खत्म हो जाएँगे। यदि सचल खत्म हो जाए तो फिर अचल हो जाएगा। फिर मोक्ष में चला जाएगा। लेकिन यह समझ में आए, तब न? यह साइन्स समझ में आए, तब न? किस तरह से चार्ज होता है? किस तरह से डिस्चार्ज

होता है? जब तक सचर की मान्यता नहीं टूटती तब तक अचल प्राप्त नहीं हो सकता। और जब अचल प्राप्त हो जाए, उसके बाद मुक्ति हाथ में आ जाती है और तब सचराचर व्याप्त हो जाता है।

वास्तविक आत्मा अचल है, मोक्ष में ही है। आत्मा मोक्षधाम, मोक्ष स्वरूप ही है। इसीलिए हमें उस स्वरूप को प्राप्त करना है, खुद के उस स्वरूप को, लेकिन उसका ज्ञान नहीं है। किस प्रकार से एकाकार होना, वह ज्ञान नहीं है, लोग उसी उलझन में पड़े हुए हैं। ये दोनों ही अलग चीज़ें हैं, अलग तरह से चलती हैं, जुदापन का अनुभव भी बरतता है लेकिन भान नहीं है। उस भान में लाने के लिए ही तो हम ज्ञान देते हैं। आत्मा ऐसी वस्तु है जो ज्ञानी से ही प्राप्त हो सकती है। अतः ज्ञानी पुरुष भान करवा देते हैं, ज्ञान करवा देते हैं और समझ से उसे फिट कर देते हैं। समझ से खुद के स्वरूप में समा जाता है फिर। देहादि से आत्मा भिन्न है। देहादि अर्थात् समस्त चंचल भाग। चंचल भाग को निकाल देने पर अचल आत्मा मिलेगा।

समझना है सचल, लेकिन आराधना करनी है सिर्फ अचल की ही

प्रश्नकर्ता : दादा, ये अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय आत्मा है। इन सभी को शुद्ध करे, वैसी समझ किस प्रकार से प्राप्त करें?

दादाश्री : अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ये सभी जो विभाग बनाए गए हैं, ये डिटेल्स में (विस्तार में) हैं। ऐसी डिटेल्स में जाने की ज़रूरत नहीं है। डिटेल्स तो आपके समझने के लिए दी गई हैं कि ऐसा सब है। आत्मा अचल है और बाकी का सब अन्नमय, प्राणमय वगैरह सचल में आ गया। इतने सारे विभाग जो किए गए हैं डिटेल्स में, वे तो समझने के लिए देते हैं। आराधना करने के लिए नहीं दिए हैं। ऐसा है कि यदि इनमें से एक-एक को हटाऊँ न, तो इसका अंत ही नहीं आएगा। इस चंचल को स्थिर करने में तो तेरा टाइम बेकार

जाता है और इगोइज़्म बढ़ता जाता है। आज यह पेपर खुल गया न! चौबीसों तीर्थंकरों का पेपर खुल गया।

अचल को लक्ष में रखने पर खुद बनेगा अचल

प्रश्नकर्ता : सचल में से अचल में जाने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अचल तो *लक्ष* (जागृति) में ही रहना चाहिए। सचराचर द्वारा क्या कहना चाहते हैं? चाहे तू सचर में है लेकिन तू अचल है, इतना तेरे *लक्ष* में रख और तू इसे अचल करने की कोशिश मत करना। वर्ना फिर भी यह होगा तो नहीं। यह तो स्वभाव से ही सचल है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि जो अचर करने की कोशिश करता है और अचर करने में जो सफल हो जाता है, वह ऐसा कहता है कि, 'मैं कर रहा हूँ', उसकी वह बात भी गलत है!

दादाश्री : वे सब बातें गलत हैं, अहंकार ही है न वह तो!

प्रश्नकर्ता : उसने पूर्व जन्म में ऐसे भाव किए होंगे, उसी के एविडेन्स से हुआ है न, यह?

दादाश्री : हाँ, उसी से हुआ है।

प्रश्नकर्ता : और वह ऐसा कहता है कि, 'मैंने किया'।

दादाश्री : हाँ, और फिर वह है ग्रहित मिथ्यात्व।

जैनों ने उसे व्यवहार-निश्चय कहा है, कि निश्चय में तू कौन है? 'शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* में रखकर, तू अपना व्यवहार चला। यानी कि, 'मैं अचल हूँ' ऐसा *लक्ष* में रखकर तू सचल का अनुभव कर। जहाँ अचलता नहीं लगे, वहाँ पर कहना कि, 'यह मेरा नहीं है'। जहाँ पर चंचलता हो जाए, वहाँ पर समझना कि, 'यह मेरा नहीं है', ऐसे

करते-करते जब अचलता का स्वभाव प्राप्त हो जाएगा तब तू अचल हो जाएगा, ऐसा कहते हैं। सचराचर दो ही हैं न! दो बताए हैं न, ज़्यादा कहाँ बताए हैं?

यानी कि यदि अचल को पहचान जाए तो सचर में जो गलतियाँ होंगी, वे सब दिखाई देंगी। अचर को पहचान जाएगा तो, अचर अलग है, ऐसा पता चल जाएगा।

यह चंदूभाई तो मिकेनिकल आत्मा है, भ्रांति से यह आपका माना हुआ आत्मा है। जब आपकी यह मान्यता छूट जाएगी तो आप अचर ही हो। मान्यता छूटना, यह तो ऐसा है कि विज्ञान से छूट सकती है। यों ही छूट जाए, ऐसा नहीं है। इस मान्यता का छूटना आसान नहीं है।

अभी अगर कोई चंदूभाई को गालियाँ दे तो आप चिढ़ जाते हो। यानी कि आप आत्मा हुए नहीं हो। यदि आत्मा हो जाओगे तो आप चंदू की चिट्ठी नहीं लोगे। आत्मा बनने के बाद में चंदू की चिट्ठी लोगे क्या? यानी कि अभी तक आप चंदू हो इसलिए इस चंदू की चिट्ठी ले लेते हो। जब आत्मा हो जाओगे तब अगर कोई चंदू को गालियाँ देगा तब कहोगे कि, 'भाई, चंदू ने आपका क्या बिगाड़ा है?' तो कहेगा 'ऐसा'। तब आप कहोगे, 'हाँ, ठीक है'। अगर चंदू आपसे कहे कि, 'देखो, ये गालियाँ दे रहा है', तब आप कहना कि, 'भाई, तूने कुछ कहा होगा इसीलिए ये ऐसा कर रहे होंगे'। यानी कि 'आपको' उस मूल स्वरूप, अचल स्वरूप होना पड़ेगा। फिर अचल हो जाओगे।

प्रश्नकर्ता : तो इसी तरह सचल में से अचल हो सकेगा?

दादाश्री : सचल है ही यह, और वह खुद अचल ही है। जब उसे यह भान होगा कि उसकी यह मान्यता गलत है, और सही मान्यता प्रकट होगी तब वह अचल हो जाएगा। यह सचल वापस अचल में मिल जाएगा, एक हो जाएगा।

नहीं जानता है, इसलिए करने जाता है अस्थिर को स्थिर

ये लोग मिकेनिकल आत्मा को स्थिर करने के लिए ध्यान करते हैं। लेकिन रियल आत्मा स्वभाव से ही स्थिर है। मिकेनिकल आत्मा को स्थिर करने के लिए क्रोध-मान-माया-लोभ को निकालना चाहते हैं। अब लोग प्राणायाम करके, पद्मासन लगाकर, इन्द्रियों को रोककर सचर को स्थिर करना चाहते हैं लेकिन वैसा हो नहीं सकता। क्योंकि वह समझता नहीं है इसे। वह ऐसा नहीं जानता कि, 'यह सचर है'। वह यही जानता है कि इस आत्मा को ही स्थिर करना है। यह आत्मा नहीं है। यह तो व्यवहार में रहा हुआ आत्मा है। मूल आत्मा तो स्वयं स्थिर ही है। 'तू' खुद उस 'आत्मा' को जान। यह मिकेनिकल स्थिर नहीं हो सकेगा। कुछ समय के लिए स्थिर हो जाएगा और फिर से अस्थिर हो ही जाएगा। इसका मूल स्वभाव ही मिकेनिकल है!

यह व्यवहारिक आत्मा स्थिर नहीं हो सकता, और तू 'खुद' स्थिर ही है। अगर भान हो जाए तो! और अगर भान (उत्पन्न) नहीं होता है तो उसे स्थिरता नहीं आती। यदि ऐसा भान प्रकट हो जाए कि, 'मैं खुद आत्मा ही हूँ' तो 'खुद' स्थिर ही है और यह जो चंचल है, वह कभी भी स्थिर नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे स्थिर करने जाता है, वह 'मिकेनिकल' चेतन है। वास्तव में वह 'एक्ज़ेक्ट' चेतन नहीं है। 'तू' 'मूल स्वरूप' को ढूँढ निकाल। 'मूल स्वरूप' स्थिर ही है!

प्रश्नकर्ता : आत्मा स्थिर ही है तो अन्य कौन सा भाग अस्थिर है?

दादाश्री : बाकी का सारा ही, आत्मा के अलावा। आत्मा स्थिर है और बाकी का सारा स्पंदन वाला अस्थिर है। वह गति करता ही रहता है, गति करता ही रहता है। कहते हैं, 'ऐसे एकाग्र हो जाओ', लेकिन वह कैसे हो पाएगा? कुछ देर पाँच-दस मिनट, आधा घंटा या घंटे के लिए रहेगा, ज़्यादा कैसे रह पाएगा? मूलतः यह स्वभाव से ही अस्थिर है। यह जो अस्थिर होता है और अस्थिर दिखाई देता है,

वह आत्मा है ही नहीं। आत्मा को स्थिर करने की ज़रूरत ही नहीं है। आत्मा स्थिर ही है। यह तो, लोग नासमझी से ऐसा मान बैठे हैं कि अब आत्मा को स्थिर करना है। कहते हैं कि, 'यह चंचल है और मैं स्थिर कर दूँगा तो मेरा आत्मा पूर्ण हो जाएगा'। कहते हैं कि चंचल आत्मा को स्थिर करो। लेकिन इस तरह तो किसी का कभी हुआ ही नहीं है। शायद कुछ समय के लिए इससे फायदा हो सकता है।

स्थिर तो थोड़ा-बहुत अभ्यास करने के लिए ही करना पड़ता है, अस्थिरता मिटाने के लिए। बाकी वह हमेशा के लिए स्थिर नहीं हो सकता, यह तो सचल है।

अस्थिर यदि टेम्परेरिली स्थिर हो जाए तो भी बरतता है सुख

प्रश्नकर्ता : उसका स्वभाव चंचलता वाला ही है।

दादाश्री : उसका स्वभाव ही चंचलता वाला है लेकिन जब अतिशय बढ़ जाता है न, तब कुछ देर के लिए बैठने पर ज़रा स्थिर हो जाता है, इस तरह नॉर्मेलिटी में आता है। लेकिन हमेशा के लिए स्थिर नहीं होता। अस्थिरता वाले में स्थिर इतना ही करना है कि अगर हमें ज़रा सो जाना हो, तो हम क्या कहते हैं कि, 'ज़रा बाहर के विचार बंद करके बैठो', तब फिर नींद आती है। जब हम सो जाते हैं, उस समय हमें ऐसा सब नहीं होता कि भाई, 'अब बातें रहने दो अभी, मुझे सो जाना है।' उसी तरह, स्थिर कितना करना है? इतना ही स्थिर करना है। यह कहीं हमेशा के लिए स्थिर हो सकता है? यह चंचल ही है।

अज्ञानी भी पूरी रात सो जाए और यदि उसके अंदर का एक भी परमाणु नहीं उछले तो उसे बहुत सुख बरतता है। क्योंकि बाहर का चंचल भाग अचल रहा। अंदर तो अचल है ही। खुद अचल है और चंचल भाग जितना अचल रहा उतना अधिक सुख रहता है। यदि ज़्यादा चंचल है तो कम सुख होगा, ज्ञान में इससे कुछ भी फर्क नहीं

पड़ता। अचल का तो पूरी दुनिया को भान ही नहीं है। अचल आत्मा को तो सिर्फ ज्ञानी पुरुष ने ही देखा है और कभी यदि कोई ज्ञानी हों तो उन्हें देखने से अनादिकाल से जो बेहिसाब चंचलता उत्पन्न हुई हैं, वह चंचलता धीरे-धीरे-धीरे, शांत होते, होते, होते सहजता उत्पन्न हो जाती है, (ज्ञानी को) देखने से।

प्रश्नकर्ता : तो यह क्रमिक मार्ग का जो बेस (आधार) है, वह सचर को अचर करने जाता है तो वह बेस गलत है? अवैज्ञानिक है?

दादाश्री : वे यह जानते ही नहीं हैं कि यह सचर है! वे ऐसा जानते हैं कि यही आत्मा है। इसलिए उसे स्थिर करने जाते हैं। इसी को हमेशा के लिए स्थिर करने जाते हैं लेकिन वह तो स्थिर नहीं हो पाता न! इसलिए मन उचाट रहता है। जितनी देर तक सामायिक करते हैं उतनी देर तक स्थिरता महसूस होती है। इस पर से वे क्या कहना चाहते हैं कि बाहर पूरा स्थिर कर और उसके बाद जो सुख आता है, वह आत्मा का है, ऐसा मानना। उसके बाद फिर मोह नहीं रहेगा। केवल आत्मा का सुख ही चखना है ऐसा रहा करेगा।

ज्ञान चेतना अचल, कर्म चेतना व कर्मफल चेतना चंचल

भगवान ने दो प्रकार की चेतना के बारे में बताया है। सचराचर, एक सचर और दूसरा अचर। भगवान में (आत्मा में) अचर है और आप में (चंदूभाई में) सचर है। सचर में से अचर नहीं हो सकता और अचर में से सचर नहीं हो सकता। शुद्धात्मा है, वह ज्ञान चेतना है, बाकी का सब कर्म चेतना है और कर्मफल चेतना है। जहाँ वह खुद नहीं करता, फिर भी ऐसा मानता है कि, 'यह मैं कर रहा हूँ, मैं चेतन हूँ और ऐसा कर रहा हूँ', वही कर्म चेतना है। पूरा जगत् (मनुष्य) कर्म चेतना से चल रहा है और मनुष्य के अलावा अन्य जीव पेड़ वगैरह कर्मफल चेतना से चलते हैं। मनुष्य में कर्म चेतना और कर्मफल चेतना दोनों ही होते हैं। इसमें वास्तविक चेतन क्या है? शुद्धात्मा, शुद्ध

चेतन, वह अचल है, अक्रिय है और कर्म चेतना व कर्मफल चेतना, वे चंचल हैं, नाम मात्र को भी चेतन नहीं है। जहाँ चंचल है वहाँ चेतन नहीं हो सकता। जो चार्ज होता है और डिस्चार्ज होता है, उसमें चेतन नहीं है, उसे सचर कहेंगे, और शुद्ध चेतन, अचंचल भाग को अचल कहा जाता है।

दर्पण का उदाहरण देकर, खोला अचल का भेद

हम अचल ही हैं लेकिन अपनी नासमझी से चंचलता उत्पन्न हो गई है कि, 'यह कौन आया'? जब हम उसे ऐसे करने जाते हैं तब वह भी वैसा ही करने जाता है, उसे कहते हैं जगत्। यह जगत् दर्पण जैसा हो गया है। ये आँखें ऐसी हैं न, दर्पण में से ही देखती हैं और खुद की ही सारी प्रक्रियाएँ दिखाई देती हैं। खुद, खुद की ही प्रक्रियाओं में फँसा है, वर्ना कोई उसका नाम भी लेने वाला नहीं है। इसलिए हमें अचल कैसे होना है, वह तरीका जान लेना चाहिए। इसका तरीका तो पता चलता है, यहाँ दर्पण में तो पता चलता है, उसका अनुभव होता है लेकिन संसार में अनुभव नहीं हो पाता। यह भी दर्पण जैसा ही उदाहरण है। जिस तरह दर्पण के सामने होता है न, लोग जैसे-जैसे कूदते हैं वैसे-वैसे दर्पण में भी वह खुद ज़्यादा से ज़्यादा कूदता हुआ दिखाई देता है और अगर हम बिल्कुल स्थिर हो जाएँ तो वह स्थिर हो जाता है, उसके बाद कुछ भी नहीं। अगर हम अचल हो जाएँ तो वह अचल हो ही जाएगा। यह जो सचर है, वह अचल परिणामी हो जाए, ऐसे भाव में आ जाए, और जिस प्रकार दर्पण के सामने हम चेष्टा नहीं करें तो दृश्य भी कुछ चेष्टा नहीं करेगा, उसी तरह से यदि कभी इसे अचल परिणामी बना दें तो अचल ही होता जाएगा। जिस प्रकार दर्पण के सामने खुद चेष्टा करने से वह सचल परिणामी बन जाता है। चेष्टा नहीं करे तो खुद अचल परिणामी बन जाता है। लेकिन वह परमानेन्ट नहीं है, वह रिलेटिव अचल है। यह जो सचर है, यह रिलेटिव अचल बन जाएगा। हाँ, ये दृश्य तो विनाशी हैं। यदि आप आत्मा रूप बन गए तो सबकुछ गॉन।

'स्वभाव से तू वस्तु को ढूँढ' कहकर, कर दिया कमाल दादा ने

इस जगत् में अचल की कोई नकल नहीं कर सकता। जिसकी नकल हो सकती है, वह सारा चंचल ही है। पूरे जगत् में चंचल की आराधना है, रिलेटिव की आराधना है। इस वाणी की नकल हो सकती है टेपरिकॉर्डर से, तो यह चंचल कही जाएगी। वे चेतन के, अचल के गुण नहीं हैं। आत्मा का स्वभाव अचल है। ये लोग अचल अर्थात् जो चलता-फिरता नहीं है, उसे अचल समझते हैं। यानी कि वे क्रिया को अचल कहते हैं लेकिन अचल को तो शुद्ध दृष्टि से देख!

प्रश्नकर्ता : अत: जहाँ पर क्रिया है वहाँ आत्मा नहीं है और जहाँ आत्मा नहीं है, वहाँ पर क्रिया है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : जहाँ क्रिया आई, वहाँ पर मिकेनिकल है। आत्मा में क्रिया नहीं है। वह तो अक्रिय है, ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी है और यह चंचल वस्तु क्रियाशील है। उसका चंचलता वाला स्वभाव कभी भी नहीं जाता और आत्मा का अचलता वाला स्वभाव नहीं जाता, चेन्जलेस। चंचल, अचल नहीं बन सकता और अचल, चंचल नहीं बन सकता। दोनों अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं। जिसे चंचल कहा जाता है, वह अगर खुद के स्वरूप को अचल करने जाए तो नहीं हो सकेगा। अचल का आलंबन लेना पड़ेगा। लोग सचर को अचल करने जाते हैं। जबकि यह उसका स्वभाव है ही नहीं। अचल, अचल स्वभाव वाला है। इसलिए तू वस्तु को स्वभाव से ढूँढ।

प्रश्नकर्ता : दादा की सब से बड़ी खोज यह है कि ऐसे स्वभाव से वस्तु को ढूँढने की बात अभी तक किसी ने नहीं बताई।

दादाश्री : वह है तो सही, लेकिन उसका पता नहीं चल पाता। ऐसा तो भान ही नहीं है। ऐसा सारा भान कहाँ से लाएँगे ये? हमारे बताने के बाद तो उसे यह पता चलता है कि यह ऐसा है! यह तो साइन्टिफिक है। यह तो पूरा साइन्स है। यह कोई ऐसा-वैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा अचल है तो फिर आचार, विचार और उच्चार, इन तीनों चलों से आत्मा चलायमान कैसे हो जाता है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो अचल है लेकिन ये तीन चल हैं न, मन-वचन-काया, इन्हें लेकर आत्मा कंपायमान होता है। अज्ञानी को तो शुद्धात्मा प्राप्त ही नहीं हुआ है और प्रतिष्ठित आत्मा में ही है। इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा चर बन जाता है।

चंचलता बंद होने पर उत्पन्न होता है अचलता का स्वाद

अपने महात्माओं को इन तीन चलों से नुकसान नहीं होता लेकिन यदि जागृति नहीं रखेंगे तो खुद के सुख में रुकावट आएगी।

यदि बाहर की चंचलता कम कर देंगे न, तो तुरंत ही अचलता का सही स्वाद आएगा। स्वाद आता ज़रूर है लेकिन चंचलता की वजह से उसका पता नहीं चल पाता। आत्मा का स्वभाव अचल है। अब, चंचल दिन भर पूरा हिलता ही रहता है, हिलता ही रहता है। अंदर स्वाद तो आता है लेकिन हिलता रहता है इसलिए आपको क्या पता चल पाएगा?

प्रश्नकर्ता : पता नहीं चलेगा।

दादाश्री : यदि आपने मुँह में जलेबी रखी हो और चित्त कहीं गया हो, किसी जगह पर, तो जलेबी का स्वाद भी पता नहीं चलेगा आपको। तो फिर आत्मा के मीठे स्वाद का पता कैसे चलेगा? जब वह स्वाद आता है तब पता चलता है कि, 'ओहोहो! इन्द्रियों की सुख की तुलना में यह अतीन्द्रिय सुख तो बहुत उत्तम वस्तु है।' उसे ऐसा विश्वास हो जाता है कि, 'यह अतीन्द्रिय सुख है', डिसिज़न आ जाता है। आत्मा में से ही सुख आता है, ऐसा डिसिज़न आ जाता है। यह सुख जलेबी में से नहीं आया, न ही विषयों में से, ऐसा अनुभव हो जाता है न? अंदर चंचलता बंद होते ही अचलता का स्वाद उत्पन्न होता है।

पुद्गल (जो पूरण और गलन होता है) स्वभाव चंचल है और आत्मा का अचल है। जितनी स्थिरता बढ़ती है उतना ही आत्मा की तरफ जाता है और जितनी चंचलता बढ़ती है उतना ही *पुद्गल* की तरफ जाता है।

सचर को देखने-जानने वाला ज्ञाता-द्रष्टा अचल

प्रश्नकर्ता : आत्मा चेतन है तो चेतन शब्द का अर्थ क्या है? चेतन का मतलब ही है चलता-फिरता हुआ, और आत्मा को अचल कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : यों तो ये बादल भी चलते हैं न! लोगों ने मान लिया है कि यह चलता-फिरता हुआ ही चेतन है। चेतन का मतलब ही है ज्ञान-दर्शन। चेतन कुछ भी नहीं करता है। सिर्फ जानने और देखने की क्रिया, ये दो ही क्रियाएँ उसकी हैं।

प्रश्नकर्ता : एक सूत्र में आपने ऐसा कहा है कि, 'जो अस्थिर है, उसे देखने में मज़ा है, स्थिर को देखने में क्या है?'

दादाश्री : अस्थिर को ही देखना है। जो अस्थिर हैं, वे सभी ज्ञेय हैं और जो स्थिर है, वह ज्ञाता है।

प्रश्नकर्ता : अब अस्थिर में जो अवस्थित होता है, वह अहंकार ही है न?

दादाश्री : वह अहंकार तो एक्स्ट्रीम पर चला गया, ऐसा कहा जाएगा। अस्थिर में रुक जाने जैसा नहीं है।

हर क्षण जगत् घूमता ही रहता है। आत्मा खुद स्थिर है और बाकी सब अस्थिर है और अस्थिर को देखना है। स्थिर को नहीं देखना है। अस्थिर को देखने में मज़ा है। एक के बाद एक देखते ही रहना है। आत्मा अचर है और जगत् सचर है। आप अचर हो और चंदूभाई सचर हैं। जो अचर है, वह सचर को देखता रहता है,

सभी कुछ देखता रहता है। सिर्फ इसी को नहीं, सभी कुछ। जो भी आए, उसे देखता ही रहे, उसे कहते हैं अचल। अचलता में ही आनंद है। आप ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आ गए हो। अब तो सबकुछ व्यवस्थित चलाएगा। आप कढ़ी बनाने रखते हो तो वह व्यवस्थित के संयोगों से रख पाते हो और कढ़ी बन जाए तो वह भी व्यवस्थित के संयोगों से है और यदि न बन पाए तो वह भी व्यवस्थित के संयोगों से है। इसमें आप ज्ञाता-द्रष्टा हो। बनाना शुरू करने से लेकर खत्म होने तक आप ज्ञाता-द्रष्टा हो। इसमें आपका अन्य कोई स्वभाव है ही नहीं। ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी, और इस पड़ोसी का स्वभाव क्या है? भोजन खाना, काम करना, वर्किंग पूरा मशीनरी, मिकेनिकल सबकुछ करता है। वह पूरा ही चंचल भाग है। जो चंचल भाग है, वही अनात्मा है और अचल ही आत्म भाग है। चंचल लघु-गुरु होता रहता है लेकिन आत्मा अगुरु-लघु स्वभाव वाला है। चंचल पूरा ही ज्ञेय है और अचल ज्ञाता है। ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध है, अन्य कोई भी संबंध नहीं है। खुद की गुफा में बैठना है। होम डिपार्टमेन्ट में कोई दिक्कत नहीं है। उसके बाद फॉरेन में क्या होता है, वही देखना और जानना है।

प्रज्ञाभाव से होगा दरअसल आत्मा का अनुभव

यह पूरा ही जगत् चंचल भाग से चल रहा है। सिर्फ एक प्रज्ञाभाव ही ऐसा है कि जिसमें सीढ़ी या सोपान नहीं चढ़ने पड़ते, लेकिन सीधे ही ऊपर पहुँच जाते हैं। प्रज्ञाभाव ऐसा भाव है जो स्थायी रह सकता है। इसके अलावा के जो भाव हैं, वे भावाभाव माने जाते हैं और वे भी चंचल भाग में माने जाते हैं, चंचल भाग में आते हैं। प्रज्ञाभाव को आत्मभाव कहा जाता है।

पूरी दुनिया जिसमें है, वह तो सपोज़िशन (माना हुआ) आत्मा है। क्रमिक मार्ग में लोगों द्वारा माना हुआ आत्मा अर्थात् सविकल्प आत्मा, और दरअसल आत्मा में मूलभूत अंतर है। सपोज़्ड आत्मा में

आत्मा है ही नहीं। सपोज़्ड आत्मा में आत्मा का अनुभव करना, वह तो चंचल भाग में आत्मा का अनुभव हुआ, उसे वास्तविक अनुभव नहीं कहेंगे। *लक्ष,* दरअसल-आत्मा का होता है लेकिन अनुभव चंचल-आत्मा का ही रहता है। दरअसल-आत्मा का अनुभव ही वास्तविक अनुभव है। हमने तो आपको दरअसल-आत्मा का *लक्ष* दिया है। जो *लक्ष* दिया है, वह निश्चय-आत्मा का है। उस *लक्ष* का लेवल जब अनुभव के लेवल तक पहुँचेगा तब, भरे हुए चंचल भाग की वजह से बरतने वाले चंचल आत्मानुभव छूटने के बाद दरअसल आत्मा का अनुभव होगा।

[खंड - 2]
आत्मा के ज्ञान-दर्शन के प्रकार

[1]
ज्ञान-अज्ञान

प्रकाश मुड़े 'उल्टा' तो अज्ञान और 'सीधा' तो ज्ञान

प्रश्नकर्ता : ज्ञान क्या है?

दादाश्री : जहाँ जीव है, वहाँ आत्मा है और जहाँ आत्मा है वहाँ ज्ञान तो है ही। ज्ञान अर्थात् प्रकाश।

प्रश्नकर्ता : प्रकाश नहीं, ज्ञान यानी मेरी मान्यता ऐसी है कि जानपना।

दादाश्री : हाँ, तो आप शब्दों के उसमें (झंझट में) मत पड़ना, यह वही का वही है। ज्ञान अर्थात् जानना, प्रकाश। लेकिन मैं आपको, 'यह प्रकाश है', इस तरह से समझा रहा हूँ, इस तरह से समझ लो न, एक बार। जानने का तो बहुत तरह का है। ज्ञान अर्थात् प्रकाश है। जीव मात्र में प्रकाश है। फिर भी हम क्या कहते हैं कि यह अज्ञान है। यह अज्ञान है और यह ज्ञान है, इस तरह दो विभाग बनाते हैं। प्रकाश तो सभी में एक सरीखा ही है, तो इसके विभाग क्यों बनाते

हैं ? तो कहते हैं कि यही ज्ञान जब सांसारिक मार्ग की ओर मुड़ता है तो वह अज्ञान है और अगर मोक्षमार्ग की ओर मुड़ता है, खुद के स्वरूप में मुड़ता है तो वह ज्ञान है।

प्रकाश तो जीव मात्र में है ही लेकिन उसके दो विभाग किए गए हैं कि यह प्रकाश सांसारिक भाव है इसलिए इसे अज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान कहलाता है। 'जानना' को ज्ञान कहा जाता है। तो यह 'उल्टा' जानना, इसे अज्ञान कहते हैं और 'सीधा' जानना, उसे ज्ञान कहते हैं।

सीधा ज्ञान बनता है मित्र, सही समय पर

प्रश्नकर्ता : तो उस सीधे ज्ञान को जानने से क्या अनुभव होता है ?

दादाश्री : यदि जेब कट जाए फिर भी कषाय न होने दे तो वह ज्ञान कहलाएगा। कौन कषाय नहीं होने देगा ? तो, यह ज्ञान। ज्ञान हाज़िर हो जाता है। ज्ञान उसे कहते हैं कि जो सही समय पर हाज़िर हो ही जाए। कषाय उत्पन्न होने लगें, उससे पहले ही हाज़िर होकर उन्हें बंद करवा दे। चाहे कैसे भी संयोग हों लेकिन अंदर चंचलता नहीं होनी चाहिए। चाहे कैसे भी खराब संयोग आएँ हों, अपमान हुआ हो, जेल में डालने के समन्स लेकर कोई आए हों और जेल में डाल रहे हों लेकिन फिर भी अंदर चंचलता उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। देह के मालिक बनेंगे तो चंचलता उत्पन्न होगी। मालिक ही नहीं बनेंगे तो देह का स्वभाव ही नहीं है कि वह चंचल हो जाए। अगर अंदर चंचलता हो जाए तो समझना कि अभी भी कषाय छूटे नहीं हैं। जो ज्ञान विकल्प नहीं होने दे, वह निर्विकल्प ज्ञान है और वही निर्विकल्प आत्मा है और वही परमात्मा है।

प्रकार, ज्ञान के पाँच और अज्ञान के तीन

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के कितने प्रकार हैं ?

दादाश्री : दो प्रकार के ज्ञान हैं; एक ज्ञान और दूसरा अज्ञान। बाकी उसके ऐसे तो आठ प्रकार के भाग किए जा सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : कौन-कौन से आठ प्रकार?

दादाश्री : ज्ञान के प्रकार तो कई हैं लेकिन भगवान ने मुख्य पाँच प्रकार बताए हैं। वह है मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। और उसके अलावा फिर तीन हैं, कुमति, कुश्रुत और कुअवधि, ऐसे करके आठ बताए हैं। लेकिन मुख्य पाँच ही कहे जाते हैं और इन तीनों को भी अगर गिनें तो आठ होते हैं।

तो आठ प्रकार के ज्ञान हैं। फिर उसके भी जितने विभाग करने हों उतने किए जा सकते हैं। एक रुपये की रेजगारी लेनी हो तो आधे (पचास पैसे का सिक्का) के दो आएँगे और पावली (पच्चीस पैसे का सिक्का) के चार आएँगे, आने (छः पैसे का सिक्का) सोलह आएँगे। अर्थात् इस तरह सारे विभाग बनाए गए हैं। इसमें नहीं पड़ना है, इन बातों में। ये सब छोटी-मोटी बातें कही जाएँगी। बाकी ज्ञान में दो ही विभाग हैं। एक अज्ञान और दूसरा ज्ञान। भगवान ने आठ प्रकार बताए हैं। उन आठ में से ये जो पाँच हैं, इनका समावेश ज्ञान में होता है, ये पाँच मोक्ष में जाने के ज्ञान हैं। पूछते-पूछते जाएगा तो मोक्ष में जाएगा। और बाकी तीन का समावेश अज्ञान में होता है। कुमति, कुश्रुत और कुअवधि, उन तीनों को फिर अज्ञान कहते हैं, लेकिन हैं तो ज्ञान ही।

अज्ञान भी है ज्ञान, लेकिन पर-प्रकाशक

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के भेद में तीन प्रकार के अज्ञान क्यों रखे गए हैं?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो ज्ञान ही है और वह अज्ञान तो किसी खास दृष्टि से है। बाकी वह ज्ञान ही है और वह खुद का उजाला ही है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अज्ञान शब्द का प्रयोग करते हैं वे लोग।

दादाश्री : अज्ञान तो इसलिए क्योंकि खुद के स्वरूप का भान, ज्ञान नहीं करवाता। वह ज्ञान ऐसा है कि खुद के स्वरूप को नहीं जानता। बाकी बाह्य सभी कुछ दिखाता है, लेकिन ज्ञान ही कहलाएगा वह। इस दृष्टि से अज्ञान कहा गया है। बाकी अज्ञान है ही नहीं न! प्रकाश को अज्ञान नहीं कह सकते। प्रकाश अर्थात् प्रकाश।

अज्ञान भी ज्ञान है। अज्ञान कोई अन्य चीज़ नहीं है। वह ऐसा कुछ अंधेरा नहीं है। वह भी प्रकाश है लेकिन वह प्रकाश पर (आत्मा से भिन्न) चीज़ों को बताता है, विशेष प्रकाश, विशेष उजाला। बाहर की चीज़ों को बताने वाला प्रकाश है। और ज्ञान खुद को प्रकाशित करता है और पराए को भी प्रकाशित करता है, दोनों को ही प्रकाशित करता है। अज्ञान तो यह जानने ही नहीं देता कि, 'खुद कौन है?' अनुभव नहीं होने देता, जबकि ज्ञान तो स्वयं खुद को जानने देता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मिक ज्ञान और सांसारिक ज्ञान, वे सभी अलग-अलग हैं न?

दादाश्री : ज्ञान एक ही है, उसके भाग अलग-अलग हैं सारे। हम इस रूम को देखें तब रूम और जब आकाश को देखें तब आकाश, लेकिन ज्ञान वही का वही है। हाँ, विभाग अलग-अलग हैं।

जब तक इस विशेष ज्ञान को देखता है, सांसारिक ज्ञान को, तब तक आत्मा दिखाई ही नहीं देता। और आत्मा जानने के बाद (आत्मज्ञान होने के बाद) आत्मा भी दिखाई देता है और यह (रिलेटिव) भी दिखाई देता है, दोनों दिखाई देते हैं। जब तक आत्मा को नहीं जान लेता तब तक सिर्फ यही दिखाई देता है। वह भी पूरा नहीं दिखाई देता, वह भी कुछ अंश तक जाना जा सकता है। आत्मा को नहीं जानोगे तो कुछ भी दिखाई नहीं देगा, बिल्कुल अंधे।

पूछने पर खुले 'अक्रम में', अविरोधाभासी ज्ञान

यह ज्ञान एक घंटे में दिया है, कितना बड़ा ज्ञान है! एक करोड़ साल में भी जो ज्ञान नहीं हो सकता, एक ही घंटे में आत्मा का वह ज्ञान हो जाता है लेकिन बेसिक (मूलभूत) होता है। उसके बाद बारीकी से विस्तारपूर्वक समझ लेना पड़ता है और आप मेरे पास बैठकर विस्तारपूर्वक पूछते रहोगे, तब मैं समझाऊँगा। इसलिए हम कहते हैं न, सत्संग की बहुत ज़रूरत है। जैसे-जैसे आप यहाँ पर कड़ियाँ (सिद्धांत के मोती) पूछते जाओगे न, वैसे-वैसे अंदर कड़ियाँ खुलती जाएँगी, और यह ज्ञान अविरोधाभासी है। हाँ, जो भी चीज़ ज्ञान में आ जाती है, वह चीज़ फिर अज्ञान में नहीं जाती। विरोधाभास उत्पन्न नहीं होता।

'ज्ञान लिया नहीं जा सकता', वह भी लिया हुआ ज्ञान ही है

प्रश्नकर्ता : दादा, कई लोग ऐसा पूछते हैं कि ज्ञान भी कहीं दिया जाता होगा? ज्ञान भी क्या कोई देने की चीज़ है? कई बार ऐसा प्रश्न पूछते हैं, तो उन्हें क्या जवाब देना चाहिए?

दादाश्री : कोई व्यक्ति किसी से कहे कि इस जगह से मत जाना, वर्ना मुश्किल हो जाएगी। तो उसने यहाँ से यह ज्ञान लिया, इस ज्ञान से वह मुश्किल में से बाहर निकला। तो ये जितने भी ज्ञान हैं न, वे सभी ज्ञान लेने ही पड़ते हैं। वह जो कुछ भी बताता है न, वह लिए हुए ज्ञान से ही बताता है। वह ज्ञान किसी से लिया हुआ है। उसे किसी ने सिखाया हुआ है कि ज्ञान लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी ज्ञान लिए हुए ज्ञान हैं। इसका उदाहरण देकर समझाएँगे तो समझ में आएगा। वह समझता है कि जिस तरह से पेटी (सूटकेस) देते हैं, उस तरह से लेना-देना है? नहीं, ऐसा नहीं है यह। ज्ञान अर्थात् श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान दिया और लिया जा सकता है। मैं बोलता हूँ, आप सुनते हो और फिर बताते हो तब भी वह श्रुतज्ञान है। लेकिन फिर

उसे व्यवहार में कैसे बताएँ? कोई कहे, 'आपके पास जोखिम है'। तो वह ज्ञान तो लेना ही पड़ेगा और स्वीकार करना पड़ेगा न? उसी को कहते हैं, 'हम ज्ञान लेते हैं'। वह तो फिर इन लोगों के, उनके कोई गुरु हों तो वे सिखाते हैं कि, 'ज्ञान भी कहीं लिया जाता होगा? दिया हुआ ज्ञान चलेगा क्या?' तो भाई, क्या दिया हुआ अज्ञान चलेगा? क्या हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी कहते हैं न, कि कोई किसी के लिए कुछ नहीं कर सकता।

दादाश्री : यह तो जोखिम है। ऐसा बोल ही नहीं सकते। भयंकर जोखिम! ऐसा देखा जाता है कि कोई किसी को मार देता है, फिर ऐसा कैसे कह सकता है? यह कहाँ की बात कहाँ ला रहा है? संसार से बाहर की बात है यह तो। जहाँ संसार का एन्ड आता है, उसके बाद की बात है और इसे संसार में ले आया! मार खा-खाकर मर जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह पढ़ा, सीखने गया, स्कूल में गया, कॉलेज में गया, वह सब ज्ञान उसने लिया ही है न?

दादाश्री : सारा ज्ञान, सारे लिए हुए ज्ञान ही हैं। मैं यह ज्ञान बोल रहा हूँ न, यह श्रुतज्ञान आपने सुना और फिर आपने यह किसी को बताया, तो यह श्रुतज्ञान आप में प्रगमित हुआ और यदि दूसरे को समझ में आया तो उस समय वह आपका मतिज्ञान कहलाता है। यानी कि मतिज्ञान देना होता है और श्रुतज्ञान लेना होता है।

[2]

श्रुतज्ञान

श्रुतज्ञान निकालता है, रोग मिथ्यात्व के

प्रश्नकर्ता : यह श्रुतज्ञान वास्तव में क्या है, इसे ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : श्रुतज्ञान में क्या-क्या आता है? तो कहते हैं, आत्मा से संबंधित, अध्यात्म से संबंधित, मोक्ष में जाने की पुस्तकें पढ़ना या फिर मोक्ष जाने की बातें सुनना, उसे कहते हैं श्रुतज्ञान। अब आप ये सारी बातें सुनो, पुस्तक में पढ़ो, ऐसा सब करो तो वह श्रुतज्ञान कहलाएगा। दूसरों से समझे या फिर पुस्तक में से पढ़कर समझे तो वह श्रुतज्ञान कहलाता है। यानी आप ये जो पुस्तकें पढ़ते हो या सुनते हो, आप कहीं से कुछ भी प्राप्ति करते हो, खींचते हो, ग्रहण करते हो, ग्रास्पिंग करते हो तो वह सारा श्रुतज्ञान कहलाता है। बिगिनिंग (शुरुआत) श्रुतज्ञान से होती है। श्रुतज्ञान तो केवलज्ञान का कारण है।

यह जो भगवान की बातें सुनते हैं, वह श्रुतज्ञान कहलाता है। शास्त्र पढ़ना भी श्रुतज्ञान कहलाता है। ये लोग धर्म का सुनने जाते हैं न, उसे श्रुतज्ञान कहा जाता है। श्रुतज्ञान उसे कहते हैं कि जिसे सुनने के बाद अपना रोग अपने आप ही निकल जाए। ज्ञान ही रोग निकालता है, हमें निकालना नहीं पड़ता।

ज्ञान करना नहीं है लेकिन जानना है

प्रश्नकर्ता : जानते हैं, समझते हैं लेकिन प्रैक्टिस में नहीं आ पाता, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : शास्त्रों में जो ज्ञान लिखा हुआ है न, वह करने के लिए नहीं लिखा है। शास्त्रों में लिखा है कि शांति रखो, दया रखो, क्षमो करो। तो यह ज्ञान करने के लिए नहीं बताया है और लोग कहते हैं, बहुत कुछ जानते हैं लेकिन हो नहीं पाता। हो नहीं पाता, हो नहीं पाता... अरे! जो जाना है उसे करना है ही नहीं। जो जाना, पुस्तक में पढ़ा, वह सब करने के लिए नहीं बताया गया है। इंसान से हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : पुस्तक में जो लिखा है, वह करना नहीं है, जो जाना है, वह करना नहीं है। तो क्या करना है?

दादाश्री : उसे करने गए इसीलिए यह सब बिगड़ गया। जो लिखा है, वह करना नहीं होता। जो लिखा है, उसे सिर्फ जानना होता है। जो लिखा है, वह ज्ञान है। उस ज्ञान को जानना है। जानने के बाद उस ज्ञान पर प्रतीति बैठानी होती है। ज्ञान को करना नहीं होता। यदि ज्ञान को करने जाएँगे तो जो चेतन है, वह अचेतन हो जाएगा।

ज्ञान पर श्रद्धा रखी जाए तो आएगा क्रिया में

भगवान की यह बात समझ में ही नहीं आई। इसलिए सब बिगड़ गया। पूरा केस ही बिगड़ गया है। शास्त्रों में जो ज्ञान है, वह श्रुतज्ञान कहलाता है और श्रुतज्ञान पढ़ने वाले को मतिज्ञान होता है और मतिज्ञान को जानना है।

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान को जानना है यानी समझना है?

दादाश्री : बस, जानकर समझो। समझकर जानना है या फिर जानकर समझना है। इन दोनों में से एक को जानना या समझना है।

उसके बजाय इन्होंने तो क्रिया 'करना' शुरू कर दिया, तुरंत ही। ज्ञान को समझने से क्या होगा? फिर उसका फल आएगा ही। उस अनुसार आपको क्रिया नहीं करनी है। उस अनुसार ही उसका फल आएगा। आपने यहाँ से स्टेशन जाने का रास्ता जान लिया तो उसके बाद उसका फल यह आएगा कि वह आपको स्टेशन तक पहुँचा देगा। लेकिन इसे तो सिर्फ जानना था, उसके बजाय करने गए, जैसा लिखा है वैसा करने गए। यानी कि बीच वाला पूरा साइन्टिफिक प्रोसेस हटा दिया।

प्रश्नकर्ता : और फिर स्वच्छंद तरीके से करने गए!

दादाश्री : स्वच्छंद ही है, खुद की अक्ल लगाते हैं। लेकिन कोई भी क्रिया, यों सीधे नहीं की जा सकती। जो लिखा है, पहले उस पर हमें श्रद्धा आनी चाहिए और श्रद्धा आ जाएगी तो फिर ज्ञान में फिट हो जाएगा। उसके बाद आपको कुछ भी नहीं करना है। अपने आप ही क्रिया होती रहेगी।

अध्यात्म की ओर मोड़ता है सुश्रुत, संसार की ओर मोड़ता है कुश्रुत

जो श्रुतज्ञान अध्यात्म की तरफ मोड़े, वह सुश्रुत कहलाता है और जो श्रुतज्ञान सांसारिक जीवन में हितकारी है, वह कुश्रुत कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, सुश्रुत और कुश्रुत को ठीक से समझाइए।

दादाश्री : अध्यात्म के अलावा बाकी का सारा ही वांचन कुश्रुत है और वहीं पर कुमति उत्पन्न होती है।

यदि कुश्रुत छूट जाए तो सुश्रुत का प्रवेश होगा। अब, कुश्रुत से जो बुद्धि उत्पन्न हो गई है, वह विपरीत बुद्धि है और इसीलिए ये सारे दु:ख हैं। विपरीत बुद्धि से खुद का अहित करता है व औरों का भी अहित करता है।

सही बुद्धि कहाँ से उत्पन्न होती है? सुश्रुत सुनने से। सुश्रुत हो तो सुमति आती है और कुश्रुत हो तो कुमति आती है। अत: यदि यह सुमति हो जाएगी तो किसी को शांति देगी। अभी उसकी बहुत कमी है और कुमति की बहुतायत है। वह सस्ता हो गया है और यह बहुत महँगा है, सुश्रुत और सुमति।

प्रश्नकर्ता : विषयों में सुख मानना, क्या वह सारा कुश्रुत ज्ञान है?

दादाश्री : सांसारिक सारा ही कुश्रुत है। शादी करने में मज़ा आता है, शादी करना काबिलियत माना जाता है, वह सब कुश्रुत कहलाता है। कुमति संसार बुद्धि है। किसमें संसारी बुद्धि नहीं है? सब इसी में हैं, अन्य किसमें हैं? सुमति तो है ही नहीं, बस इतना ही है कि नाम सुमति रखते हैं।

शास्त्र हैं श्रुतज्ञान, वे नहीं हैं आत्मज्ञान

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों का जो ज्ञान है वह, और आत्मज्ञान, इनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : वह श्रुतज्ञान या स्मृतिज्ञान कहलाता है। वह आत्मज्ञान नहीं है। पुस्तक में उतरने पर वह जड़ हो जाता है। शब्दों का ज्ञान तो उसी हद में रहता है न? वह श्रुतज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में भगवान की वाणी है फिर भी वह जड़ कहलाएगी?

दादाश्री : भगवान की वाणी भी जब पुस्तक में लिखी जाती है तब जड़ कहलाती है। जब सुनते हैं तब वह चेतन कहलाती है लेकिन वह दरअसल चेतन नहीं कहलाती। वह वाणी चेतन पर्याय को स्पर्श करके निकलती है, इस वजह से वह चेतन जैसा फल देती है। अत: उसे प्रत्यक्ष वाणी, प्रकट वाणी कहा गया है। बाकी, शास्त्रों में लिखने पर वह जड़ हो जाती है, वह चेतन को जाग्रत नहीं कर सकती।

श्रुतज्ञान की मर्यादा बताई ज्ञानी ने

क्रमिक मार्ग में श्रुतज्ञान के आधार पर किसी जीव के हाथ में सिद्धांत आ जाता है लेकिन अगर उसे लिखा जाए तो वह श्रुतज्ञान बन जाता है। मैं बोलूँ और कोई लिख ले, फिर किसी को सुनाए तो उसे सैद्धांतिक वाणी नहीं कहा जाएगा, श्रुतज्ञान कहा जाएगा। यदि शास्त्र पढ़कर फिर वही शब्द निकलें (बोले जाएँ) तो उसे टंकी का पानी कहा जाएगा। सैद्धांतिक वाणी तो, जो ज्ञान परिणमित होने के बाद में अलग ही शब्दों में निकलती है, उसे कहा जाता है। विज्ञान हमेशा सिद्धांत कहलाता है। सिद्धांत क्रियाकारी होता है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या श्रुतवाणी के अभ्यास से आत्मज्ञान हो सकता है?

दादाश्री : श्रुतवाणी 'हेल्पिंग' (मदद करने वाली) चीज़ है। श्रुतवाणी से चित्त की मज़बूती होती है, दिनोंदिन चित्त निर्मल होता जाता है। यदि चित्त निर्मल हो और 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ, तो वह ज्ञान को जल्दी व ज़्यादा अच्छी तरह से समझ सकेगा।

श्रुतज्ञान से समझ में ज़रूर आता है लेकिन वह बुद्धिजन्य ज्ञान कहलाता। बुद्धिजन्य ज्ञान मोटा होता है, वह मूल, असल स्वरूप में समझ में नहीं आ सकता। बुद्धिजन्य और ज्ञानजन्य, ये दोनों अलग हैं।

बुद्धिजन्य उसे कहते हैं जो पूरे संसार के शास्त्रों को जानता है, लेकिन जब तक आत्मा को नहीं जान लिया तब तक बुद्धिजन्य कहा जाएगा। और अगर सिर्फ आत्मा को जान लिया और शास्त्रों को बिल्कुल भी नहीं जानता, तब भी वह ज्ञानजन्य कहा जाएगा। अब बुद्धि और ज्ञान में क्या फर्क है? अहंकारी ज्ञान को 'बुद्धि' कहा गया है और निरहंकारी ज्ञान को 'ज्ञान' कहा गया है। अत: जो अहंकारी ज्ञान है, वह बुद्धि में समाविष्ट होता है।

उन साधनों के मोह से खड़ा है संसार

शास्त्रों में जो श्रुतज्ञान है, वह निर्मोही बनाने वाली चीज़ है, निर्मोही बनाने का साधन है। लेकिन यदि उन शास्त्रों में ही रमणता हो गई तो वह मोह है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि यदि उसी में डूब जाए तो वह मोह बन जाता है?

दादाश्री : हाँ! वह मोह बन जाता है। वर्ना वह निर्मोही बनाने का वन ऑफ द (एक) साधन है। अर्थात् वह संपूर्ण साधन नहीं है। संपूर्ण साधन तो ज्ञानी पुरुष हैं।

जिस श्रुतज्ञान के शास्त्र विकल्प करवाते हैं, वे तो दुनिया को उलझा देते हैं। वे बल्कि संसार को ही बढ़ाते जाते हैं। बल्कि विकल्पों में से अनंत नए विकल्प खड़े करते हैं।

श्रुतज्ञानावरण हो तब चाहे लाख बार पुस्तक पढ़े लेकिन उसका सार पता नहीं चलता, समझ में नहीं आता, और ज्ञानी पुरुष सिर्फ एक बार पुस्तक पढ़ लेते हैं न, तो घड़ी भर में उसका सार आ जाता है, ऐसा श्रुतज्ञानावरण नहीं होने की वजह से है।

इस श्रुतज्ञान का ऐसा अर्थ किया जाए तब लोगों को समझ में आता है। यह तो, रोज़ पुस्तक में श्रुतज्ञान पढ़ते हैं लेकिन शब्दार्थ समझ में नहीं आता। पुस्तक जो कहना चाहती है, क्या पुस्तक वह बोल सकती है? नहीं। वह तो, कोई ज्ञानी पुरुष ही बताएँगे। अपनी आप्तवाणियाँ तो बोलेंगी! अरे, नींद में से भी जगा देंगी!

शास्त्रज्ञान देता है दखल, 'अक्रम विज्ञान' को समझने में

प्रश्नकर्ता : अक्रम विज्ञान को समझने में शास्त्रों का जो ज्ञान है, वह हेल्प करता है क्या?

दादाश्री : यह जो बरसात है न, वह सभी की हेल्प करती है या नहीं करती? सभी तरह के पेड़ों की?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आम की भी हेल्प करती है और कड़वा हो उसकी, नीम की भी हेल्प करती है न? लेकिन उसका कड़वा स्वभाव नहीं जाता। यानी कि समकित दृष्टि वाले में शास्त्र सम्यक् रूप में परिणमित होते हैं। और अगर मिथ्यात्व दृष्टि हो तो वही शास्त्र मिथ्यात्व के रूप में परिणमित होते हैं। यदि मिथ्यात्व गाढ़ हो चुका हो तो उससे सभी कुछ उल्टा समझेगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान वास्तव में दखल देता (बीच में आता) है, अक्रम विज्ञान का अध्ययन करने में?

दादाश्री : शास्त्रों का ज्ञान तो दखल देगा ही न! शास्त्रज्ञान तो सभी लोगों के लिए लिखा गया है, वह सिर्फ आपके लिए नहीं लिखा गया है।

प्रश्नकर्ता : सभी में हम आ ही जाते हैं न!

दादाश्री : सभी का जोखिम हम क्यों उठाएँ? हमें मोक्षमार्ग मिला है। नहीं मिला होता तो जोखिम उठाते, वर्ना शास्त्रों में पड़कर सिर ही फोड़ने होते हैं न! सिर फोड़ते ही रहो न!

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो कितने ही काल से शास्त्रों के आधार पर ही चलता आया है।

दादाश्री : वह तो ऐसे ही चलेगा। जब तक 'ज्ञानी' हैं, प्रकाश है तब तक आपका दीया प्रकट होगा, वर्ना ये क्रियाकांड तो चलते रहेंगे।

ज्ञानी के मुख से निकला, गुह्य श्रुतज्ञान तीर्थंकरों का

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी किसे कहते हैं?

दादाश्री : जिन्होंने आत्मा प्राप्त कर लिया है, वे सभी ज्ञानी कहलाते हैं, लेकिन यदि सभी ज्ञानी (महात्मा) बोलने (सत्संग करने)

जाएँ (और लोग प्रश्न पूछें) तो वे क्या जवाब देंगे? अत: ज्ञानी श्रुतज्ञान सहित होने चाहिए। जब वीतराग भगवान का पूरा श्रुतज्ञान और वेदांत मार्ग का श्रुतज्ञान सभी कुछ होता है, तब उन्हें ज्ञानी कहा जाता है। यों ही ज्ञानी नहीं कह सकते।

प्रश्नकर्ता : अब, यह जो ज्ञानी पुरुष की वाणी सुनते हैं, उसे क्या कहेंगे?

दादाश्री : उनकी तो बात ही अलग है न! वह तो, यह भी श्रुतज्ञान से बाहर कुछ भी नया नहीं है। अध्यात्म की बाल पोथी पढ़ने को भी श्रुतज्ञान माना जाता है, ज्ञानी पुरुष की वाणी को भी श्रुतज्ञान माना जाता है, ये दोनों ही। यह पक्के लोगों की बात है, वर्ना इसकी भी दुकानें खोल देते कि अब स्टैन्डर्ड नाइन्थ यानी यह, सुश्रुत।

हमारी बात आत्मा में से निकली है और आत्मा को ही पहुँचती है इसलिए समझ में आ ही जाती है। हमारा एक-एक वाक्य श्रुतज्ञान है। मेरे लिए स्याद्वाद है, शुद्ध आत्मा का शुद्ध ज्ञान है, निराग्रही है और आपके लिए श्रुतज्ञान है।

अगर इसे सुनने में खो जाए न तो कितने ही पाप भस्मीभूत हो जाएँगे! यह पूरा चौबीस तीर्थंकर भगवानों का गुह्य श्रुतज्ञान सुन रहे हो। गुह्य श्रुतज्ञान!

अनुभव ज्ञानी का श्रुत, नहीं रहता बांझ

प्रश्नकर्ता : श्रुत, मति, अवधि, मन:पर्यव और अंत में केवल, इस प्रकार क्रमानुसार होता है?

दादाश्री : नहीं-नहीं! क्रम-व्रम कुछ भी नहीं। श्रुतज्ञान सुनते रहो तो उसमें सभी कुछ आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : सुश्रुतज्ञान कहाँ से सुनें? चाहे कहीं से भी?

दादाश्री : वह तो (जिन्हें) आत्मा का अनुभव हो गया हो, प्रतीति हो गई हो, वहीं से। कहीं और से (सुना हुआ) काम नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतीति और जानकार में बहुत फर्क है न?

दादाश्री : प्रतीति में वह शिकागो की पूरी प्लानिंग कर लेता है, लेकिन फिर जब खुद वह देखते हो तब एक्ज़ेक्ट अनुभवज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जब खुद देखते हैं तब प्रतीति गलत निकलती है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : अनुभव और श्रुत में कितना अंतर है?

दादाश्री : अनुभव हुआ तो सही है, वर्ना गलत। जिसका फल नहीं आता, वह बेकार है, यूज़लेस। श्रुत के फलस्वरूप आगे जाकर अनुभव रूपी फल लगना ही चाहिए। श्रुत के फलस्वरूप अनुभव होना ही चाहिए और अगर नहीं होता है तो उसे काट देना अच्छा। नए सिरे से दूसरा बीज बोना अच्छा, नई डिज़ाइन पकड़ना अच्छा। जिस श्रुत में फल नहीं लगते, वह श्रुत गलत है। वह पॉइज़नस श्रुत है। वह गलत नहीं दिखाई देता, बुद्धि से सही दिखाई देता है लेकिन यों पॉइज़नस हो चुका होता है। श्रुत जो है, वह अहंकार से पॉइज़नस हो जाता है। फिर चाहे वह भगवान का श्रुत हो या चाहे किसी का भी श्रुत हो लेकिन अहंकार से पॉइज़नस हो जाता है। इसलिए उसमें फल नहीं आते।

प्रश्नकर्ता : यह आपने श्रुत से आगे का रूप बताया है लेकिन ज्ञान और श्रुत, इन दोनों के बीच का भेद जानना है।

दादाश्री : हाँ, श्रुत तो खुद ही ज्ञान है। लेकिन श्रुतज्ञान और विज्ञान, दोनों में भेद है। इन दोनों के बीच का भेद जानना चाहिए।

अनुपम-अपूर्व वाणी 'परम श्रुत'

प्रश्नकर्ता : श्रुत, मति में परिणामित होता है और फिर मति से प्रकाश प्राप्त करता है, उसके बजाय अपूर्व ज्ञान में सीधे ही प्रकाश पड़ता है, उसमें सीधे ही वस्तु का दर्शन हो जाता है, वह कौन सा ज्ञान है?

दादाश्री : अपूर्व ज्ञान तो, ज्ञानी पुरुष जो भी बोलते हैं उसी का सीधा प्रकाश पड़ता है। जो किसी जगह पर सुना न हो, पढ़ा न हो, देखा न हो, ऐसा ज्ञान होता है वह अपूर्व कहलाता है।

इसीलिए कृपालुदेव ने लिखा है कि, 'अपूर्व वाणी परम श्रुत', यानी कि जो पुस्तकों में नहीं हो, ऐसा श्रुत होता है वह। पुस्तकों में सबकुछ कैसे लाया जा सकता है? शब्दों में कुछ लाया जा सकता है और कुछ, शब्दों में नहीं भी लाया जा सकता।

'अपूर्व वाणी परम श्रुत, सत्‌गुरु लक्षण योग्य'। कृपालुदेव ने यह लिखा है, अन्य किसी ने भी नहीं लिखा।

प्रश्नकर्ता : 'परम श्रुत' का मतलब क्या है?

दादाश्री : भगवान के जो पैंतालीस आगम हैं वे शास्त्र, श्रुतज्ञान कहलाते हैं। और 'परम श्रुत' अर्थात् पूरे ही श्रुतज्ञान का सारांश। ऐसे 'परम श्रुत' तो होते ही नहीं हैं। यह जो श्रुतज्ञान है, यह धीरे-धीरे इंसान को तैयार करता है। 'परम श्रुत' तो, वे किसी शास्त्र के शब्द ही नहीं होते फिर भी सारा स्पष्टीकरण दे देते हैं, सर्वोत्तम दवाई है, और वह (दवाई) शास्त्रों में नहीं है! पहले सुना हुआ हो, वैसी पूर्वानुपूर्वी वाणी नहीं, परंतु अपूर्व वाणी होती है!

परम श्रुत उसे कहते हैं कि हमेशा सारी स्पष्टता हो जाती है। और अगर स्पष्टता नहीं हो तो उसे श्रुतज्ञान कहेंगे ही नहीं न! परम श्रुत अर्थात् हमेशा स्पष्टता हो जाती है, एवरीव्हेयर... और पहले कभी भी न सुनी हो, ऐसी वाणी होती है। जो पुस्तक में न मिले, ऐसी

वाणी। अपनी तो गाँव की भाषा में है यह वाणी, नहीं? तलपदी भाषा। वर्ना तो पारिभाषिक शब्द होते हैं। जिन्होंने जो भी बताया है न, वह पारिभाषिक शब्दों में बताया है। क्योंकि खुद देखकर नहीं बोलता, कल्पना करके बोलता है। पहाड़ पर आधे तक गया हुआ इंसान, जहाँ तक पहुँचा है, वहाँ से नीचे की जगह उसे बिल्कुल करेक्ट लगती है, लेकिन ऊपर की?

प्रश्नकर्ता : ऊपर की, कल्पना।

दादाश्री : यानी कि ठेठ ऊपर तक जाकर देखते हैं, और जैसा है वैसा बताते हैं और वह भी तलपदी भाषा में होता है। चाहे कैसा भी बोलें, लेकिन फिर भी वह बात सही होती है क्योंकि देखकर बोलते हैं जबकि शास्त्रों का तो काल्पनिक है। कल्पना करते हैं कि वहाँ ऐसा होगा, वैसा होगा। फिर गुणाकार करके देखते हैं। इसलिए उसमें कितनी ही पारिभाषिक भाषा आ जाती है। जितना ऊपर चढ़े हैं वहाँ तक की समझ रहती है। बाकी का सब पारिभाषिक होता है। लोग भी समझ जाते हैं कि पढ़ा हुआ बता रहे हैं ये।

प्रश्नकर्ता : अब दादा, आप वह जो कहते हैं न, कि, 'देखकर बोलता हूँ', वह कैसा ज्ञान है।

दादाश्री : यह तो पूरा विज्ञान ही है, यह किसी पुस्तक में नहीं है। ज्ञान पुस्तकों में नहीं होता। देखकर बोला जाए, उसी को ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानी कृपा से छूटा श्रुत-मति, और बने प्रज्ञाधारी

जगत् का उदय अच्छा हो तब 'ज्ञानी पुरुष' प्रकट हो जाते हैं और उनकी 'देशना' ही 'श्रुतज्ञान' है। उनके एक ही वाक्य में सभी शास्त्र पूरी तरह से आ जाते हैं!

श्रुतज्ञान तो इतना लंबा है कि आगे पढ़ते जाते हैं और पिछला भूलते जाते हैं। इसलिए मैंने तो आपको सारे शास्त्र पाँच ही वाक्यों में

दे दिए हैं। हमने तो आपको सीधा आत्मज्ञान ही दे दिया है। आपको सीधा ज्ञानार्क ही दिया है।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान है क्या?

दादाश्री : महात्माओं को आत्मज्ञान हो गया, यानी यह सबकुछ आ गया। फिर एकदम से ऊपर चढ़ गए, आप कितने समझदार हो गए! यही मतिज्ञान है! किसी को छेड़ते करते नहीं, किसी को दुःख नहीं देते, परेशान नहीं करते, यह सब किस आधार पर हुआ? मतिज्ञान।

आप सब को ज्ञान देते हैं इसलिए आप प्रज्ञाधारी कहलाते हो। मतिज्ञान जब टॉप पर आ जाता है तब प्रज्ञाधारी कहलाते हैं। जो डायरेक्ट हम से मिलता है। बुद्धि का आधार टूटने के बाद प्रज्ञाधारी बन जाता है।

[3]

मतिज्ञान

श्रुतज्ञान पचने के बाद बनता है मतिज्ञान

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान किसे कहते हैं?

दादाश्री : मतिज्ञान का मतलब क्या है कि जो ज्ञान (श्रुतज्ञान) आत्मा की तरफ ले जाए, उसे समझना और समझने के बाद फिर अंदर उतर जाए, फिट हो जाए, वह है मतिज्ञान।

जो श्रुतज्ञान हुआ है, वह जब अंदर पच जाता है तब मतिज्ञान होता है। मति, वह तो श्रुत का फल है। यानी जिस हद तक का मतिज्ञान होता है उतना श्रुतज्ञान रहता ही है। अर्थात् मतिज्ञान से पहले श्रुतज्ञान है और जब वह परिणमित होता है यानी उगने लायक हो जाता है। खेती-बाड़ी में... ज़मीन में डालकर, खाद-पानी वगैरह डालते हैं और फिर उग निकलता है, तब वह मतिज्ञान कहलाता है। आप किसी और को मेरी बात समझाते हो तो वह बात तो मेरी होती है लेकिन आप में वह उगी, और उगकर फिर बात निकली तो उसे मतिज्ञान कहा जाएगा। वही शब्द नहीं। यदि वही शब्द हों तो उसे तो नकल कहा जाएगा। लेकिन जो मतिज्ञान वाला होता है, उसमें जितनी समझ होती है उतनी, लेकिन वह जब दूसरों को समझाता है तब उसके पास मतिज्ञान है। श्रुतज्ञान समझने के बाद में आप दूसरों को यह

समझाते हो कि, 'दादा ऐसा कह रहे थे', तब उस समय आपके लिए वह मतिज्ञान है और सुनने वाले के लिए वह श्रुतज्ञान है। क्योंकि आप में परिणमित हो गया है, दूसरों को समझाना आ जाए तो वह मतिज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : क्या श्रुत, मति से बड़ा होता है?

दादाश्री : मति, श्रुत का परिणाम है इसलिए उसे एक ही कहा जाएगा। आप मुझसे जो सुनते हो, वह मेरा मतिज्ञान है और आपके लिए श्रुतज्ञान है और आप औरों को बताते हो तब आपके लिए मति, और सुनने वाले के लिए श्रुत है।

अतः श्रुतज्ञान सुना और श्रुतज्ञान पढ़ा। श्रुतज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है, सुनने से और पढ़ने से। अब आपको यह जो श्रुतज्ञान हुआ, वह ज्ञान वैसे का वैसा नहीं रहता। उसमें से फिर पृथक्करण होने के बाद वह मति के रूप में स्थिर हो जाता है। वह जो श्रुतज्ञान है, वह मतिज्ञान में ट्रान्सफर हो जाता है।

श्रुतज्ञान के फल स्वरूप मतिज्ञान होता है और फिर मतिज्ञान से आगे फिर से श्रुतज्ञान प्राप्त करता है, और फिर से वह मतिज्ञान बनता है, और वह दूसरों को समझा सकता है। पहले खुद श्रुतज्ञान प्राप्त करता है और फिर उसके परिणाम स्वरूप मतिज्ञान होता है। उसके बाद वह दूसरों को भी समझा सकता है।

प्रश्नकर्ता : समझ और समझना में क्या फर्क है?

दादाश्री : समझ मतिज्ञान है और समझना श्रुतज्ञान है। मतिज्ञान अर्थात् आप जो समझाते हो वह जब किसी को समझ में आता है तब वह कहता है, 'मुझे समझ में आ गया' तो उसे समझना कहते हैं, वह श्रुतज्ञान कहलाता है और उस समय आप में मतिज्ञान है।

प्रेरक है, सभी का मतिज्ञान

प्रश्नकर्ता : यह जीवन कर्मों के अधीन है, तो अभी इस जीवन

के दौरान इंसान अच्छे कर्म बाँधे ऐसी प्रेरणा, कौन दे सकता है अथवा किस प्रकार से हो सकती है?

दादाश्री : अब, अच्छे कर्म बाँधे, अंदर ऐसी प्रेरणा... आपने जो ज्ञान बाहर से सुना है या जो पढ़ा हुआ ज्ञान है, श्रुतज्ञान, वह श्रुतज्ञान परिणमित होना चाहिए। वह ज्ञान आपको प्रेरणा देता है कि ऐसा मत करना। यानी धीरे-धीरे वह ज्ञान उसे खुद को हर तरह से बताता है कि यह करने जैसा नहीं है।

जितना ज्ञान हो, वह ज्ञान उसे हेल्प करता है। हमें यहाँ से स्टेशन तक पहुँचना हो न, तो यदि हमारे पास ज्ञान है तो हमें स्टेशन पहुँचा देगा। यानी लोगों के पास अन्य कोई ज्ञान (निश्चय ज्ञान) नहीं है, व्यवहार ज्ञान ही है। निश्चय ज्ञान सिर्फ ज्ञानियों के पास होता है। पुस्तक में निश्चय ज्ञान नहीं होता, वह ज्ञानियों के हृदय में छुपा रहता है। उसे जब आप वाणी के रूप में सुनते हो तब उससे आपका निबेड़ा आता है, निश्चय ज्ञान से। वर्ना पुस्तकों में जो व्यवहारिक ज्ञान है, वह भी कई खुलासे दे सकता है। उससे बुद्धि बढ़ती है, मतिज्ञान बढ़ता जाता है। श्रुतज्ञान से मतिज्ञान बढ़ता है और मतिज्ञान से उसका निबेड़ा ले आता है कि पापों से कैसे छूटा जाए! बाकी अन्य कोई उपाय नहीं है।

शास्त्रों वाला मतिज्ञान यानी क्या, कि यह जो ज्ञान होता है, इन सभी शास्त्रों का जो ज्ञान है न, शास्त्रों का आध्यात्मिक ज्ञान, वह सारा मतिज्ञान कहलाता है और सांसारिक ज्ञान, वह मिथ्याज्ञान कहलाता है।

मिलावट और पौद्‌गलिक, वह कहलाती है कुमति

प्रश्नकर्ता : हमने कानून की ये जो सारी किताबें पढ़ीं और जो ज्ञान प्राप्त किया, मति से प्राप्त किया, उसे मतिज्ञान कहा गया है तो मतिज्ञान में जो ज्ञान आता है, वह कौन सा ज्ञान है?

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। लेकिन वकीलों की उन पुस्तकों

में मतिज्ञान नहीं होता, यह सारा संसारी ज्ञान कुमति ज्ञान है। वास्तविक मतिज्ञान अलग है और इसमें तो सुमति और कुमति दोनों साथ में हैं। और फिर मतिज्ञान मिलावट वाला होता है। कुमति में फिर मिलावट वाला होता है और ये सब तरह-तरह के पेपर पढ़ना, तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ना, इनसे उन्हें कुमति ही मिलती रहती है। यानी यह मतिज्ञान शुद्ध नहीं है, मिलावट वाला होता है। इसलिए उसमें कभी भी स्वाद नहीं आता। वह पौद्गलिक है। वह विलय हो जाता है अपने आप ही।

मोक्ष हेतु के लिए यह अज्ञान है। बुद्धि को भी अज्ञान में ही डाल दिया है। सुमति को ज्ञान में रखा है और कुमति को अज्ञान में रख दिया। सुमति अर्थात् आत्मा को जानने से संबंधित बुद्धि।

कुमति है विपरीत बुद्धि, संसारी सुख के लिए

सुमति जो है, वह सम्यक् बुद्धि है, और कुमति विपरीत बुद्धि है। विपरीत बुद्धि सांसारिक सुख बढ़ाती है। सांसारिक सुख के लिए जो कुछ भी वांचन करना, पढ़ना होता है, हम कॉलेज में पढ़ाई करने जाते हैं, वह सब कुमति और कुश्रुत, और आत्मा के लिए जो कुछ भी पढ़ा जाता है, वह सब सुमति और सुश्रुत। फर्स्ट स्टैन्डर्ड से लेकर कॉलेज-वॉलेज, सभी कुछ विपरीत बुद्धि। यह संसार सुख के लिए हुआ है।

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान के भी भेद होते हैं क्या?

दादाश्री : होते हैं न!

प्रश्नकर्ता : कौन-कौन से?

दादाश्री : वे दो अंश, पाँच अंश, दस अंश होते हैं और सर्वांश, वह संपूर्ण ज्ञान है! तब तक मतिज्ञान कहलाता है। सम्यक् बुद्धि है न, उसे मतिज्ञान कहा जाता है और विपरीत बुद्धि को कुमतिज्ञान कहते हैं। शास्त्र तो सुमतिज्ञान हैं, सुश्रुतज्ञान हैं जबकि 'आत्मज्ञान' अलग ही चीज़ है।

कुमति बुलाती है कषायों और कलह को

मति और श्रुत तो हर एक जीव में रहे हुए हैं ही। वे तो अनंत जन्मों से हैं। लेकिन वे कुमति और कुश्रुत हैं, ऐसा समझना चाहिए। पूरा जगत् विपरीत मति से ही दु:खी है। सम्यक् मति हो तो दु:ख रहेगा ही नहीं न!

वह मिथ्यात्व श्रद्धा है, उसके बाद यह सम्यक् दर्शन होता है, सम्यक् श्रद्धा हो जाए तब मोक्ष होता है उसका। जब तक मिथ्यात्व दर्शन है तब तक भटकना, भटकना और भटकना ही है। रोल्ड-गोल्ड, रोल्ड-गोल्ड। पहले मिथ्यात्व श्रद्धा ही थी न?

प्रश्नकर्ता : बहुत थी।

दादाश्री : किसमें से उत्पन्न हुई? तो कहते हैं, कुश्रुत में से। संसार में सुख कैसे मिल सकता है, ऐसी सारी पुस्तकें पढ़ी थीं।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, हाँ, दादा। वही पढ़ी थीं।

दादाश्री : उसे कुश्रुत कहते हैं और उसके जो प्रोफेसर हैं, वे सभी मास्टर कहलाते हैं, गुरु कहलाते हैं, सांसारिक सुख दिखाने वाले। उस कुश्रुत में से कुमति उत्पन्न होती है। हाँ, कुश्रुत पर श्रद्धा आने से फिर कुमति उत्पन्न होती है और कुमति उत्पन्न होने से वैसा ही वर्तन हो जाता है। रास्ते में अगर कोई सौ डॉलर ले जाए तो कलह कर देता है। क्योंकि कुमति है। फिर वह श्रद्धा बदलती जाए और सुमति आ जाए तो मन में ऐसा लगता है कि, 'यह जो ले गया है, वह तो मेरे हिसाब की वजह से ही ले गया है। इसमें हमें सुख था भी कहाँ?' उससे फिर यह सारी कलह कम होकर बाद में बंद होती जाती है। उसके बाद आनंद के सारे दरवाज़े खुलते हैं।

कुमति व कुश्रुत ये सभी ज्ञान कहे जाते हैं। इससे क्रोध-मान-माया-लोभ टॉप पर जाते हैं। सुमति और सुश्रुत से क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते जाते हैं।

सुमतिज्ञान, सुश्रुतज्ञान, ये सब रियल की तरफ ले जाते हैं। सुश्रुत सुनने से मतिज्ञान उत्पन्न होता है व सुश्रुतज्ञान और भी अधिक समझ में आता जाता है और परिणमित होता है।

ये सभी रियलिटी ज्ञान कहलाते हैं। हम क्या कहते हैं कि रियलिटी में से रियल में जाओ। रियलिटी, रियल नहीं है, वह तो बोर्ड है। रियल में पहुँचने तक क्या-क्या आता है? उसमें सुश्रुतज्ञान, सुमतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और अंत में केवलज्ञान आता है। रियलिटी एन्ड्स इन इट। अर्थात् केवलज्ञान। रिलेटिव अलग चीज़ है और यह रियलिटी अलग चीज़ है। रियलिटी अंदर ठंडक देती जाती है और अनुभव होता जाता है। फिर जब सुश्रुतज्ञान परिणमित होता है तब सुमतिज्ञान होता है। जैसे-जैसे सुमतिज्ञान बढ़ता है वैसे-वैसे श्रुतज्ञान अधिक परिणमित होता जाता है। मतिज्ञान निन्यानवे तक पहुँचता है, फिर सौ, वह केवलज्ञान है।

जो क्लेशाग्नि बुझाए, वह है वास्तविक मतिज्ञान

वास्तविक मतिज्ञान इस काल में है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर शास्त्रों में यह जो मतिज्ञान कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : शास्त्र पढ़ने से कुछ लोगों को ज़रा मतिज्ञान हो जाता है। लेकिन सभी शास्त्र पढ़ने वालों को नहीं हो जाता। श्रुतज्ञान तो सभी शास्त्रों की पुस्तकों में है लेकिन इस जगत् के सभी लोगों को मतिज्ञान भी नहीं हुआ है अभी तक।

मतिज्ञान का पूर्णत: नाश हो गया है। क्योंकि आरंभ और परिग्रह का निवर्तन नहीं हुआ है। और क्या उत्पन्न हुआ है? कुमति और कुश्रुत। मतिज्ञान किसे कहते हैं? किसी को क्लेश हो रहा हो और वह क्लेश के वातावरण को बुझा दे तो उसे मतिज्ञान कहते हैं। आजकल तो क्लेश का वातावरण बुझाना नहीं आता न? आजकल वातावरण ही

क्लेश वाला है। किसलिए? आरंभ-परिग्रह बढ़ गए हैं। आरंभ-परिग्रह बढ़ें तो उसमें हर्ज नहीं है, यह तो, अज्ञान बढ़ा है। कुमति और कुश्रुत बढ़े हैं। अभी बाहर प्रचार हो रहा है, कुश्रुत का। अधिक पैसे इकट्ठे करने हैं एट एनी कॉस्ट (चाहे कैसे भी करके)। कुश्रुत से कुमति उत्पन्न हुई है।

अध्यात्म के साथ वाली बुद्धि, पूरा ही विकल्पी ज्ञान कहलाता है। मतिज्ञान भी विकल्पी ज्ञान है, श्रुतज्ञान भी विकल्पी ज्ञान है और मन:पर्यव ज्ञान भी विकल्पी ज्ञान है। सिर्फ केवलज्ञान ही निर्विकल्पी ज्ञान है। आपको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान या मन:पर्यव ज्ञान हो गया हो और कोई पूछे, 'आप कौन हैं?' तो आप कहेंगे कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', तो वह विकल्पी है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निर्विकल्पी है।

आरंभ-परिग्रह के प्रवर्तन से रहता है दूर मतिज्ञान

लोगों को समझ में ही नहीं आता और बस इतना ही है कि मन में मानते हैं कि, 'मैं समझ गया'। शब्द को नापने जाएँगे तो उससे कुछ नहीं होगा। कहाँ गई वह कृपालुदेव की पुस्तक? लो, यहाँ नज़दीक आओ। शास्त्र में क्या लिखा है? श्री ठाणांग सूत्र में, यहाँ पर सूत्र भी दिया है। कृपालुदेव अपने खुद के शब्द नहीं कह रहे हैं, वे क्या लिखते हैं?

प्रश्नकर्ता : 'श्री ठाणांग सूत्र' में आरंभ और परिग्रह का बल बताने के बाद, ऐसा उपदेश मिले कि उससे निवर्तने योग्य है, इस भाव से द्विभंगी कहा है।

1) जीव को मतिज्ञानावरणी कब तक रहता है? जब तक आरंभ और परिग्रह रहते हैं तब तक...

दादाश्री : अब इसमें कहना क्या चाहते हैं कि एक इतना सा मतिज्ञान भी नहीं हो सकता। जब तक चंदूभाई के पास सामान है, ये झूले-वूले और यह सामान!

परिग्रह हों और मतिज्ञान उत्पन्न हो जाए, ऐसा तो बहुत मुश्किल है। बहुत सारा आरंभ और परिग्रह छूट जाए, आरंभ अर्थात् कर्तापन छूट जाए और पूरा कर्तापन नहीं, संपूर्ण नहीं लेकिन कर्म का कर्तापन थोड़ा-बहुत नरम हो जाए और काफी कुछ परिग्रह कम कर दे, ज़रूरत जितना ही रखे, तब थोड़ा-बहुत मतिज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : तब तक ज़रा सा भी मतिज्ञान नहीं हो पाता?

दादाश्री : तब तक मतिज्ञान भी नहीं होता। मति तो है ही। तो पूछते हैं, कौन सी मति? वह कुमति है। आत्मा प्राप्त करवाने वाली बुद्धि नहीं है, इस दुनिया की चीज़ों को प्राप्त करवाने वाली बुद्धि है। यह सारी कुमति कहलाती है। आत्मा प्राप्त करवाने वाली जो बुद्धि होती है, वह सुमति है। उसे भगवान ने मतिज्ञान कहा है। जबकि लोग पूछते हैं, 'क्या हमारा ज्ञान मतिज्ञान नहीं है?' मैंने कहा, 'अरे, तेरा यह मतिज्ञान कैसे है? मति का मतलब तू बुद्धि समझता है लेकिन वह कौन सी बुद्धि? क्या करने की बुद्धि?' तो कहता है, कहाँ से पैसे मिलें, कैसे मकान बने, वाइफ के साथ किस तरह से रहूँ, ऐसा सब लेकिन इससे आत्मा को क्या लेना-देना? यह तो परदेस की बात की। अब, इस आरंभ-परिग्रह के छूटे बगैर, इसमें एक कदम भी कैसे बढ़ सकता है? उसमें मतिज्ञान का छींटा भी नहीं है, ऐसा कहा है कृपालुदेव ने।

ज्ञानी द्वारा कथित श्रुत, बनता है कारण मतिज्ञान का

प्रश्नकर्ता : तो अपना ज्ञान शुद्ध ज्ञान ही कहलाएगा?

दादाश्री : अपना ज्ञान, आत्मज्ञान, यह केवलज्ञान का संपूर्ण भाग नहीं है लेकिन उसका कुछ भाग है, जो केवलज्ञान ही देता है। उसका फल केवलज्ञान आता है।

आपने श्रुतज्ञान सुना और अंदर उसका मंथन होने के बाद, बिलोने के बाद उसमें से सार निकाला और अगर कोई कुछ पूछे तब आप उसका सार रूप में जवाब देते हो तो वह आपका मतिज्ञान है। लेकिन

वह यहाँ पर सुना हुआ, बाहर से सुना हुआ, मतिज्ञान नहीं कहलाएगा। इसीलिए मैं कहता हूँ न, अभी कहीं और से सुनकर आए और वही बातें करने लगे तो उसे मतिज्ञान नहीं कहेंगे। पहले श्रुत होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह श्रुत होना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, श्रुतज्ञान सुना हुआ होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए वेदांत में श्रवण, मनन और निदिध्यासन, इन तीन शब्दों का उपयोग करते हैं। फिर आपने जो बताया, साक्षात्कार, वह चौथा आज जुड़ा।

दादाश्री : हाँ, इन सभी का फल है, साक्षात्कार। वह एकदम से नहीं हो जाता। अब, मतिज्ञान दो प्रकार से होता है, श्रवण करके होता है और वाचन करके भी होता है। अब, इन लोगों ने अच्छा कहा है, 'श्रवण करके'। इसमें वाचन नहीं लिखा। खास तौर पर श्रवण ही होना चाहिए। खुद पढ़ता है न, तो खुद का पॉइज़न डालता है उसमें। पॉइज़नस मनुष्य जो कुछ भी पढ़ता है, उसमें पॉइज़न डाले बगैर नहीं रहता। उसकी चोंच ही पॉइज़न वाली है।

प्रश्नकर्ता : श्रवण का मतलब क्या है?

दादाश्री : श्रवण का मतलब तो, हमारे मुँह से यह जो कुछ भी सुनते हो, वह सब श्रवण कहलाता है। और क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों के मुँह से सुनते हैं, उसे भी श्रवण कहते हैं।

नहीं है ज़रूरत अक्रम में, शास्त्रीय श्रुत या मति ज्ञान की

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अपने यहाँ पर, अक्रम में शास्त्रों में बताए गए मतिज्ञान की ज़रूरत नहीं रही न?

दादाश्री : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान निकल ही गया है। हम सब केवलज्ञान में हैं। क्रमिक का मतलब क्या है? एक-एक सीढ़ी चढ़कर मतिज्ञान व श्रुतज्ञान। क्रमिक में विचार करके मतिज्ञान की ओर बढ़ना

होता है और कहाँ तक पहुँचना है? निर्विचार दशा। और वह पूरा मार्ग आरोपित मार्ग है, परधर्म है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी हमारे विचार तो रहते हैं न?

दादाश्री : किसके विचार?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और अन्य विचार आते हैं न?

दादाश्री : वे तो कुछ ही, अंतिम भाग वाले विचार हैं। 'मुझे पुण्य मिला, पाप लगेगा, आवरण आ जाएँगे', वे ऐसे विचार नहीं होते। ये अंतिम विचार, ये केवलज्ञान करवाने वाले विचार हैं। दूसरों में शुद्धात्मा देखना निर्विचार दशा ही है न!

प्रश्नकर्ता : शुक्लध्यान में निर्विचार दशा रहती है न?

दादाश्री : हाँ। ज्ञानी को मतिज्ञान की नहीं पड़ी होती, उन्हें तो केवलज्ञान की ही पड़ी होती है।

क्रमिक में अहंकार शुद्ध होने पर, मति पहुँचती है टॉप पर

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें तो यह ज्ञान मिल गया लेकिन क्रमिक मार्ग में मतिज्ञान द्वारा किस प्रकार आगे बढ़ते हैं?

दादाश्री : मतिज्ञान अहंकारी ज्ञान है। अहंकार में क्रोध भी नहीं होता, मान भी नहीं होता। अहंकार रहता है लेकिन मान नहीं होता। इन सब को दूर (खत्म) करता है, तब वह मतिज्ञान होते-होते-होते संपूर्ण हो जाता है।

क्रमिक में मतिज्ञान में से ही केवलज्ञान होता है। लेकिन वह मति तो कितनी आगे पहुँच चुकी होती है कि अहंकार को शुद्ध करती है। क्रोध-मान-माया-लोभ के परमाणु नहीं रहते, ऐसा शुद्ध अहंकार। तो जब निन्यानवे पूरे हो जाते हैं, उसके बाद में शुद्ध ज्ञान हो जाता है, तब केवलज्ञान हो जाता है। जब मतिज्ञान पूर्णतः शिखर पर पहुँच जाता है, तब केवलज्ञान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान उसका आधार स्तंभ है?

दादाश्री : हाँ! मतिज्ञान व श्रुतज्ञान, कारण हैं केवलज्ञान के। ये दोनों होंगे तभी केवलज्ञान हो सकेगा।

मतिज्ञान-आत्मज्ञान-केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : इनके अलावा ज्ञान की अन्य अवस्था है क्या? इन कुमति और सुमति ज्ञान के अलावा?

दादाश्री : सुमति से शुरुआत होती है ज्ञान की, लेकिन वह संपूर्ण ज्ञान नहीं कहलाता, वह मतिज्ञान कहलाता है। ज्ञान तो जब संपूर्ण, सौ प्रतिशत हो जाए तब वह ज्ञान कहलाता है। आत्मज्ञान हो जाने के बाद से वह ज्ञान कहलाता है। जितनी डिग्री तक का आत्मज्ञान होता है, उतना ही वह ज्ञान कहलाता है। तब तक सारा मतिज्ञान कहलाता है।

यह मतिज्ञान ही आगे जाकर केवलज्ञान तक पहुँचता है। कुछ हद तक मतिज्ञान कहलाता है। निन्यानवे प्रतिशत तक मतिज्ञान कहलाता है। मतिज्ञान के कुछ विभाग पार हो जाने के बाद में, वहाँ से आत्मज्ञान की शुरुआत मानी जाती है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा है, और यह जो मतिज्ञान है, वह क्या है?

दादाश्री : मतिज्ञान जो है, उसे इसके (आत्मा के) पर्याय कहो या जो भी कहो, वह है।

जब 'स्वरूप ज्ञान' मिल जाए तभी खुद सत्ता में आता है, वर्ना नहीं आता। या फिर मतिज्ञान मिल गया हो तब भी खुद को उतनी सत्ता प्राप्त होती है और मतिज्ञान भी सत्ता का आधार है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, ये सभी खुद की सत्ता का आधार है।

अब, मुख्यत: मति और श्रुत, दो ही ज्ञान हैं। जैसे-जैसे श्रुतज्ञान सुनते जाते हैं वैसे-वैसे मतिज्ञान बढ़ता जाता है। मतिज्ञान खुलते-खुलते

सौ प्रतिशत हो जाता है। निन्यानवे प्रतिशत तक मतिज्ञान संपूर्ण हो जाता है लेकिन सौवें प्रतिशत पर वह मतिज्ञान नहीं कहलाता, सौवें प्रतिशत को केवलज्ञान कहा जाता है। सुमतिज्ञान सौ प्रतिशत तक पहुँच जाए तो उसी को केवलज्ञान कहते हैं। नियम ऐसा ही है कि निन्यानवे तक वह मति कहलाता है और सौवें पर केवल कहलाता है। अर्थात् मतिज्ञान पूर्ण होते ही केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान और केवलज्ञान का यह भेद सही है।

दादाश्री : अंत में मतिज्ञान में से ही केवलज्ञान होता है लेकिन बात को समझें तब न!

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर को भी मतिज्ञान में से केवलज्ञान हुआ होगा न?

दादाश्री : हाँ, मतिज्ञान में से केवलज्ञान। उन्हें जन्म से ही तीन ज्ञान थे, मति, श्रुत और अवधि। सांसारिक व्यवहार छूटते ही तुरंत चौथा ज्ञान उत्पन्न हो गया, मन:पर्यव।

मतिज्ञान है उपादान जागृति

प्रश्नकर्ता : वह बात बहुत अच्छी निकली थी, उपादान जागृति की। भ्रांति है या अभ्रांति, इसे समझने के लिए बुद्धि की ज़रूरत तो है न? तो कहते हैं कि नहीं, वह उपादान जागृति से समझ में आता है।

दादाश्री : बुद्धि ही भ्रांति है।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा था कि बुद्धि से ही भ्रांति उत्पन्न होती है।

दादाश्री : सही बात है, सारी भ्रांति उसी से उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : तो भ्रांति और अभ्रांति में भेद करने के लिए बुद्धि काम ही नहीं आती?

दादाश्री : यह उपादान काम आता है।

प्रश्नकर्ता : आज यह नई बात निकली, दादा। आज नए तरीके से बताया आपने।

दादाश्री : नहीं! वह बताया ही था लेकिन तरीका अलग हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : उपादान का कारण?

दादाश्री : श्रुतज्ञान।

प्रश्नकर्ता : सुश्रुत कहा है, कुश्रुत नहीं।

दादाश्री : हाँ! सुना हुआ, बताया हुआ, पढ़ा हुआ, उन सब में से जो सार मिला हो, वह उपादान है। जिस समय जो निमित्त मिलता है, उससे फिर वह उपादान बढ़ता जाता है। वह कैसा है? श्रुतज्ञान और मतिज्ञान, इनमें से जो उपादान है, वह मतिज्ञान है और निमित्त, श्रुतज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : निमित्त, श्रुतज्ञान है या...

दादाश्री : वह तो हम उदाहरण देते हैं कि वास्तव में यह नहीं है, वास्तव में तो मैंने जो समझाया है, वही है। अगर श्रुतज्ञान नहीं होगा तो निमित्त आगे नहीं बढ़ पाएगा। फिर ज्ञान उससे आगे नहीं बढ़ पाएगा। वह जो श्रुतज्ञान सुना है, वह खुद में परिणमित होता है और जब किसी और को बताता है तब वह उसका मतिज्ञान कहलाता है, वही का वही ज्ञान। इस तरह से है यह। इसलिए श्रुतज्ञान तो हमेशा होना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आध्यात्मिक से संबंधित?

दादाश्री : सुश्रुत।

प्रश्नकर्ता : सुश्रुत अर्थात् आत्मा से संबंधित वांचन ही होना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : आत्मा सम्मुख बातें, धर्म से संबंधित नहीं, आत्मा से संबंधित।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर सुश्रुत यानी कि जब श्रुतज्ञान परिणमित होता है तब उपादान जागृति उत्पन्न होती है या मतिज्ञान?

दादाश्री : मतिज्ञान ही उपादान जागृति है।

प्रश्नकर्ता : वही उपादान जागृति है!

दादाश्री : जो शक्ति स्फूरणा हुई, वह सारा उपादान है। जितनी शक्ति स्फुरणा हुई, प्रकट हुई, प्राकट्य हुआ, उतना ही उपादान। पूर्ण प्राकट्य होने तक वह उपादान रहता है और पूर्ण प्रकट हो जाए तब केवलज्ञान हो जाता है।

उस प्रेम से, आराधना परिणमित होती है मतिज्ञान में

प्रश्नकर्ता : इस श्रुतज्ञान और मतिज्ञान के बीच में कितना अंतर रहता है?

दादाश्री : वह तो परिणमित हो जाता है, ऐसा नियम ही है। श्रुतज्ञान कभी न कभी प्रगमित हुए बिना रहता नहीं है, इच्छा है तो। इच्छा न हो तो परिणाम ही नहीं आता, प्रगमित नहीं होता। खुद की इच्छा है कि, 'आगे जाकर मुझे इस श्रुतज्ञान का फल चाहिए' तो वह मतिज्ञान में परिणमित होता है, वर्ना मतिज्ञान नहीं होता। सिर्फ शौक की खातिर पढ़े या सुने तो उससे कुछ भला नहीं होता। तो, श्रुतज्ञान का फल मतिज्ञान है और मतिज्ञान का फल श्रुतज्ञान है। इस तरह दोनों ही कार्य-कारण हैं, श्रुतज्ञान और मतिज्ञान।

यह जो श्रुतज्ञान है, उसकी यदि प्रेमपूर्वक आराधना की जाए तो उसमें से मतिज्ञान हुए बिना नहीं रहता। और यदि शौक की खातिर आराधना करता है या फिर समाज के भय की वजह से आराधना करता है तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। वह समय बिताने के लिए आराधना करता है। प्रवचन सुनने नहीं जाते क्या लोग? नीचे उतरकर ऐसे-ऐसे

कर देते हैं न, जल्दी से? प्रेमपूर्वक आराधना करनी चाहिए। श्रुतज्ञान की प्रेमपूर्वक आराधना की जाए तो पूरा ही ज्ञान हो जाएगा, सर्वस्व ज्ञान परिणमित होगा।

'मैं जानता हूँ' ऐसा मानकर आराधना करने से श्रुत व मति हो जाते हैं पॉइज़नस

प्रश्नकर्ता : ये जो श्रुतज्ञान, मतिज्ञान और केवलज्ञान हैं, इनमें अनुभव ज्ञान कहाँ और कैसे काम करता है?

दादाश्री : श्रुतज्ञान अर्थात् थ्योरीटिकल ज्ञान। और अनुभव अर्थात् प्रैक्टिकल ज्ञान। अब, इन दोनों का क्या लेना-देना? ज्ञान दोनों में एक सरीखा ही है लेकिन यह स्वाद सहित है और वह स्वाद रहित, धोबी के घर के कपड़ों जैसा। कपड़े बहुत सारे हैं लेकिन एक भी उसके पहनने के लिए नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ग्रंथों के आधार पर जो आराधना की जाती है और शास्त्रों के आधार पर जो सारी बातें होती हैं, उन सब को धोबी के कपड़ों जैसा मानना है न?

दादाश्री : हाँ! श्रुतज्ञान थ्योरीटिकल ज्ञान है और मतिज्ञान प्रैक्टिकल है। उस प्रैक्टिकल में से वापस थ्योरीटिकल हो जाता है, थ्योरीटिकल में से प्रैक्टिकल। इस तरह प्रैक्टिकल करते-करते केवलज्ञान तक पहुँचता है। लेकिन यदि उसके पीछे उसकी आराधना और प्रेम हो, तभी! उसकी आराधना में अगर और कोई अंश हो कि, 'मैं कुछ हूँ, मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ' तो उससे फिर वह आराधना पॉइज़नस हो जाती है। आराधना में अन्य किसी भी चीज़ की मिलावट नहीं होनी चाहिए। आराधना भी सम्यक् होनी चाहिए। कई लोग मतिज्ञान तक पहुँच जाते हैं, मतिज्ञान से भी बहुत आगे पहुँच जाते हैं। उसके बाद 'मैं जानता हूँ', ऐसा भान होता है, पॉइज़न डल जाता है उसमें। फिर वह मार्ग में आगे का ज्ञानी पुरुष से नहीं पूछता। फिर श्रुतज्ञान भी बंद हो जाता है और मतिज्ञान भी बंद हो जाता है।

श्रुतज्ञान प्रगमित होकर मतिज्ञान बनता है और हो जाता है प्रभावी

आपको इसमें से कोई बात पसंद आई?

प्रश्नकर्ता : बहुत पसंद आई, दादा।

दादाश्री : जो पसंद आया, वह चिपकता जाता है, प्रगमित होता है। जो श्रुतज्ञान अच्छा लगता है, वह प्रगमित होता है। जो अच्छा नहीं लगता, उसमें कुछ भी नहीं। जब प्रगमित होता है तब क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान होता है।

दादाश्री : अतः सुने हुए, पढ़े हुए का अंदर पाचन हो जाए और उसके बाद जो बात निकले उसे मतिज्ञान कहते हैं। श्रुतज्ञान से मतिज्ञान में ट्रान्सफर हो जाता है और उस समय सुनने वाले के लिए वह, श्रुतज्ञान। बोलने वाले के लिए, मतिज्ञान। आप यह सुनकर डायरेक्ट ही बात (सत्संग की बातें) करते हो न, वे एक्सेप्ट नहीं होंगी न! क्योंकि मतिज्ञान होना चाहिए, सीधे ही श्रुतज्ञान कह दो तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : तो इस अनुसार जो पढ़-पढ़कर पंडित हुए हैं, वे सुन-सुनकर पंडित हुए होंगे?

दादाश्री : जो पढ़कर पंडित हुए हैं, वे सब पढ़ा हुआ ही बोलते हैं। उनमें श्रुतज्ञान प्रगमित नहीं हुआ है। प्रगमित होने पर वह मतिज्ञान हो जाता है। उस मतिज्ञान से सामने वाले पर असर होता है। जो श्रुतज्ञान आप बताते हो, वह पंडिताई का ज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : सूचनाएँ सारी, इन्फॉर्मेशन!

दादाश्री : हाँ! चाहे कहीं से भी सुनो, पढ़ो, और वही चीज़ आप दूसरों को बताओ तो वह श्रुतज्ञान है, क्योंकि प्रगमित नहीं हुआ है। अंदर पचने के बाद जब वह मतिज्ञान बनता है तब स्फुरणा होती

है मतिज्ञान की, तब सुनने वाले के लिए वह श्रुतज्ञान कहलाता है। उसे पच जाए उसके बाद वह मतिज्ञान बनता है।

वह प्रगमित होता है चारित्रबल से...

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है क्या कि इच्छा तो होती है बोलने की, किसी को समझाने की लेकिन मैं वाणी द्वारा प्रकट नहीं कर पाऊँ?

दादाश्री : हाँ, हो सकता है। वाणी द्वारा प्रकट होना, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है। वह तो बहुत दिनों तक अगर आप सुनते रहोगे तब वह श्रुतज्ञान प्रगमित होगा और फिर वह मतिज्ञान रूपी बन जाएगा। उसके बाद वाणी के रूप में बोला जाएगा। यानी कि बहुत दिनों तक सुनते रहना है। फिर जैसे अंदर उसका, जैसे दही जमता रहता है, उसके बाद में मक्खन निकलता है, फिर उसमें से घी बनता है, विस्तार से ऐसा है यह सब।

यह जो ज्ञान है न, दूसरों को लाभ देने के लिए यह अक्रम विज्ञान आपके मुँह से नहीं निकलेगा। जितना मेरा बताया हुआ है न, उतना ही आप किसी को बता पाओगे। लेकिन सामने वाला उसे कब मानेगा? जब आपका उतना प्रभाव पड़ेगा, तब मानेगा। बात अगर सही होगी तब आपके एक बार कहने से फर्क पड़ जाएगा। ऐसा होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसे चारित्रबल कहते हैं। तभी वह एक्सेप्ट करेगा। प्रभाव पड़ना अर्थात् पैसों की वजह से नहीं और वह रूपवान है इसलिए नहीं, मोटा-पतला है, इसलिए वैसा नहीं है लेकिन चारित्रबल की वजह से है।

प्रश्नकर्ता : उस श्रुतज्ञान को मतिज्ञान में बदलने के लिए और जल्दी से बदलने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : चारित्रबल होना चाहिए। चारित्रबल से ही सब होगा।

अन्य कुछ नहीं हो तो चारित्रबल तो होना ही चाहिए। चारित्रबल हर एक में नहीं होता। चारित्रबल नहीं होना चाहिए क्या?

चारित्रबल में दो ही चीज़ें आती हैं। एक ब्रह्मचर्य और दूसरा किसी को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं देना, जब इन दोनों का गुणाकार होता है तब चारित्रबल उत्पन्न होता है। अतः अपना भाव क्या होना चाहिए? अपना ध्येय क्या होना चाहिए? किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं देना है, ऐसा ध्येय होना चाहिए। अगर दे दिया जाए तो प्रतिक्रमण करना चाहिए। और दूसरा, ब्रह्मचर्य होना चाहिए। अब्रह्मचर्य निरी हिंसा ही है। अतः ब्रह्मचर्य का बल होना चाहिए, तब चारित्रबल बढ़ेगा और चारित्रबल बढ़ेगा तो वह प्रगमित होगा, तुरंत ही। बहुत ज़्यादा दूसरा कुछ पढ़ लेने पर दूध में से दही बन जाता है फिर मक्खन निकल जाता है जबकि इस (ये दो चीज़ें नहीं होंगी तो) दूध से दही नहीं बनता।

आवरण से ढका हुआ है ज्ञान

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान मिला है लेकिन जैसी होनी चाहिए वैसी प्रगति नहीं होती, इसका दुःख रहता है।

दादाश्री : आत्मा प्राप्त किया लेकिन जो आवरण हैं, वे प्रगति नहीं करने देते। यह कचरा माल भरकर लाए हैं इसलिए आवरण रहे हुए हैं। इन आवरणों की वजह से तो जो नहीं करना हो वह भी हो जाता है। इच्छा नहीं हो फिर भी कचरा माल छोड़ता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह आवरण किस प्रकार का होता है?

दादाश्री : जाग रहा होता है और बैठे-बैठे सो जाता है, उसे 'प्रचला' कहा गया है और चलते-चलते सो जाए तो उसे 'प्रचला प्रचला' कहा गया है। नींद में चले तो उसे 'स्त्यानग्रद्धि' कहा गया है। ये सब दर्शनावरण की वजह से हैं। पहला है चक्षु दर्शनावरण, दिखाई नहीं देता इसलिए चश्मे लाने पड़ते हैं। दूसरा है अचक्षु दर्शनावरण,

अगर कोई बोले तो समझ में नहीं आता, सुनाई देता है लेकिन समझ में नहीं आता। कोई कहे तब बात समझ में नहीं आती, स्वाद समझ में नहीं आता।

मतिज्ञानावरण की वजह से वह कारण नहीं ढूँढ पाता। कार्य को देखकर भी कारण नहीं समझ पाता, ऐसा आवरण की वजह से है।

प्रश्नकर्ता : वह ज्ञान को स्पर्श करता है या दर्शन को?

दादाश्री : दर्शन से कोई लेना-देना नहीं है, यह ज्ञान से संबंधित है। दर्शन सामान्य भाव से है और ज्ञान विशेष भाव से है। कुछ लोगों को, कार्य हुआ, ऐसा समझ में आता है लेकिन कारण का पता नहीं चलता। कुछ लोग कारण देखते हैं लेकिन उसका फल क्या होगा, वह उन्हें समझ में नहीं आता, वह मतिज्ञान आवरण की वजह से है।

आवरण किस वजह से है? जो कुमति और कुश्रुत घुस गया है, वह जाता नहीं है। सुश्रुत और सुमति के लिए स्कोप (अवकाश) नहीं है, इसलिए।

मतिज्ञान की विराधना से, आवृत होती है बुद्धि

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान की विराधना करने से क्या दु:ख आते हैं? श्रुतज्ञान की विराधना करे तो...

दादाश्री : नहीं, दु:ख कैसा? मतिज्ञान की विराधना करने से बुद्धि पर आवरण आ जाते हैं। इसलिए मूर्ख जैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसका कोई उपाय है क्या?

दादाश्री : उसका उपाय, बार-बार क्षमा माँगें, वही।

[4]
अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान

[4.1]
अवधिज्ञान

अवधि देखे, सीमित पुद्गल पर्यायों को

प्रश्नकर्ता : अवधिज्ञान का मतलब क्या है?

दादाश्री : अवधिज्ञान यानी अवध अर्थात् सीमा वाला ज्ञान, वह सीमित होता है। अवधि अर्थात् लिमिटेड, कुछ अवध में, नॉट अन्‌लिमिटेड।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, अवधि की क्या मर्यादाएँ हैं?

दादाश्री : अवधि अर्थात् वे कुछ मर्यादा तक का ज्ञान देख सकते हैं, जान सकते। उससे अधिक, पूरा त्रिकाली ज्ञान नहीं बता सकते। तीन सौ मील के रेडियस या पाँच सौ मील के रेडियस यानी कि लिमिट में दिखाई देता है। सारा स्थूल ज्ञान उत्पन्न हो गया है, लेकिन लिमिटेड।

अवधिज्ञान अर्थात् कुछ हद तक का, 'वहाँ क्या हो रहा है', ऐसा दिखाई देता है लेकिन आत्मा की बात नहीं। *पुद्गल* का क्या हो

रहा है, उस लिमिट तक उसे, आँखें मींचने पर बाहर का सब दिखाई देता है, किसी जगह पर ऐसा सब हो रहा है, किसी जगह पर ऐसा हो रहा है। किसी को पच्चीस मील के एरिया में, किसी को पचास मील के एरिया में, तो किसी को सौ-सौ मील तक दिखाई देता है। किसी को दो सौ-दो सौ मील तक दिखाई देता है, किसी को तीन सौ-तीन सौ मील तक दिखाई देता है। कोई अवधि आठ सौ मील की होती है। किसी को हज़ारों मील तक का दिखाई देता है। लेकिन वह क्या दिखाई देता है? चेतन नहीं दिखाई देता, लेकिन मार-पीट, लड़ाई-झगड़े। कोई लड़ाई-झगड़े कर रहे हों, कोई मारामारी कर रहे हों, किसी जगह पर मकान जला रहे हों, वह यहाँ रहे-रहे दिखाई देता है। गाड़ियाँ-वाड़ियाँ जाती हुई, सभी कुछ दिखाई देता है। सभी *पुद्गल* रूपी तत्त्व दिखाई देते हैं।

हृदय शुद्धि से होता है अंश अवधिज्ञान

प्रश्नकर्ता : कोई ऐसा कहे कि छः महीने बाद यहाँ पर भूकंप आने वाला है और पूरा विनाश हो जाएगा और अगर वह बात सच निकले तो ऐसा कैसे होता है?

दादाश्री : हृदय शुद्धि के आधार पर किसी को अंदर दिखाई देता है। ऐसे दिखाई देना वह, आत्मा की एक शक्ति है।

वह तो, अन्य धर्मी हो न, उसे भी अवधिज्ञान हो जाता है। वह तो अंदर की हृदय शुद्धि पर आधारित है। कुछ-कुछ लोग होते हैं न, वे कह देते हैं कि, 'ऐसा होगा, इस तरह से होगा'। इसका या तो उन्हें अवधिज्ञान होना चाहिए या फिर उन्हें कुअवधि ज्ञान होना चाहिए। इस तरह का ऐसा कुछ दिखाई देता है, जिसे अवधिज्ञान का अंश कहा जाता है। यह संपूर्ण अवधिज्ञान नहीं है, परंतु आंशिक रूप से कुछ दिखाई देता है।

अवधि नहीं देख सकता चेतन पर्यायों को

इस जगत् के बुद्धिजन्य और इन्द्रियजन्य ज्ञान को कम कर दिया

जाए तो उसके बाद जो बचा, वह 'अवधिज्ञान' कहलाता है। अवधिज्ञान क्यों कहा गया है? क्योंकि वह पौद्‌गलिक पर्यायों को देख सकता है, चेतन पर्यायों को नहीं। कई बार तो मन-बुद्धि के, बाहर के, ऐसे कई सारे ज्ञेय एक साथ दिखाई देते हैं। लेकिन अवधिज्ञान चेतन अवस्था को नहीं देख सकता, *पुद्‌गल* अवस्था को ही देख सकता है।

प्रश्नकर्ता : रूपी द्रव्य को ही देखता है!

दादाश्री : रूपी, पौद्‌गलिक चीज़ें दिखाई देती हैं, अन्य कुछ नहीं। कोई भी चैतन्य वस्तु नहीं दिखाई देती। यहाँ रहे-रहे कुछ प्रदेशों की सारी बातें दिखाई देती हैं। *पुद्‌गल* में जो चेतन है, वह तो *पुद्‌गलों* को देख सकता है। लेकिन अवधिज्ञान, चेतन को नहीं देख सकता।

प्रश्नकर्ता : दादा, दो शब्द हैं, अवधि और कुअवधि। अब, ये दोनों *पुद्‌गल* को ही देख सकते हैं, चेतन को नहीं, तो क्या ये दोनों अलग-अलग हैं?

दादाश्री : कुअवधि वाले को ऐसा दिखाई देता है जो उसे अधोगति में ले जाता है और इसे ऐसा दिखाई देता है जो ऊर्ध्वगति में ले जाता है, इस प्रकार से हेल्पिंग है।

परम अवधि देखता है महाविदेह को

प्रश्नकर्ता : अवधि अर्थात् लिमिटेड?

दादाश्री : अवधि अर्थात् कुछ लिमिट तक का। वह तो परमावधि तक भी हो सकता है, उससे भी बड़ी, ज़्यादा लिमिट वाला भी हो सकता है।

अवधिज्ञान में जान सकता है कि, 'इस व्यक्ति के साथ ऐसा होगा, वैसा होगा, इस तरह से होगा।' क्योंकि वह सीमा सहित *पुद्‌गल* पर्यायों को जान सकता है और पूर्ण सीमा सहित है परमावधिज्ञान। आंशिक रूप से जो होता है, वह सीमा सहित कहलाता है और पूर्ण

सीमा कब आती है? जब परमावधि हो जाए, तब। लेकिन उसके बाद फिर ज्ञान रुक जाता है। उसे इन्द्रियज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद में अतीन्द्रिय शुरू होता है?

दादाश्री : उसके बाद में अतीन्द्रिय शुरू होता है और अतीन्द्रिय तो पहले ही थोड़ा-बहुत हो चुका होता है। फिर भी यह जो अवधिज्ञान है न, वह पूर्ण इन्द्रियज्ञान ही है।

परमावधि ज्ञान कब होता है? वीतरागों की साक्षी में होता है। यानी कि अवधिज्ञान लिमिट वाला है अर्थात् अवधिज्ञान में पूरा महाविदेह नहीं दिखाई देता अभी। महाविदेह का कोई भी भाग दिखाई नहीं देता। लेकिन अब, वह किस प्रकार से बताता है? वे सब उसकी पूर्व की कल्पनाएँ ही हैं!

प्रश्नकर्ता : यों उपयोग रखने पर तो दिखाई देगा न?

दादाश्री : नहीं, वैसा उपयोग रह ही नहीं सकता न! उपयोग पहुँचेगा ही नहीं न! यह सीमित अवधिज्ञान है, परमावधि नहीं है यह। परमावधि हो तो सभी कुछ दिखाई देगा। परमावधि में क्या दिखाई देता है? पौद्गलिक चीज़ें। परमावधि में वह दिखाई देता है लेकिन वह बाहर का है। लेकिन अभी परमावधि ज्ञान नहीं है।

अभी तो मन:पर्यवज्ञान खत्म हो गया है। अवधिज्ञान तक का है, अभी। वह भी पूर्व जन्म का कुछ हो न, अस्सी साल के होकर मर गए, उसके बाद जब यहाँ पर ग्यारह साल का होता है तब यह ज्ञान उदय में आता है। क्योंकि इच्छा वाले, जिन्हें कुछ इच्छा होती है बाहर सब देखने की, 'यहाँ पर कौन-कौन से *पुद्गल* हैं', ऐसा सब देखने की इच्छा हो तो उसे रास्ते चलते अवधिज्ञान हो जाता है।

अवधिज्ञान सीमित, केवलज्ञान असीम

प्रश्नकर्ता : अवधिज्ञान और केवलज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : अवध अर्थात् सीमा। एक खास सीमा तय हो जाती है, उस सीमा तक का दिखाई देता है। उन्हें केवलज्ञान नहीं होता। केवलज्ञान अर्थात् असीम ज्ञान, सीमा रहित ज्ञान। अवध से भी आगे का हो, वह केवलज्ञान।

अवधि अर्थात् लिमिट, परमावधि अर्थात् बड़ी लिमिट और केवलज्ञान अर्थात् अन्लिमिटेड। केवलज्ञान अर्थात् सर्व भूमिका वाला ज्ञान।

तिर्यंच में रुक जाती है अवधि, नहीं रुकती केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : 'एक ध्यान, अनंत जन्मों का ज्ञान', ऐसा क्यों कहा गया है?

दादाश्री : अनंत जन्मों का ज्ञान अर्थात् उसे केवलज्ञान होना कहा जाता है और उन अनंत जन्मों में क्या देखना है? अवधिज्ञान में कब तक का दिखाई देता है? उसमें जब तिर्यंच (का जन्म) आता है तब वहाँ पर (अवधिज्ञान) रुक जाता है और इसमें (केवलज्ञान में) रुकता नहीं है, इतना ही फर्क है। जिसके पंद्रह जन्म मनुष्य योनि में हुए हों उसका सोलहवाँ जन्म यदि तिर्यंच का हो तो अवधिज्ञान में पंद्रह जन्मों का ही दिखाई देगा जबकि केवलज्ञान में तो अंतराय नहीं होते, अंत तक का दिखाई देता है।

'काबिलियत होने पर प्राप्त', वर्ना है अनर्थ मनुष्य के लिए

देवी-देवता को और नर्कगति वाले लोगों को अवधिज्ञान होता है और बीच वाले लोगों को, मनुष्यों को और तिर्यंच को, दोनों को नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : देवी-देवताओं को दिया, नर्कगति के जीवों को दिया, मनुष्यों को अवधिज्ञान क्यों नहीं दिया?

दादाश्री : मनुष्य जब उस लायक हो जाते हैं तब उन्हें प्राप्त होता है। तब तक उनके लिए अवधिज्ञान बेकार है।

मनुष्य को कहीं अवधिज्ञान देना चाहिए क्या? वर्ना फिर जादूगर की तरह वह सभी लोगों को इकट्ठा करेगा और ऐसा सब बताएगा और पैसे निकलवाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा अवधिज्ञान होगा तो अनर्थ हो जाएगा!

दादाश्री : हाँ! इसलिए यह जो है, यही सही है, करेक्ट है। नहीं तो फिर, बेटी की शादी करनी है, लेकिन अगर पता चले कि अगले साल वह विधवा होने वाली है, यह बिज़नेस करूँगा तो सातवें साल दिवाला निकल जाएगा, बिज़नेस बीच में बढ़ जाएगा और खूब पैसा कमाएगा, और फिर सातवें साल दिवाला निकल जाएगा, ऐसा सब अगर दिखाई देगा तो क्या दशा होगी? अवधिज्ञान हो तो व्यापार करने वालों की और लड़कियों की शादी करवाने वालों की क्या दशा होगी?

प्रश्नकर्ता : ऐसा पता चलेगा कि अब अंत दिखाई दे रहा है।

दादाश्री : अंत नहीं दिखाई देता, वही उत्तम चीज़ है। इन मनुष्यों को अगर ज़रा सा भी भविष्य का ज्ञान दिया होता तो ये मनुष्य यों जीते जी ही मृत जैसे हो जाते। ये जीते जी भी आधे मरे हुए जैसे तो हैं ही! उससे तो बिल्कुल ही मृत जैसे हो जाते। उसमें मज़ा नहीं आता। क्योंकि जहाँ पर फायदा होता है तो आनंद होता ही है उसे, और नुकसान से अंदर दुःख। अगले साल फायदा है और उसके बाद तो नुकसान है, ऐसा सब उसे पता चल जाए तो फिर परेशानी हो जाएगी। तब फिर परेशानी भरा जीवन ही जीएगा। अतः मनुष्य मात्र के लिए आगे का नहीं जानना ही उत्तम है। किंचित्मात्र भी ऐसा जानना उसके लिए फायदेमंद नहीं है। और यदि अपने पास वह ज्ञान होता तो अपनी लाइफ खत्म हो जाती, यूज़लेस हो जाती। यानी कि (अपने पास) वह ज्ञान नहीं है, इसलिए हम सब रौब से घूमते हैं।

हम सभी को यदि फोरकास्ट (भविष्य) का ज्ञान दिया होता न, तो सभी मनुष्य... ये सारे दुःख तो हैं ही लेकिन इनसे भी ज़्यादा,

अत्यंत दु:ख में रहते। अत: नहीं है, वही अच्छा है। फोरकास्ट का ज्ञान दिया होता न, तो वह अपने यहाँ कहीं पर सुख भी देता और दु:ख भी देता। यदि अच्छा योग आने वाला होता तो सुख देने वाला बनता, वर्ना दु:ख देने वाला बनता। वह काम का है ही नहीं। उसके बजाय तो इन सब से अनजान हैं, वही अच्छा है न? क्या लगता है?

नहीं टिकता अवधिज्ञान, संकल्प-विकल्प से

प्रश्नकर्ता : अवधिज्ञान प्राप्त करना हो तो लोगों को वह कैसे प्राप्त हो सकता है?

दादाश्री : वह प्राप्त हो जाए ऐसी चीज़ नहीं है। वह तो, अपने आप ही आवरण टूट जाते हैं और सब दिखाई देता है। बहुत हेल्पिंग चीज़ नहीं है वह।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : वर्ना कल गाड़ी का एक्सीडेन्ट होगा, ऐसा पता चले तो सुबह से कहीं जाएगा ही नहीं। अब, उस क्षण वह ज्ञान चला जाएगा। यदि उस पर संकल्प-विकल्प किए तो चला जाएगा। यह ज्ञान तो किस व्यक्ति में टिकेगा? 'ऐसे टकाराने वाला है, ऐसा होना है', फिर भी बाहर जाए, उसमें टिकेगा। इसलिए इस ज्ञान द्वारा लोगों को आगे की डिटेल्स बताई ही नहीं जाती। वर्ना मुश्किल में पड़ जाएँगे, उनका पूरा संसार व्यवहार बिगड़ जाएगा।

यदि उसे पता चल जाए फिर भी वहाँ पर जाना ही पड़ेगा। यानी कि अगर किसी को ऐसा भविष्य ज्ञान होता है तो वह पल भर के लिए ही, और फिर वह ज्ञान चला जाता है। क्योंकि उसे पता चल जाए कि, 'आज टकरा जाऊँगा', तब फिर वह मन में संकल्प-विकल्प करता है इसलिए वह ज्ञान चला जाता है। आपको समझ में आ रहा है न, मैं क्या कहना चाहता हूँ?

वह ज्ञान मेरे पास आया था। तब फिर मैंने कहा कि, 'यह तो काम

का ही नहीं है, इससे तो संकल्प-विकल्प होंगे। ऐसा हो जाएगा, ऐसे नहीं जाना चाहिए', और जाए बगैर चलेगा नहीं। प्रकृति ही ले जाती है।

अवधिज्ञान, सुख बढ़ाता है देवताओं का

प्रश्नकर्ता : अब, देवगति में अवधिज्ञान होता है तो क्या उन्हें अवधिज्ञान से पहले का और बाद का सब पता चलता है?

दादाश्री : अवधिज्ञान अर्थात् आज उपयोग रखे तो मनुष्य लोक में जो कुछ चल रहा है, वह दिखाई देगा।

अब, देवी-देवताओं को वह ज्ञान, वे वहाँ से देखते हैं, वहाँ पर उपयोग रखने पर खुद के फादर-मदर वगैरह सब क्या कर रहे हैं देश में, वह सब उन्हें दिखाई देता है। वे रिश्तेदारों को देखते हैं और फिर यदि वे सब दु:खी दिखाई दें तो उन्हें अपने मन में ऐसा संतोष होता है कि, 'देखो मैंने पुण्य वाले अच्छे धार्मिक कार्य किए थे तो मुझे देवगति मिली और मेरे रिश्तेदारों को देखो, उन्होंने गलत काम किए थे तो वे सब मार खा रहे हैं!' तो उन्हें खुद को आनंद होता है। देवगति में अवधिज्ञान आनंद बढ़ाता है। वह ज्ञान उन्हें हेल्प करता है। तो देवगति का सुख, वैभव बल्कि बढ़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन देवताओं का सुख तो हमेशा के लिए नहीं है न?

दादाश्री : हमेशा तो कहीं पर भी नहीं रहता न! हमेशा के लिए तो सिर्फ खुद के स्वभाव में, सनातन धर्म में आ जाए, तब। यह सारा सनातन धर्म ही नहीं है न!

अब, फिर वह अवधिज्ञान दु:ख कब देता है? जो चीज़ औरों से विशेष होती है, वह विशेष सुख देती है। तब औरों से विशेष सुख मिलने पर भी फिर मार खाए बगैर नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : तो क्या विशेष सुख का अभिमान करने से मार खाता है?

दादाश्री : नहीं! विशेष सुख उसे मिला, कुछ नहीं मिलेगा तो फिर वह दुःखी नहीं होगा। जिसे विशेष सुख मिला, उसे फिर दुःख आता है। हर एक एक्शन रिएक्शन सहित ही होता है। उन्हें विशेष सुख मिला, तो देवताओं को क्या मिला? उन्होंने अपने सभी अपनों को देखा, 'इन लोगों ने खराब कर्म किए थे, देखो, ये अभी कैसा भोग रहे हैं और हम कैसे हैं!' वह सब बहुत सुख देता है। लेकिन फिर जब मरने का समय आता है, वहाँ से निकलना होता है, च्यवन का समय आता है, जब च्यवित होते हैं तब उनकी जो माला होती है, वह सूखने लगती है इसलिए वे अवधिज्ञान से समझ जाते हैं कि, 'ओहो! अब जाना है।' उसके बाद वे देखते हैं कि कहाँ जाना है! वह अवधिज्ञान से दिखाई देता है। 'अरे! इस देवगति को छोड़कर गाय के पेट में जन्म मिलेगा!' सीधे गाय की योनि में जा सकता है, गधे की योनि में, कुत्ते की योनि में जा सकता है और इंसान भी बन सकता है! उसे जब यह पता चलता है तब वह अंदर परेशान होता रहता है कि, 'इस देवगति को छोड़कर ऐसा!'

यानी देवगति में अवधिज्ञान से सुख बढ़ता है, जबकि नर्कगति में अवधिज्ञान से दुःख बढ़ता है। इसी वजह से अवधिज्ञान दिया गया है। यह व्यवस्था कितनी सुंदर है! यह तीर्थंकरों की व्यवस्था नहीं है। इटसेल्फ है यह।

प्रश्नकर्ता : व्यवस्थित है।

दादाश्री : हाँ।

अवधिज्ञान से दुःख का गुणाकार नर्क में

नर्क में अवधिज्ञान इसलिए है कि उसे और भी अधिक दुःख हो। उसे अवधिज्ञान नहीं होता तो अच्छा था लेकिन कुदरत का नियम है कि उसे और अधिक दुःख होना ही चाहिए।

नर्क में दुःख तो बेहिसाब हैं ही, लेकिन यह जो ज्ञान दिया है,

उससे वह यहाँ का देख सकता है। यदि वह उपयोग रखना तय करे कि, 'मुझे देखना है', तो उसे यहाँ का सबकुछ दिखाई देता है।

अब, वह अवधिज्ञान में क्या करता है कि उसके फादर-मदर, भाई सभी अभी कहाँ पर हैं? वह यहाँ पर मनुष्य लोक में पता लगाता है, वह अवधिज्ञान में देखता है कि सब लोग बातें कर रहे हैं, चाय पी रहे हैं, डोसा वगैरह सब खा रहे हैं। उसे ज्ञान में क्या दिखाई देता है कि, 'ओहोहो! ये फादर-मदर, ये मेरी वाइफ, ये सब मज़े कर रहे हैं और मैं अकेला ही नर्क में! मैंने गलत किया तभी यह दु:ख मिला!' तो बल्कि और भी ज़्यादा दु:खी हो जाता है। वह ज्ञान उसे ज़्यादा दु:खी करने के लिए प्राप्त हुआ है।

उसे बहुत दु:ख होता है कि, 'मैंने गलत कर्म बाँध दिए इसीलिए मुझे भुगतना पड़ रहा है। मैंने कर्म बाँधे, लोगों के यहाँ चोरियाँ की, लुच्चाई की, मैंने हरामखोरी की और मेरा इकट्ठा किया हुआ भोगा उन्होंने।' क्योंकि वे तो मना कर रहे थे कि, 'आप अच्छे काम करना, भाई। हमें नहीं चाहिए, ऐसा।' लेकिन वह तो कर आता है न कर्म!

वहाँ पर फिर खुद के मन में ऐसा होता है कि, 'हमारे सब भाई जिन्होंने कोई गुनाह नहीं किया था, वे अच्छी तरह से मज़े में हैं और मैंने ये गुनाह किए, मैंने ये पाप बाँधे, उसी का मुझे यह फल मिला है।' उसके बाद फिर वह तय करता है कि, 'अब कोई भी सुख नहीं भोगना है, अब मोक्ष में ही जाना है।' जैसे कि अगर कोई बहुत बड़ा गुनाहगार हो और उसे बहुत बड़ा दंड दिया जाए तब वह बदल जाता है न! वर्ना नहीं बदलता, सुनेगा ही नहीं न!

नर्कयोनि में दु:ख की वजह से ही वहाँ ऐसे भाव हो जाते हैं कि अब मोक्ष के अलावा और कुछ भी नहीं चाहिए। वे दु:ख सहन नहीं होते, इसलिए तय करता है कि अब कुछ नहीं चाहिए।

[4.2]

मन:पर्यव ज्ञान

अलग रहकर देखता है तमाम पर्यायों को, वह मन:पर्यव

प्रश्नकर्ता : मेरे मन में जो विचार चल रहे होते हैं, वह अवधि ज्ञानी जान सकता है क्या?

दादाश्री : नहीं, मन के विचारों को जानना तो मन:पर्यव ज्ञान का काम है। यह मन:पर्यव ज्ञान अलग है।

प्रश्नकर्ता : यह समझाइए, दादा।

दादाश्री : खुद के मन के सभी पर्यायों को, मन की तमाम स्थितियों को समझ सकता है, इसलिए मन से बिल्कुल अलग ही रहता है और वही फिर सामने वाले के मन के पर्यायों की स्थिति समझ सकता है, वह है मन:पर्यव ज्ञान। मनुष्य की बिसात नहीं है कि मन के पर्यायों को जान सके। उसे तो अंदर क्या विचार चल रहे हैं, उसका भी भान नहीं रहता न, फिर पर्यायों को तो कैसे समझ पाएगा?

लोग खुद के मन से अलग नहीं रह सकते। यह सारी बाहर की बस्ती है, अज्ञानी जीव, उनमें से बहुत ही कम, कुछ ही समय के लिए अलग रह सकते हैं। मन में जैसा आता है उसमें ही (एकाकार) रहते हैं। अब मन से बिल्कुल अलग रहते हों उन्हें, मन में क्या विचार

आते हैं, क्या-क्या हो रहा है, मन क्या डिज़ाइन गढ़ रहा है, क्या-क्या कर रहा है, वह सब उसे खुद को दिखाई देता है। और उस पर से अगर सामने कोई व्यक्ति आ रहा हो तो, 'इस व्यक्ति के आने से अभी इस स्थिति में बदलाव क्यों हुआ', तो उससे सामने वाले के मन में जो विचार चल रहे हैं, उसके स्पंदन अपने मन पर पड़ते हैं। इसलिए हमें उसके सभी विचार दिखाई देते हैं।

मन के फोटो खिंच जाते हैं प्रतिबिंब की तरह

प्रश्नकर्ता : मन:पर्यव ज्ञान से सामने वाले के मन के विचार किस प्रकार से दिखाई देते हैं?

दादाश्री : मन:पर्यव ज्ञान का मतलब है, खुद के मन के पर्यायों को हर तरह से ज्ञेय के रूप में जान लेना, और जब खुद के मन के सभी पर्यायों को जान जाता है तब उसके बाद फिर सामने वाले के मन के पर्यायों को जानना नहीं पड़ता। अगर कोई यहाँ पर आकर खड़ा रहे तो उसके मन के विचार का मुझे पता चल जाता है। अपने मन के पर्यायों को जान लें तो अपना मन दर्पण जैसा हो जाता है। उससे अंदर सामने वाले के मन के पर्यायों के फोटो खिंच जाते हैं।

आप खड़े होकर दर्पण में देख रहे हों, और पीछे से कोई आकर खड़ा हो जाए तो दिखाई देगा न, उसी तरह अपना मन भी दर्पण जैसा हो जाता है।

अब, लोग मन के कहे अनुसार चलते हैं तो मन के पर्यायों को किस तरह से समझ पाएँगे? वह तो अगर कोई मन से बिल्कुल अलग रहता हो, मन का ज्ञाता-द्रष्टा हो, मन वश में आ चुका हो, उसके बाद में मन के पर्यायों को समझ सकता है।

ज्ञानी में, आंशिक मन:पर्यव ज्ञान

खुद के मन की सभी अवस्थाओं को जाने तो वह मन:पर्यव ज्ञान है। इस काल में मन:पर्यव नहीं होता, फिर भी हमें कुछ अंश

तक मन:पर्यव बरतता है। सर्वांश रूप से नहीं बरतता, इसका कारण यह है कि शायद काल का कोई बल होगा। सिर्फ ज्ञानी पुरुष में ही बुद्धि नहीं होती इसलिए वहाँ पर मन:पर्यव के कुछ अंश दिखाई देते हैं। बाकी अन्य किसी जगह पर मन:पर्यव है ही नहीं न! मन:पर्यव किसी को भी नहीं है। हमें बहुत कम अंशों तक का मन:पर्यव ज्ञान रहता है कि आपके मन में क्या चल रहा है, उसका हमें पता चल जाता है। इसलिए, आपके मन को दु:ख न हो, ऐसा हमारा सारा वर्तन होता है।

वीतरागों का मन:पर्यव ज्ञान कैसा था कि सामने वाले के मन में क्या चल रहा है, वे उसे जान सकते थे। बाहर के लक्षणों पर से नहीं, बाहर के लक्षणों पर से तो बुद्धिशाली भी ढूँढ निकालते हैं। लेकिन यह तो हर प्रकार से एक्ज़ेक्ट। हमारा वीतरागों से थोड़ा अलग है। कुछ मार्क्स से फेल हो गए हैं न, इसलिए हर प्रकार से नहीं रहता, आधी (कुछ) प्रकार से पता चलता है।

अक्रम ज्ञान द्वारा ऐसे उत्पन्न होता है मन:पर्यव

यह अक्रम ज्ञान तो अलौकिक ज्ञान है, इससे मन:पर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है। विचार आते हैं और उसके ज्ञाता–द्रष्टा रहते हैं। इसमें तो फिर बुद्धि के पर्यायों को देखने का ज्ञान भी उत्पन्न हुआ है। मन के विचार अज्ञानी को भी दिखाई देते हैं। फिर भी आत्मा हुए बगैर पर्यायों को जानना, मन:पर्यव ज्ञान नहीं माना जाता। ये मन के पर्याय तो जैसे घड़ी में बालचक्र है, वैसे हर क्षण बदलते रहते हैं, इस प्रकार से निरंतर बदलते रहते हैं, उसके ज्ञाता–द्रष्टा रहें तभी मन:पर्यव ज्ञान होता है।

जो मन की अवस्थाओं को देख सकते हैं, उन्हें ज्ञानी कहा गया है। मन के कम्प्रेशन, टेन्शन कितने बढ़ गए हैं, कितने कम हुए हैं, कैसा उल्लास है, कैसा डिप्रेशन है, सभी पर्यायों को देखना, वह मन:पर्यव ज्ञान है।

मन चंचल हो जाए तब पता चल जाता है। कुरेदने लगे तब पता चल जाता है। वह क्या-क्या कर रहा है, ऐसा पता चल जाता है। वह नखरे करे, नाटक करे तो वह सब पता चल जाता है। ऐसा सब जानते हैं। मन की सभी अवस्थाओं को जाने, उसे मन:पर्यव ज्ञान कहते हैं। मन कपट करना चाहे या अपनी मदद करना चाहे, तो वह सब पता चल जाता है। तुझे पता चल जाता है न?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी पता चलता है।

दादाश्री : क्रमिक में साधारण मन:पर्यव ज्ञान होता है जबकि यहाँ पर तो पक्का मन:पर्यव ज्ञान है, सूक्ष्म को भी देख सकता है। यह तो, जो बुद्धि के पर्यायों को भी देख सके, उसे भी ज्ञान कहते हैं। चित्त को तो अज्ञानी भी देख सकते हैं। अशुद्ध चित्त को ज्ञान नहीं माना जाता। अहंकार भी देख सकता है, लेकिन इस तरह देखने वाले ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते हैं।

भगवान के जाने के बाद, 'मन:पर्यव नहीं है', ऐसा कहकर सील लगा दी लेकिन इस अक्रम ज्ञान से हमें मन:पर्यव ज्ञान हुआ है। इसीलिए तो किसी के लिए अतिशय द्वेष हो तो हम जान जाते हैं और वहाँ पर सील लगा देते हैं। फिर जब वह व्यक्ति वापस मिलता है, तब अपने आप ही धमाका होने से रुक जाता है। यदि वह ज्ञान नहीं होता तब तो तुरंत ही धमाका हो जाता।

वास्तव में तीन हैं - श्रुत, मति और केवल

वास्तव में तीन ज्ञान हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और केवलज्ञान। और मन:पर्यवज्ञान व अवधिज्ञान तो पौद्‌गलिक ज्ञान हैं। वे केवलज्ञान होने से पहले उत्पन्न होते हैं लेकिन वह किस काम का? और मैंने जितने लोगों को ज्ञान दिया है न, उतनों में आंशिक रूप से मन:पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो गया है।

[4.3]

'अक्रम' से पार किए श्रुत, मति, अवधि और मनःपर्यव

काल और कर्म के दबाव के कारण बहुत ही कम है अभी यह ज्ञान

प्रश्नकर्ता : अभी कोई अवधि ज्ञानी हैं क्या, यहाँ इस भारत वर्ष में?

दादाश्री : नहीं। बहुत ही कम मात्रा वाला अवधिज्ञान है। यानी कि उसे अवधिज्ञान नहीं कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन इतने सारे महात्मा हैं तो वह क्यों नहीं होता?

दादाश्री : वह इस दूषमकाल को लेकर।

प्रश्नकर्ता : यहाँ अपने पर्याय कितने शुद्ध हो सकते हैं? किस हद तक शुद्ध हो सकते हैं? क्योंकि हमें अवधिज्ञान वगैरह तो सब होने वाला है नहीं, तो?

दादाश्री : उसकी ज़रूरत ही नहीं है। जिसे मोक्ष चाहिए उसे अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान की ज़रूरत ही नहीं है। जिसे इस जगत्

की लीला दिखानी हो, उसे अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान की ज़रूरत है। लेकिन इसमें सब से बड़ा यह होना चाहिए न, कि इसमें रोग न घुस जाए! हमें तो मोक्ष में जाना है और ऐसा रास्ता बनाना है कि लोग मोक्ष में जाएँ, अन्य कोई पगड़ी-वगड़ी नहीं पहननी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह अपने आप नहीं हो जाएगा, दादा? ज़रूरत भी नहीं हो फिर भी, यदि पर्याय शुद्ध होते जाएँ तो...?

दादाश्री : नहीं होगा, अभी इस काल में नहीं हो सकता। यह काल ऐसा है कि नहीं हो सकता। बहुत ही कम मात्रा में अवधि और बहुत ही कम मात्रा में मन:पर्यवज्ञान हो सकता है।

अत: यह अवधिज्ञान, यह तो काफी कुछ कर्म के क्षयोपशम पर आधारित है। इस काल में कर्म के क्षयोपशम इस तरह से हो जाएँ, ऐसा नहीं है। इसलिए बहुत अवधिज्ञान हो सके, ऐसा नहीं है। छोटे प्रकार का अवधिज्ञान होता है। इस काल के कर्मों के क्षयोपशम इतने अधिक ऐसे हैं, दबाव बहुत हैं। उन कर्मों के क्षयोपशम बहुत कम हो जाने चाहिए।

ज्ञानी को रुचि नहीं है 'अवधिज्ञान' में, चाहिए सिर्फ मोक्ष ही

प्रश्नकर्ता : आपके पास श्रुतज्ञान है तो उसमें अवधिज्ञान आ गया न?

दादाश्री : नहीं, अवधिज्ञान नहीं आता। अवधिज्ञान पौद्गलिक ज्ञान है, वह अलग चीज़ है।

कृपालुदेव को जो पिछले जन्म दिखाई दिए थे न, वह एक प्रकार का जातिस्मरणज्ञान ही था।

प्रश्नकर्ता : आपको नहीं है?

दादाश्री : नहीं है। हमें अवधिज्ञान होता न तो कमरे में रोज़

लोग पूछने आते रहते कि, 'मेरे ससुर बड़ौदा के अस्पताल में हैं, तो उनका क्या हुआ होगा? फलाना का क्या होगा?' तो मुझे रात को दस बजे भी सोने नहीं देते।

ये जो बड़े-बड़े साइन्टिस्ट और बड़े-बड़े कैमिस्ट हैं, वे जब कैमिकल बनाते हैं और मुझसे पूछते हैं कि 'दादा, आपको अवधिज्ञान में दिखाई देता है?' मैंने कहा, 'नहीं भाई, मेरा काम नहीं है। वे तो बुद्धि के खेल हैं। बुद्धि नहीं है इसलिए इसमें पड़ते ही नहीं हैं न! हमें तो सिर्फ मोक्ष ही चाहिए और केवलज्ञान सहित रहना है।'

श्रुत व मति मेन प्रोडक्ट, अवधि व मन:पर्यव बाइ प्रोडक्ट

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी में आता है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान केवलज्ञान के कारण हैं और अवधिज्ञान व मन:पर्यवज्ञान की कोई आवश्यकता ही नहीं है। कभी अगर हो जाए तो ठीक है और न भी हो और सीधा, डायरेक्ट केवलज्ञान भी हो जाए। तो यह मुझे ज़रा ज़्यादा समझना है।

दादाश्री : वह ज्ञान खास तौर पर केवलज्ञान के लिए हो या न हो, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। हमें जिस गाँव जाना है... हमें केवलज्ञान तक जाना है। हमें केवलज्ञान स्वरूप बनना है। उसमें अगर यह ज्ञान नहीं होगा तो हर्ज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन किसी को हो सकता है क्या?

दादाश्री : हाँ! कईं लोगों को उदय न भी आए और किसी को आ भी सकता है, लेकिन वह हेल्पिंग नहीं है। उसके बिना केवलज्ञान रुक जाएगा ऐसा नहीं है। मतिज्ञान बढ़ते-बढ़ते जब निन्यानवे पूरे हो जाते हैं तब केवलज्ञान होता है। जब मतिज्ञान टॉप पर पहुँचता है तब केवलज्ञान होता है और अवधिज्ञान व मन:पर्यवज्ञान हो जाएँ या न भी हों, उसकी फिर कुछ पड़ी नहीं है। मतिज्ञान टॉप पर पहुँचना चाहिए तो वह सीधे, डायरेक्ट आत्मा में आ जाएगा। अत: मुख्य है मतिज्ञान

और श्रुतज्ञान, उनके परिणाम स्वरूप ही केवलज्ञान है और यह अवधि और मन:पर्यव तो बाइ प्रोडक्ट हैं, बीच में, रास्ते में आने वाले स्टेशन हैं। केवलज्ञान तक पहुँचते-पहुँचते यह ज्ञान अपने आप ही प्रकट हो जाता है। उसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मनुष्य को प्रयत्न तो मति और श्रुत, सिर्फ इन दोनों में ही करने की ज़रूरत है। पहले श्रुतज्ञान कम्प्लीट होता है, तीन सौ साठ डिग्री हो जाता है। उसके बाद जैसे-जैसे श्रुतज्ञान परिणमित होता जाता है वैसे-वैसे मतिज्ञान में परिणमित होता है। मतिज्ञान जब कम्प्लीट तीन सौ साठ डिग्री का हो जाता है तब केवलज्ञान होता है।

पूरण-गलन स्वभाव वाला, अवधि व मन:पर्यव

प्रश्नकर्ता : मन:पर्यवज्ञान और अवधिज्ञान की ज़रूरत क्यों नहीं है?

दादाश्री : मन:पर्यव और अवधिज्ञान, ज्ञान ही नहीं कहलाते। वे पौद्गलिक ज्ञान हैं, यहाँ बैठे-बैठे *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) देखने की शक्ति उत्पन्न हो गई। हाँ, जो शक्ति उत्पन्न हुई, वह मानसिक शक्ति है, आंतरिक शक्ति है, इन आँखों से नहीं दिखाई देती। वह शक्ति *पुद्गल* को देख सकती है लेकिन वह आत्मा की नहीं है। वे बीच के स्टेशन हैं। यानी कि इन पाँच प्रकार के ज्ञान में से मति और श्रुत, ये दोनों ज्ञान कार्यकारी हैं। मन:पर्यव व अवधि, ये दोनों उत्पन्न होते हुए ज्ञान हैं। वे तो केवलज्ञान होने से पहले, रास्ते में होते हैं। वे बाइ प्रोडक्ट हैं। किसी में उत्पन्न होते हैं और किसी में उत्पन्न नहीं भी होते। उससे कोई लेना-देना नहीं है। वह हर किसी के बाइ प्रोडक्शन पर आधारित है। अगर किसी की इच्छा है तो केवलज्ञान होते हुए, बीच में ये दोनों ज्ञान हो सकते हैं, सभी के साथ ऐसा नहीं होता। इनमें कोई बहुत मज़ा नहीं है।

अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान समझ में आ सके, ऐसी चीज़ नहीं है। वे तो आंशिक रूप से उत्पन्न होते हैं। लेकिन लोगों को पता

नहीं है कि ये पौद्गलिक ज्ञान हैं और ये *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना) स्वभाव वाले हैं। वे कब खत्म हो जाएँ, कहा नहीं जा सकता। इसके बजाय लोगों के पास जो कुमति, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान है, वही ठीक है।

ज्ञानी किस प्रकार के ज्ञान में रहते हैं?

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में ज्ञान के पाँच प्रकार कहे गए हैं : मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव और केवल, तो इनमें से ये सभी आत्मज्ञान के ही प्रकार हैं?

दादाश्री : वह तो रास्ता है, सीढ़ियाँ हैं। इनमें से दो ही सीढ़ियाँ हैं, मति और श्रुत और बाकी के सब फल हैं।

प्रश्नकर्ता : इनमें से आपको किस प्रकार का ज्ञान है?

दादाश्री : हमारा ज्ञान केवलज्ञान से चार अंश कम है। यानी कि हमारा ज्ञान केवलदर्शन वाला है। हमारे पास अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान नहीं हैं। हमारे पास मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से आगे का... केवलज्ञान के अंशों में चार अंशों की कमी है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे मतिज्ञान ही कहेंगे न?

दादाश्री : नहीं, अंश केवलज्ञान कहा जाएगा। मतिज्ञान अहंकार सहित होता है। इसमें, अहंकार नहीं है हमारे अंदर ज़रा सा भी।

एक महाराज साहब ने मुझसे पूछा, 'आपको अवधिज्ञान हुआ है? मन:पर्यवज्ञान हुआ है?' मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा ज्ञान हमें नहीं हुआ है। हमें उस ज्ञान की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि मोक्ष में जाने के लिए ऐसे ज्ञान की ज़रूरत नहीं है। यह पौद्गलिक ज्ञान है।' फिर वे महाराज समझ गए।

हमें मन:पर्यवज्ञान है, बहुत छोटे स्टेप वाला। लेकिन अगर हम वह बताएँगे तो फिर लोग बड़े स्टेप वाला ढूँढेंगे। इसके बजाय यह

झंझट ही छोड़ दो न! हमने वैसा व्यापार ही नहीं किया! 40 किलो सोना रखा हो और 1000 किलो माँगे तो क्या करेंगे हम? उसके बजाय (हमें) बात ही छोड़ देनी है, 'सोना-वोना यहाँ पर नहीं है', कहते हैं। आपके मन में क्या है, वह हम पढ़ सकते हैं। लेकिन वह कुछ हद तक ही पढ़ सकते हैं, पूरा नहीं पढ़ सकते। यदि पूरी तरह से पढ़ा जा सके, तब उसे मन:पर्यवज्ञान कहा जाएगा। अभी वैसा नहीं है। किसी जगह पर पूछ रहे थे कि यदि ऐसा है तो अच्छी बात है। मैंने कहा, नहीं है, हमारे पास तो आत्मज्ञान है। और कुछ भी नहीं है हमारे पास।

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान में पाँचों ज्ञान समा गए न?

दादाश्री : सबकुछ आ गया। इस एक ही रूम में सभी लोग समा गए हैं न, ऐसे। पाँच नहीं, सभी। जितने भी ज्ञान हैं, वे सभी आत्मज्ञान में समा गए।

केवल रमणता, ज्ञाता-द्रष्टा रूपी

प्रश्नकर्ता : आप अभी ज्ञान में क्या देख सकते हैं?

दादाश्री : उसमें देखना है ही नहीं, रमणता ही है, बस। ज्ञाता-द्रष्टा रूपी रमणता है, उससे चलता है। देखना-करना नहीं है, निरंतर रमणता में ही। पहले पर-रमणता थी, अहंकार में ही रमणता थी कि किस तरह से मान मिले, किस तरह से अपमान न हो, इसका ही ध्यान। पूरे दिन उसी का ध्यान रखते थे। कोई कहे कि, 'इतने रुपये चले गए। तो वे गए तो गए भाई, लेकिन उससे अपमान हो ऐसा नहीं है न?' तो कहते हैं, 'नहीं।' यानी अहंकार को संभालने में ही रमणता। जैसे कि वह अहंकार हमें रोज़ लाभ नहीं करवाता हो! उसे पर-रमणता कहते हैं, पौद्‌गलिक रमणता और यह स्व-रमणता उत्पन्न हुई है। इसे स्व-चारित्र कहा जाता है। बाकी हमें कोई और ज्ञान नहीं है। जाति-स्मरण कहो या दूसरा कहो या तीसरा कहो, कुछ भी नहीं है। याद शक्ति ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : यह याद शक्ति तो बहुत दिखाई देती है।

दादाश्री : नहीं है यह याद शक्ति। याद शक्ति तो किसे कहते हैं? कि शास्त्र पर मुझे राग हो तो मुझे याद रहता है। मुझे शास्त्र पर भी राग नहीं है। इसीलिए तो मैं शास्त्र–वास्त्र सब भूल चुका हूँ।

जिस चीज़ के प्रति आपके राग–द्वेष चले गए, तो वह चीज़ आप भूल जाते हो। हमें कोई भी चीज़ याद नहीं है।

यह तो, हमें दिखाई देता है। हम देखकर बताते हैं। यह सब हम देखकर बताते हैं, दर्शन से। यह शास्त्रों की बातें नहीं बताते, दर्शन की बातें बताते हैं। आपके पूछने पर जो दिखाई देता है, वही हम बताते हैं और पूरा ही नया माल है, ताज़ा। ताज़ी मिठाई, शास्त्रों की मिठाई तो बहुत समय पहले की है जबकि यह तो ताज़ी है। लोग पूछते हैं कि, 'आप यह तुरंत किस तरह बताते हैं'? मैं देखकर बताता हूँ, उसमें देर ही कितनी लगे फिर? ऐसे देखा तो दिखाई देता है। 'किसमें देखते हैं?' तो बताते हैं, 'केवलज्ञान में देखता हूँ'।

प्रत्यक्ष हैं, इसलिए देते हैं सबकुछ सामर्थ्य के अनुसार

प्रश्नकर्ता : आपके पास जो ज्ञान है, वह परोक्ष है या प्रत्यक्ष है?

दादाश्री : हमें तो परोक्ष है ही नहीं न! प्रत्यक्ष ही है। और फिर जब वह बताता हूँ तब वह भी प्रत्यक्ष ज्ञान है। मुझे तो प्रत्यक्ष हुआ है। प्रत्यक्ष अर्थात् सौ का नोट, नकद। अगर पेपर पर लाइट (चित्र में) हो तो वह परोक्ष कहलाती है, और जो प्रकाश दे, वह प्रत्यक्ष लाइट कहलाती है। अत: जो प्रकाश दे, वैसी लाइट होनी चाहिए।

हमारे अंदर प्रत्यक्षपन प्रकट हो गया है और परोक्ष अर्थात् इस प्रकार से था, और वैसा था, वगैरह, वगैरह। आगे से चली आई है। पूर्व काल में जो भगवान हो चुके हैं, वे भगवान आज बहुत हेल्प नहीं

करते। आज प्रकट हैं, वे सभी चीज़ें दे सकते हैं। जितना सामर्थ्य हो उतना, सारा ही दे देते हैं और परोक्ष कुछ भी नहीं दे सकते।

शुक्लध्यान बरते, वह है अंश केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन:पर्यवज्ञान, अवधिज्ञान और केवलज्ञान, ये पाँच ज्ञान हैं, इनमें से, आपने हमें जो ज्ञान दिया है, वह कौन सी लाइन में आता है?

दादाश्री : केवलज्ञान में आता है। यह केवलज्ञान ही दिया है। यह जो मैं देता हूँ, केवलज्ञान उससे बाहर नहीं है। यह मतिज्ञान नहीं है। मतिज्ञान बुद्धि में समाता है। कौन सी? सद्बुद्धि। यह तो केवलज्ञान है। वर्ना अगले दिन प्रकाश हो ही नहीं पाता और आत्मा कभी भी हाथ में नहीं आ पाता। ऐसा अलख आत्मा, जिसका कभी भी *लक्ष* (जागृति) नहीं बैठता है। बाकी सभी चीज़ों का *लक्ष* बैठता है। यह तो केवलज्ञान दिया है। मुझे नहीं पचा और आपको दिया है, वह आपको भी नहीं पचेगा। चाहे न पचे। बाद में, देर से पचेगा, एक जन्म के बाद पचेगा लेकिन पचे बगैर कोई चारा है क्या? केवलज्ञान के अंश इकट्ठे होने लगे हैं अब। मतिज्ञान रहता है, तब तक केवलज्ञान के अंश इकट्ठे नहीं होते। मतिज्ञान पूर्ण हो जाने के बाद से केवलज्ञान के अंशों की शुरुआत होती है। उसके बाद केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान की शुरुआत किसे कहा जाता है, शुक्लध्यान बरते तो। जिसे शुक्लध्यान बरतता है तो वहाँ केवलज्ञान के अंश की शुरुआत हो गई। और मतिज्ञान का ऐसा नियम नहीं कि शुक्लध्यान बरते। श्रुतज्ञान का ऐसा नियम नहीं है कि शुक्लध्यान बरते। श्रुतकेवली होते हैं, लेकिन उन्हें शुक्लध्यान नहीं हुआ होता। श्रुतकेवली किसे कहा जाता है? जैसे कि आप सब को आत्मा का केवलज्ञान उत्पन्न होता है, उसी तरह से शास्त्रों वाला केवल आत्मा का ज्ञान, शास्त्रों वाला केवलज्ञान, शाब्दिक रूप से है, अनुभव के रूप में नहीं है। जबकि अपना अनुभव रूपी है।

आत्मज्ञान के बाद, नहीं है ज़रूरत अन्य किसी ज्ञान की

प्रश्नकर्ता : अब यदि ज्ञान है तो आत्मज्ञान के बाद वाले जो मति, श्रुत, अवधि व मन:पर्यवज्ञान हैं, वे सब नहीं हो पाएँगे?

दादाश्री : वे सभी प्रकार के ज्ञान पार करके केवलज्ञान के नज़दीक आकर खड़े हो गए हो। फिर मति, श्रुत की या अवधि की कोई ज़रूरत नहीं है। मन:पर्यवज्ञान की ज़रूरत नहीं है। आत्मज्ञान को जान लिया तो हो गया मोक्ष। इन सब में से मतिज्ञान मुख्य कारण हैं। अब, मतिज्ञान से तो क्रमिक मार्ग में कब अंत आएगा? सभी आचार्य मतिज्ञान वाले हैं, श्रुतज्ञान वाले हैं लेकिन मति, श्रुत सम्यक् होने चाहिए। अब सम्यक् कहाँ से लाएँगे वे? सम्यक् तो ज्ञानी के पास से मिलना चाहिए। जो ज्ञान 'जिन (भगवान)' से सुना हुआ हो, वह सम्यक् ज्ञान, श्रुतज्ञान है। 'जिन' से डायरेक्ट सुनने पर सम्यक् ज्ञान होता है, वर्ना सम्यक् ज्ञान कैसे होगा? अर्थात् मतिज्ञान भी सम्यक् ज्ञान नहीं है, मिथ्या है।

प्रश्नकर्ता : मतिज्ञान हो जाए तो वह सम्यक् ज्ञान ही कहलाएगा न?

दादाश्री : नहीं! मतिज्ञान दो प्रकार के होते हैं। एक होता है मिथ्या और दूसरा सम्यक्। मिथ्या मतिज्ञान, मिथ्या श्रुतज्ञान और मिथ्या अवधिज्ञान। तीन ज्ञान वे हैं और तीन ज्ञान ये हैं, सम्यक् मतिज्ञान, सम्यक् श्रुतज्ञान, सम्यक् अवधिज्ञान।

प्रश्नकर्ता : इसी प्रकार केवलज्ञान भी दो प्रकार के नहीं होते?

दादाश्री : नहीं, अवधिज्ञान से आगे दो प्रकार का कोई ज्ञान ही नहीं है। अवधिज्ञान तो बहुत प्रकार के होते हैं। मन:पर्यवज्ञान एक ही प्रकार का होता है, वह सम्यक् होता है। मन:पर्यवज्ञान दो प्रकार के नहीं होते। अवधिज्ञान दो प्रकार के होते हैं। मिथ्या भी होता है और

सम्यक् भी होता है। चर्चिल को मिथ्या अवधिज्ञान था, वह ऐसा सब देख सकता था कि दो साल बाद क्या होगा, डायरेक्ट आत्मा से देख सकता था, लेकिन मिथ्या, उसे कुअवधि कहते हैं।

तो अब, वह ज्ञान क्या कुछ ऐसा-वैसा ज्ञान है? वह कहता है फैक्ट, लेकिन फिर भी कहलाएगा अज्ञान, लेकिन है तो ज्ञान-अज्ञान के संदर्भ में। किस संदर्भ में? कि आत्मा जानने के हिसाब से यह अज्ञान है।

अब, अपना जो है यह दर्शन, ज्ञान व चारित्र है। क्रमिक में ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। अर्थात् उनका जो ज्ञान है, वह शास्त्रों के आधार पर है, वह शास्त्रों में से, या सुना हुआ होता है, वह सारा मतिज्ञान में परिणमित होता है। मतिज्ञान ही उनका ज्ञान है। वह मतिज्ञान जब अनुभव में आता है तब दर्शन और प्रतीति स्थापित करता है। यहाँ, अक्रम में पहले प्रतीति दी जाती है।

मति-श्रुत व अवधि हैं परोक्ष, मन:पर्यव व केवल हैं प्रत्यक्ष ज्ञान

प्रश्नकर्ता : ये जितने भी ज्ञान हैं, केवलज्ञान के अलावा, वे सभी परोक्ष ज्ञान हैं न?

दादाश्री : हाँ! ऐसा है न, ये तीनों ज्ञान यानी कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, ये परोक्ष ज्ञान हैं और मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान, ये दोनों प्रत्यक्ष हैं।

प्रश्नकर्ता : इन मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान को परोक्ष क्यों कहा गया है?

दादाश्री : वे परोक्ष इसलिए हैं कि उसे, इनके लिए विचार-विचार का, सब का आधार चाहिए बीच में, डायरेक्ट कुछ भी नहीं देख सकता है वह। उस आधार की ज़रूरत है इनके लिए।

मन:पर्यव अर्धप्रत्यक्ष, केवलज्ञान प्रत्यक्ष

प्रश्नकर्ता : दादा, तो मन:पर्यवज्ञान को प्रत्यक्ष क्यों कहा गया है?

दादाश्री : मन:पर्यव प्रत्यक्ष कहलाता है। यानी कि हमें थोड़ा-बहुत जो समझ में आता है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान यानी कि आपके मन में जो चल रहा होता है, उसका हमें ज़रा आभास होता है। हम यदि वहाँ उपयोग रखें तो हमें समझ में आता है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। उसमें किसी और चीज़ की, हथियार की ज़रूरत नहीं है जबकि उसमें तो हथियार की ज़रूरत है, विचार वगैरह सारे।

प्रश्नकर्ता : प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियों की ज़रूरत नहीं हैं?

दादाश्री : नहीं, लेकिन मन:पर्यव बिल्कुल प्रत्यक्ष नहीं है, अर्धप्रत्यक्ष जैसा है, और वह केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है, बिल्कुल प्रत्यक्ष।

[5]

ज्ञानी ने जाना विपरीत ज्ञान, विभंग-जाति व त्रिकाल को

[5.1]

विभंगज्ञान

कुश्रुत और कुमति पहुँचाते हैं विभंग तक

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार से मतिज्ञान बताया, जिस प्रकार से श्रुतज्ञान बताया, उसी तरह अज्ञान में भी मति, श्रुत वगैरह ऐसे प्रकार होते हैं क्या?

दादाश्री : हाँ! ऐसे तीन प्रकार हैं, उन्हें कुमति, कुश्रुत और कुअवधि कहते हैं। इस संसार के पौद्‌गलिक ज्ञान के लिए जो भी समझा जाता है, वह सब कुमति कहलाता है। सारा संसारी ज्ञान जानते हैं, ये विवाहित जीवन में जो होशियार होते हैं, फलाने में होशियार होते हैं, वकालत में एक्सपर्ट हुए हैं, डॉक्टर बने हैं, वे सब कुमति कहलाते हैं। कुमति कहाँ से उत्पन्न हुई? तो कहते हैं, कुश्रुत में से। उस ज्ञान की पुस्तकों में से, वे भगवान की ट्रेडमार्क वाली नहीं हैं। कुश्रुत को पढ़ा इसलिए कुमति हुई, उसके बाद कुअवधि होता है।

सांसारिक अभिलाषाएँ कुश्रुत हैं। उस वजह से ऐसी जो पुस्तकें,

ऐसे साधन मिल जाते हैं, वे कुमति हैं। ऐसा करते-करते जब वे साधन बहुत बढ़ जाते हैं तब कुअवधि हो जाती है। प्रकाश बढ़ जाता है तो खुल्लम खुल्ला दिखाई देता है। अपने यहाँ पर कुश्रुत, कुमति और कुअवधि कम हैं। यह तो अभी इनकी पुस्तकें और ज्ञान घुस गए हैं। वर्ना अपने यहाँ तो अंतर सूझ के आधार पर ही चलते थे। अभी यह फॉरेन का घुस गया है इसीलिए सभी प्रकार के यंत्र बनाने लगे हैं, वह कुश्रुत और कुमति है।

अपना अंतर ज्ञान और अंतर सूझ और फॉरेन वालों का बाह्य ज्ञान और बाह्य सूझ। सूझ अर्थात् अंतर सूझ, जो फॉरेन के लोगों में कभी भी नहीं होती है। उन लोगों के पास बाह्य ज्ञान और बाह्य सूझ है। वे कुमति, कुश्रुत और कुअवधि तक पहुँचते हैं।

कुअवधि अर्थात् किसी भी साधन के बिना उसे यह दिखाई देता है कि क्या होगा। जो किसी से भी डिप्रेस नहीं होता, वह है कुअवधि ज्ञान। कुमति और कुअवधि वगैरह कपट लोभ-मान और अहंकार को बढ़ाते हैं।

अभी लोगों में यह जो बुद्धि (ज्ञान) है न, वह मतिज्ञान नहीं कहलाता है, वह कुमति कहलाता है। यदि आत्मा से संबंधित पढ़ा होता न तो उसे मतिज्ञान कहा जाता। वह सुश्रुत कहलाता है और यह कुश्रुत कहलाता है। यह सारा ही, पुस्तकें-वुस्तकें सब कुश्रुत। उससे कुमति उत्पन्न होती है और विभंगज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : विभंगज्ञान किसे कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, यह जो विभंगज्ञान है वह, जिसे कुमति कहते हैं न, वह किसमें से उत्पन्न होता है? कुश्रुत।

कुश्रुत वह है जो संसार का विकास करता है। ऐसा पठन, ऐसा श्रवण जो संसार को पुष्ट करता है, उसे कुश्रुत कहा जाता है। जब तक कुश्रुत है तब तक सुश्रुत का अंश भी नहीं आ सकता।

अब, अभी तो हम ये जो सारी पुस्तकें पढ़ते हैं, जितनी भी पुस्तकें, सभी जगह, स्कूल में पढ़ी हैं न, वे जो पढ़ते हैं, वे सब कुश्रुत हैं। पूरा वर्ल्ड ये जो सारी पुस्तकें पढ़ता है न, वे सब कुश्रुत हैं। जिनमें आत्मा की बात नहीं आए, वे सभी कुश्रुत कहलाते हैं। कुश्रुत का फल क्या है? कुश्रुत का फल कुज्ञान कहलाता है, विपरीत ज्ञान और विपरीत ज्ञान का फल क्या है? तो कहते हैं, विभंगज्ञान। तो आज सभी जगह पर विभंगज्ञान बरत रहा है। पूरा जगत् विभंगज्ञान में ही है अभी।

सरल को उलझाकर, विभंगी ले लेता है पाश में

प्रश्नकर्ता : विभंगज्ञानी यानी कौन?

दादाश्री : विभंगज्ञानी अर्थात् क्या आप ऐसे किसी बड़े ऑफिसरों के चक्कर में नहीं फँसे हो, कि जिनके सामने आप अपनी सही बात रखो फिर भी वे ऐसा कुछ कहते हैं कि आपकी सही बात निरस्त हो जाती है। इस तरह आप किसी के हत्थे नहीं चढ़े होंगे, नहीं? हंड्रेड परसेन्ट सत्य को उड़ा दें वैसे। ऐसे विभंगज्ञानी यानी क्या? ऐसे-ऐसे वाक्य बोलते हैं कि हम चुप हो जाते हैं। हमें कुबूल भी करना पड़ता है कि ये ऐसी दलीलें करते हैं कि हमें हिलाकर रख दे देते हैं। यानी कि वहाँ पर सीधे मनुष्यों का काम नहीं है।

यदि विभंगी सामने मिल जाए तो वह हमारी सही बात को निरस्त कर देता है। फिर आप उसे समझा ही नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान को तोड़ देता है? ज्ञान में भंग डालता है?

दादाश्री : नहीं, और ज़्यादा उलझा देता है। उसका खाता सीधा नहीं होता, टेढ़ा खाता। सरल लोग जहाँ उलझ जाते हैं, वैसे वे विभंगज्ञानी कहलाते हैं। आप कभी उलझे हो क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, उलझे हुए ही हैं। सही है।

दादाश्री : आपकी बात सही हो फिर भी बाज़ी मार ले जाते हैं, उस तरह से उलझे हो क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बाज़ी मार ले जाते हैं।

दादाश्री : वे सब विभंगज्ञानी कहलाते हैं। अपने यहाँ पर विभंगज्ञानी होते हैं। वे कैसे होते हैं? कुछ बड़े, हाइ लेवल के ऑफिसर होते हैं न, वे सब ऐसे होते हैं। अगर आप उनके पास जाओ न, तो आपको उनसे कोई भी काम करवाना हो न तो वे ऐसे शब्द बोलते हैं कि आप उनकी बात का जवाब भी नहीं दे पाते। विभंगज्ञान के वे ऐसे शब्द बोलते हैं कि बहुत समझदार होने पर भी हमें उलझा कर रख देते हैं। वे ऐसा कुछ कहते हैं कि हमें कोई रास्ता ही नहीं मिलता और फिर हम उलझ ही जाते हैं। मैं भी उलझ जाता हूँ न!

वह ऐसा कुछ कहता है कि आपका सही ज्ञान काम ही नहीं करता। बल्कि आप उस इंसान से बंध जाते हो और आप कुछ बोलो तो वह बंधा हुआ हो फिर भी छूट जाता है। वह ऐसा कुछ कहता है कि सामने वाला व्यक्ति बंध जाता है। सरल व्यक्ति तो तुरंत ही उसके पाश में आ जाता है। आप यों पहचान नहीं सकते कि इसे विभंगज्ञानी कहते हैं। हमें तुरंत ही पता चल जाता है कि यह आदमी विभंगज्ञानी है।

कुअवधि दर्शन विभंगी के लिए बहुत ही नुकसानदायक

हम सरल और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान वाले हैं जबकि वह उलझन भरा ज्ञान, मनुष्य को उलझा देता है। फिर उससे लाभ उठाते हैं वे। कई लोग लाभ उठाते ही हैं न, यहाँ पर सरल लोगों से! यानी वह एक प्रकार का दर्शन है और वह उसे दिखाई देता है। इस तरह का बोलता है लेकिन वह उसे (खुद को) उलझा देता है, जैसे घानी चलती है न, वैसे संसार में घुमाता रहता है। उसके लिए फायदेमंद नहीं है। वह बहुत नुकसानदायक है। फायदेमंद तो है यह शुद्ध ज्ञान, जो ज्ञान किसी को उलझन में नहीं डालता। बहुत उच्च ज्ञान हो, चाहे कैसा भी हो लेकिन जो ज्ञान किसी को उलझन में न डाले, उसे ज्ञान कहते हैं। विभंगी तो हमें उलझन में डाल देता है। सरल लोग तो बेचारे बहुत जल्दी उलझ जाते हैं, वे बोलते ही ऐसा हैं। कुछ कह नहीं पाते, उस

तरह से विभंगी उन्हें उलझाता रहता है, सीधे लोगों को बहुत परेशान करता है।

विभंगी से निपट सकते हैं उसकी जाति वाले ही

प्रश्नकर्ता : ये टॉप क्लास लॉयर्स, बैरिस्टर्स (उच्च कक्षा के वकील) सामने वाले को उलझाकर रख देते हैं। वे मनुष्य की न्युसन्स वैल्यू (परेशानी) बढ़ा देते हैं, न्युसन्स क्रिएट (खड़े) करते हैं।

दादाश्री : यानी?

प्रश्नकर्ता : वे खुद बेकार ही उलझन खड़ी करते हैं।

दादाश्री : नहीं, न्युसन्स नहीं करते। वह न्युसन्स अलग चीज़ है और यह विभंगीज्ञान अलग है। विभंगी तो फिर हँसता है। हम फँसते जाते हैं, और वह हँसता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही है।

दादाश्री : मैंने ऐसे सब बहुत देखे हैं। मैं भी पकड़ में आ जाता हूँ। मैं ज्ञानी हूँ लेकिन फिर भी मुझे पकड़ लेते हैं वे। क्योंकि वे विभंगी हैं। उन्हें हर दिशा से भाग जाने की छूट है और हमारे पास एक ही डायरेक्शन में जाने की छूट है। उसके लिए तो सभी डायरेक्शन खुली हैं। आपको समझ में आ गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ। उन पर किसी भी प्रकार का रिस्ट्रिक्शन (नियंत्रण) है ही नहीं।

दादाश्री : नहीं, रिस्ट्रिक्शन ऐसा नहीं। उसे सिर्फ ऐसा ही रहता है कि कैसे सामने वाले मनुष्य को बाँध लूँ और कैसे उससे लाभ उठा लूँ।

प्रश्नकर्ता : बस, बस, बिल्कुल सही है, दादाजी।

दादाश्री : उसे मैं 'विभंगी' कहता हूँ। मैंने भी ऐसे देखे हैं।

इसलिए मैं तो फिर से वहाँ नहीं जाता कि यह विभंगी इंसान है, अपना काम नहीं है यहाँ। इस विभंगज्ञानी से तो विभंगज्ञानी ही निपट सकता है, और कोई नहीं निपट सकता।

उल्टे रेवॉल्यूशन, और निरा कपट ही

प्रश्नकर्ता : तो दादा, वह कपटी है न? उसका मन कपटी है न?

दादाश्री : निरा कपट ही, लेकिन हँस-हँसकर अच्छी तरह से अपनी बातें रखता है, वह इस तरह से बोलता है न, कि आप जैसे सीधे इंसान को पिंजरे में डाल देता है। नहीं देखे ऐसे लोग?

प्रश्नकर्ता : देखे हैं दादा। ऐसे वकील होते हैं कि जहाँ पानी न हो, वहाँ पानी बताते हैं।

दादाश्री : ये सब रेवॉल्यूशन हैं लेकिन फिर रेवॉल्यूशन दो प्रकार के होते हैं। एक, यहाँ पर (मशीनरी) जो उल्टा घूमता है, जानते हो आप? एक उल्टे रेवॉल्यूशन और दूसरे सीधे रेवॉल्यूशन। सीधे रेवॉल्यूशन सम्यक् मार्ग पर ले जाते हैं, उल्टे रेवॉल्यूशन विपरीत मार्ग पर ले जाते हैं। उल्टे रेवॉल्यूशन वाले तो बहुत बड़े-बड़े ऑफिसर होते हैं, वे आपसे कुछ पूछें तो आप जवाब ही नहीं दे पाओगे, विभंगी बातें करते हैं। उनकी बातें अपने दिमाग़ में ही नहीं समातीं। विभंगी जब कुछ बोलता है तब मुझे जवाब देना नहीं आता। तब मैं मज़दूर की तरह बैठ जाता हूँ। क्योंकि वह विभंगी वाणी है, उल्टे रेवॉल्यूशन। मेरे रेवॉल्यूशन सीधे हैं और तेरे उल्टे रेवॉल्यूशन। फिर मेरे इंजन का तेरे इंजन से कैसे ताल-मेल बैठेगा?

परमाणु के लेवल पर नहीं है आकर्षण उसे, ज्ञानी के सत्संग का

अर्थात् विभंगी तो... कई लोग ऐसे होते हैं। वहाँ हमारा भी काम नहीं है। हम भी विभंगी से दूर रहते हैं। उन्हें साहब कहकर

बुलाते हैं क्योंकि वे बोल में ही बाँध देते हैं हमें, और हम बंध जाते हैं। विभंगी तो दूर से ही भले। हालांकि मिलते नहीं हैं लगभग। वैसा आकर्षण ही नहीं है न!

कोई विभंगी मनुष्य आ जाए तो हम बहुत बातें नहीं करते। वह हम से कर भी नहीं पाता, वह चुप हो जाता है, यहाँ पर उसकी बोलती बंद हो जाती है। अगर हम उससे कहें कि, 'भाई, तू कुछ पूछ', फिर भी वह बोल नहीं पाता।

विभंगी अपने यहाँ पर नहीं आ पाता। अपने इस सत्संग का लेवल ऐसा है कि एक स्तर तक के लोग ही यहाँ पर आ पाते हैं और उससे नीचे के स्तर वाले नहीं आ पाते। विभंगी यानी जो इंसान लोगों को उलझा देते हैं, वैसे लोग यहाँ पर नहीं आ पाते। कुछ ही लोग, और वे भी क्वॉलिटी वाले लोग (सत्संग में आ पाते हैं)। फिर उनमें से ज़रा दो प्रतिशत माल झूठा निकलता है लेकिन वह सारा क्वॉलिटी माल है, हाई क्वॉलिटी। जो बिना नियम के चलते हैं, वे हाई क्वॉलिटी नहीं कहलाएँगे? बिना नियम के चलते ही हैं न? कितनी बड़ी... हाई क्वॉलिटी!

उसे दिखाई देता है आत्मा से, न कि बुद्धि से

प्रश्नकर्ता : विभंगज्ञानी अर्थात् मिथ्यात्व वाला होता है, लेकिन यों बुद्धि के शिखर पर होता है?

दादाश्री : नहीं, बुद्धि की झंझट नहीं होती। वह एक प्रकार का अवधिज्ञान है। वह कुअवधि कहलाता है और यह सुअवधि कहलाता है। यानी कि वह देख सकता है उसे।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह बुद्धिपूर्वक किया गया आकलन होता होगा क्या?

दादाश्री : नहीं, बुद्धिपूर्वक नहीं। यदि बुद्धि है तो वह ज्ञान कहलाएगा ही नहीं, उसे कुअवधि कहते हैं। वह भी आत्मा के माध्यम

से दिखाई देता है, मन-बुद्धि के माध्यम से नहीं। हो सकते हैं इस काल में ऐसे लोग!

प्रश्नकर्ता : उसे तांत्रिक क्रिया कहा जाता है? यह जो तंत्र-वंत्र करते हैं, वैसी क्रिया कहलाती है क्या वह?

दादाश्री : नहीं, तांत्रिक-वांत्रिक नहीं। वह तो यों ही, सहज स्वभाव से दिखाई देता है। चर्चिल को सहज स्वभाव से दिखाई देता था, 'ऐसा होगा और वैसा होगा' और फिर रौब से सिगरेट फूँकता था, रौब से रहता था न! किसी के बाप का भी डर नहीं था। वह बना-ठना रहता था। कोई बम डलवाता था तब भी उस पर ज़रा सा भी असर नहीं होता था। क्योंकि उसे कुअवधि ज्ञान था।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो व्यवहार में भी किसी को दिखाई दे सकता है, हिसाब लगाकर कि बारह महीने या अगले साल ऐसा हो जाएगा। बाद में ऐसा होगा। ऐसा पता चल ही जाता है, ऐसा हिसाब लगाकर?

दादाश्री : वैसे पता चलना अलग बात है, और ऐसा दिखाई देना... ऐसा एक्ज़ेक्ट दिखाई देता है। युद्ध कर रहे हों, ऐसा भी दिखाई देता है।

दो साल बाद युद्ध होगा, उसे ऐसा दिखाई देता था। अब, क्या वह अंदर प्रत्यक्ष दिखाई देता है? तो कहते हैं, हाँ। प्रत्यक्ष, आत्मा से। यह ज्ञान किसके द्वारा हो सकता है? तो कहते हैं, विभंगज्ञान से हो सका है। विभंगज्ञान में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। अब यह जो विभंगज्ञान है, वह उल्टा ज्ञान है। लेकिन फिर भी ज्यों का त्यों प्रत्यक्षता को दिखाता है।

जिस प्रकार से अवधिज्ञान, सम्यक् बुद्धि वाले को, सम्यक् समझ वाले को होता है, उसी प्रकार कुअवधि ज्ञान, मिथ्या समझ वाले को होता है लेकिन आत्मा की लाइट तो दोनों जगह पर काम करती है, लेकिन वह है विपरीत।

कुअवधि ज्ञान तो बहुत बड़ा कहलाता है। वह इस (संसार के) किनारे पर पहले नंबर का इंसान कहलाता है। जिस तरह उस (मोक्ष के) किनारे पर तीर्थंकर पहले नंबर पर हैं, उसी प्रकार इस किनारे पर वह पहले नंबर पर है। विभंगज्ञान तो ऐसा है कि घर में से सभी संसारी दु:खों को निकालकर खत्म कर देता है। संसार में बहुत अच्छी तरह से शांति भोग सकता है लेकिन वह गधे की मस्ती जैसा है।

विभंगी उल्टी सत्ता है, नहीं स्वीकार करते ब्रह्मांड में देवी-देवता

इस जगत् में चर्चिल बहुत बड़ा इंसान था फिर भी, अंत में उसका प्रेसिडेन्ट पद जाने के बाद जब वह लंडन में घर ढूँढने निकला तो नहीं मिला। ऐसा है यह जगत्! क्योंकि अगर आप हार्टिली होंगे तभी पब्लिक आपके लिए है और अगर हार्टिली नहीं हो और विभंगी हो, आपकी सत्ता विभंग के आधार पर है तो कोई भी आपको नहीं पूछेगा। वह सत्ता विभंग के आधार पर है और मेरी यह जो सत्ता है, वह हार्टिली सत्ता है। इसलिए इसे सीधी (पॉज़िटिव) सत्ता कहा जाएगा। विभंगी ज्ञान उल्टी सत्ता है। आप सब में ज्ञान की सत्ता पॉज़िटिव सत्ता कहलाएगी। देवी-देवताओं को भी कुबूल है, पूरे ब्रह्मांड में सभी को कुबूल है। जबकि इनकी सत्ता तो, इनके जाति वालों को ही कुबूल होती है, फिर भी वह ज्ञान तो है ही, वह त्याग के बिना नहीं हो सकता। उसे कितने ही प्रकार के शक्ति के त्याग बरतते थे। सिर्फ इतना ही था कि वह सिगरेट का धुँआ उड़ाता रहता था। बाकी दूसरी तरफ, हर बात में नियमपूर्वक, कानूनन, रेग्युलर, बिल्कुल रेग्युलर इंसान!

[5.2]

जाति-स्मरण ज्ञान

स्मृतिज्ञान से नहीं है बढ़कर, जाति-स्मरण ज्ञान

प्रश्नकर्ता : जाति-स्मरण ज्ञान क्या है?

दादाश्री : वह ज्ञान ही नहीं है, जाति-स्मरण ज्ञान, वह ज्ञान ही नहीं है। वह तो याददाश्त है, स्मृति है वह तो। जाति का स्मरण, जाति स्मृति। जाति स्मृति ज्ञान, उसमें यदि याद किया जाए तो याद आता है।

पूर्व जन्म का दिखाई देना, वह तो एक प्रकार की यादशक्ति है, क्लियर यादशक्ति। मेमोरी है एक प्रकार की। क्योंकि जीव अनादि से है, सनातन है। वह पिछले सभी संस्कारों को जान सकता है।

प्रश्नकर्ता : पूर्व जन्म का ज्ञान होना, वह क्या है?

दादाश्री : आप याद करते जाओगे तो बचपन में चार साल के रहे होंगे न, तब तक का याद आएगा। उसी तरह से उससे भी आगे का, मृत्यु से पहले का याद आता है लेकिन उसके लिए ऐसा होना चाहिए कि मृत्यु के समय बहुत दुःख नहीं हुआ होना चाहिए। बिल्कुल, किंचित्मात्र भी दुःख न हुआ हो और मृत्यु हो गई हो तब वह याद आ सकता है, वर्ना याद नहीं आ सकता। बाकी, यादशक्ति सभी में काम कर सकती है।

जैसे अगर अभी यहाँ किसी इंसान को भूतकाल याद करना हो और यादशक्ति की बहुत तीव्रता हो तो गहराई में उतरते-उतरते, जब चार साल का बच्चा था, उस समय से लेकर सभी पर्याय बता सकता है। अब अगर उसका पिछला जन्म जानवर गति वाला न हो और मनुष्य गति वाला हो और मनुष्य में (मृत्यु के समय) बहुत दुःख नहीं हुआ हो और उसकी काल (मृत्यु) हुई हो तो वह मति ठेठ पिछले जन्म तक पहुँच सकती है।

प्रश्नकर्ता : उसकी लिंक रह जाती है?

दादाश्री : हाँ! उसकी लिंक, स्मृति की लिंक पहुँचती है।

गर्भ दुःख से आवृत हो जाती है स्मृति

प्रश्नकर्ता : जन्म से लेकर फिर चार साल के बाद की स्मृति उसे याद रहती है, उससे पहले का उसे याद नहीं रहता न?

दादाश्री : हाँ, हाँ, वह सही है। वह सभी के लिए कॉमन नहीं है।

चार साल तक जो है न, वह संपूर्ण भान रहित अवस्था, बिल्कुल भी भान नहीं। उसे सिर्फ दुःख समझ में आता है या फिर दूध पीना समझ में आता है। वह सबकुछ देखता रहता है। उसे भान नहीं है इसलिए ऐसा होता है। सभी को नहीं रहती स्मृति, चार साल के उम्र से पहले की।

प्रश्नकर्ता : उसका क्या कारण है?

दादाश्री : सारे आवरण। जैसे-जैसे बच्चे के आवरण कम होते जाते हैं वैसे-वैसे बुद्धि बढ़ती जाती है। क्या चार साल के बच्चे में बुद्धि होती है? बहुत कम होती है।

प्रश्नकर्ता : वे आवरण कहाँ से आते हैं?

दादाश्री : आवरण वही अज्ञानता है सारी। माता के पेट में जाते

हैं न, वहाँ बहुत पीड़ा होती है। जैसे-जैसे पीड़ा होती है वैसे-वैसे और भी अधिक आवरण आते हैं। पिछले जन्म में मरते समय बहुत पीड़ा हुई हो या कम हुई हो, फिर भी जब माता के गर्भ में आता है तब बहुत पीड़ा होती है। उससे फिर सब आवृत हो जाता है। भगवान का भी आवृत हो जाता है। भगवान जन्म लेते हैं न, तब उनका भी आवृत हो जाता है, लेकिन कम आवृत होता है।

याददाश्त को रोकने वाली दो चीज़ें हैं : एक तो गर्भ में दुःख और दूसरा मृत्यु के दुःख, ये दोनों रोकते हैं।

यादशक्ति, वह है राग-द्वेष के अधीन

प्रश्नकर्ता : आत्मा और यादशक्ति के बीच यों तो कोई संबंध नहीं है न?

दादाश्री : यादशक्ति तो जड़ शक्ति है, वह चेतन शक्ति नहीं है। वह मिश्रचेतन है। यानी कि आत्मा की शक्ति नहीं है। यादशक्ति तो राग-द्वेष के अधीन है। राग-द्वेष हों तो याद रहता है।

प्रश्नकर्ता : अगले जन्म में इस शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, तब फिर आत्मा यहाँ से वहाँ पर चला जाता है, फिर उसका और यादशक्ति का क्या लेना-देना है?

दादाश्री : नहीं! वह तो, यदि किसी जीव का ऐसा हिसाब बाकी रह गया हो तो याद आता है। हो सके तब तक हिसाब बाकी नहीं रहता, लेकिन राग-द्वेष रहे हुए हों, ऐसा हो सकता है। हिसाब बिल्कुल भी बाकी नहीं रहे, उसके बाद ही (वहाँ से) छूटता है। लेकिन यदि राग-द्वेष रह गए हों तो पिछले घर-बार वगैरह सबकुछ दिखाई देता है उसे, रास्ता भी दिखाई देता है। रास्ता भी बताता है हमें। वह बिल्कुल गलत भी नहीं है और पूरी तरह से सही भी नहीं है। इक्ज़ैजरेशन (अतिशयोक्ति) किया हुआ हो लेकिन किसी का सच भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : जाति-स्मरण तो सभी को उपलब्ध नहीं होता। वह स्मृति हर एक को उपलब्ध नहीं होती।

दादाश्री : नहीं, उपलब्ध तो रहता ही है, लेकिन उपयोग दूसरी जगह पर रहने की वजह से स्मृति भूल जाता है, विस्मृत हो जाता है। यदि उपयोग नहीं चूके तो ठेठ तक का समझ में आ सकता है।

पिछले जन्म में कहाँ थे आप?

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में कहाँ थे, वह अभी पता नहीं चल सकता! अभी अस्तित्व है इसलिए इतना तो पक्का है कि चाहे कहीं से भी, लेकिन कहीं से तो आए ही हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन उसके बारे में हमें जानना पड़ेगा न! स्मरण आ सके, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह से करना है?

दादाश्री : यदि इस जगत् को भोगे नहीं तो स्मरण आ सकता है। खाए-पीए लेकिन भोगे नहीं तो उसे स्मरण हो सकता है। भोगने के कारण आपका पिछला सारा विस्मृत हो जाता है। खाने-पीने में हर्ज नहीं है, कपड़े पहनो लेकिन भोगना नहीं।

जाति-स्मरण से यदि नहीं आए वैराग तो वह डालेगा बाधा

प्रश्नकर्ता : क्या जाति-स्मरण ज्ञान, मतिज्ञान का प्रकार है? मति अर्थात् अभी हम में जो बुद्धि है।

दादाश्री : वह मतिज्ञान का प्रकार है। इसलिए जाति-स्मरण ज्ञान होता है। जाति-स्मरण ज्ञान, बुद्धि का विषय है। वह विषयी ज्ञान है। जो याद करना पड़े, वह सारा अनात्म विभाग। यादशक्ति अनात्म ही है और वह जड़ शक्ति है। लोगों ने उसकी बहुत तारीफ की है, 'इसकी यादशक्ति बहुत ज़बरदस्त है'! यादशक्ति किस बारे में ज़्यादा रहती है? हर एक के अपने-अपने विषयों में।

प्रश्नकर्ता : इस यादशक्ति के बारे में मुझे ऐसा लगा कि यह तो बीच में बाधा डालती है।

दादाश्री : बाधा डालती है। यह सारा बाधक है और अंतराय हैं सारे। उन जन्मों को देखने गए, वह सब भी अंतराय है। जन्मों के बारे में जानकर क्या करना है? जन्मों को देखने से यदि वैराग आता हो तो ठीक है।

प्रश्नकर्ता : तो पिछले जन्मों को देखने की इच्छा क्यों होती है?

दादाश्री : सब भावनाएँ हैं, तरह-तरह की भावनाएँ होती हैं न! इससे पहले क्या, पहले क्या, पहले क्या? देखकर क्या पाना है उसमें से? इस जन्म का ही देखना अच्छा नहीं लगता तो पिछले जन्म का क्या अच्छा हो सकता है? और अगर अच्छा हो भी, फिर भी क्या करना है उसका? उसके लिए रोएँ तो कोई काम नहीं आएगा हमें और ये सब तो जादूगर के खेल हैं।

समकिती उठाता है लाभ जाति-स्मरण का

प्रश्नकर्ता : हम अखबार में पढ़ते हैं न, कि कई जगह पर, कई लोगों को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ है। तो क्या वह मिथ्यात्वी को भी हो सकता है और समकिती को भी हो सकता है?

दादाश्री : सभी को, मिथ्यात्वी को भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मिथ्यात्वी को क्रमशः उससे बंध पड़ जाता है, वापस भूल जाता है, जबकि समकिती को वह लगातार एक सरीखा रहता है।

दादाश्री : वह उसका लाभ उठाता है, समकिती लाभ उठाता है। मिथ्यात्वी लाभ नहीं उठाता। समकिती सीख प्राप्त करता है उसमें से, कि पिछले जन्म में ऐसा भोगा था, इससे ऐसा हुआ और अब इस

प्रकार से रहूँगा। तो वह अपना तरीका बदल देता है जबकि मिथ्यात्वी को ऐसा कुछ भी नहीं।

जाति-स्मरण गिफ्ट है या पुरुषार्थ?

प्रश्नकर्ता : अक्रम ज्ञान की प्राप्ति के बाद में क्या कभी जाति-स्मरण ज्ञान की संभावना है?

दादाश्री : नहीं। वह तो, किसी को होता है और किसी को नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : जाति-स्मरण के लिए ऐसा प्रयोग बताया है कि मेमोरी को धीरे-धीरे रिसीव बैक करते-करते...

दादाश्री : इसमें तो ऐसा है न, कि वह जो प्रयोग है वह तो, जिसके पास गिफ्ट होती है उसी को फिट होता है, अन्य सभी को फिट नहीं होता वह। वह गिफ्ट है एक प्रकार की। पूर्व जन्म के हिसाब और पुण्य के हिसाब से ऐसी गिफ्ट होती है। अपने यहाँ तो यह अपने आप ही हो गया है। है कोई झंझट? कोई भी झंझट ही नहीं रही न! और *घड़भांज* (बनाना और खत्म करना) भी नहीं रही।

महत्व है 'आत्मज्ञान' का, न कि जाति-स्मरण का

प्रश्नकर्ता : अभी इस काल में जाति-स्मरण ज्ञान क्यों नहीं होता? पहले तो बहुत कॉमन था। चौथे *आरे* (काल चक्र का बारहवाँ हिस्सा) में, उस ज़माने में तो हर एक को हो जाता था।

दादाश्री : हाँ! लेकिन होता था तो उसका क्या करना है? जिन्हें नहीं होता, उनके लिए काम का नहीं है! होता है, उसकी कीमत है। नहीं होता, उसकी कीमत ही नहीं है न! परवल उगते हैं तो उसकी कीमत है कि भई, चार रुपये किलो हैं, आठ रुपये किलो हैं, बारह रुपये किलो हैं। परवल नहीं उगते हों तो फिर उनकी वैल्यू ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि इस काल में होता ही नहीं है न?

दादाश्री : नहीं होता। उसका हमें करना क्या था? वह कोई हेल्प करने वाली बड़ी चीज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि वह हेल्प करता है। कईं लोगों को पिछला याद आने से वैराग्य आ जाता है।

दादाश्री : यों तो सभी कुछ हेल्प करता है। हर एक चीज़ हेल्प करती है। ऐसा कुछ है ही नहीं, जो हेल्प नहीं करता। जाति-स्मरण की तरह अन्य हर एक चीज़ हेल्प करती है। कईं लोगों को जाति-स्मरण ज्ञान होता था लेकिन वे सब अभी यहाँ पर भटक ही रहे हैं। उन्हें वैराग्य नहीं आया था। वे सब आज भी हैं। सिर्फ जाति-स्मरण वैराग्य नहीं लाता, राग भी बढ़ा देता है। इसे तो लोग उल्टा ले बैठे हैं कि सिर्फ वैराग्य लाता है। अरे, राग भी बढ़ा देता है।

प्रश्नकर्ता : सही बात है। या तो राग बढ़ जाता है या द्वेष बढ़ जाता है।

दादाश्री : राग भी बढ़ा देता है और द्वेष भी बढ़ा देता है। उस चीज़ की कोई खास कीमत नहीं है। आत्मज्ञान के अलावा अन्य किसी भी चीज़, समकित के अलावा अन्य किसी भी चीज़ की कीमत नहीं है। उन्हें मुख्य बना देने का कोई अर्थ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वर्तमान में क्या होता है, वह देखना है।

दादाश्री : हाँ, बस। उतना बहुत हो गया। पिछली झंझट कहाँ करें? उसके बजाय स्मरण नहीं आए तो अच्छा।

प्रश्नकर्ता : यदि पिछले जन्म के बारे में बता दे न, तब तो फिर निबेड़ा ही आ जाएगा न, कि, 'भाई, मैंने इतना-इतना गलत किया था इसलिए ऐसा हुआ। इसलिए अब मैं ऐसा नहीं करूँगा।'

दादाश्री : यों तो पिछले ज्ञान की वजह से लाभ ज़रूर होता है, वैराग्य आता है। लेकिन वैराग्य खुद के हाथ में नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : तो वह किसके हाथ में है?

दादाश्री : वह साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स में है।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञानी के हाथ में क्या है?

दादाश्री : ज्ञानी के हाथ में है तो सही। लेकिन वह *पुद्गल* का नहीं है, खुद का ज़रूर है। और जाति-स्मरण ज्ञान वाले के हाथ में तो कुछ भी नहीं है। वैराग्य आता है लेकिन वह एविडेन्स धक्का ही लगाता है ग्यारहवें मील के लिए। यानी कि जाति-स्मरण हेल्प नहीं करता। मोक्ष में जाते हुए जाति-स्मरण की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्यों?

दादाश्री : जाति-स्मरण काम का भी नहीं है। बहुत हुआ तो जाति-स्मरण वैराग्य ला सकता है। लेकिन वैराग्य तो, हमारे सिखाने पर भी भूल जाता है न क्षण भर में। वह काम नहीं आता। आत्मज्ञान के अलावा इस दुनिया में कुछ भी काम का नहीं है। यह जो आत्मज्ञान देता हूँ, उससे सबकुछ बदल जाता है।

नहीं है हितकारी जाति-स्मरण ज्ञान इस काल में

यानी कि जाति-स्मरण में कोई फायदा नहीं है। जाति-स्मरण होने से और भी ज़्यादा चिंता होती है, और भी अधिक परेशानी होती है। आपको बचपन का, पूर्व जन्म का याद आए तो ज़्यादा चिंता होगी रोज़।

प्रश्नकर्ता : लेकिन, 'यह शरीर बदलता है', ऐसी श्रद्धा तो उत्पन्न होगी न? 'आत्मा नित्य है, यह बदलता है', इस श्रद्धा से फायदा होगा न?

दादाश्री : (श्रद्धा) हो गई, फिर भी क्या फायदा होगा?

प्रश्नकर्ता : क्यों?

दादाश्री : उससे कोई फायदा नहीं है। बल्कि पिछले जन्म के बच्चों को देखने से, यानी कि उन लोगों को माँस खाते हुए और शराब पीते हुए देखने पर तो हमें परेशानी होगी कि, 'अरे भाई, यह क्या है?' उसके बजाय नहीं देखना अच्छा। इस जन्म के बच्चे अच्छे!

भूतकाल याद नहीं आता, इसी वजह से तो यह चलता रहता है, वर्ना नहीं चलता। अगर भूतकाल पता चल जाए तो बस, हो चुका, खत्म हो जाएगा। यानी कि पिछला जन्म भी याद नहीं रहता न! यदि वह याद रहे न तो इस संसार में पड़ा ही नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या उससे वैराग्य नहीं आता? अगर पिछले जन्म में दु:खी रहा हो तो वैराग्य नहीं आएगा?

दादाश्री : वैराग्य आएगा, लेकिन यदि अहंकार है तो (वैराग्य) किस काम का है? वह तो, अहंकार निकल जाए, वह काम का है।

यदि लाभ उठाए तो यह काल ही वैराग्य उत्पन्न करेगा

वैराग्य की ये बातें तो मोक्ष के लिए काम की नहीं है, वे तो प्रकृति गुण हैं। मोक्ष में जाने वाले को पिछली स्मृति हेल्प करती है। जिसे वैराग्य का लाभ उठाना हो, वह तो हर एक पर्याय से लाभ उठा लेता है। आज के लोग यदि एक ही दिन के, हर समय के पर्यायों को याद रखें तो वैराग्य उत्पन्न हो जाएगा। यह तो ऐसा है कि राग भी बड़ी मुश्किल से उत्पन्न होता है। वर्ना यह काल तो ऐसा है कि निरंतर वैराग्य में रखे।

आप एक ही दिन यदि एक ही ऐसा शब्द बोलो तो हम आपसे फिर फ्रैन्डशिप ही नहीं रखेंगे, भले ही फॉर्मल मित्रता रखेंगे। पत्नी के साथ तो रोज़ ऐसी कितनी ही घटनाएँ होती हैं जिनसे वैराग्य आ जाए, लेकिन वह याद नहीं रखता। उनसे वैराग्य आता नहीं और वह ढीठ

बनकर रहता है। जिसमें स्वमान है उसे वैराग्य आता है, भले ही अहंकार हो।

लक्षणों पर से हिसाब समझ में आता है, पिछला और अगला जन्म

प्रश्नकर्ता : जीव को खुद को पता चल सकता है कि मैं कहाँ से आया हूँ, और कहाँ जाना है?

दादाश्री : यदि उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो जाए तो पता चल जाएगा कि कहाँ से आया है, लेकिन कहाँ जाएगा, वह पता नहीं चल सकता।

वह तो हमें हिसाब लगाना चाहिए कि हमारे अंदर अभी भी कुत्ते की तरह भौंकते रहने की आदत है, जहाँ नहीं भौंकना है, वहाँ पर भौंके तो खुद ही समझ जाना चाहिए कि कुत्ते में से आए लगते हैं। उस पर से पता चलता है कि अब हम आगे क्या बनेंगे, अपने स्वभाव पर से। उसका हिसाब निकालेंगे तो पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : क्या हमें ऐसा पता चल सकता है कि यह वह आत्मा है जो पिछले जन्म में मिला था?

दादाश्री : यह तो, अगर किसी को ऐसा, कृपालुदेव की तरह आगे का दर्शन हो जाए, जाति-स्मरण ज्ञान हो जाए तो दिखाई देगा या फिर दूसरे तरीके से दिखाई देगा। जो नज़दीक आया हुआ हो तो उसके कार्य पर से हमें पता चल सकता है। जिस पर बिना बात के ही, किसी ने कोई नुकसान नहीं किया हो फिर भी हमें उस पर द्वेष आता ही रहता है। उस बेचारे ने कुछ भी नहीं किया होता, फिर भी हमें द्वेष आता रहता है, तो क्या जान नहीं जाएँगे कि इसके पीछे क्या कारण है? पिछला लेन-देन है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा हुआ हो, तभी हो सकता है न?

दादाश्री : हाँ! ऐसा है।

नहीं है जाति-स्मरण लेकिन है केवलज्ञान की जाति

प्रश्नकर्ता : अपना यह ज्ञान कौन सा है? जाति-स्मरण ज्ञान है?

दादाश्री : नहीं, मेरा ज्ञान आत्मज्ञान है। मुझे अन्य कोई ज्ञान नहीं है। आत्मा क्या है, जगत् क्या है, कैसे चलता है, कौन चला रहा है, इन सब का ज्ञान है मुझे। जाति-स्मरण ज्ञान नहीं है मेरे पास।

प्रश्नकर्ता : कृपालुदेव को नौ सौ जन्म का ज्ञान हुआ था तो दादा, क्या आपको भी ऐसा हुआ है?

दादाश्री : नहीं, हमें नहीं। वह तो जाति-स्मरण ज्ञान कहलाता है। वह बुद्धि का है। हम में तो बुद्धि नहीं है न, इसलिए दिखाई नहीं देता। उन्हें तो कई जन्म दिखाई देते थे। हमें तो पिछला जन्म भी नहीं दिखाई देता न, पिछला जन्म कौन सा था, वह भी...! हमें ज़रूरत भी क्या है? हमें तो मोक्ष चाहिए था, वह मिल गया। ब्रह्मांड के नाथ बन गए!

प्रश्नकर्ता : आप पुनर्जन्म में मानते हैं तो आप खुद पिछले जन्म में क्या थे और अगले जन्म में आप क्या बनने वाले हैं, उस बारे में आपको कुछ पता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नही। कुछ भी पता नहीं है। आपके बारे में भी मुझे पता नहीं है और मुझे मेरे खुद के बारे में भी पता नहीं है। लोगों को पता हो तो वह बात अलग है। वह एक प्रकार की बुद्धि है। हमें उसमें गहरे नहीं उतरे हैं। मुझे उतरने की क्या ज़रूरत है? और देखकर करना भी क्या है मुझे?

बाकी, वह बुद्धि का विषय है, ज्ञान का विषय नहीं है। वह एक प्रकार का स्मरण है। मुझ में स्मरण शक्ति है ही नहीं। आज क्या वार है, वह भी मुझे सभी से पूछना पड़ता है। आज क्या तारीख है, वह भी पूछना पड़ता है। मुझ में याददाश्त बिल्कुल भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपको कभी कुछ देर के लिए जाति-स्मरण ज्ञान होता है क्या?

दादाश्री : नहीं। ऐसा है कि जाति-स्मरण ज्ञान की मुझे ज़रूरत भी नहीं है और मुझे वह देखना भी नहीं है और जानना भी नहीं है। वे बुद्धि के खेल हैं। अहंकार हो तभी वह हो सकता है।

हमारी जात ही नहीं है तो फिर स्मरण किसका होगा? जात से बाहर निकल गया हूँ मैं तो। जिस ज्ञान में जाति-स्मरण होता है, उस देह से मैं बाहर निकल गया हूँ। मेरी जाति ही पूरी अलग है। यह केवलज्ञान वाली जाति है। सिर्फ इतना ही है कि मैं केवलज्ञान में फेल हुआ हूँ। मेरे चार अंश कम हैं, चार मार्क्स की कमी है।

[5.3]

त्रिकाल ज्ञान

वर्तमान में रहकर जो तीनों काल का देखे, वह त्रिकाल ज्ञान

प्रश्नकर्ता : त्रिकाल ज्ञान की सही डेफिनेशन बताइए न।

दादाश्री : किसी एक चीज़ का तीनों ही काल का ज्ञान, यानी तीनों ही काल में क्या स्थिति होगी, उसका ज्ञान, उसे त्रिकाल ज्ञान कहा गया है। भूतकाल में क्या था, वर्तमान में क्या है, भविष्य काल में क्या होगा, उसे ऐसा ज्ञान है। उसे त्रिकाल ज्ञान कहा गया है।

तीनों काल के ज्ञान को लोग क्या समझते हैं कि पहले हो गया है वह, अभी हो रहा है वह, और भविष्य में होगा वह भी देख सकते हैं, ऐसा ही कहते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही है। वह त्रिकाल ज्ञान है।

दादाश्री : लेकिन ऐसा नहीं है। क्या तीनों काल का ज्ञान एट ए टाइम रह सकता है, यदि बुद्धिपूर्वक समझो तो? बुद्धिपूर्वक समझो तो भविष्य काल को वर्तमान काल ही कहा जाएगा न? यदि तीनों ही काल का हमें अभी दिखाई देता है तो उसे कौन सा काल कहा जाएगा?

प्रश्नकर्ता : वर्तमान, ठीक है।

दादाश्री : वर्तमान काल ही कहा जाएगा न! तीन काल का ज्ञान कहलाता है, लेकिन वह तीन काल का ज्ञान किस प्रकार से है? त्रिकाल ज्ञान ऐसी चीज़ है कि आज हमने कोई चीज़ देखी, सादी ही बात लें तो यह घड़ा देखा, तो आज वर्तमान काल में वह घड़ा है। अभी का घड़ा देखा, वह ज्ञेय कहलाता है। अब यह घड़ा बना है, इसका भूलकाल क्या था, मूल पर्याय क्या थे, वह ज्ञान हमें बताओगे? तो कहते हैं, हाँ, मूलतः वह मिट्टी के रूप में था। मिट्टी को गूँधकर उसे चाक पर रखकर कुम्हार ने घड़ा बनाया। फिर उसे पकाया। फिर बाज़ार में बिका और फिर जैसा अभी दिखाई दे रहा है वैसा बना। कोई पूछे कि भविष्य में क्या होगा? तो कहते हैं, यह घड़ा टूट जाएगा। तब फिर धीरे-धीरे उसके छोटे टुकड़े हो जाएँगे। छोटे टुकड़े घिसते-घिसते वापस मिट्टी बन जाएगी। यानी कि वर्तमान में भूतकाल और भविष्य काल, दोनों का एक साथ वर्णन कर सकता है। सभी पर्याय बता सकता है, भविष्य काल के पर्याय और भूतकाल के पर्याय। यानी कि हर चीज़ की भूतकाल और भविष्य काल की स्थिति को वर्तमान में बताया जा सके, उसे त्रिकाल ज्ञान कहते हैं।

संकल्प-विकल्प से नहीं टिकता वह ज्ञान

प्रश्नकर्ता : आपको त्रिकाल ज्ञान है क्या?

दादाश्री : यह त्रिकाल ज्ञान हमारे पास आया था, हमने उसे वापस निकाल दिया। नहीं चाहिए यह।

मुझसे पूछते हैं कि, 'अगर आप कारण सर्वज्ञ हैं तो आप तो जानते ही होंगे न, कि वह जो व्यक्ति उधर गया उस गाड़ी में, उसका क्या होगा? मैंने कहा, 'भाई, वह यहाँ से गया है लेकिन वहाँ गाड़ी से टकरा जाएगा, त्रिकाल ज्ञान के आधार पर मुझे भी वह दिखाई दिया था। फिर तो मुझे दिखाई दिया कि यह गाड़ी मांडवी (बड़ौदा का एक इलाका) तक जाकर टकरा जाएगी। त्रिकाल ज्ञान में ऐसा दिखाई देता है, रवाना होने से पहले दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : जो होने वाला है, वह?

दादाश्री : मांडवी पहुँचने से पहले ही दिखाई देता है कि, 'मांडवी पहुँच गए, उस दुकान के सामने यह गाड़ी टकराएगी', यानी इस त्रिकाल ज्ञान ने ऐसा दिखाया इसलिए मैंने कह दिया कि 'भाई, तू अपने घर जा। मुझे ऐसा देखना ही नहीं है।' ऐसे तूफान देखने के बजाय अनजान रहना अच्छा है। आपको यह कैसा लगता है, अनजान रहना अच्छा है या जानना?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि भगवान महावीर ने कई लोगों को पिछले जन्म बताए थे।

दादाश्री : उन्हें वह पुसाता था। भगवान महावीर को पुसाता था। इन लोगों को पिछले जन्म दिखाई देंगे न, तो क्या दशा होगी इन लोगों की! वे इन्हें दिखाई ही नहीं देने चाहिए। इन लोगों को यदि त्रिकाल ज्ञान दिया जाए, आपको त्रिकाल ज्ञान दिया जाए तो आपकी क्या दशा होगी?

त्रिकाल ज्ञान का अर्थ क्या है? त्रिकाली ज्ञान, कि इसके बाद अब क्या होगा। यानी कि आज, अभी आपके पास वह ज्ञान हो और आपको बाहर जाना हो तो वह ज्ञान आपको क्या दिखाएगा? 'रास्ते में गाड़ी टकरा जाएगी और एक पैर टूट जाएगा', आपको ऐसा सब दिखाएगा, यहीं से। अब उस समय आप क्या करोगे? वह मुझे बताओ।

प्रश्नकर्ता : जाना रद्द कर देंगे।

दादाश्री : तब वह ज्ञान चला जाएगा। ज्ञान क्या कहता है? यदि तुझे विकल्प होते हैं तो मैं चला जाऊँगा। इसमें तो उसी अनुसार करना चाहिए। जाना ही चाहिए वहाँ पर, टकराने वाली जगह पर। उसमें फिर विकल्प नहीं करना चाहिए तो वह त्रिकाल ज्ञान टिकेगा। अब, ऐसा ज्ञान केवल भगवान के पास टिकता है। अंतिम दशा में टिकता है, यह।

यदि ऐसा पता चले कि डेढ़ साल बाद ये जमाई मर जाएँगे तो बोलो, अब क्या दशा होगी अपनी?

प्रश्नकर्ता : डेढ़ साल पहले से ही दूसरी चिंताएँ शुरू हो जाएँगी।

दादाश्री : चिंता से कितनी परेशानियाँ? घर के सभी लोगों की क्या दशा होगी? नहीं मरने वाला होगा तब भी मर जाएगा, वह। हम इस मुश्किल में कहाँ फँसे?

चित्त निर्मलता से आभास होता है भविष्य का

प्रश्नकर्ता : कच्छ से वे लोग मिलने गए थे कृपालुदेव से, तब उन्हें मन में पता चल गया था कि, 'वे मिलने आए हैं', धारशी भाई या खीमजी भाई नाम था, इसलिए खुद उन्हें लेने गए कि 'आइए, धारशी भाई', ऐसा कहा, तो वे ऐसा कैसे जान गए?

दादाश्री : ऐसा तो हो सकता है और नहीं भी हो। वह तो ऐसा है न, वह दर्शन है। किसी खास प्रकार की एकाग्रता हो तो कुछ लोगों को अंदर दर्शन में आ जाता है। जो होने वाला है, उसका आभास हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह चित्त की निर्मलता पर आधारित है न?

दादाश्री : चित्त की निर्मलता पर। चित्त की निर्मलता हो तभी आभास हो सकता है। ऐसा इन संतों को भी होता है। ऐसा नहीं कि सिर्फ ज्ञानियों को ही होता है, ऐसा संतों को भी होता है। लेकिन कुछ लोगों को चित्तशुद्धि होने की वजह से ऐसा आभास होता है कि, 'भई, ऐसा होगा'। और वह करेक्ट होता है। अत: यह गलत नहीं हैं, लेकिन इसे त्रिकाली ज्ञान नहीं माना जाता।

कुछ लोगों में हृदय शुद्धि होती है। आत्मा का ज्ञान हो या न हो, वह डिफरेन्ट मैटर है लेकिन एक ऐसा अवसर आता है कि कुछ-कुछ लोगों की हृदय शुद्धि हो जाती है। इसलिए वे बताते हैं कि,

'आज से दस साल बाद, चार बजकर पाँच मिनट पर, इस व्यक्ति के जमाई की मृत्यु हो जाएगी', और उनकी बात करेक्ट निकलती है। इसलिए फिर लोग कहते हैं कि त्रिकालज्ञानी हैं। अरे भाई, त्रिकाल दिखाई नहीं देता। उनकी कही बात सच निकली।

प्रश्नकर्ता : उनकी समझ में रहता है?

दादाश्री : समझ में भी नहीं, बोला हुआ सच हो जाता है। बस, वचन सिद्धि।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वे बिना बात के ऐसा क्यों कहेंगे? उनके कहने से ऐसा होता है या फिर ऐसा होने वाला होता है और ऑटोमैटिक उनके मुँह से निकल जाता है?

दादाश्री : जैसा होने वाला है, वैसा उनके मुँह से निकल जाता है। जो होने वाला है, हृदय शुद्धि की वजह से वह उनके मुँह से निकल जाता है। ऐसा तो, व्यवहार में भी कुछ लोग ज़रा शुद्ध हृदय वाले होते हैं न, तो जैसा वे कहते हैं वैसा सब हो जाता है। उन्हें त्रिकालज्ञानी कहते हैं लोग।

कोई कहेगा, ये दादा, ऐसा करते हैं और वैसा करते हैं। 'मेरे दादा' ने कहा, इसलिए मेरा सब काम हो गया। वह फलीभूत हो जाता है उसके लिए। मैं जानता हूँ कि, 'मैं त्रिकालज्ञानी नहीं हूँ', लेकिन वह ऐसा समझता है कि दादा त्रिकालज्ञानी हैं।

अभी त्रिकालज्ञानी शब्द को निकाल देने जैसा नहीं है लेकिन फिर भी लोग जो समझते हैं, वह बात सही भी नहीं है।

शुद्ध अंतःकरण और यशनाम कर्म से बता सकते हैं सही भविष्य

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग भविष्य बताते हैं तो क्या वह सच निकलता है?

दादाश्री : कुछ सच निकलता है, वह उसका अंतःकरण शुद्ध होने की वजह से। अंतःकरण की शुद्धि हो और यशस्वी हो तो आपके पूछते ही तुरंत कहेगा कि, 'भाई, परसों ऐसा हो जाएगा।' तो वह काम हो जाता है। वह त्रिकाल ज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या अंदाज़ से बताते हैं?

दादाश्री : नहीं, अंदाज़ नहीं, शुद्ध अंतःकरण और यशस्वी। यश मिलना होता है इसलिए उनके कहे अनुसार हो जाता है। वह ज्ञान तीर्थंकरों का नहीं है, वह ज्ञान ज्ञानियों का नहीं है। वह ज्ञान शुद्ध हृदय वालों का है, हृदय शुद्धि वालों का है। अब, हृदय शुद्धि वालों को पता चलता है कि ऐसा-ऐसा हो जाएगा। लेकिन यह इन्द्रिय ज्ञान कुछ हद तक का ही ज्ञान है और अतीन्द्रिय ज्ञान असीम है। वह जब असीम हो जाता है तब केवलज्ञान हो जाता है।

तीर्थंकर भी तीनों काल का देखते हैं वर्तमान में

ऐसा है न, तीर्थंकरों के पास यह ज्ञान था, त्रिकाल ज्ञान। तीर्थंकरों के पास केवलज्ञान था लेकिन त्रिकाल ज्ञान किसे कहते थे? कि वे वर्तमान को ही देख सकते थे, ज्ञान के आधार पर देख सकते थे लेकिन यों खुद दर्शन से तीनों ही काल एक साथ नहीं देख सकते थे। उन्हें सिर्फ वर्तमान काल ही दिखाई देता था। तीनों ही काल उनकी समझ में आ जाते थे कि भविष्य में ऐसा होगा।

ये लोग कहते हैं न, कि भविष्य काल का सभी कुछ दिखाई देता है, ऐसा नहीं हो सकता। भविष्य काल तो वर्तमान काल में दिख रहा है। एक के लिए भविष्य काल हो और दूसरे के लिए वर्तमान काल, इस तरह से दो नहीं हो सकते। काल के तीन विभाग हैं। वे तीन विभाग हमेशा के लिए परमानेन्ट रहते हैं। तीर्थंकरों के लिए भी तीन विभाग हैं। तीर्थंकर केवलज्ञान से सबकुछ बता सकते हैं कि भूतकाल में इस अनुसार था, वर्तमान में इस अनुसार होना चाहिए और भविष्य काल में इस अनुसार होगा। इस प्रकार से वे केवलज्ञान के

मैथेमैटिक के, गणित के ज्ञान के आधार पर वर्तमान में बता सकते हैं। आपको समझ में आया, मैं जो कहना चाहता हूँ, वह?

त्रिकाल ज्ञान क्या है? वर्तमान में जो दिखाई देता है, तीर्थंकरों को भी वही दिखाई देता है। जैसा लोगों को दिखाई देता है वैसा ही दिखाई देता है लेकिन वे ऐसा बता सकते हैं कि भविष्य में ऐसा होगा।

प्रश्नकर्ता : भविष्य में ऐसा होगा, ऐसा बताते हैं लेकिन उन्हें पता होगा तभी बताते हैं न, दादा?

दादाश्री : नहीं! पता नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो?

दादाश्री : इसके परिणाम ऐसे आएँगे। आप आम लाओगे तो आम को अभी देखा कि हाफूस के आम काटने लायक थे। अब, आप कहो कि इन आम को रहने देंगे तो भविष्य में यह ऐसा हो जाएगा। पहले उसमें झुर्रियाँ आने लगेंगी। फिर बिगड़ने लगेंगे, फिर सड़ने लगेंगे। उसके बाद ऐसा होगा, इस तरह से आप वर्णन कर लेते हो या नहीं करते? ऐसा वर्णन दिया है। और आम से पहले भूतकाल में क्या था? तो कहते हैं, सब से पहले बौर आई, फिर आम बनना शुरू हुआ, फिर धीरे-धीरे बड़ा हुआ। उस समय वह खट्टा था। तो क्या यह सब आप देखकर नहीं बताते?

प्रश्नकर्ता : उसके गुणधर्मों के आधार पर ही बताते हैं।

दादाश्री : वे गुणधर्मों को ही जानते हैं। बाकी, तीनों ही काल का ज्ञान अगर वर्तमान काल में ही हो जाए तब तो... वर्तमान काल में भूतकाल और भविष्य काल होते ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : और वर्तमान में भूतकाल का ज्ञान हो सकता है क्या?

दादाश्री : नहीं-नहीं, ऐसा हो सकता है भला? एक काल में

दो काल के ज्ञान एक ही साथ कैसे हो सकते हैं? वर्तमान में वर्तमान को ही देख सकते हैं।

जो तीनों ही काल के पर्यायों को जाने, वे सर्वज्ञ

जैसे अगर हम कुम्हार से पूछें कि, 'वर्तमान में यह जो घड़ा दिखाई दे रहा है, वह भूतकाल में क्या था?' तब वह कहता है कि, 'ज़मीन थी, मिट्टी थी। मिट्टी को खोद-खोदकर फिर गारा बनाया', तब से लेकर जब घड़ा वापस मिट्टी में मिलेगा, तब तक के पर्यायों का वर्णन करता है। यानी कि कुम्हार उन पर्यायों को जानता है और वीतराग इन पर्यायों को जानते हैं, जगत् को जिन चीज़ों की जानकारी नहीं है, ऐसे पर्यायों को जानते हैं। इस प्रकार से जो हरएक पदार्थ के बारे में जानते हैं, वे सर्वज्ञ! यों, हर एक चीज़ के पहले क्या पर्याय थे, अभी क्या हैं और इसके बाद क्या होंगे, जो इन तीनों ही काल के पर्यायों को बताते हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

भगवान ने त्रिकाल के बारे में क्या बताया कि यह जो चीज़ है, भगवान इसे देखते हैं कि यह मिट्टी में से बना, तब से लेकर सभी अवस्थाओं का ज्ञान उनके *लक्ष* में आ जाता है, तुरंत ही, देखते ही। और इसके बाद भविष्य में मिट्टी में मिल जाएगा, तब तक की सभी अवस्थाओं को वे देख सकते हैं, तो उसे त्रिकाल ज्ञान कहा जाता है। यह समझ में आ गया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह कहाँ से आया और कहाँ जाएगा, और उसकी कौन-कौन सी अवस्थाएँ बदलेंगी...

दादाश्री : ऐसा सब जानने को त्रिकाल ज्ञान कहते हैं। और वह वीतरागों का केवलज्ञान है, उन्हें कोई चीज़ जानना बाकी नहीं रहता। जितनी भी जानने की चीज़ें हैं, ज्ञेय हैं, उन सभी के बारे में वे जानते हैं। उसमें प्राकृतिक ज्ञान और यथार्थ ज्ञान, दोनों को ही, सभी कुछ जानते हैं।

तीनों ही काल से देखते हैं वीतराग, नहीं होते मूर्च्छित

प्रश्नकर्ता : उसी को उत्पाद, व्यय और ध्रुव कहते हैं?

दादाश्री : उत्पाद, व्यय और ध्रुव। यानी कि जो उत्पाद और व्यय को देख सकता है, वह त्रिकाल ज्ञान कहलाता है। वीतराग सिर्फ इतना ही देखते थे, इंसान की प्राकृतिक शक्ति का उत्पन्न होना, व्यय होना और आज की, इन सभी शक्तियों को वे त्रिकाल ज्ञान से देखते थे। वे उत्पाद, व्यय वगैरह सब संपूर्ण रूप से जानते थे, इसलिए उन्हें राग उत्पन्न नहीं होता था।

सिर्फ वर्तमान काल के ही ज्ञान से राग उत्पन्न होता है। एक तो खुद के स्वरूप का अज्ञान, और वर्तमान काल का ज्ञान। यदि उसे ऐसा समझ में आ जाए कि जब यह बच्ची गर्भ में थी, तब इतनी दिखाई देती थी और ऐसी दिखाई देती थी और जन्म होने के बाद ऐसी दिखाई देती थी, फिर ऐसी दिखाई देती थी और अब फिर ऐसी दिखाई देगी, फिर ऐसी दिखाई देगी, उसके बाद ऐसी दिखाई देगी। बूढ़ी होने पर ऐसी दिखाई देगी। लकवा होने पर ऐसी दिखाई देगी, और फिर जब उसकी अर्थी निकलेगी तब ऐसी दिखाई देगी। जिसे सभी लक्षणों का पता हो, उन्हें वैराग्य सिखाना नहीं पड़ता। जो आज का देखकर ही मूर्च्छित हो जाते हैं, उन्हें वैराग्य के बारे में जानना चाहिए। अन्य किसी के *लक्ष* में नहीं आ सकता।

वीतराग बहुत समझदार थे। सभी चीज़ों को तीनों ही काल से देख सकते थे। कोई भी चीज़ उनमें मूर्च्छा उत्पन्न नहीं करवा सकती थी क्योंकि तीनों ही काल से देख सकते थे कि इसका उत्पाद और व्यय किस प्रकार से है, और ध्रुवता इसके स्वभाव से है। उत्पाद व व्यय, ये सब अवस्थाएँ हैं, पर्याय हैं। तो तीनों काल की बात समझ गए न आप?

फूल मिट्टी के रूप में था और मिट्टी के रूप में से इस रूप में आ गया, अब वापस मिट्टी बन जाएगा। लोग तो इस बीच वाले

रूप को ही देखते हैं। पहले कली था, तो कली था, ऐसा नहीं समझ पाते और चार घंटे बाद वह मुरझा जाएगा, उस स्वरूप को भी नहीं समझ पाते। प्रकृति की वजह से जो भाग खिला है, उस खिले हुए रूप को समझ पाते हैं, अवस्था स्वरूप को। पूरा जगत् भ्रांति में है, वह बीच वाले रूप को देखता है जबकि ज्ञानी तीनों ही काल वाले रूपों को समझते हैं।

लौकिक मान्यता के आधार पर कहा गया है, त्रिकाल

हम जो बात बता रहे हैं, वह अंतिम बात है ताकि लोग सही हकीकत जानें। यह त्रिकाल सत्य है। इसमें बदलाव नहीं हो सकता। इसे कभी कोई नकार नहीं सकेगा। क्योंकि ये शब्द त्रिकाली सत्य हैं।

प्रश्नकर्ता : त्रिकाली कहाँ से आया?

दादाश्री : वह तो, लोग काल के तीन विभाग करते हैं, त्रिकाल। जो हो गया है, उसे क्या कहें? तो कहते हैं, 'भूतकाल'। अभी के बाद जो होगा, उसे क्या कहेंगे? तो 'भविष्य काल'। अभी क्या है? तो कहते हैं, 'वर्तमान काल'। तो लोगों की मान्यता के आधार पर मुझे त्रिकाल कहना पड़ता है। वर्ना काल का स्वरूप तो एक ही है लेकिन लोगों की भाषा में कहना पड़ता है न! ज्ञानी पुरुष के लिए सिर्फ वर्तमान काल ही है।

[6]
केवलदर्शन

[6.1]
केवलदर्शन की समझ

केवल आत्मा की ही श्रद्धा, वह है 'केवलदर्शन'

प्रश्नकर्ता : केवल का अर्थ क्या है?

दादाश्री : एब्सल्यूट! मात्र! अन्य कुछ भी नहीं है जिसमें, किसी भी तरह की मिलावट नहीं है, प्योर।

प्रश्नकर्ता : केवलदर्शन का अर्थ क्या है?

दादाश्री : केवल आत्मा पर ही जिसे श्रद्धा है, वह 'केवलदर्शन' है। श्रद्धा से 'केवलज्ञान' अर्थात् 'केवलदर्शन'। श्रद्धा से 'केवलज्ञान' हो गया हो तो देह सहित मुक्ति हो जाती है और ज्ञान से 'केवलज्ञान' हो जाए तो मोक्ष हो जाता है!

यह जगत् जैसा है वैसा समझ में आ जाए तो वही केवलदर्शन है। अगर जानने में नहीं आए तो केवलदर्शन और जानने में आ जाए तो केवलज्ञान कहलाता है। सब से पहले समझ में आ जाता है।

'पूर्ण समझ' को 'केवलदर्शन' कहा जाता है और जब वर्तन में आता है तो वह 'केवलज्ञान' कहलाता है। वह पूर्ण ज्ञान, 'केवलज्ञान' पूर्णाहुति है और 'केवलदर्शन' शुरुआत है। 'समझ', 'केवलज्ञान' की 'बिगिनिंग' (शुरुआत) है।

प्रश्नकर्ता : पूर्ण समझ का अर्थ क्या है?

दादाश्री : क्षायक दर्शन। अपने यहाँ पर क्षायक दर्शन देते हैं। संपूर्ण प्रतीति, संपूर्ण समझ।

केवलदर्शन अर्थात् क्षायक समकित। क्षायक समकित होने के बाद में केवलज्ञान होता है। केवलदर्शन से ज्ञान दिखाई देता है। ज्ञान दिखाई देता है का अर्थ क्या है कि हमने आगे कुछ देखा, 'कुछ है', वह है केवलदर्शन और 'यह है', वह है केवलज्ञान।

केवलदर्शन + केवलज्ञान = शुद्ध चेतन

अब, चेतन किससे बना है, वह बताता हूँ। कौन-कौन से शब्दों से बना है? जब ज्ञान और दर्शन, दोनों साथ में हों तो उसे चेतन कहते हैं। यह चेतन खुद के गुणधर्मों के अधीन है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि ज्ञान और दर्शन दोनों ज़रूरी हैं चेतन के लिए?

दादाश्री : वे होंगे, तभी यह चेतन कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : दोनों में से पहला कौन सा है, वह नहीं देखना है, दोनों में से ज्ञान पहले है या दर्शन, वह नहीं देखना है लेकिन दोनों का होना ज़रूरी है।

दादाश्री : दोनों संपूर्ण रूप से होने चाहिए। केवलज्ञान है तो केवलदर्शन है ही। केवलदर्शन है और केवलज्ञान नहीं है तो अभी अधूरा है। जब केवलदर्शन और फिर केवलज्ञान, दोनों साथ में आ जाएँगे तब संपूर्ण शुद्ध चेतन हो जाएगा।

केवलदर्शन और केवलज्ञान अनुभवगम्य हैं

प्रश्नकर्ता : केवलदर्शन और केवलज्ञान युग्म पद हैं, ये साथ में ही होते हैं?

दादाश्री : हाँ, युग्म पद ही हैं। लेकिन पहले केवलदर्शन होता है और उसके बाद केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन पहला और आखिरी है ही नहीं, दोनों साथ में ही होते हैं।

दादाश्री : वह सब आपकी दृष्टि से ठीक है। हमारी दृष्टि ऐसी नहीं है। आपके शास्त्रों में जो भी है, वह ठीक है। मैं तो अपने अनुभव की दृष्टि से बता रहा हूँ। हमारी दृष्टि इस अनुसार है। आपको ठीक लगे तो लेना, ठीक नहीं लगे तो मेरा वापस दे देना।

प्रश्नकर्ता : नहीं, वह तो जो शास्त्रों में लिखा हुआ है, वह बात बता रहा हूँ, मेरी खुद की बात नहीं बता रहा।

दादाश्री : ऐसा है न, शास्त्र और अनुभव, दो अलग चीज़ें हैं। क्योंकि आत्मा को कभी शब्दों में लाया जा सके, ऐसा है ही नहीं। चार वेद पढ़ने के बाद दिस इज़ नॉट दैट, दिस इज़ नॉट दैट, दिस इज़ नॉट दैट। यानी कि ज्ञानी के अलावा और कोई भी आत्मा को नहीं जान सकता। वह अनुभवगम्य वस्तु है। केवलदर्शन और केवलज्ञान, अनुभवगम्य वस्तुएँ हैं।

केवलदर्शन कब होता है? वास्तविक समकित और सम्यक् दर्शन कब होता है? जब पूरे जगत् में कहीं भी किसी के प्रति कोई पक्षपात न हो, मतभेद न हों, तब। पक्ष में रहने वाले का मोक्ष नहीं होता।

हमारे लिए जगत् दृश्य है, ज्ञेय नहीं। केवलज्ञान से जगत् ज्ञेय हो जाता है और केवलदर्शन से दृश्य है।

भगवान ने मानी है कीमत, दर्शन की

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा था कि, 'हमारी समझ में यह आ गया है कि यह जगत् क्या है लेकिन जानपने में नहीं आया है', वह जानपना क्या है?

दादाश्री : विस्तारपूर्वक, डिटेल्स।

प्रश्नकर्ता : डिटेल्स में नहीं आया, ऐसा कहेंगे तो चलेगा?

दादाश्री : हाँ! ऐसा कहेंगे तो चलेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दोनों में काल रहा हुआ है न? समझ प्राप्त करने के लिए भी समय चाहिए और जानपना प्राप्त करने के लिए भी समय चाहिए?

दादाश्री : समझने के लिए टाइम की ज़रूरत नहीं है, लेकिन ज्ञानपन के लिए टाइम की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : दर्शन और ज्ञान के बीच में समय का अंतर होता है या नहीं?

दादाश्री : थोड़ा सा।

प्रश्नकर्ता : बाहर आवाज़ हो तो समझ में आता है कि कुछ है। लेकिन फिर जब वह बाहर देखने जाता है और 'गाय' है, देखने का ऐसा जो ज्ञान होता है, वह?

दादाश्री : हाँ, डिसिज़न आने में टाइम लगता है! दर्शन का परिणाम ही ज्ञान है। लेकिन भगवान ने ज्ञान को कीमती नहीं माना है, दर्शन को कीमती माना है।

खुल गए रहस्य 'केवलज्ञान' के, इस विज्ञान से

अब, इस हद तक तो जगत् में कोई कभी भी गया ही नहीं है। यह उनकी मति में कैसे आ सकता है? इस हद तक तो सिर्फ तीर्थंकर

ही पहुँच सकते हैं। हालांकि यह मति का ज्ञान नहीं है, यह केवलज्ञान का ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : और यह ज्ञान भाषा में समा सके, ऐसा है भी नहीं। दर्शन और दृश्य, भाषा वाला ज्ञान है लेकिन यह भाषा से आगे का ज्ञान है?

दादाश्री : बहुत ऊपर का ज्ञान है यह तो। यह तो ऐसा है न, कि हम इसे नीचे उतार लाए हैं। हमने बहुत नीचे नहीं उतारा है। लेकिन जो लोग नीचे उतर गए हैं, उन्हें तो ज़रूरत है न! नीचे तो लाना पड़ेगा न? लेकिन यह उनकी (तीर्थंकरों की) जो खोज है, उसे तो देखकर ही मुझे आश्चर्य होता है कि ओहोहो! ऐसी खोज! दर्शन और ज्ञान, जानना और देखना को किस तरह से अलग कर दिया! अरे, अगर एक कहा होता तो क्या गलत था? लेकिन उसके पीछे पूरा... कितना बड़ा विज्ञान छुपा हुआ है न!

पूर्ण समझ से केवलदर्शन, पूर्ण ज्ञान से केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन और केवलदर्शन में क्या फर्क है?

दादाश्री : वह तो समझो न... कि सम्यक् दर्शन तो कुछ हद तक पहुँचता है लेकिन फिर आवरण आ जाता है और यह क्षायक समकित अर्थात् केवलदर्शन, आवरण ही नहीं आने देता उस पर।

प्रश्नकर्ता : आत्मदर्शन, केवलदर्शन और केवलज्ञान में क्या भेद है?

दादाश्री : खुद जब देहाध्यास से मुक्त हो जाता है तब आत्मदर्शन होता है। देहाध्यास से मुक्त अर्थात् देह में जो आत्मबुद्धि थी कि, 'यह शरीर ही मैं हूँ', वह आत्मबुद्धि छूट जाती है। देहाध्यास छूट जाने पर आत्मज्ञान होता है। सांसारिक दुःख स्पर्श नहीं करें, उसे कहते हैं आत्मज्ञान।

आत्मा से आत्मा को जानना, उसे कहते हैं आत्मज्ञान। संपूर्ण आत्मज्ञान किसे कहते हैं? 'केवलदर्शन' को।

केवलदर्शन होने से पहले ग्यारहवें गुणस्थानक में भी *पुद्गल* में रमणता करता है और केवलज्ञान होने के बाद निरंतर स्वरूप की ही रमणता में रहता है। *पुद्गल, पुद्गल* में रमणता करता है और स्वरूप, स्वरूप में रमणता करता है।

पूर्ण केवलदर्शन का मतलब क्या है कि जो समझने की चीज़ थी उसे संपूर्ण समझ लिया, कुछ बाकी नहीं रहा। जो जानना बाकी था उसे संपूर्ण जान लिया। जगत् में कोई भी चीज़ जानने को बाकी नहीं रहे, उसे कहते हैं केवलज्ञान। केवलदर्शन से सब समझ में आता है लेकिन ज्ञान में नहीं आता। केवलज्ञान अर्थात् ऐसा कहा जाएगा कि संपूर्ण ज्ञान हो गया। किसी भी प्रदेश पर आवरण नहीं है, अनंत प्रदेशों पर से सभी आवरण टूट चुके हैं।

संपूर्ण समझ में आ जाए तो उसे कहते हैं केवलदर्शन और जो विस्तारपूर्वक ज्ञान में आ जाए, खुद दूसरों को भी समझा सके, तब केवलज्ञान कहलाता है। खुद की समझ में आ जाए, समझ में फिट हो जाए तो उसे केवलदर्शन कहा है। जबकि उसमें (क्रमिक में) समझ में नहीं आता है। समझ में आए तो भी कितना? इतना ही कि, 'वास्तव में मैं यह नहीं हूँ, इसलिए मुझे ऐसा लगता है यह बात सही है कि मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी प्रतीति बैठना उपशम समकित है, जबकि इसमें तो सब समझ में आ जाता है, केवलदर्शन। किसी जीव को ऐसा क्षायक समकित हो जाता है, वर्ना क्षायक समकित नहीं हो पाता। कृपालुदेव ने खुद ऐसा कहा था कि उन्हें क्षायक समकित है लेकिन वह बात पता चलने पर लोगों ने टीका-टिप्पणी शुरू कर दी। इसलिए उन्होंने ऐसा कहा कि, 'हमें क्षायक समकित नहीं है लेकिन समकित तो है ही। चाहे अपने शास्त्रों ने मना किया है, लेकिन समकित तो है ही।' शास्त्रों में लिखा है कि क्षायक दर्शन नहीं है। इस काल में समकित है ही नहीं न! यानी क्रमिक मार्ग में इसके लिए मना किया है। इन सभी दस प्रकार के भावों का विच्छेद हो गया है। 'इस काल के हिसाब से दिव्यचक्षु वगैरह सब नहीं हो सकते', ऐसा कहते हैं। यह तो अक्रम विज्ञान है, इसलिए उत्पन्न हुआ है।

क्षायक दर्शन या क्षायक समकित, वह केवलदर्शन है

प्रश्नकर्ता : दादा, वीतराग भगवंतों ने जिस दृष्टि से जगत् को देखा, वह दृष्टि सम्यक् दर्शन है न?

दादाश्री : नहीं, वीतरागों ने जो जगत् देखा, वह तो क्षायक दर्शन है। ऐसा क्षायक समकित से देखा है।

प्रश्नकर्ता : केवलदर्शन से?

दादाश्री : हाँ, अर्थात् केवलदर्शन। जिसे क्षायक दर्शन कहते हैं न, क्षायक समकित कहते हैं न, वह। वीतरागों को उपशम समकित और क्षयोपशम समकित ऐसा-वैसा नहीं रहता। उनकी दृष्टि बहुत अलग प्रकार की होती है, बहुत सुंदर दृष्टि होती है, केवलदर्शन।

प्रश्नकर्ता : क्षायक समकित और केवलदर्शन एक ही हैं?

दादाश्री : एक ही हैं, कुछ और नहीं है। दर्शन आ गया, केवलदर्शन। वह दर्शन, इन आँखों से जो दिखाई देता है, उसे दर्शन नहीं माना जाता। यह तो इन्द्रिय दर्शन है।

ज्ञानी की कृपा से प्राप्त किया केवलदर्शन

प्रश्नकर्ता : ज्ञानविधि में सम्यक् दर्शन प्राप्त होता है न?

दादाश्री : हाँ! सम्यक् दर्शन है, लेकिन क्षायक। अब, वह क्षायक समकित हुआ, यानी कि शुक्लध्यान हुआ, लेकिन शुक्लध्यान का आधार स्तंभ कौन सा? तो कहते हैं, आपका पहला आधार स्तंभ।

अब, 'कुछ है' ('मैं शुद्धात्मा हूँ') ऐसा आपको जो ज्ञान हुआ है, उसके परिणाम आपने देखे। लेकिन अभी आपने स्पष्ट कुछ भी नहीं देखा है, स्पष्ट वेदन नहीं हुआ है, अस्पष्ट वेदन है। इसलिए आपको ऐसा लगा कि 'कुछ है' लेकिन 'यह है', अभी तक ऐसा डिसिज़न नहीं आया है।

प्रश्नकर्ता : 'यह है', ऐसा तय नहीं हुआ है।

दादाश्री : 'यह है', ऐसा कब तय होगा? जब केवलज्ञान होगा, उस समय।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान का मतलब क्या है?

दादाश्री : उसका अनुभव होने के बाद में फिर आप पर किसी भी चीज़ का असर नहीं होगा। पैकिंग और आत्मा, दोनों अलग ही दिखाई दें, वह है केवलज्ञान। जैसे नारियल के अंदर गोला होता है न, वह अलग होकर खड़कता है, उसे कहते हैं केवलज्ञान और जब तक चिपका रहता है तब तक केवलदर्शन।

समझ है दर्शन और अनुभव है ज्ञान

अपना यह 'केवलदर्शन' यानी कि केवल समझ का विज्ञान है। उसके बाद केवलज्ञान में आता है। आपको जो समझ में आया है, उसका अनुभव नहीं हुआ है। तो ऐसा नहीं कह सकते कि समझ में नहीं था। जो समझ में आता है, वह दर्शन है और जो अनुभव में आता है, वह ज्ञान है।

क्रमिक में समकित होने के बाद केवलदर्शन होता है, आपको तो यह सीधा ही केवलदर्शन दे दिया है।

प्रश्नकर्ता : सही शुरुआत यहाँ से होती है।

दादाश्री : 'मुक्त हो गया', ऐसा लगता है। ऐसा लगता है कि, 'बंधा हुआ था, उस बंधन में से मुक्त हो गया हूँ'।

नौ प्रकार के दर्शन हैं, उनमें से चक्षु दर्शन निकल जाए तो फिर क्या रहा? अचक्षु दर्शन, अवधिदर्शन है, केवलदर्शन।

जब तक केवलदर्शन नहीं हो जाता तब तक स्वरूप की अज्ञानता रूपी अंधापन नहीं जाता। केवलदर्शन होते ही अंधापन गया।

अक्रम में, दर्शन-तप-ज्ञान-चारित्र

क्रमिक मार्ग में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र, ये बाहरी भाग में हैं। अंदर वाला भाग तो अंदर ही है लेकिन सब शब्दों से (व्यवहार से) है, यथार्थ (निश्चय से) नहीं है। बहुत हुआ तो छठे गुणस्थानक तक पहुँचते हैं और शायद कभी सातवाँ देख पाते है। बस, कभी घंटे भर के लिए सातवें गुणस्थानक में जा सकते हैं। ऐसा इस काल में हुआ नहीं है अभी तक। तो यह उसका वर्णन है जबकि अपने अक्रम मार्ग में केवलदर्शन, केवलज्ञान और केवलचारित्र, यानी केवलदर्शन तक पहुँच गए हैं। केवलज्ञान तक पहुँचा जा सके, ऐसा नहीं है।

हम यह ज्ञान देते हैं न, तो यह केवलदर्शन का ज्ञान देते हैं, क्षायक समकित का ज्ञान देते हैं। यह केवलज्ञान नहीं है लेकिन यह आज्ञारूपी केवलज्ञान और केवलदर्शन वाला ज्ञान है। अतः ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, इन चारों वाला ज्ञान है। फिर उसमें से क्षायक ज्ञान कब होता है? यदि हमारी आज्ञा में रहे, तब। तब फिर वह समझ जब वर्तन में आ जाती है तब क्षायक ज्ञान होता है।

दर्शन में बदलाव आया, ज्ञान में बदलाव आया और इसीलिए चारित्र में बदलाव है। विभाविक हो गया है दर्शन, ज्ञान और चारित्र इसलिए दर्शन व ज्ञान के बदलने से सब बदल जाता है। मैंने यह जो 'केवलदर्शन' दिया है इससे आपका सबकुछ बदल जाएगा।

दर्शन तो सर्वांश ही दिया है, केवलदर्शन दिया है। जितना अनुभव होता है, उतना ही उसे अंश ज्ञान होता है, उसके बाद सर्वांश ज्ञान होता है। जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे चारित्र बढ़ता जाता है। जब ज्ञान और दर्शन का फल आता है तब चारित्र कहलाता है। इस अक्रम मार्ग में हमें प्रतीति के अनुसार अनुभव होता है और उतना ही ज्ञान प्रकट होता है।

जितना अनुभव, उतनी ही वीतरागता और उतना ही चारित्र

कहलाता है। तप के बिना चारित्र नहीं हो सकता। जितना तप करोगे उतना ही चारित्र उत्पन्न होगा। तप को देखना व जानना, वही चारित्र है।

आपके पास से कोई दस हज़ार लूट ले, उस समय अगर आपको ऐसा भान रहे कि यह *पुद्गल* की करामात है, तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की करामात पूरी तरह समझ आ जाए तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की करामात की क्रिया को जान पाए तो वह केवलज्ञान है। *पुद्गल* की करामात है, ऐसा वर्तना में आ जाए तो, केवलचारित्र।

निमित्त द्वारा, सूझ परिणमित होती है केवलदर्शन में

प्रश्नकर्ता : सत्संग में आपने बताया था कि सूझ, दर्शन है, तो क्या वह केवलदर्शन तक पहुँचती है?

दादाश्री : सूझ, सहज रूप से प्राप्त होने वाला दर्शन है, बिना प्रयास प्राप्त होने वाला, वह दर्शन खुलते-खुलते केवलदर्शन हो जाता है। लेकिन बीच में निमित्त की ज़रूरत है, निमित्त! संसार में हर तरह की सूझ पड़ती है लेकिन जब तक खुद के बारे में सूझ नहीं पड़ती कि, 'मैं कौन हूँ', तब तक 'केवलदर्शन' नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : सूझ उपादान में से निकलती है?

दादाश्री : हाँ! इसीलिए लोग कहते हैं न, कि निमित्त मिलने पर यदि उपादान जाग्रत नहीं रखे तो खत्म, तो काम नहीं होगा। हर एक को जो सूझ पड़ती है, वह दर्शन है। वह सूझ ही काम करती जाती है। सूझ जितनी बढ़ती जाती है, उतना ही दर्शन बढ़ता जाता है। ऐसे करते-करते अंत में जब फुल दर्शन हो जाता है तब केवलदर्शन तक पहुँचता है। केवलदर्शन उत्पन्न होने के बाद में, केवलज्ञान के अंश प्रकट होते जाते हैं।

सूझ पूर्ण हो जाने के बाद में, अब मोक्षमार्ग दिखाती है प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : सूझ को प्रज्ञा कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं, प्रज्ञा तो ज्ञान है जबकि सूझ तो दर्शन है। और अज्ञा को बुद्धि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो जो दादा से ज्ञान लेते हैं और उसे फिर वह मोक्षमार्ग में जो सारी मदद करता रहता है, वहाँ पर सूझ का स्थान है क्या?

दादाश्री : वह प्रज्ञा का काम है। फिर वह प्रज्ञा के काम में आता है। ज्ञान लिया, उस दिन सूझ फुल (संपूर्ण) हो जाती है, केवलदर्शन के रूप में हो जाती है। उसके बाद सूझ को और ज़्यादा विकसित होने को नहीं रहता। उसके बाद उलझन नहीं होती न!

प्रश्नकर्ता : उसके बाद प्रज्ञा मदद करती है?

दादाश्री : हाँ, बस।

प्रश्नकर्ता : जिसे आपका ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसे अब जो ठेठ मोक्ष तक का दरवाज़ा बताती है, उलझनों का *निकाल* (निपटारा) बताती है, उस सूझ की जगह पर प्रज्ञा आ जाती है?

दादाश्री : वह प्रज्ञा है। सूझ तो पूर्ण हो गई अपनी, क्षायिक हो गया। अब प्रज्ञा सब दिखाती है। जब सूझ पूर्ण हो जाती है तब क्षायिक समकित कहलाता है, केवलदर्शन कहलाता है। जब सूझ पूर्ण हो जाती है तब उसका काम खत्म हो जाता है।

हमें भी ज्ञान होने से पहले सूझ पड़ती थी। सूझ अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती। यों ही लगता है कि, 'ऐसा ही है', उसे सूझ कहते हैं।

हमें तो दिखाई देता है। आगे-पीछे का, पीछे क्या हो रहा है, वह भी दिखाई देता है। तब अगर कोई पूछे कि, 'मैं आपके पीछे खड़ा हूँ और मैंने हाथ ऊँचा किया है या नहीं'? वह नहीं दिखाई देता। स्थूल नहीं दिखाई देता, सूक्ष्म दिखाई देता है। जो सूक्ष्म विभाग

है न, वह सब दिखाई देता है। वह समझ की वजह से दिखाई देता है। स्थूल तो, जब केवलज्ञान संपूर्ण हो जाता है तब सब दिखाई देता है।

खत्म हुए दर्शनावरण और मोहनीय, रहे हैं दो बाकी

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञानविधि करवाते हैं न, उससे दर्शनावरणीय टूटते हैं, तभी हमें दर्शन होता है?

दादाश्री : जब हम ज्ञान देते हैं तब उसे ऐसा भान हो जाता है कि, 'कुछ है', यानी कि दर्शनावरण गया। दर्शनावरण तो पूरा ही टूट गया। हम यह केवलदर्शन देते हैं। यह क्षायक दर्शन है। दर्शनावरण टूट जाने के बाद क्षायक दर्शन कहते हैं।

'कुछ है', ऐसी आपको सूझ पड़ी, समझ में आया। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह सूझ पड़ी लेकिन अब, 'क्या है', उसकी जानकारी नहीं है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है। फिर ऐसा डिसाइड होता है कि 'क्या है'। जैसे-जैसे अनुभव में आता जाएगा वैसे-वैसे ज्ञानावरण जाएगा। इसलिए यहाँ (सत्संग में) मिलते रहते हैं। अब ज्ञानावरणीय कर्म तोड़ने के प्रयत्न कर रहे हैं। दर्शनावरणीय कर्म टूट चुके हैं। दर्शनावरणीय ही पहले टूटता है, उसके बाद धीरे-धीरे ज्ञानावरण टूटता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इस दर्शनावरणीय में और मिथ्या दर्शन में क्या अंतर है?

दादाश्री : यह जो मिथ्या दर्शन है, वह समकित की अपेक्षा से है कि इन विनाशी चीज़ों में ही सुख मानता है। उसे ऐसी श्रद्धा है कि विनाशी चीज़ों में सुख है, इसलिए उसे मिथ्या दर्शन कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोहनीय कर्म में सब से पहला दर्शनावरण है यानी कि मिथ्या दर्शन। पहले अज्ञान, उसके बाद मिथ्या दर्शन, इस प्रकार से रखा गया है। तो फिर अज्ञान में और ज्ञानावरणीय कर्म में क्या फर्क है?

दादाश्री : ज्ञानावरण तो आवरण है और अज्ञान यानी कि खुद का भान ही नहीं है। ज्ञानावरण तो कम–ज़्यादा हो सकता है लेकिन स्वरूप का अज्ञान तो अज्ञान ही रहता है। आपका वह अज्ञान तो निकाल दिया है, लेकिन यह ज्ञानावरणीय पूरी तरह से नहीं निकलता। इस अज्ञान को तोड़ने के बाद ज्ञानावरणीय का कुछ भाग टूट गया। लेकिन जो बाकी बचा है वह तो धीरे–धीरे निकलेगा। यानी कि पहले अज्ञान जाएगा, उसके बाद ज्ञानावरणीय जाएगा, धीरे–धीरे। आवरण खत्म होते ही पूर्णिमा! पूनम का चाँद! तब तक दूज का चाँद रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसी प्रकार दर्शनावरण और मिथ्या दर्शन हैं?

दादाश्री : मिथ्या दर्शन भी चला गया है और दर्शनावरण भी चला गया। मोहनीय भी चला गया। अंतराय नहीं गए हैं, ज्ञानावरणीय नहीं गया है। ये चार आत्मघाती हैं, ये घातीकर्म कहलाते हैं। इन घातीकर्मों में चारित्र मोहनीय और ज्ञानावरणीय हैं, इन दोनों का जैसे–जैसे समभाव से *निकाल* करोगे वैसे–वैसे आवरण भी कम होंगे और वैसे–वैसे अंतराय टूटते जाएँगे।

सम्यक् दर्शन से प्रतीति आती–जाती है और केवल से निरंतर रहती है

प्रश्नकर्ता : यदि दर्शनावरण टूट गया है तो फिर विश्व की जो अनंत चीज़ें हैं, वे दिखाई देनी चाहिए न?

दादाश्री : दृश्य दिखाई दें, ऐसा नहीं। ये दृश्य देखने के लिए नहीं हैं, ये खुद की श्रद्धा के लिए हैं। खुद का सबकुछ दिखाई दे तो उसे केवल श्रद्धा कहते हैं। केवलदर्शन अर्थात् केवल श्रद्धा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सम्यक् दर्शन और केवलदर्शन दोनों एक ही हुए न?

दादाश्री : नहीं, सम्यक् दर्शन तो तब कहलाता है जब ऐसी प्रतीति रहे कि मिथ्या दर्शन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रतीति अर्थात् श्रद्धा ही न?

दादाश्री : प्रतीति अर्थात् श्रद्धा। शब्दों से प्रतीति, तो उसे कहेंगे, मिथ्या दर्शन गया ; उसे कहेंगे, समकित हो गया। और जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान बरते, *लक्ष* (जागृति) बरते, तब से वह केवलदर्शन कहलाता है। और तब तक शुद्धात्मा तो किसी को, ज्ञानी को भी नहीं बरतता। क्रमिक मार्ग के किसी भी ज्ञानी को निरंतर 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *लक्ष* नहीं रहता। और जब वह टॉप पर पहुँचता है तब अंतिम स्टेशन पर (अंतिम दशा में), जिस जन्म में मोक्ष होना हो, उस जन्म में उसे *लक्ष* बैठता है, तब तक समकित रहता है।

निरंतर प्रतीति को क्षायक समकित कहा गया है। एक क्षण के लिए भी इधर-उधर न हो, ऐसी निरंतर प्रतीति। हम सब को निरंतर प्रतीति मिली है। इसलिए इसे क्षायक समकित कहा गया है। सम्यक् दर्शन अर्थात् क्या है, कि कुछ समय तक प्रतीति रहती है और फिर चली जाती है। एकाध *गुंठाणा* (48 मिनट, गुणस्थानक) तक रहती है और फिर चली जाती है। फिर से जैसा था वैसे का वैसा ही हो जाता है। दूसरी प्रकृतियाँ और कषाय उपशम हैं। बाकी की प्रकृतियाँ दबी रहती हैं और फिर जब सत्संग में आता है तब उसे उपशम समकित हो जाता है और प्रतीति बैठ जाती है। लेकिन एक *गुंठाणे* के लिए ही बैठती है। उसके बाद अन्य कोई प्रकृति उखड़ती है और पहले वाली चली जाती है। एक बार स्पर्श होने के बाद आती रहती है। उसका नियम ऐसा है कि उसका स्पर्श हुआ, उसके बाद कभी न कभी, लेकिन आती रहती है।

'मैं कर्ता नहीं हूँ' की निरंतर प्रतीति, वही केवलदर्शन

ये चंदूभाई जो कुछ भी करते हैं सुबह उठकर, तो उसमें आपने एक बाल बराबर भी कुछ नहीं किया है। आपको ऐसी श्रद्धा बैठ जाए, ऐसी प्रतीति बैठ जाए कि, 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', तब केवलदर्शन होता है।

खुद को संपूर्ण रूप से प्रतीति बैठ गई। 'मैं कर्ता नहीं हूँ', ऐसी प्रतीति बैठ गई। जन्म से लेकर अभी तक किसी भी चीज़ का 'मैं कर्ता नहीं हूँ', उसकी प्रतीति हो जाना, उसी को कहते हैं केवलदर्शन। लोगों का कर्तापन नहीं जाता, छूटता नहीं है। हम छुड़वाने जाएँ तब भी नहीं छूटता।

क्रमिक में पहले ज्ञान है और उसके बाद दर्शन, जबकि अपने अक्रम में पहले दर्शन है और उसके बाद ज्ञान। क्रमिक मार्ग में ज्ञान को बुद्धि से समझते हैं, और फिर आत्मा दर्शन में आता है। वहाँ पर ज्ञान को ज्ञान द्वारा नहीं समझा जा सकता। जहाँ पर त्याग है वहाँ ज्ञान नहीं है। जहाँ पर किंचित्मात्र भी ऐसा रहे कि, 'मैं इसका कर्ता हूँ', वहाँ पर आत्मा अधूरा रहता है, ज्ञान और दर्शन अधूरा रहता है, केवलदर्शन नहीं हो पाता।

इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह इस जगत् को पुसाए या न पुसाए फिर भी 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहे, वह केवलदर्शन है। कितना अद्भुत वाक्य है! निरंतर ध्यान में रहना चाहिए। हम, सब से पहले वही देते हैं सभी को।

प्रश्नकर्ता : 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर वह भाव रहे तो केवलदर्शन हो जाता है?

दादाश्री : हाँ! क्योंकि तीर्थंकर वर्तन को नहीं देखते, तीर्थंकर भाव सत्ता को देखते हैं। अत: हमें तीर्थंकरों की बात मान्य है, लोगों की बात हम कहाँ मान्य करें?

[6.2]

केवलदर्शन की परिभाषा और प्रसंग (घटनाएँ)

तमाम शास्त्रों का सार, एक वाक्य में

प्रश्नकर्ता : 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', ऐसा ध्यान, वही केवलदर्शन है?

दादाश्री : ''इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह इस जगत् को पुसाए या न भी पुसाए, फिर भी 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहना, वही केवलदर्शन है।'' 'मैं कर रहा हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहे, वह मिथ्या दर्शन है।

प्रश्नकर्ता : 1968 में निकला यह सूत्र?

दादाश्री : ऐसे वाक्य कभी-कभी निकले हैं और फिर पूरी लिंक बन गई ऐसी। उसके बाद पूरी माला बनी, वर्ना माला नहीं, अलग-अलग मोती निकले हैं। इस प्रकार ये सभी वाक्य अलग-अलग निकलकर और फिर इकट्ठे हो गए। ज्ञानी पद आने के बाद की अंतिम संज्ञा है यह। इसी के आधार पर ऐसे वाक्य निकल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें सब आ गया, सार आ गया?

दादाश्री : हाँ, बस, पूरा ही सार आ गया। सभी शास्त्रों का, तमाम शास्त्रों के सार के रूप में यह वाक्य बोला था। भगवान के सभी शास्त्रों का सार एक वाक्य में है!

सार रूप ज्ञानसूत्र का प्राकट्य, बाथरूम में

प्रश्नकर्ता : वह ज्ञानसूत्र तब निकला था जब आप नहाने गए थे। उसके बारे में बताइए न।

दादाश्री : एक दिन मैं बाथरूम में नहाने गया था और यहाँ घर पर, पिछले रूम में दो-चार-पाँच महात्मा बैठे थे।

प्रश्नकर्ता : मामा की पोल में।

दादाश्री : हाँ! बातें, सत्संग कर रहे थे। मैं नहाने गया था दस बजे, वहाँ अंदर मुझे विचार आया। नहाकर मैं तो इस तरह तौलिया लपेटकर बाहर निकला, मैंने बाहर बैठे सभी महात्माओं से कहा था, 'अरे भाई, लिख लो, वाक्य आया है'। तब यह वाक्य बोला था। 'इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, कुछ भी यानी उसकी कोई डिटेल नहीं। जो कुछ भी किया जाता है वह इस जगत् को पुसाए या न भी पुसाए फिर भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान में रहना, उसे कहते हैं केवलदर्शन। बहुत बड़ा वाक्य निकला था। तब फिर वहाँ बैठे महात्माओं ने पूछा, 'लेकिन इसका अर्थ क्या है कि कुछ भी जो जगत् को पुसाए या न पुसाए?'

ध्यान में है अकर्ता, फिर इसलिए नहीं रुकना है कि जगत् को पुसाए

इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह जगत् को पुसाए या न भी पुसाए, फिर भी जो कुछ भी किया जाता है, 'कुछ भी' में तो बहुत बड़ा अर्थ समाया है। कुछ भी यानी हम ऐसा नहीं कहते कि यह अच्छा या बुरा है। अच्छा या बुरा, चाहे कुछ भी किया जाए, वह इस जगत् को पुसाए या न भी पुसाए।

प्रश्नकर्ता : कौन से अर्थ में पुसाने की बात कह रहे हैं?

दादाश्री : 'पुसाए या न पुसाए जग को', जगत् को पुसाए इसी वजह से ये लोग यहाँ पड़े हुए हैं। जगत् को तो पुसाए या न भी पुसाए, उसके लिए कब तक बैठे रहोगे? जगत् को तो कुछ भी नहीं पुसाता।

'जगत् को सब पुसाना चाहिए', अगर वैसी तैयारी करने जाओगे तो जगत् को तो कभी भी नहीं पुसाएगा। किसी को पुसाए उस तरफ दृष्टि रखोगे तो आपका काम बिगड़ जाएगा। कुछ लोगों को पुसाएगा, कुछ लोगों को नहीं पुसाएगा, कुछ लोग विरोध करेंगे, हमें घबराना नहीं है। इस तरफ के लोग कहेंगे, 'आपने बहुत अच्छा किया' और दूसरे लोग कहेंगे, 'आप जो कर रहे हो, वह हमें पसंद नहीं है। उससे यदि हम घबरा जाएँगे तो अपना बिगड़ जाएगा। ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है। उन्हें पुसाए या न भी पुसाए, ऐसी चिंता किए बिना हमें कार्य करते जाना है। अपने लिए तो, 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', ऐसा भाव, निरंतर ऐसा ध्यान, वही केवलदर्शन है।

निरंतर ऐसा ध्यान रहे, वही केवलदर्शन

चंदूभाई आप अगर बत्तीस तरह के भोजन खा रहे हों तो दुनिया के लोग क्या कहेंगे? 'ये क्या धर्म करेंगे।' दूसरी तरफ कुछ समझदार लोग होंगे, वे कहेंगे, 'नहीं, वास्तविक धर्म तो इन्होंने ही प्राप्त किया है'। एक तरफ के लोगों को पुसाता है और दूसरी तरफ के लोगों को नहीं पुसाता। ऐसा होता है क्या? घर में इतने लोगों को पुसाता है और घर में इतने लोगों को नहीं पुसाता। पुसाए या नहीं पुसाए, ऐसा नहीं देखना है, लेकिन आपके मन में यह ध्यान रहना चाहिए कि, 'मैं नहीं करता हूँ, यह चंदूभाई कर रहे हैं। हर एक बात में, यह मैं नहीं कर रहा हूँ, यह चंदूभाई कर रहे हैं। इसका कर्ता मैं नहीं हूँ, *पुद्गल* है।'

प्रश्नकर्ता : कर्ता *पुद्गल* है?

दादाश्री : वास्तव में एक्ज़ेक्ट ऐसा ही है। ऐसा तो जानते हैं कि, 'मैं नहीं कर रहा हूँ, व्यवस्थित कर रहा है', लेकिन वह निरंतर ध्यान में रहना चाहिए। इस तरफ के लोग कहेंगे कि, 'दादाजी, बहुत अच्छी बात थी आपकी।' उस तरफ वाले कहेंगे, 'दादाजी, यह तो आपने गलत कहा'। हमें वह देखने की ज़रूरत नहीं है। हमें निरंतर ध्यान में रहता है या नहीं? आपको इस तरह से बरतता है? तो फिर, बस, हो गया। फिर अगर हम इसे देखने जाएँगे तो जो हमारे पास है,

वह चला जाएगा। दुनिया को न भी पुसाए। दुनिया को तो कभी पुसाता ही नहीं है। अस्सी लोगों को पुसाता है और पाँच लोगों को नहीं पुसाता। काली झंडी लेकर निकलते ही हैं, टोलियाँ निकलती ही हैं। लाल झंडी लेकर निकलते हैं न? इसलिए हमने कह दिया है न, 'दुनिया के लोगों को पुसाए या न पुसाए'! लोग दुनिया से डरते हैं।

चंदूभाई चाहे कुछ भी कर रहे हों, अच्छे-बुरे में यदि तुझे ऐसा ध्यान रहता है कि, 'मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ' तो तू महावीर बन रहा है। बहुत बड़ा वाक्य है यह।

गुह्य गोपित बात समझाकर, बनाया दादा ने निडर

प्रश्नकर्ता : जो कुछ भी किया जाता है, वह इस जगत् को पुसाए या न भी पुसाए, फिर भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, ऐसा ध्यान रहना, लेकिन ऐसे ध्यान वाले तो, जगत् को न पुसाए, ऐसा कुछ करते ही नहीं हैं न? उनके किसी भी वर्तन में ऐसा कुछ रहता ही नहीं जो जगत् को न पुसाए।

दादाश्री : लेकिन जगत् को कैसे पुसाएगा?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, लेकिन जो केवलज्ञानी हैं, वे जगत् को न पुसाए, ऐसा तो करेंगे ही नहीं न?

दादाश्री : नहीं, वह मैं आपको बताता हूँ। इस तरफ आठ बंगले वाले हों और उस तरफ आठ बंगले वाले हों तो सोलह बंगलों के बीच में खुद का मकान हो, तब मैं जो कर रहा हूँ, वह कुछ लोगों को ठीक लगेगा और कुछ को नहीं। ठीक लगे तो हमें आपत्ति नहीं है, ठीक नहीं लगे तब भी हमें आपत्ति नहीं है और अगर वे आपत्ति उठाएँगे तब भी आपत्ति नहीं है हमें।

इस तरफ वाले कहेंगे, 'दादा, आपने यह खराब किया'। उस तरफ वाले कहेंगे कि, 'दादा, आपने अच्छा किया'। तो हमें आपत्ति नहीं है। फिर भी यदि हमें ऐसा लगे, 'मैं नहीं कर रहा हूँ', तो वह केवलदर्शन कहलाता है। इस तरफ वालों का ऐसा अभिप्राय है कि,

'ये खराब कर रहे हैं'। उस तरफ वालों का ऐसा अभिप्राय है कि, 'ये अच्छा कर रहे हैं'। दोनों ही बातें गलत हैं। देखना ही नहीं आता। इंसान की बिसात ही क्या है कि वह देख सके? चमड़ी की आँखों से कितना देख सकेगा इंसान?

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन व्यवहार में उनका वर्तन ऐसा रहता नहीं है न!

दादाश्री : व्यवहारिक वर्तन का सवाल नहीं है। हम कहें कि, 'भाई, आज जलेबी का भोजन है।' तब वे कहेंगे कि, 'नहीं, हमें तो फलाना चाहिए।' और व्यवहारिक वर्तन तो आप मेरे साथ रहोगे न, तो पता चलेगा। अगर मैं यहाँ पर रहता होऊँ न, तो आसपास वाले इन लोगों से कहेंगे कि ये जल्दी निकलते हैं, वह बहुत गलत है, तो दूसरे कहेंगे, ये जल्दी निकलते हैं, वह अच्छा है। तो ऐसा सब है, ऐसा दखल रहता ही है, आप उस दखल में मत पड़ना।

प्रश्नकर्ता : तब भी मेरा यही कहना है न, कि ज्ञानी खराब काम करेंगे ही नहीं न?

दादाश्री : वे करे या नहीं, वह नहीं देखना है। अतः आपके मन में से यह डर निकाल दिया है। जगत् इसी से घबराया हुआ है।

प्रश्नकर्ता : कि फलाना क्या कहेगा, फलाना क्या कहेगा?

दादाश्री : हाँ, अरे! क्या कहेगा? जो शादीशुदा है, उसे लोग क्या कुछ नहीं कहेंगे? कल तो पत्नी के साथ घूमने गए थे। यानी कि पूरी दुनिया अभिप्राय वाली ही है। ज्ञानी को तो क्या, भगवान महावीर को तो इतनी-इतनी गालियाँ देते थे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो हर एक ज़माने में जो कोई भी होता है, उसे गालियाँ तो देते ही हैं।

दादाश्री : बस, अतः आपके मन में से भय निकालने के लिए यह वाक्य कि, 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ ऐसा ध्यान', कहा है।

प्रश्नकर्ता : आज यह समझ में आया कि हमारा भय निकालने के लिए यह कहा है, वर्ना हम तो इसे उसी तरफ ले जाते थे।

दादाश्री : यानी आपके मन में अगर ऐसा लगे कि लोग ऐसा कहते हैं, आपकी निंदा करते हैं तो आपको सुनना है कि निंदा कर रहे हैं लेकिन आपको अंदर क्या रखना है कि, 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, ऐसा मुझे ध्यान रहता है तो छोड़ो न इसे! इससे मुझे क्या लेना-देना? मेरे काम का नहीं है। मुझे तो, मेरी जो प्रतीति है, उसी पर चलते जाना है।'

जगत् को पुसाए या न भी पुसाए, यानी कि उन्हें पसंद हो या नापसंद हो, और गालियाँ देते हुए भी आपको अंदर ऐसा ध्यान रहे कि, 'यह कुछ भी मैं नहीं कर रहा हूँ', तो आप मुक्त हो।

यानी कि, 'इस जगत् में मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', हमें निरंतर ऐसा जो रहता था, वही हमने उस दिन बोला। बहुत बड़ा वाक्य है! कोई आपत्ति ही नहीं उठाएगा न! चाहे ऐसे घूमो या वैसे घूमो। जिनका आग्रह खत्म हो गया है, उनके लिए क्या आपत्ति उठाना? कभी कह सकते हैं, 'जिनके आग्रह खत्म हो गए हैं, उनके लिए आपत्ति उठाते हैं?' किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं हो, उसे कहते हैं सहज, वही स्याद्वाद है। जिनके आग्रह खत्म हो गए, वही स्याद्वाद।

चारित्र मोह को देखने से खत्म होता है अनंत जन्मों का नुकसान

हम जब ज्ञान देते हैं तब दर्शन मोह सर्वांश रूप से खत्म हो जाता है इसलिए निश्चय से आपका मोह तो खत्म हो चुका है। व्यवहार मोह बचा है यानी चारित्र मोह बचा है।

जिस प्रकार का चारित्र मोह हो, उसी प्रकार का निकलता है, फिर चाहे वह नियम वाला निकले या अनियम वाला, फिर भी 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', ऐसा निरंतर ध्यान रहे तो उसे केवलदर्शन कहा जाता है!

भगवान के वहाँ नियम या अनियम नहीं है, ऐसा तो यहाँ लोगों

के पास है। गाय-भैंसों के वहाँ भी नियम या अनियम नहीं है। वह सब तो इन लोगों के यहाँ, अक्लमंदों में ही है। ऐसी व्यवस्था की है कि, 'ऐसा करेंगे तो हम सुखी हो जाएँगे'। एक जन्म के लिए, सबकुछ नियम से करे या अनियम वाला कुछ हो जाए, यदि उसे 'देखता' ही रहे न, तो सभी जन्मों का नुकसान खत्म हो जाएगा। फिर रहा क्या?

यह चारित्र मोह है, बाकी और कुछ भी नहीं रहा। 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', यदि निरंतर ऐसा ध्यान रहे तो प्रतिक्रमण-प्रत्याखान कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन ऐसा इतना रह नहीं पाता। इंसान की इतनी शक्ति नहीं है। यानी कि धीरे-धीरे होगा ऐसा! पहले इस तरह से करते-करते उस पद तक पहुँच पाओगे।

अदर्शन की गांठ टूटने से, पाया केवलदर्शन

प्रश्नकर्ता : ज्ञान मिलने के बाद महात्माओं की कौन सी स्टेज होती है?

दादाश्री : केवलदर्शन हो चुका है यह। 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', ऐसा निरंतर ध्यान रहता है, वह केवलदर्शन हो गया, उसे क्षायक समकित कहते हैं। यह तो बहुत उच्च पद प्राप्त किया है। अब आप इसे जितना संभालोगे, उतना आपका।

केवलदर्शन अर्थात् क्षायक समकित। इसके लिए अपने शास्त्रों में 'मना' किया गया है। इस काल में नहीं हो सकता, फिर भी यहाँ पर हो गया है। क्षायक समकित अर्थात् वह समकित जो कभी भी जाए नहीं, जो निरंतर रहे। अब आपको निरंतर शुद्धात्मा का ध्यान रहेगा।

यानी कि *'वर्ते निजस्वभावनुं अनुभव-लक्ष-प्रतीत, वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित।'* उसके बाद, *'वर्धमान समकित थई टाले मिथ्याभास, उदय थाय चारित्रनो वीतराग पदवास।'* उसके बाद और क्या बचा? केवलज्ञान का पद। केवल निज स्वभाव का अर्थात् आत्मा को देखा। *'केवल निज स्वभाव का अखंड बरते ज्ञान।'* कैसा? अखंड।

'कहीए केवलज्ञान ते देह छतां निर्वाण।' आपको यह अखंड प्रतीति रहती है, अखंड *लक्ष* (जागृति) रहता है लेकिन ज्ञान नहीं बरतता। यानी कि केवलदर्शन तक पहुँच गए।

प्रश्नकर्ता : *'केवल निजस्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान, कहीए केवलज्ञान ते देह छतां निर्वाण।'*

दादाश्री : जिसे निरंतर आत्मरमणता रहे, इस *पुद्गल* में ज़रा सी भी रमणता न रहे, वह निज स्वभाव में कहा जाता है। केवल निज स्वभाव में निरंतर आत्मरमणता। यह संसार रमणता नहीं है। और फिर 'अखंड बरते ज्ञान', उसे केवलज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान 'हमें' निरंतर नहीं रह पाता, थोड़ी कमी रहती है इसलिए ऐसा कहते हैं, चार डिग्री कम हैं। यानी कि आपको निज स्वभाव में अखंड नहीं बरतेगा। ज्ञान अर्थात् आप कौन से स्टेशन पर खड़े हो? दो बड़े स्टेशन हैं : एक है, 'केवल निज स्वभाव का अखंड बरते ज्ञान।' और यहाँ पर नीचे दूसरा वाक्य लिखा है कि, 'केवल निज स्वभाव का अखंड बरते दर्शन; कहते हैं केवलदर्शन वह, देह है फिर भी निर्वाण।' यानी कि आप सभी को केवलदर्शन की स्टेज में रख दिया है।

'मैं नहीं करता हूँ', ऐसा निरंतर ध्यान में रहे तो वह केवलदर्शन है, और कुछ देर रहे, और कुछ देर न रहे तो वह केवलदर्शन के अंश हैं, कुछ फिफ्टी परसेन्ट या साठ परसेन्ट। निरंतर रहे तो उसे केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् निरंतर ऐसा ध्यान रहना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, निरंतर ध्यान में रहना चाहिए कि, 'यह मैं नहीं कर रहा हूँ'।

जैसे स्टीमर में बैठते हैं तो हमें ऐसा ध्यान में रहता है न, कि, 'स्टीमर ही चल रहा है, मैं नहीं चल रहा हूँ', ऐसा ध्यान रहना चाहिए। स्टीमर में तो वह देखकर बैठा है न, इसलिए फिर उसे ऐसा लगता है कि, 'यह स्टीमर ही चल रहा है और मैं बैठा हुआ हूँ'। इसमें उस

प्रकार से देखकर नहीं बैठा है न? निरंतर उसके ध्यान में रहना चाहिए, बस। एक क्षण के लिए भी कर्तापन नहीं लगे तो उसे केवलदर्शन कहा जाएगा और वह ज्ञान में और वर्तन में आ जाए तो केवलज्ञान हो गया।

डिस्चार्ज अहंकार खत्म होने पर आप बनोगे संपूर्ण

निरंतर ध्यान रहना कि, 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ' इसका मतलब उसे दर्शन में आ गया। यह शरीर करता ज़रूर है, लेकिन श्रद्धा इस तरह से बदल गई। उसके बाद बदली हुई श्रद्धा जब ज्ञान में आती है तब फिर ज्ञान में यह शरीर भी ऐसा नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, कि जो श्रद्धा में हो, शरीर अपने आप वह करता रहता है और जब ज्ञान में रहता है तब शरीर कुछ भी नहीं करता, इसका क्या मतलब है?

दादाश्री : ज्ञान में रहे न, तब शरीर कुछ भी नहीं करता। कुछ भी नहीं करता, इसका मतलब क्या है? उसकी सारी दैहिक क्रियाएँ चलती रहती हैं लेकिन उसमें ज़रा भी कर्तापन नहीं रहता। इसमें तो कर्तापना वाला डिस्चार्ज अहंकार है जबकि उसमें तो डिस्चार्ज अहंकार भी नहीं रहता। आपका वह चार्ज अहंकार तो चला गया है लेकिन डिस्चार्ज अहंकार बाकी है। उसमें डिस्चार्ज अहंकार भी खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, जिस तरह से आखों की पलकें झपकती हैं, उस तरह से?

दादाश्री : हाँ, उसके बाद वैसा होता रहता है। जैसे आँखों की पलकों को झपकाने में अहंकार की ज़रूरत नहीं होती। जिस प्रकार से वह सहज है, उसी प्रकार से। यानी कि उस समय डिस्चार्ज अहंकार खत्म हो जाता है। धीरे-धीरे खत्म होता जाता है। जैसे-जैसे ज्ञान होता जाता है वैसे-वैसे धीरे-धीरे वह (अहंकार) खत्म होता जाता है।

अब, फिर वहाँ क्या बाकी रहा? अब दो-तीन जन्मों के कर्म बाकी रहे। तो अपना यह शॉर्ट में अच्छा है। यह जल्दबाज़ी करने

जैसी चीज़ नहीं है, केवलदर्शन काफी है, इस दुनिया में तो लोगों के पास दर्शन भी नहीं है! जगत् में दर्शन नहीं है, अदर्शन है और आपकी अदर्शन की गुत्थियाँ टूट गई हैं। यानी कि वह अदर्शन की समाप्ति है अर्थात् केवलदर्शन है, पूर्ण दर्शन, क्षायक दर्शन। अब अज्ञान की गुत्थियाँ टूट जाएँगी तब आप संपूर्ण हो जाओगे।

'मैं कर्ता नहीं हूँ', ऐसा निरंतर ध्यान, वह है एकावतारी पद

प्रश्नकर्ता : निरंतर ध्यान रहने का मतलब, 'चंदूभाई कर रहे हैं', ऐसा मुझे निरंतर ध्यान रहना चाहिए न?

दादाश्री : ऐसा नहीं रहे, तब भी कोई हर्ज नहीं है। 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ', ऐसा रहे तो मुझे कुछ और देखने की ज़रूरत नहीं है, वह चीज़ केवलदर्शन है।

हमें वह जो निरंतर रहा था न, वही आपको बता रहे हैं, यहाँ पर। हमें यह निरंतर, हमेशा के लिए शुरू से ही रहता था, ज्ञान होने के बाद से।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था न, कि, 'मैं निरंतर उपयोग में रहता हूँ'। उपयोग यानी किस तरह से, क्या?

दादाश्री : नींद में भी उपयोग, यानी कि अंत में तो इतना ही रहना चाहिए कि, 'यह सब हो रहा है, और मैं कर्ता नहीं हूँ'। 'मैं ज्ञाता-द्रष्टा हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान। निरंतर ध्यान में रहे, वह एकावतारी पद कहलाता है।

निःशंक हुए शुद्धात्मा के लक्ष को लेकर

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *लक्ष* केवल दर्शन है। केवल दर्शन अर्थात् सबकुछ समझ में आ गया। कुछ लोगों को अगर गहनता से समझ में नहीं आए लेकिन वास्तव में 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह फिट हो जाए तो उसे केवल समझ कहते हैं।

यहाँ हमें शुद्धात्मा का *लक्ष* रहता है इसलिए लगता है कि शुद्धात्मा जैसा कुछ है, वह केवलदर्शन है, वही क्षायक समकित है। उसका फल क्या है? आकुलता-व्याकुलता मिट जाती है और निराकुलता रहती है।

यानी कि अब शंका चली गई। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निःशंक पद है और निःशंक पद को भगवान ने क्षायक समकित कहा है। जब तक निःशंक पद उत्पन्न नहीं होता तब तक वह क्षायक समकित नहीं कहलाता। क्षायक समकित को भगवान ने केवलदर्शन कहा है। अब हमें समझ-समझकर केवलज्ञान के अंश प्राप्त करने हैं। 360 तक पहुँचते-पहुँचते सबकुछ समझना है। जितना समझ में आया उतने समा जाएँगे फिर।

यह ज्ञान मिलने के बाद आपको तो प्रतीति बैठ गई कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, चंदूभाई नहीं हूँ'। चंदूभाई तो व्यवहार से है, वास्तव में चंदूभाई नहीं हो, ऐसा आपको लगता है न? और बाहर के लोग तो 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा ही मानते हैं न! नहीं? उन्हें तो यदि कोई गाली दे तो आँखें दिखाते हैं, नज़र बदल जाती है। अरे, मुँह से बोला उसमें नज़र क्यों बदल जाती है? पूरा ही डिस्टर्ब हो जाता है। उन पर असर होता है?

प्रश्नकर्ता : तुरंत।

दादाश्री : तुरंत? बिना किसी वायर के, ऐसा? और अपने ज्ञान प्राप्त व्यक्ति पर असर होता ज़रूर है लेकिन उस असर को वह खुद जानता है कि ऐसा असर हुआ। धीरे, धीरे, धीरे फिर ऐसे करते, करते उसका पूरा हिसाब साफ हो जाएगा, उसके बाद असर भी नहीं होगा। पराए जैसा लगेगा कि किसी और से बात कर रहा है, यह भाई। थोड़ी-बहुत, कुछ बातें पराई जैसी लगती हैं या नहीं लगती?

प्रश्नकर्ता : काफी कुछ।

दादाश्री : काफी कुछ लगती हैं, नहीं? तो ऐसे करते-करते

सभी बातें पराई लगेंगी। हैं ही पराई। कुछ बातों में अनुभव हो गया है, वे पराई ही लगती रहती हैं और कुछ बातों में अनुभव नहीं हुआ है, उस वजह से अभी तक अंदर उलझनें रहा करती हैं। अंदर श्रद्धा से ऐसा लगता है कि, 'ये अपनी नहीं हैं', फिर भी अंदर उलझाती रहती हैं। श्रद्धा से तो केवलदर्शन है।

न उपशम – न क्षयोपशम, सीधा क्षायक

अब, किसी काल में ऐसी श्रेणी तक पहुँच सकें, ऐसा काल ही नहीं आया है। जीव इस श्रेणी तक पहुँच सके, ऐसा काल ही कभी प्राप्त नहीं होता। इसलिए इसे अप्राप्त काल कहेंगे और सर्वोत्तम अवसर है। इसमें कमी न रह जाए, इतना देखते रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यदि यह क्षयोपशम ज्ञान नहीं है तो फिर क्या यह केवलज्ञान के अंश हैं?

दादाश्री : इसमें क्षयोपशम है ही नहीं। यह तो सीधा क्षायक ही है, उपशम भी नहीं है और क्षयोपशम भी नहीं है। यानी कि यह केवलज्ञान नहीं है लेकिन केवलदर्शन है। केवलज्ञान तो इस काल में पच ही नहीं सकता। हम जब यह ज्ञान देते हैं, उस क्षण जो ज्ञान बोलते हैं उसमें केवलज्ञान का समावेश है लेकिन केवलज्ञान इस काल में पचता नहीं है। मुझे नहीं पचा और अन्य किसी को भी पचेगा नहीं, इसलिए वह फल नहीं देता। हमें समझ में आ जाता है सब, पूरा ही जगत् जैसा है वैसा। कैसे उत्पन्न हुआ, कैसे चल रहा है और बाकी सब समझ में आ जाता है, ज्ञान में नहीं आता। समझ में या दर्शन में आ जाए तो सारी सूझ पड़ जाती है कि यह क्या है! ज्ञान में नहीं आता। ज्ञान साफ-साफ देखता है और इससे धुँधला देखता है।

फाइलों का निकाल – केवलदर्शन में मेहनत से, केवलज्ञान में आसानी से

प्रश्नकर्ता : केवलदर्शन अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा भाव, या इनमें कुछ डिग्री का फर्क है?

दादाश्री : नहीं-नहीं, ज्ञाता-द्रष्टा भाव केवलज्ञान में रहता है, केवलदर्शन में ज्ञाता-द्रष्टा भाव नहीं रहता लेकिन खुद को प्रतीति बैठ गई है कि, 'मैं ऐसा ही हूँ। अब मैं ज्ञाता-द्रष्टा रह सकूँगा।'

केवलदर्शन होने के बाद में खुद 'पुरुष' हो जाता है। अतः अब निरंतर ज्ञान की श्रेणियाँ चढ़ता रहता है, अनुभव की। अनुभव किसे कहते हैं, कि जितनी फाइलों पर सिग्नेचर (हस्ताक्षर) हो गए हैं, यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहकर, देख-देखकर निकल गई फाइलें तो उतना ही अनुभव होने लगेगा और उतना ही ज्ञान प्रकट होता जाएगा।

केवलज्ञान और केवलदर्शन में कितना फर्क है? केवलदर्शन में फाइलों का *निकाल* करने के लिए प्रज्ञा को मेहनत करनी पड़ती है। केवलज्ञान में मेहनत नहीं करनी पड़ती, आसानी से हो जाता है। फाइलें आती हैं, नमस्कार करती हैं और चली जाती हैं। फूल माला भी मिलती है और मार भी पड़ती है। लेकिन सहज भाव से (*निकाल*) होता रहता है।

ऐसे दूषमकाल में, अद्भुत पद महात्माओं का

प्रश्नकर्ता : केवलियों के अलावा कोई और आत्मा को नहीं देख सकता?

दादाश्री : केवली को आत्मा ज्ञान से दिखाई देता है लेकिन (अपने) महात्मा आत्मदर्शन से देख सकते हैं, केवलदर्शन से। महात्माओं को यह जो दर्शन दिया है, यह इतना उच्च दिया है कि केवलदर्शन का सुख दिया है। उससे सभी पज़ल सॉल्व हो जाती हैं और झट-पट हल आ जाता है। अपने महात्माओं को केवलदर्शन बरतता है! उसी के आनंद में रहते हैं।

ऐसा मोक्षमार्ग चखा, स्वाद आ गया, अनुभव में आ गया। पूरा जगत् निर्दोष है, ऐसा आपको समझ में आ गया। भगवान महावीर को अनुभव था कि पूरा जगत् निर्दोष है, और आपको वह समझ में आ

गया। कभी अगर समझ में नहीं आए और कोई झंझट हो जाए, फिर भी तुरंत वापस ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि, 'भाई, इसका क्या दोष'? व्यवस्थित है, ऐसा समझ में आ जाता है, निमित्त है, ऐसा समझ में आ जाता है, सबकुछ समझ में आ जाता है। ऐसा समझ में आता है न? जगत् निर्दोष है, ऐसा तो आपको समझ में आता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अवश्य।

दादाश्री : वह भगवान के अनुभव में था और आपको यह समझ में है। यदि समझ हमारे जैसी रहे न तो एक्ज़ेक्ट हाज़िर, शूट ऑन साइट समझ रहेगी। हमारा यह केवलदर्शन कहलाता है। आपको केवलदर्शन अभी हो रहा है।

आत्मा को पहचानना, आत्मा को अनुभव करना। दादा ने जैसा बताया है यदि वैसी स्थिति सेट हो गई, तो वह केवलदर्शन की ओर जाएगा। किसी को पूरा ही केवलदर्शन हो सकता है।

और केवलज्ञान हो सके, ऐसा नहीं है तो फिर हम उसे क्यों बुलाएँ? जो हो नहीं सकता, उसे कहें कि पधारिए, पधारिए, पधारिए तो वह सारी मेहनत भी बेकार जाएगी। बेकार नहीं जाएगी? और करना भी क्या है हमें? केवलदर्शन क्या कोई छोटा पद है? वर्ल्ड का अद्‌भुत पद कहा जाएगा! इस दूषमकाल में केवलदर्शन तो ग़ज़ब का पद कहा जाएगा!

केवलदर्शन और केवलज्ञान, ये दोनों साथ में रहें तो वह ज योतिस्वरूप हो जाएगा। दोनों मिल जाएँगे तो सुख उत्पन्न होगा। यानी कि सुख सहित केवलज्ञान और केवलदर्शन को कहते हैं, परम ज योतिस्वरूप। इसकी तो बात ही अलग है न! आपको ज़रा-ज़रा सी यह सुगंध आती है तो इतना आनंद रहता है, इतनी प्रतीति में इतना आनंद आता है तो जब मूल वस्तु को प्राप्त करेंगे तब कितना आनंद आएगा!

[7]

केवलज्ञान

[7.1]

केवलज्ञान की समझ

'मैं' और 'मेरा' है सीमित कैवल्यज्ञान में, असीमित केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : वीतराग धर्म में जिसे केवलज्ञान कहते हैं, तो वेदांत में या दूसरे धर्मों में उसे क्या कहते हैं?

दादाश्री : वे कैवल्य कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वीतरागों के केवलज्ञान और वेदांतियों के केवलज्ञान में फर्क है?

दादाश्री : वेदांत में केवलज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वे लोग जिसे कैवल्य कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : कैवल्यज्ञान और केवलज्ञान, दोनों अलग चीज़ें हैं। कैवल्यज्ञान और केवलज्ञान के बीच में ज़मीन-आसमान का अंतर है। कैवल्यज्ञान, रिलेटिव ज्ञान कहलाता है और केवलज्ञान, रियल ज्ञान कहलाता है। 'मैं और मेरा' का छोटे से छोटा घेरा, वह है कैवल्यज्ञान जबकि केवलज्ञान, वह तो एब्सल्यूटिज़म (निरालंब) है।

प्रश्नकर्ता : अष्टांग योग में यम, नियम करते-करते समप्रज्ञा समाधि होती है, तो ऐसा कहते हैं कि उसे पूरे ब्रह्मांड का दर्शन होता है, वह ठीक है?

दादाश्री : समप्रज्ञा समाधि होने पर ऐसा सब दिखाई देता है। आप रूम से बाहर जाओ तो बाहर का सबकुछ दिखाई देगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देगा। उसे केवलज्ञान कहेंगे या नहीं?

दादाश्री : केवलज्ञान उससे भी आगे है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद की समाधि को असमप्रज्ञा समाधि कहा गया है।

दादाश्री : जब वे सब विशेषण खत्म हो जाते हैं तब केवलज्ञान होता है।

केवल आत्मज्ञान में ही रहना, वही है केवलज्ञान

वीतरागों का बताया हुआ आत्मा जानने योग्य है, बाकी सभी ने जिसे आत्मा कहा है, वह सर्वांश आत्मा नहीं है। उसे मैंने कैसा कहा था?

प्रश्नकर्ता : मिलावट वाला आत्मा।

दादाश्री : नहीं, मैंने लंगड़ा आत्मा कहा था। एक ही पैर, बाकी सब साबुत तो है, लेकिन एक ही पैर, दो पैर नहीं। अन्य सभी जगहों पर मूल आत्मा लंगड़ा है। जबकि इनका, वीतरागों का बताया हुआ आत्मा दो पैरों वाला है। उस आत्मा को समझने पर दर्शन उत्पन्न होता है, सम्यक् दर्शन। फिर वह क्षायक हो या फिर क्षयोपशम हो या उपशम हो, लेकिन समझने से दर्शन होता है और जानने से ज्ञान होता है, आत्मज्ञान होता है। केवल उस आत्मज्ञान में ही रहने को कहते हैं, केवलज्ञान। यह बहुत समझने जैसी चीज़ है। मैं आपको यह बताता हूँ न, तो आप अपनी भाषा में समझते हो, मैं अपनी भाषा में समझता हूँ। हर एक की भाषा अलग होती है न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि आत्मज्ञान होने के बाद में केवलज्ञान होता है?

दादाश्री : हाँ, आत्मज्ञान होने के बाद ही केवल। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद ही सबकुछ प्राप्त करता है। जब तक आत्मा को नहीं जाने तब तक भटकता है। ये सारी जो आत्मज्ञान की बातें करते हैं न, वहाँ पर आत्मज्ञान हो ही नहीं सकता। आत्मज्ञान की तो परछाई भी नहीं देखी है इस दुनिया ने।

आत्मानुभव के बाद, अंत में होता है केवलज्ञान

आत्मा तो 'ज्ञानस्वरूपी है, 'केवलज्ञान स्वरूपी' है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का स्वरूप ज्ञान है तो ज्ञान का स्वरूप क्या है?

दादाश्री : ज्ञान का स्वरूप तो जब आप खुद देखोगे न, तब अनुभव होगा। वहाँ पर मेरा दिखाया हुआ काम नहीं आएगा। यह बुद्धि का खेल नहीं है, यह अनुभव का खेल है।

प्रश्नकर्ता : वह अनुभव कैसा होता है?

दादाश्री : आत्मानुभव तो, जब अपना यह देहाध्यास का अनुभव छूट जाएगा और आत्मा का अनुभव हो जाएगा, उसके बाद उसे आत्म अनुभव कहा जाएगा। उसमें देहाध्यास नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : आत्म अनुभव के बाद में केवलज्ञान कब समझ में आता है?

दादाश्री : आत्मा का अनुभव होने के बाद फिर केवलज्ञान स्वरूप को समझने के लिए, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे उसे समझ में आता जाएगा। आप बोरीवली के रास्ते पर गए हो और कोई कहे कि इसी रास्ते पर आप सीधे जाएँगे तो बोरीवली पहुँच जाओगे तो क्या वहाँ पर आपको बोरीवली दिखाई देगा? नहीं। वह

तो आपको वहाँ पहुँचने पर ही दिखाई देगा। आप केवलज्ञान के रास्ते पर हो, लेकिन आपको केवलज्ञान दिखाई नहीं देगा। वह तो ज्ञानी को ही दिखाई देता है। वे उसके नज़दीक ही हैं। वे केवलज्ञान स्वरूप के बहुत नज़दीक आ चुके हैं, जो कि खुद का त्रिकाली स्वभाव है।

'मैं'पना केवल आत्मा में ही, वह है केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान का अर्थ क्या है?

दादाश्री : केवलज्ञान से आप क्या समझना चाहते हो, अभी आपके यहाँ क्रमिक में ये जो सारी बातें चली हैं, वे? केवलज्ञान का अर्थ ऐसा नहीं है। वह सब आपके यहाँ चलता है। केवलज्ञान का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि दुनिया का सभी कुछ दिखाई देना चाहिए। ये लोग, इस तरह से जो दिखाई देता है, उसे (केवलज्ञान) कहते हैं। दिखाई देता है का मतलब क्या समझते हैं कि जैसे आँखों से देखते हैं वैसा दिखाई देता है। अरे, नहीं है ऐसा। यह सारा बुद्धिजन्य ज्ञान, क्षयोपशम ज्ञान है। क्षायक ज्ञान में ऐसा नहीं है।

केवल आत्मा का अर्थ कोई समझता तो है नहीं! केवलज्ञान को लोग देखने की ओर ले गए हैं। अरे भाई! देखना क्या है? क्या मिलेगा इससे!

प्रश्नकर्ता : बुद्धिजन्य ज्ञान, जो कि इन्द्रिय ज्ञान है, क्या वह केवलज्ञान की ओर नहीं जा सकता?

दादाश्री : नहीं! और इन्द्रिय ज्ञान से केवलज्ञान हो भी नहीं सकता। इन्द्रिय ज्ञान की उपस्थिति से केवलज्ञान हो ही नहीं सकता, बस। केवलज्ञान अलग ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : जो भूत, भविष्य और वर्तमान को जाने, क्या उसे केवलज्ञान नहीं कहते?

दादाश्री : नहीं-नहीं! वह तो त्रिकाल ज्ञान कहलाता है। केवलज्ञान तो अलग ही चीज़ है और त्रिकाल ज्ञान अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : तो केवलज्ञान का मतलब क्या है?

दादाश्री : वह तो बहुत गहन चीज़ है। उसे समझने में आपको बहुत देर लगेगी। इस तरह संक्षेप में बताऊँगा तो आपको समझ में आएगा? संक्षेप में बताऊँगा तो आपके लिए उसकी कीमत कम हो जाएगी, अगर शॉर्ट में बताऊँगा तो!

प्रश्नकर्ता : ज़रा शॉर्ट में बताइए, ज़रा संक्षेप में बताइए।

दादाश्री : केवलज्ञान अर्थात् केवल आत्मा ही, अन्य कोई भी चीज़ में मैंपन नहीं। मैंपन निरंतर किसमें? आत्मा में ही। आत्मा, ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान में ही मैंपन। उसे केवल क्यों कहते हैं? एब्सल्यूट है, ऐसा कहने के लिए। न कि इसलिए कि यह सब दिखाई देता है। आत्मा, जिसे शुद्ध चैतन्य कहा जाता है, वह कोई चीज़ नहीं है, मात्र केवलज्ञान है। सिर्फ ज्ञान ही है, केवलज्ञान ही है। ज्ञान के अलावा यह अन्य कोई भी चीज़ नहीं है।

अंदर के ज्ञेयों को देख लेने के बाद में झलकते हैं ब्रह्मांड के ज्ञेय

प्रश्नकर्ता : क्रमिक में केवलज्ञान का अर्थ यह बताते हैं कि तीनों ही काल का सभी कुछ दिखाई देता है। पूरी दुनिया के सभी पदार्थ दिखाई देते हैं लेकिन फिर भी वह खुद अपने आत्मा में स्थिर रहता है।

दादाश्री : सही है, वह सब केवलज्ञान में दिखाई देता है। इन आँखों से नहीं, अंदर की आँखों से, इन आँखों से कुछ हद तक का ही देखा जा सकता है।

केवलज्ञान अर्थात् दुनिया की सभी चीज़ें, जितने भी ज्ञेय और दृश्य हैं, सभी उसे दिखाई देते हैं। क्योंकि खुद ज्ञाता-द्रष्टा है इसलिए सब दिखाई देता है। केवलज्ञान एक ऐसा ज्ञान है कि उसके द्वारा एक भी चीज़ देखना बाकी नहीं रहता। जितने भी ज्ञेय हैं, वे सभी दिखाई

देते हैं, सारे दृश्य भी दिखाई देते हैं। यानी कि अपना देखा हुआ गप्प हो सकता है, इसमें गप्प नहीं है। केवलज्ञानी कौन हैं, जिन्हें ज्ञान से सभी चीज़ें दिखाई देती हैं। समझ में सब है जबकि ज्ञान से पूरा स्पष्ट हो जाता है, अस्पष्ट नहीं रहता।

लेकिन जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक अंदर के ज्ञेय देखने हैं। उसके बाद में ब्रह्मांड के ज्ञेय झलकेंगे। इस काल में कुछ ही अंशों तक ज्ञेय और दृश्य झलकते (दिखाई देते) हैं।

अहंकारी ज्ञान निकलने के बाद, जो रहा वह है एब्सल्यूट ज्ञान

ये लोग केवलज्ञान को जो समझते हैं, उसके बजाय मुख्य बात पर ही आ जाओ न, कि केवलज्ञान अर्थात् तेरे ही अंदर के अहंकार, राग-द्वेष वगैरह सब को साफ करना है। क्रोध-मान-माया-लोभ के सभी परमाणु चले जाएँ।

प्रश्नकर्ता : फिर जो बाकी बचता है, वह एब्सल्यूट ज्ञान है?

दादाश्री : वह एब्सल्यूट ज्ञान है। बाकी, जब तक यह क्रोध वाला ज्ञान है तब तक अंदर क्रोध का मिक्स्चर है। जब तक लोभ का मिक्स्चर है तब तक ज्ञान नहीं है। लोभी ज्ञान काम नहीं आएगा, क्रोधी ज्ञान काम नहीं आएगा। अहंकारी ज्ञान काम नहीं आएगा। जब अंदर से यह सब निकल जाएगा, तब एब्सल्यूट ज्ञान ही रहेगा।

एब्सल्यूट ज्ञान को समझने से निबेड़ा आएगा। बाकी तो वे द्रव्य-गुण-पर्याय से सभी कुछ जानते हैं, जगत् में कोई भी चीज़ जानना बाकी नहीं रहता उनके लिए। एब्सल्यूट ज्ञान, एब्सल्यूट! लेकिन लोग यह अर्थ नहीं समझते। उनकी दृष्टि उसी तरफ (आँखों से दिखाई देने वाली चीज़ें) देखने में रहती है। शास्त्रों में वही लिखा गया है न! यदि यह लिखा होता न, कि भाई! क्रोध कम करो, क्रोध निकालो, तो अंदर से धीरे-धीरे कम करता जाता।

प्रश्नकर्ता : यों तो इनडायरेक्टली समयसार में आखिर में उसका

सार निकालकर लिखा है कि किंचित्मात्र भी राग रहेगा तो ज्ञान का उद्घाटन नहीं होगा।

दादाश्री : उसे भी लोग अपनी भाषा में समझते हैं न! 'मुझे वह राग निकालना है।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, तब तो फिर वह पूरी अलग ही क्रिया हो जाएगी।

दादाश्री : मिक्स्चर हो गया है यह। 'मुझे केवलज्ञान जानना है', वह ज्ञान भी मिक्स्चर है। जानने की जो इच्छा है, वह मिक्स्चर वाला है। उसे निकाल दो।

बिना मिलावट, शुद्ध, एब्सल्यूट, वही केवलज्ञान

ज्ञान अर्थात् ज्ञान, प्योर प्रकाश। ज्ञान ही परमात्मा है। कौन सा ज्ञान परमात्मा है? जो ज्ञान मन-वचन-काया से चोरी न करवाए, मन-वचन-काया से प्रपंच-झूठ न करवाए, जो ज्ञान लोभ न करवाए, क्रोध-मान-माया-लोभ न करवाए, वह ज्ञान ही परमात्मा है। जब केवल उसी ज्ञान की भक्ति करे और अन्य किसी भी ज्ञान की भक्ति न हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

जो ज्ञान अपने अहंकार को भुला दे, वह केवलज्ञान है। इस अहंकारी ज्ञान को शुद्ध करते, करते, करते, शुद्धिकरण करते, करते, करते, जब शुद्ध ही हो जाता है तब एब्सल्यूट ज्ञान कहा जाता है। अन्य कोई भी मिलावट नहीं रहे, शुद्ध ज्ञान, वही केवलज्ञान है। अपने लिए तो केवल शुद्धात्मा, शुद्ध ज्ञान ही। एब्सल्यूट ज्ञान! केवलज्ञान! अन्य कुछ भी नहीं। केवलज्ञान के अलावा कुछ भी नहीं है, वैसी जगह हमने देखी है। वह जगह हम आपको बताते हैं, वह जगह हम आपको दिखा रहे हैं, फिर वहाँ पर रहेगा सहज। फिर नियम रहे ही कहाँ? परम विनय।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान का कोई उदाहरण दीजिए।

दादाश्री : यह कढ़ी है न, इसमें से अगर सिर्फ साफ पानी

अलग निकालना हो तो क्या करना पड़ेगा? कढ़ी में पानी है या नहीं, या सिर्फ छाछ ही है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, पानी भी है न।

दादाश्री : बेस में (मुख्य रूप से) है ही, बाकी मिक्स्चर है। इसलिए फिर एक-एक को निकालने लगता है। पानी निकाल सकते हैं क्या आजकल के लोग? ये पृथक्करण वाले साइन्टिस्ट सब निकाल देते हैं और अलग कर देते हैं। पानी-पानी अलग निकाल देते हैं और यह अलग निकाल देते हैं, नमक अलग निकाल देते हैं, मिर्च अलग निकाल देते हैं। नहीं निकाल सकते?

प्रश्नकर्ता : एनालिसिस में निकालते हैं।

दादाश्री : लेबोरेटरी में सभी कुछ शुद्ध कर देते हैं। अन्य कोई तरीका नहीं आए तो पूरी कढ़ी की भाप बना देते हैं। फिर बाकी जो भाग बचता है, उसे अलग करते हैं। साफ पानी मिल गया, उसी को कहते हैं केवल पानी। उसी प्रकार इस ज्ञान में सबकुछ मिलावटी भरा हुआ है कढ़ी जैसा, वह साफ हो जाएगा तो फिर ज्ञान ही रहेगा। केवल, शुद्ध ज्ञान ही रहेगा, उसी को कहते हैं केवलज्ञान।

शब्दों से नहीं, लेकिन अनुभव से समझ में आएगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान की एक्ज़ेक्ट परिभाषा को शब्दों से समझाया जा सकता है क्या?

दादाश्री : वह समझ में नहीं आ सकता। केवलज्ञान शब्द रूपी नहीं है। यह तो शब्द रखा गया है। मतिज्ञान समझाया जा सकता है। वह पौद्गलिक ज्ञान है, वह समझा जा सकता है। मतिज्ञान पूछने जैसी चीज़ है, जो पूछा जा सकता है। बुद्धि से समझा जा सकता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान पूछे जा सकते हैं लेकिन केवलज्ञान पूछने वाला व्यक्ति नहीं हो सकता। किसी जगह पर हो सकता है? पॉसिबल ही नहीं है न! यह सांसारिक चीज़ भी नहीं है।

पौद्गलिक ज्ञान जो है न, वह समझाया जा सकता है। यह, जो पौद्गलिक नहीं है, जो डायरेक्ट ज्ञान है, उसे कैसे समझाया जा सकता है? ये बातें, शब्द तो हैं नहीं। यह शब्दों से समझ में नहीं आ सकता। शब्दों से केवलज्ञान कौन, कैसे समझ सकता है? वह कोई ऐसे दिखाने की चीज़ नहीं है, केवलज्ञान अनुभव करने की चीज़ है। ये लोग जो बताते हैं, वह केवलज्ञान है ही नहीं।

यह तो, केवलज्ञान समझाना है और शास्त्रों में जो लिखा है कि, 'सभी पर्यायों को जानते हैं', ऐसा जानना है या कुछ और?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप समझाइए न, शास्त्रों में लिखा है कि...

दादाश्री : वह नहीं, इतने से केवलज्ञान पूर्ण नहीं हो जाता, बहुत बड़ी चीज़ है। केवलज्ञान शब्दों से परे है, शब्दों से ट्वन्टी फाइव परसेन्ट (पच्चीस प्रतिशत) ही समझ आ सकता है। सेवन्टी फाइव परसेन्ट (पचहत्तर प्रतिशत), यह ज्ञान शब्द रहित है। खुद जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाएगा न, वैसे-वैसे खुद को पता चलता जाएगा।

निरहंकारी - डायरेक्ट ज्ञान प्रकाश से, पहुँचते हैं केवलज्ञान तक

फिर भी अगर समझना हो तो निरहंकारी ज्ञान ही ज्ञान है। जिस ज्ञान को जानने में निरहंकारीपन हो, वह ज्ञान कहलाता है। डायरेक्ट ज्ञान भले ही कम हो, फिर भी वह निरहंकारी ज्ञान होता है। फिर जैसे-जैसे बढ़ता जाता है तो उसकी बात ही अलग है। फिर केवलज्ञान होता है। लेकिन जिसे डायरेक्ट ज्ञान हो गया है उसे, केवलज्ञान क्या होता होगा, केवलज्ञान में कैसी दशा होती होगी, कैसा दिखाई देगा, वह सब दिखाई देता है, उसे सब पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या डायरेक्ट ज्ञान से केवलज्ञान की तरफ जा सकते हैं?

दादाश्री : वह डायरेक्ट ज्ञान तो, जितना प्रकाश प्राप्त होगा, जितने आवरण हटेंगे डायरेक्ट ज्ञान पर से, उतना ही वह केवलज्ञान

तक पहुँचेगा। इसलिए फिर पूरे जगत् को देख सकता है, ब्रह्मांड को देख सकता है।

ज्ञान ही आत्मा है, केवल प्रकाश स्वरूप

'आत्मा' ही खुद के निज स्वरूप का ज्ञान है। वह 'केवलज्ञान स्वरूप' है और उसमें से 'प्रकाश' उत्पन्न होता है, वह सारा प्रकाश स्वयं प्रकाश है।

जब आत्मा सर्व आवरणों से मुक्त हो जाता है तब उसे पूरे ही ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है। दूसरे शब्दों में, पूरे ब्रह्मांड के ज्ञेयों को देखने और जानने की शक्ति प्राप्त हो जाए, वही केवलज्ञान है! खुद, अपने आप की पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की जो शक्ति है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, पूरे ही ब्रह्मांड के ज्ञेय प्रकाशमान होते हैं, तो वह उपयोग रखे तभी प्रकाशमान होते हैं या सतत् प्रकाशमान होते रहते हैं?

दादाश्री : वह तो बिना उपयोग के, उसके लिए उपयोग नहीं रखता।

प्रश्नकर्ता : एक समय में पूरे ब्रह्मांड के?

दादाश्री : सभी कुछ देख सकता है।

बेजोड़ 'केवलज्ञान' प्रकाश, है इन्द्रियातीत

प्रश्नकर्ता : ज्ञान, वह समझ नहीं परंतु प्रकाश है, तो उस बारे में ज़रा ज़्यादा समझाइए।

दादाश्री : प्रकाश है। प्रकाश अर्थात् बैठे-बैठे सभी कुछ दिखाई देता है और समझ अर्थात् श्रद्धा। समझ, वह दर्शन है और ज्ञान, वह प्रकाश है और वह प्रकाश ही आत्मा है। ज्ञान ही आत्मा है। आत्मा

अन्य कोई वस्तु नहीं है, केवलज्ञान। केवल अर्थात् जिसमें अन्य कोई भी मिलावट न हो, ऐसा ज्ञान। उसे कहते हैं प्रकाश, उसी को कहते हैं आत्मा।

प्रश्नकर्ता : उस प्रकाश की हम किसी अन्य चीज़ से तुलना कर सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं! तुलना हो ही नहीं सकती। बेजोड़ चीज़ की तुलना हो सकती है क्या? बेजोड़ चीज़ जैसी अन्य कोई चीज़ हो ही नहीं सकती है इस दुनिया में।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह जो प्रकाश है, वह हमें किसी इन्द्रिय की मदद से प्राप्त नहीं हो सकता?

दादाश्री : वह प्रकाश, वह इन्द्रियों की मदद भी नहीं करता और उनके द्वारा प्राप्त भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : इन्द्रियातीत है?

दादाश्री : इन्द्रियातीत और सभी से अतीत है आत्मा। कोई कहे कि मुझ में चेतन काम कर रहा है तो वह भूल वाली बात है। चेतन काम करता ही नहीं है। ये सब व्याख्यान सुनते हैं, धर्म कथाएँ करते हैं, उनमें चेतन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान अर्थात् प्रकाश ही है?

दादाश्री : वह तो प्रकाश ही है, अन्य कुछ है ही नहीं न! वही आत्मा है और वही परमात्मा है।

केवलज्ञानी को वस्तु दिखाई देती है, ज्ञान प्रकाश से

प्रश्नकर्ता : तो क्या उस प्रकाश की तुलना दिव्यचक्षु से की जा सकती है? हमें जो दिव्यचक्षु प्राप्त हुए हैं वे, और केवलज्ञानी के दिव्यचक्षु हैं... क्या उनके दिव्यचक्षु, हमारे दिव्यचक्षु से ज़्यादा अच्छे होते हैं?

दादाश्री : केवलज्ञान ही, ज़बरदस्त! दिव्यदृष्टि तो बहुत छोटी चीज़ है, केवलज्ञान तो सर्वस्व प्रकाशित।

हम सभी के पास दिव्यचक्षु हैं। यह तो, जब तक ज्ञान नहीं है तब तक यहाँ दिव्यचक्षु देते हैं। उन्हें तो किसी भी प्रकार के चक्षु की ज़रूरत नहीं है। उन्हें तो दिव्यचक्षु की भी ज़रूरत नहीं है। उनका शरीर ही प्रकाशमय, सभी कुछ देख सकते हैं। यह सब प्रकाश से ही देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान से वह जो दिखाई देता है... लेकिन वह देखना किस प्रकार का होता होगा?

दादाश्री : दर्पण होता है न, तो दर्पण अगर चेतन होता तब तो वह कहता कि, 'मैं सभी चीज़ें देखता हूँ'। अब, वास्तव में चीज़ें उसके अंदर दिखाई देती हैं उसे, बाहर नहीं दिखाई देती। उसी प्रकार से केवलज्ञान सभी कुछ अंदर देखता है। सबकुछ अंदर खुद के ज्ञान में झलकता है, जिस तरह दर्पण में सबकुछ झलकता है न। जितने भी बैठे हुए हैं, वे सब उसमें झलकते हैं। ये सभी बाहर बैठे हुए हैं, वे। लेकिन यह दर्पण बाहर नहीं देखता है। खुद में जो झलकता है, उसे देखता है। जितना सत्य यहाँ बाहर है, उससे भी ज़्यादा सत्य है यह बात। विशेष सत्य, बिना किसी भूल के। आप जो जानना चाहते हो कि वह सब कैसे देखा होगा? वह केवलज्ञान से देखा है। वह मुझे नहीं दिखाई देता।

स्वस्वरूप ज्ञानमय परिणाम, वह है केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : सर्व द्रव्य व क्षेत्रादि को प्रकाशित करने वाला वह रूप केवलज्ञान स्वभावी आत्मा है या सर्व स्वस्वरूपावसान निज ज्ञानमय केवलज्ञान है?

दादाश्री : द्रव्य व क्षेत्र में सभी को प्रकाशमान करता है, वह केवलज्ञान का परिणाम है, केवलज्ञान नहीं है। केवलज्ञान तो वह खुद, स्वस्वरूपावसान निज ज्ञानमय, वह केवलज्ञान है। समझ में आता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : ये सब जो द्रव्य, क्षेत्र वगैरह हैं, इस लोक में जो ज्ञेय चीज़ें हैं और दृश्य चीज़ें हैं, उन्हें सिर्फ देखता है, प्रकाशित करता है। प्रकाशकता क्या है? देखना और जानना, उसे कहते हैं प्रकाशकता। क्या वही रूप, केवलज्ञान स्वभावी आत्मा है? तो कहते हैं, वह रूप आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तब तो आत्मा पूरे ब्रह्मांड जितना लंबा-चौड़ा हो गया! तो कहते हैं, नहीं, 'स्वस्वरूपावसान निज ज्ञानमय', वह केवलज्ञान है। देखने वाला केवलज्ञान, और यह दृश्य, दोनों अलग हैं। उसमें तो एक ही हो जाते हैं। देखने वाला और यह कुछ अलग नहीं रहता।

'देखा है', लेकिन है अवर्णनीय; फिर भी समझाते हैं संज्ञा से

केवलज्ञान क्या है, वह हमने देखा है। यदि वह मिल जाए तब तो बहुत हो गया! पूरे ब्रह्मांड का राजा माना जाएगा! एब्सल्यूट ज्ञान मात्र!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने बताया न, कि यदि वह मिल जाए तो पूरे ब्रह्मांड का राजा माना जाएगा, तो वह क्या है जो मिल जाए तो?

दादाश्री : केवलज्ञान! वह मिलता नहीं है न, चाहे जितना भी थ्योरी समझाए, फिर भी।

प्रश्नकर्ता : आपने जो बताया कि आपने देखा है तो आपने जो देखा, वह कैसा है?

दादाश्री : उसे तो कैसे समझाया जा सकता है कि कैसा है वह? जिसका वर्णन ही नहीं है। जो वर्णनीय नहीं है, अवर्णनीय है, शब्द रूपी नहीं है, उसे किन शब्दों में बताया जाए? वह तो जब उस दशा में पहुँचेगा तब कहेगा कि, 'आप जो कह रहे थे, वैसा मुझे हो गया है।' तब अगर हम पूछें कि, 'क्या हो गया?' तब कहेगा, 'उसका तो वर्णन नहीं हो सकता।' यानी कि गूँगों का इशारों-इशारों में ही

चलता रहता है, गूँगों की संज्ञा में! एक ऐसे कहता है और दूसरा ऐसे कहता है और दोनों स्टेशन पहुँच जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसे दूसरों को समझाया नहीं जा सकता?

दादाश्री : नहीं, ऐसा है न, कुछ बातें समझाई जा सकती हैं। कुछ पूरी तरह से नहीं समझाई जा सकतीं। सामने वाले तक सभी बातें पहुँच नहीं सकती! यह बुद्धिगम्य विषय नहीं है इसीलिए नहीं पहुँच सकती, अतः संज्ञा देकर समझाना पड़ता है। उसके जैसी संज्ञा देकर समझाना पड़ता है।

अनुभूति से भी परे, केवलज्ञान से बनता है इन्डिपेन्डेन्ट

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान में क्या अनुभूति होती है?

दादाश्री : अनुभूति क्या होनी है? वह 'खुद' जो है, वह एब्सल्यूट हो गया या फिर वह स्वतंत्र हो गया, इन्डिपेन्डेन्ट हो गया। अभी तो डिपेन्डेन्टपन है। इन्डिपेन्डेन्ट यानी मेरा कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है और मैं किसी का *ऊपरी* नहीं, ऐसा इन्डिपेन्डेन्ट। अब, फिर इसे क्या कुछ कम कहा जाएगा?

बाकी, उसकी अनुभूति हो सकती है क्या? अनुभूति तो समकित की होती है, आत्मज्ञान की होती है। इसमें अनुभूति नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : हं, इसमें क्यों नहीं होती?

दादाश्री : फ्रिज में बैठे हुए को ठंडक की अनुभूति होती होगी क्या? जो बाहर खड़ा हो, उसे ठंडक की अनुभूति होती है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वहाँ पर अनुभव करने वाला होता ही नहीं?

दादाश्री : अरे, लेकिन ऐसा पूछता ही नहीं कोई। पूछना नहीं चाहिए, पूछना तो फूलिशनेस होगी। फ्रिज में बैठे हुए को ठंडक कैसी? ठंडक का अनुभव हुआ, कहेगा! कोई बाहर खड़ा हो, उसे थोड़ी-थोड़ी

ठंडक लगती है तो उससे हमें पता चलता है कि इसे अनुभव हुआ है। लेकिन वहाँ (केवलज्ञान में) किसी भी तरह की अनुभूति नहीं है। अनुभूति तो जुदापन सूचित करती है। वहाँ पर जुदापन नहीं है, कुछ भी नहीं है।

नहीं मिल सकते यथार्थ शब्द फिर भी, ज्ञानी ने देखा है इसलिए वर्णन कर सकते हैं

केवलज्ञान यानी कोई अवलंबन नहीं, निरालंब। किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। मात्र एब्सल्यूट और उस एब्सल्यूट आत्मा को हमने देखा है। यानी कि उसके लिए कोई शब्द नहीं है कि हम आपको केवलज्ञान के बारे में बता सकें। अतः दूसरे शब्दों द्वारा आपको अंगुलिनिर्देश करते हैं। यथार्थ शब्द नहीं हैं। उसके लिए वाणी नहीं है। हमने वह निरालंब पद देखा है इसलिए हम उसका वर्णन कर सकते हैं, वर्ना कोई वर्णन नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : 'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां...

दादाश्री : ज्ञानी भगवान ने, सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में जो पद देखा, उस पद के बारे में भगवान भी नहीं बता सके। क्योंकि वहाँ पर वाणी नहीं है। वाणी कुछ हद तक ही, किसी खास पद तक ही वाणी है। फिर उससे आगे वाणी का योग निकल जाता है। क्योंकि वाणी स्थूल है और वह (पद) सूक्ष्मतम है। इसलिए स्थूल, सूक्ष्मतम का वर्णन नहीं कर सकता। वाणी यदि सूक्ष्मतम होती तभी वर्णन कर पाती। और ऐसी वाणी होती नहीं है। अतः कृपालुदेव ने लिखा है कि...

'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां, कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो।
तेह स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे? अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो।'

(जो पद श्री सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में देखा, लेकिन श्री भगवान वह बता नहीं सके। उस स्वरूप के बारे में अन्य वाणी क्या बता सकती है, वह ज्ञान तो मात्र अनुभव गोचर है)

अपूर्व अवसर...

वह बताया नहीं जा सकता, अनुभव गोचर है। अतः नरसिंह मेहता ने कहा था कि शास्त्र ज्ञान से निबेड़ा नहीं है, अनुभव से निबेड़ा है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् केवलज्ञान, वह अनुभव की बात है, वह बात समझाई नहीं जा सकती?

दादाश्री : अगर उसका अर्थ करना हो तो, उसका अर्थ पूछना हो तो पूछा जा सकता है कि केवलज्ञान क्या चीज़ है? तो केवलज्ञान, एब्सल्यूट ज्ञान है। एब्सल्यूट ज्ञान आपको किस तरह समझाऊँ, कहो। क्योंकि यह बुद्धि की चीज़ नहीं है। बुद्धि से आगे की चीज़ है। बुद्धि से समझाया ही नहीं जा सकता। बुद्धि से कोई इंसान इसे समझ ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : एब्सल्यूट ज्ञान है, उसे सापेक्ष तरीके से समझाया जा सकता है न?

दादाश्री : किसी भी तरह से नहीं समझाया जा सकता। सापेक्ष है ही नहीं। केवलज्ञान एब्सल्यूट है। एब्सल्यूट अर्थात् निरपेक्ष। वह निरपेक्ष है यानी कि एब्सल्यूट ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। आपको समझ में आ रहा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी, बिल्कुल आया।

दादाश्री : सनातन, शाश्वत अर्थात् अनादि अनंत केवलज्ञान स्वरूप, वह ऐसी चीज़ नहीं है कि शब्दों से समझ में आ सके।

'केवलज्ञान' - मूढ़ात्मा में शक्ति के रूप में, महात्माओं में सत्ता के रूप में

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान सत्ता के रूप में है या शक्ति के रूप में?

दादाश्री : किसी दृष्टि से शक्ति के रूप में भी है और किसी दृष्टि से सत्ता के रूप में भी है। दोनों ही गलत नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग शक्ति के रूप में है, ऐसा मानते हैं और...

दादाश्री : वह कुछ भी हो लेकिन दोनों ही एक सरीखे हैं, लगभग नियरली (नज़दीकी) हैं, गलत नहीं हैं। वह सत्ता के रूप में भी प्रूव (साबित) हो सकता है और शक्ति के रूप में भी प्रूव हो सकता है। यह सब समझ का फर्क है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान सत्ता के रूप में है अर्थात् उसके लिए ऐसा स्पष्टीकरण देते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के आसपास बादल छा गए हों और जब वे आवरण धीरे-धीरे हट जाते हैं, वैसे-वैसे उसकी सत्ता प्रकट होती है। सूर्य बादलों में आवरण में है, यानी कि सत्ता में तो सूर्य पूरी तरह से हाज़िर है ही, जबकि शक्ति के लिए तो ऐसा कहते हैं कि धीरे-धीरे प्रकट होती जाती है।

दादाश्री : कुछ कहते हैं कि आत्मा शक्ति के रूप में है और दूसरे कहते हैं कि आत्मा सत्ता के रूप में है। कुछ कहते हैं कि जैसे-जैसे शक्ति खिलती है वैसे-वैसे शक्ति प्रकट होती है, दूसरे कहते हैं कि कोई ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ और आवरण तोड़ दें तो सत्ता के रूप में ही है। बात भी सही है। आवरण तोड़ देने से परसत्ता खत्म हो जाती है और स्वसत्ता में आ जाता है।

बाहर सामान्य मनुष्यों में शक्ति के रूप में केवलज्ञान है। भोजन पिटारे में है, चाबी के बिना खोला नहीं जा सकता और खाया नहीं जा सकता। आपके यानी महात्माओं के पास (ज्ञान लेने के बाद) सत्ता के रूप में केवलज्ञान है। इतना फर्क है, आप में और मूढ़ात्मा मनुष्यों में।

केवलज्ञान सत्ता - ज्ञानी के पास है प्रकट और महात्माओं के पास दर्शन में

हमारे पास तो पूरा ही केवलज्ञान है, चार डिग्री कम है, ऐसा

जो कहते हैं, वह? आपको इस काल में 360 डिग्री का ज्ञान देता हूँ। केवलज्ञान आपके हाथ में दे देता हूँ लेकिन काल के कारण वह पचता नहीं है। इस काल की विचित्रता के कारण मुझे भी केवलज्ञान नहीं पचा है, और मुझ में 356 पर आकर रुका है। लेकिन मैं देता हूँ, केवलज्ञान। यदि केवलज्ञान नहीं दूँ तब तो सत्ता अलग होगी ही नहीं। यहाँ तो एक घंटे में आत्मा अलग हो जाता है। तो अगर एक ही घंटे के परिचय से इतना सब बदलाव हो जाता है तो वह क्या है? तो कहते हैं, केवलज्ञान की सत्ता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान, सत्ता में है, इसका क्या अर्थ है?

दादाश्री : सत्ता के रूप में अर्थात् सत्तापन तो आप सभी में है ही। सत्ता के रूप में रहा हुआ है लेकिन वह सत्ता दर्शन में है।

हमारे पास केवलज्ञान सत्ता में है। हमारे प्रवर्तन में नहीं है, सत्ता में है यानी कि वह दर्शन में आ गया है।

प्रश्नकर्ता : सत्ता में सभी के पास केवलज्ञान रहता है?

दादाश्री : सत्ता में सभी के पास है लेकिन मुझ में तो प्रकट में है और पचा नहीं है। सिर्फ पचा नहीं है, इसलिए 356 डिग्री कहता हूँ। अगर पच गया होता न तो संपूर्ण वीतराग रहते। फिर मैं आपसे ऐसा नहीं कहता कि, 'यहाँ आओ। मैं आपसे ये जो बातें करता हूँ, ये सत्संग की बातें करता हूँ, ऐसा सब नहीं कहता।' लेकिन यह पचा नहीं है, अजीर्ण हो गया है।

लेकिन आपके हाथ में तो आत्मा ही दे देता हूँ और फिर वह निरंतर आपके पास ही रहता है। फिर आपको जागृति रहती है। अनुभव-*लक्ष* और प्रतीति, तीनों रहते हैं, चौथी सीढ़ी पर नहीं उतरते। उसे कृपालुदेव ने कौन सा पद कहा है कि *'वर्ते निजस्वभावनुं अनुभव-लक्ष-प्रतीत, वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित', कहा है।* (निज स्वभाव का अनुभव-*लक्ष* और प्रतीति बरतती है और वृत्ति निजभाव

में रहती है, उसे परमार्थ समकित कहा है)। इस परमार्थ समकित का अर्थ है क्षायक समकित। वही समकित देते हैं हम यहाँ पर।

'खुद' ही खुद को देखता है, संपूर्ण केवलज्ञान द्वारा

प्रश्नकर्ता : आत्मा को केवलज्ञान स्वरूप कहा गया है तो ऐसा जो कहते हैं न, कि केवलज्ञान होता है, तो वह किसे होता है?

दादाश्री : आत्मा को ही होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद केवलज्ञान स्वरूप ही है न?

दादाश्री : है ही केवलज्ञान, लेकिन बादल हट जाने चाहिए, और वैसे-वैसे होता जाएगा। यह सूर्यनारायण पूरा ही दिखने लगा तो किसे दिखने लगा?

प्रश्नकर्ता : देखने वाले को। सूर्यनारायण और बादल, अर्थात् जिस पर बादलों का आवरण है, उसे।

दादाश्री : हाँ, देखने वाले पर, लेकिन देखने वाला और जानने वाला, दोनों एक ही वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् देखने की वस्तु और देखने वाला, दोनों एक ही हैं?

दादाश्री : हाँ, आत्मा स्व को भी जानता है और पर को भी जानता है। खुद के स्व को जानता है कि जानने वाला कौन है, स्व कौन है। जानी हुई वस्तु वह खुद ही है। खुद, खुद को ही जानता है। आत्मा स्व को जानता है और पर को भी जानता है। बादल हट जाने पर खुद अपने आप को पूरा ही दिखाई देता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

[7.2]

विशेष समझ : केवली, सर्वज्ञ व तीर्थंकर भगवान के बारे में

सम्यक् दर्शन - आत्मज्ञान - केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : सम्यक् दर्शन को केवलज्ञान कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, सम्यक् दर्शन केवलज्ञान की बिगिनिंग (शुरुआत) है। उसे बिगिनिंग पार्ट कहा गया है और एन्ड पार्ट को केवलज्ञान कहा गया है। इस सिरे को सम्यक् दर्शन कहा जाता है और उस सिरे को केवलज्ञान कहा जाता है। उनके बीच में आत्मज्ञान है। सम्यक् दर्शन तक आत्मज्ञान नहीं हुआ होता। सम्यक् दर्शन अर्थात् यह सब सत्य नहीं है लेकिन अविनाशी आत्मा ही सत्य है। लेकिन उस आत्मा की बाउन्ड्री (सीमा) को नहीं जान सका है। वह जब पूरी तरह से बाउन्ड्री को जान लेगा तब उसे आत्मज्ञान कहा जाएगा। यह तो उसे श्रद्धा बैठी है आत्मा पर कि, 'मैं चेतन हूँ, यह नहीं।'

रहता है आवरण आत्मज्ञान में, नहीं कोई आवरण केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञान और केवलज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : केवलज्ञान में कोई आवरण नहीं आते और आत्मज्ञान में आवरण आते हैं।

सिर्फ आत्मा को ही जानना और बाकी सब तत्त्वों को परफेक्ट (संपूर्ण) न जान पाए, उसे आत्मज्ञान कहते हैं और बाकी सभी तत्त्वों को परफेक्ट जान सके, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

आत्मज्ञान और केवलज्ञान में ज़्यादा फर्क नहीं है, दोनों के बीच शक्ति का फर्क है। जिसे आत्मज्ञान हुआ है, उसकी श्रद्धा में है लेकिन संपूर्ण प्रवर्तन में नहीं रहता, जबकि केवलज्ञान में संपूर्ण प्रवर्तन में है। पहला, आत्मज्ञान वाला घर से निकला है और दूसरा, केवलज्ञानी (डेस्टिनेशन पर) पहुँच गया। गाड़ी वही की वही है न!

प्रश्नकर्ता : क्षायक सम्यक्त्व और केवलज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : कहाँ क्षायक समकित और कहाँ केवलज्ञान? क्षायक समकित वाला यह समझ सकता है कि केवलज्ञान कैसा होता है लेकिन उसे केवलज्ञान का अनुभव नहीं हो पाता। उसमें केवलज्ञान प्रकाशित नहीं है।

आत्मज्ञान है तो श्रुतकेवली मुक्त, वर्ना वे मज़दूर

प्रश्नकर्ता : तो दादा, जिन्हें श्रुतकेवली कहते हैं, वे कौन हैं?

दादाश्री : श्रुतज्ञान की अंतिम दशा को श्रुतकेवली कहा जाता है। श्रुतकेवली अर्थात् जिन्हें इन तमाम शास्त्रों का जो रहस्य है, वह खुद को पूरी तरह से समझ में आ चुका है, फिट हो चुका है। श्रुतकेवली को सभी शास्त्र मौखिक होते हैं। उन्होंने सभी शास्त्र धारण कर लिए होते हैं, पढ़ लिए होते हैं। जिन्होंने जानने योग्य सभी कुछ जान लिया हो, वे श्रुतकेवली।

प्रश्नकर्ता : जानने योग्य सबकुछ जान लिया?

दादाश्री : हाँ! सबकुछ जान लिया है। ये लोग शास्त्रज्ञानी को श्रुतकेवली कहते हैं जबकि भगवान ने मोक्ष का जो पूरा ही ज्ञान दिया है, जिसे वह ज्ञान याद रहे, उसे श्रुतकेवली कहा है।

प्रश्नकर्ता : जिन्होंने केवली भगवान का वाक्य कानों से सुना हो, क्या उन्हें हम श्रुतकेवली कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, उन्हें नहीं। केवली भगवान के वाक्य तो बहुत लोगों ने सुने हैं। जिन्होंने भगवान का सुना हो, ऐसे तो बहुत लोग यहाँ पर हाज़िर हैं लेकिन वे (श्रुतकेवली) नहीं कहलाते। भगवान का पूरा श्रुतज्ञान जिनमें हाज़िर है, और वह ऐसा हो जिससे आत्मा प्रकट हो जाए तो वह श्रुतकेवली। श्रुतकेवली यानी कि भगवान का जो श्रुतज्ञान है उसमें से केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है। यानी कि अगर आत्मज्ञान भी हो जाए तो वह मुक्त है, और अगर नहीं हुआ है तो फिर वह मज़दूर है।

जब तक आत्मा को नहीं जाना तब तक मज़दूर में और सभी आगमों को पढ़ने वालों में कोई फर्क नहीं है। जिसने सभी आगम पढ़ लिए और धारण कर लिए हैं, वह भी श्रुतकेवली नहीं कहलाता। वह मन से मज़दूर है, जबकि ये शरीर से मज़दूर हैं। भगवान क्या कहते हैं कि मज़दूर अपने सिर पर शास्त्रों का भार उठाते हैं और आप मन में शास्त्रों का भार उठाते हो, बस इतना ही फर्क है। सभी आगमों को जानने के बावजूद भी उसे वास्तविक श्रुतकेवली नहीं कह सकते, क्योंकि केवली को ज्ञानी की भाषा में श्रुतकेवली कहते हैं।

एक ही स्वच्छंद से होता है नाश, श्रुतकेवल ज्ञान का

प्रश्नकर्ता : लोग जिसे श्रुतकेवली कहते हैं और वास्तविक श्रुतकेवली में क्या फर्क है?

दादाश्री : लोकभाषा में श्रुतकेवली किसे कहते हैं? जैसे कि हमें यह आत्मा का केवलज्ञान उत्पन्न होता है, शास्त्र का वैसा केवलज्ञान, शास्त्र के तरीके से, शाब्दिक तरीके से, अनुभव के रूप में नहीं है जबकि अपना अनुभव के रूप में है। देखा हुआ तो चला जाता है, जबकि अनुभव तो अनंत जन्मों तक रहता है। शास्त्र पढ़कर प्राप्त किया हुआ आत्मा तो चला जाएगा, जबकि अनुभव किया हुआ कभी भी नहीं जाएगा।

लोकभाषा वाले श्रुतकेवली से अपना यह पद बहुत आगे का है। क्योंकि श्रुतकेवली, शब्दों में रहा हुआ है, भाव में नहीं आता। जबकि हमारी बात वेद से बाहर की बात है और अनुयोगों से बाहर की बात है, मूल वस्तु है। सभी यहाँ आकर एक हो जाते हैं। जहाँ अवक्तव्य और अवर्णनीय बातें हों, वहाँ सभी जाति वाले लोग इकट्ठे हो सकते हैं। ऐसे में जाति भेद नहीं रहता। जब तक शब्दों का संग है तब तक जुदाई रहती है। वेद वाले भी अलग हैं और अनुयोग वाले भी अलग हैं। यानी कि यह वस्तु शब्दों से परे है।

श्रुतज्ञान, वास्तविक श्रुतकेवली से सुनने पर मिलता है। इन पुस्तकों में श्रुतज्ञान नहीं है। पुस्तकों में श्रुतज्ञान होता तब तो कभी से पुस्तकों का मोक्ष हो चुका होता। लोकभाषा के श्रुतकेवली को शायद आत्मज्ञान न भी हो। अंत तक स्वच्छंद रहता है। स्वच्छंद तो ज्ञानी के माध्यम से जाता है। यदि श्रुतकेवली में एक ही स्वच्छंद उत्पन्न हो जाए तो श्रुतकेवलज्ञान का नाश हो जाता है।

जब तक 'हम' निकल नहीं जाता तब तक रहेगा अभव्य

प्रश्नकर्ता : लेकिन अनादिकाल से जिसका वेदन किया गया है, उनमें परंपरागत जिसका वेदन किया गया है, वह इतना जड़ हो चुका है कि निकलता ही नहीं है उनमें से?

दादाश्री : नहीं, जड़ नहीं हुआ है। वास्तव में, उनमें से ऐसा माल बहुत कम है जो मोक्ष में जा पाए। भगवान ने कहा था न! यह जो पड़ा हुआ माल है न, जो आगे ही नहीं बढ़ा है, इतनी चौबीसियाँ बीत गईं। अभी तक आगे नहीं बढ़ा है और बढ़ पाएगा ऐसा लगता भी नहीं है। तो समझ जाना है कि इसमें भगवान ने जो अभव्य शब्द कहा है, वह सही ही कहा होगा कुछ। लेकिन अभव्य कौन हैं? हम किसी के लिए ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि हमें केवलज्ञान नहीं है। भगवान ने अभव्य की परिभाषा दी है। अभव्य जीव को मोक्ष में जाने वालों से भी ज़्यादा तप रहता है। ज़बरदस्त शास्त्रों के शास्त्र उन्हें मौखिक याद हो चुके होते हैं। हर प्रकार से वे ज़बरदस्त होते हैं

लेकिन आत्म अनुभव उन्हें एक क्षण के लिए भी नहीं हुआ होता। शास्त्र अनुभव श्रुतकेवली तक पहुँच चुके होते हैं।

प्रश्नकर्ता : श्रुतकेवली तक पहुँच चुके होते हैं?

दादाश्री : हाँ! लेकिन वे श्रुतकेवली नहीं कहलाते, जब तक आत्मा का अनुभव नहीं हो जाता तब तक वास्तविक श्रुतकेवली नहीं कहलाते। श्रुत केवलज्ञान तक पहुँच चुके होते हैं लेकिन भगवान ने उन्हें अभव्य कहा है। क्योंकि वे मोक्ष में नहीं जाने वाले। इसका फल उन्हें संसार मिलेगा। क्योंकि वे लोग रहते किसमें हैं? अभव्य में! 'मैं-हम, मैं-हम, मैं-हम', बस। महाराज विषय वगैरह कुछ? तो कहते हैं, 'नहीं, यह नहीं चाहिए हम को'? 'मैं-हम, मैं-हम'। आपको समझ में आया, मैं जो कहना चाहता हूँ, वह?

प्रश्नकर्ता : 'हम' में, खुद के 'हम' में ही रहते हैं।

दादाश्री : बस, 'मैं-हम'। यानी कि जो खुद के गुण गाते हैं, वहाँ उन्हें खुद का 'हम' चाहिए।

वीतरागी दीक्षा वीतराग धर्म से प्राप्त, सांप्रदायिकता से लुप्त

महावीर भगवान के बाद में केवली धर्म रहा था। केवली, फिर सचमुच के श्रुतकेवली थे और लगभग दो सौ सालों तक यह सब चला। उसके बाद वीतराग धर्म लुप्त हो गया। सचमुच के श्रुतकेवली चले गए, वीतराग धर्म खत्म हो गया और कई संप्रदाय बन गए। लेकिन पहले दो संप्रदाय बने और फिर बहुत सारे संप्रदाय बन गए। सांप्रदायिक हो गया इसलिए वीतरागी दीक्षा चली गई। जिसके पास वीतराग दीक्षा नहीं, उसे आत्मज्ञान नहीं हो सकता। ये अक्रम ज्ञानी ऐसे-वैसे नहीं कहलाते। यहाँ पर वीतराग धर्म चल रहा है। यह स्याद्वाद है। हाँ, एकांतिक नहीं है। उसके बाद जब से एकांतिक शुरू हुआ तभी से सांप्रदायिक शुरू हुआ। सांप्रदायिक यानी वहाँ पर आत्मज्ञान नहीं है। प्रकट नहीं हो सकता किसी में भी। अन्य सभी शक्तियाँ बढ़ती हैं लेकिन आत्मज्ञान प्रकट नहीं होता। उसे सांप्रदायिक दीक्षा कहते हैं।

जो जानते हैं पूरे शास्त्र और क्षयोपशम से आत्मा को, वे वास्तव में श्रुतकेवली

प्रश्नकर्ता : ये पूर्व के जो ज्ञानी थे, उन्हें शास्त्रों का जो ज्ञान था, वह तो क्रमपूर्वक एक-एक को दिया जाता रहा। चौदह पूर्वधारी जो लोग थे, चौदह पूर्वधारी जब खत्म हुआ तब दस पूर्व रहा, नौ पूर्व रहा, आठ पूर्व रहा, शास्त्र ऐसा कहते हैं और उन सभी चौदह पूर्वधारियों को तो हम श्रुतकेवली कहते हैं न?

दादाश्री : वे सचमुच के श्रुतकेवली थे।

प्रश्नकर्ता : श्रुतकेवली कहें तो फिर उनके पास जो ज्ञान था, वह सम्यक् ज्ञान तो था ही न?

दादाश्री : वे श्रुतकेवली वास्तविक ज्ञानी थे। वे श्रुतकेवली शास्त्रों को जानते थे और आत्मा को भी जानते थे। आत्मा को क्षयोपशम के तौर पर जानते थे। खुद को क्षयोपशम जितना था, उतना ही आत्मा जानते थे, आत्मा के बारे में इससे ज़्यादा नहीं जानते थे। लेकिन श्रुतकेवली सभी शास्त्र पूरी तरह से जानते थे।

प्रश्नकर्ता : उनके पास सम्यक् दर्शन रहता है न, दादा? दस पूर्व से ज़्यादा है, उन्हें?

दादाश्री : इसीलिए हम कहते हैं न, कि वे अपना खुद का क्षयोपशमपूर्वक जानते हैं। क्योंकि, 'वे क्षयोपशम में पड़े हुए हैं', ऐसा कहा जाता है। उपशम समकित होने के बाद में क्षयोपशम समकित में पहुँच चुके होते हैं। उनका जितना क्षयोपशम हुआ होता है, उसी अनुसार वे आत्मा को जानते हैं। और श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान जैसा, उतना पूरा ही जानते हैं। अत: जहाँ से पूछो वहाँ से जवाब देते हैं। उनके खुद के *लक्ष* (जागृति) में रहता है कि, 'ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए।' क्योंकि वे श्रुतकेवली हैं न, इसलिए उन्हें खुद को आत्मा का क्षयोपशम कम है। लेकिन जानते हैं कि यह करने योग्य है और यह करने योग्य नहीं है। किसी के पूछने पर जवाब देते हैं,

यानी उन्हें खुद को जवाब पता होता है इसलिए वे श्रुतकेवली कहलाते हैं। वे एक प्रकार के केवली कहलाते हैं, वह ऐसा-वैसा पद नहीं है!

श्रुतकेवली - थ्योरीटिकली पूर्ण, प्रैक्टिकली अपूर्ण

प्रश्नकर्ता : श्रुतकेवली नेक्स्ट टू केवलज्ञानी कहलाते हैं?

दादाश्री : नहीं-नहीं! ज्ञानी ही कहलाते हैं। (क्योंकि वे क्षयोपशम वाले हैं इसलिए।)

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ कहलाते हैं या ज्ञानी?

दादाश्री : ज्ञानी कहलाते हैं। उसके बाद आगे जाकर सर्वज्ञ बनते हैं। क्योंकि सर्वज्ञ तो, जिन्होंने सर्वज्ञ के कारणों का सेवन शुरू किया, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं। कारणों का सेवन करने लगें, तब से लेकर कार्य होने तक सर्वज्ञ।

प्रश्नकर्ता : ये जो श्रुतकेवली हैं, क्या उनके पास संपूर्ण केवलज्ञान है?

दादाश्री : नहीं, उनका अभी बाकी है, बहुत बाकी है। श्रुतकेवली अर्थात् अस्सी प्रतिशत प्रैक्टिकल और सौ प्रतिशत थ्योरीटिकल।

प्रश्नकर्ता : यानी कि बाकी के बीस प्रतिशत उनका थ्योरीटिकल?

दादाश्री : उतना बाकी रहा, केवलज्ञान होने में बीस प्रतिशत प्रैक्टिकल बाकी रहा। वह बाकी है, इसलिए श्रुतकेवली को भी केवलज्ञान नहीं होता। इतना खत्म होने के बाद में होता है। एक तरफ संपूर्ण थ्योरीटिकल बता दिया है लेकिन इस वजह से उसे प्रैक्टिकल नहीं कहा जा सकता। नियम ऐसा ही है। मेरे पास जितना थ्योरिटिकल है, उतना ही मेरा प्रैक्टिकल में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। आप जो उन चार डिग्री की बात करते हैं, वह इसीलिए न?

दादाश्री : हाँ, वह चार डिग्री की बात... वह चार डिग्री तो

थ्योरीटिकली ही कम है। यानी कि इतना थ्योरीटिकल पूरा नहीं हुआ, वर्ना श्रुतकेवली कहलाते। अभी नहीं कहलाते। वर्ना यदि हम से कोई पूछे कि हम (आपको श्रुतकेवली) कहें? फिर भी हम मना करेंगे। वह बोझ कौन उठाए, बिना बात के? बहुत भारी बोझ है। मुझे यों ही बिना बोझ के क्या बुरा है? कुछ बोझा ही नहीं है, भय नहीं है।

पुरुषार्थ से श्रुतकेवली, कृपा से केवली

प्रश्नकर्ता : तो फिर श्रुतकेवली और केवली में क्या फर्क है?

दादाश्री : सचमुच के श्रुतकेवली, वह तो पुरुषार्थ का फल है, जबकि केवली तीर्थंकर भगवान की कृपा का फल है।

प्रश्नकर्ता : क्या केवली को आत्मा दिखाई देता है?

दादाश्री : केवली को ज्ञान से आत्मा दिखाई देता है। दिखना अर्थात् प्रतीति होना (दर्शन से) और जानना अर्थात् अनुभव होना (ज्ञान से)। वह अरूपी पद है, अनुभवगम्य है।

केवली, केवलज्ञान से जानते हैं और श्रुतकेवली शास्त्रों से जानते हैं। जितना भगवान ने जाना होता है, श्रुतकेवली भी उतना ही जानते हैं। श्रुतकेवली क्या ऐसा-वैसा पद है?

प्रश्नकर्ता : तो दादा, क्या श्रुतकेवली की शक्ति तीर्थंकरों जितनी होती है?

दादाश्री : नहीं, तीर्थंकरों जितनी नहीं परंतु जब तक वे सिन्सियरली रहें तब तक वीतराग धर्म चलता रहता है। क्योंकि श्रुतकेवली ऐसे-वैसे नहीं होते। वे (केवलज्ञान द्वारा जानने वाले) केवली कहलाते हैं, और ये श्रुतकेवली कहलाते हैं।

वास्तविक श्रुतकेवली (क्षायक तक पहुँचे हुए) कारण केवलज्ञानी कहलाते हैं और, केवलज्ञानी तो कुछ भी नहीं कर सकते। श्रुतकेवली दूसरों पर उपकार कर सकते हैं।

अशोच्या केवली, वे स्वयंबुद्ध

प्रश्नकर्ता : दूसरा शब्द है अशोच्या केवली, इसका क्या अर्थ है? कृपालुदेव के वचनामृत में लिखा हुआ आता है कि अशोच्या केवली।

दादाश्री : ये सारे तो पारिभाषिक शब्द हैं। अशोच्या केवली मागधी शब्द है। कृपालुदेव ने यह मागधी शब्द लिखा है। वे क्या कहना चाहते हैं कि किसी ज्ञानी से या केवलज्ञानी से सुने बगैर ही ज्ञान उत्पन्न हो गया। जिन्हें स्वयंबुद्ध कहते हैं, उनके जैसा। 'अशोच्या केवली', यह मागधी शब्द का मतलब अपने यहाँ क्या है? अश्रुत, अर्थात् कुछ भी सुने बिना या किए बिना उत्पन्न हुआ ज्ञान। स्वयंबुद्ध अर्थात् वे जो इस जन्म में किसी से उपदेश प्राप्त करके सर्वज्ञ नहीं बने हों।

प्रश्नकर्ता : एकाध लाख साल में कोई एक ऐसा पैदा होता है न, जिन्हें अपने आप ही ज्ञान हो जाता है?

दादाश्री : उन्हें स्वयंबुद्ध कहा गया है। लेकिन स्वयंबुद्ध तो इस जन्म के परिपेक्ष्य में, पिछले जन्म के नहीं। पिछले जन्म में ज्ञान प्राप्त किया होना चाहिए। जो स्वयंबुद्ध होते हैं, वे अगले जन्म में निमित्त बनकर जगत् का कल्याण करते हैं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पहले के किसी जन्म में उन्होंने ज्ञानी पुरुष से ज्ञान प्राप्त किया होता है?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान प्राप्त किया होना चाहिए, वर्ना नहीं हो सकता। सीधे ही, किसी को यों ही तो नहीं हो जाता। स्वयंबुद्ध, इस काल के आधार पर कहते हैं। हमें (दादाश्री को) किसी से लेना नहीं पड़ा, इसीलिए हमें स्वयंबुद्ध कहते हैं। सभी तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं। उन्हें उस जन्म में ज्ञान नहीं लेना पड़ता। उनके गुरु नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन पिछले जन्म से लेकर आए होते हैं।

दादाश्री : हाँ, इसलिए उन्हें स्वयंबुद्ध कहते हैं। लेकिन उसका अर्थ क्या है? पिछले जन्म में गुरु थे ही। गुरु के बिना ज्ञान कैसे लाया?

कोई पकड़कर बैठ जाए कि, 'नहीं, ज्ञान इसी तरह से होता है', तो शास्त्रकार उसके लिए मना करते हैं। वह फिर स्वयंबुद्ध को भी हो सकता है, त्यागी वेश में भी हो सकता है, संसारी वेश में भी हो सकता है, स्त्री को भी हो सकता है, पुरुष को भी हो सकता है, नपुंसक को भी हो सकता है, सबकुछ बताया है। ताकि कोई ऐसा न पकड़ बैठे कि इसी वेश में होता है, साधु वेश में। यह मार्ग दुराग्रह का है ही नहीं, यह अनाग्रह का मार्ग है।

जो श्रवण करे श्रुतज्ञान का ज्ञानी से, वह श्रावक

प्रश्नकर्ता : आपसे यह समझना है कि श्रावक का अर्थ क्या है?

दादाश्री : भगवान ने कहा है कि जो ज्ञानी से श्रुतज्ञान का श्रवण करे, तो उसे श्रावक कहेंगे। हम ज्ञानी पुरुष कहे जाते हैं। यदि हम से आप सुनोगे तो आप श्रावक बन जाओगे। एक घंटे तक सुनोगे न, तो श्रावक बन जाओगे।

प्रश्नकर्ता : अपने यहाँ भगवान ने पाँच प्रकार के ज्ञान बताए हैं : मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव और केवलज्ञान, इनमें से आपका ज्ञान कौन सा ज्ञान कहा जाएगा?

दादाश्री : मेरा यह श्रुतकेवली चार डिग्री कम है। हमारे पास श्रुतज्ञान है और अगर हमें चार डिग्री की कमी वाले श्रुतकेवली कहा जाए तो चल सकता है, तीन सौ और छप्पन है हमारी डिग्री। इसलिए केवलज्ञान रुका हुआ है। श्रुतकेवली में तो कितने ही जन्मों से (कम डिग्री से) पास हो चुके हैं। लेकिन केवलज्ञान में फेल हुए हैं इसलिए वापस इसी में ही, उसी स्टैन्डर्ड में रहे।

प्रश्नकर्ता : प्रमाण प्रमाण प्रमाण!

दादाश्री : भूतकाल और भविष्य काल के ज्ञानी नहीं हैं हम। हम तो आत्मा के ज्ञानी हैं।

अपना रियल धर्म, आत्म धर्म है। असंयोगी आत्मा और संसार

को अलग-अलग करने का ज्ञान जिनके पास है, वे श्रुतकेवली कहलाते हैं। (लोकभाषा वाले) श्रुतकेवली के पास शायद तत्त्वदृष्टि न भी हो। हम तो श्रुतकेवली हैं और वह भी फिर तत्त्वदृष्टि वाले। मैंने आपको जो ज्ञान दिया है, वह आपको निरंतर याद रहता है। भगवान की भाषा में आप भी (तीन सौ डिग्री वाले) श्रुतकेवली कहे जाएँगे।

सत्-असत् के ताग को जाने, वह तत्त्वदर्शी

प्रश्नकर्ता : तत्त्वदर्शी किसे कहते हैं?

दादाश्री : तत्त्वदर्शी सत् के *ताग* (सार) को भी जानते हैं और असत् के *ताग* को भी जानते हैं। जिन्हें कुछ भी जानना बाकी नहीं रहा, उन्हें तत्त्वदर्शी कहते हैं। असत् विनाशी है और सत् अविनाशी है, अर्थात् वे विनाशी को भी समझ सकते हैं और अविनाशी को भी समझ सकते हैं। विनाशी कौन से? तो कहते हैं, अवस्था मात्र विनाशी है। दो ही वस्तुएँ हैं इस दुनिया में। वस्तु है और उसकी अवस्थाएँ हैं। वस्तु अविनाशी है, अवस्थाएँ विनाशी हैं, बस इतना ही है। अतः जिसने दोनों का *ताग* निकाल लिया, वह तत्त्वदर्शी है।

जिन्हें तत्त्वज्ञान नहीं है, उनके पास तत्त्वदृष्टि नहीं होती। इस तत्त्वदृष्टि को क्या कहते हैं? सुदर्शन चक्र। सामने वाला उग्र हो गया हो और उस पर सुदर्शन चक्र रखा जाए तो वह एकदम शांत हो जाता है। जबकि इन लोगों ने तो कृष्ण भगवान के हाथ में चक्र का चित्रण कर दिया। लेकिन उनके पास तत्त्वदृष्टि रूपी सुदर्शन चक्र था। इतने सारे शास्त्र लिखे गए लेकिन कृष्ण भगवान के सुदर्शन चक्र की ही प्रशंसा हुई है। लेकिन इन लोगों ने तो उल्टा ही चित्रण कर दिया। अरे, सुदर्शन क्या कभी गला काटता होगा? कुदर्शन गला काटता है।

ये लोग दुश्मन किसे कहते हैं? सामने वाले व्यक्ति को। जबकि हम लोग, तत्त्व ज्ञानी, किसे दुश्मन कहते हैं? जो तत्त्व की प्राप्ति न करने दे। खुद का जो तत्त्व है, खुद का जो आत्मा तत्त्व है, उसकी प्राप्ति न होने दे, वह दुश्मन। कौन वह प्राप्ति नहीं होने देता? क्रोध-

मान-माया-लोभ-राग-द्वेष। ये छः षट् शत्रु कहलाते हैं। तो जिसने इन छः शत्रुओं का हनन कर दिया, वे अरिहंत भगवान कहलाते हैं।

जो आत्मतत्त्व को जाने, वह तत्त्व ज्ञानी, जो सर्व तत्त्वों को जाने, वे सर्वज्ञ

प्रश्नकर्ता : तत्त्व ज्ञानी किसे कहना चाहिए? उनकी सही पहचान क्या है?

दादाश्री : जो तत्त्वों को जानते हैं, उन्हें। इस जगत् में इन्द्रियों से ये जो दिखाई देते हैं न, वे तत्त्व नहीं हैं। तत्त्व अविनाशी होते हैं और जो इन्द्रियों से दिखाई देती हैं, वे सभी विनाशी चीज़ें हैं। तत्त्व अर्थात् जो अविनाशी चीज़ों को जाने, प्रतीति में अनुभव करे, वे तत्त्व ज्ञानी कहलाते हैं।

तत्त्व स्वरूप ज्ञेय केवलज्ञान के बिना नहीं दिखाई देते। ये जो छः अविनाशी तत्त्व हैं, वे केवलज्ञान के बिना नहीं दिखाई देते, लेकिन जब छः तत्त्वों पर श्रद्धा आ जाती है तो फिर वह केवलज्ञान में आ ही जाता है। पहले दर्शन में आता है, उसके बाद ज्ञान में आता है, धीरे-धीरे वर्तन में आता है।

एक तत्त्व का ज्ञाता, ज्ञानी कहलाता है। जिन्होंने सिर्फ आत्मा को ही जाना, वे तत्त्वज्ञानी कहलाते हैं। जिन्होंने सभी तत्त्वों को जान लिया, अलग-अलग हर एक तत्त्व क्या कर रहा है, उसे भी जानते हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं। जब इन छः तत्त्वों को जान लेते हैं तब वे मोक्षमार्ग के नेता बन सकते हैं।

एब्सल्यूट ज्ञान, केवलज्ञान, वही सर्वज्ञता

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञता किसे कहते हैं? सर्वज्ञता का अर्थ क्या है?

दादाश्री : सर्वज्ञता अर्थात् केवलज्ञान। एब्सल्यूट ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञता। सर्वज्ञता अर्थात् हर प्रकार से जानपना। जब कोई भी चीज़ जाननी बाकी नहीं रहे, उसे कहते हैं सर्वज्ञता।

प्रश्नकर्ता : यह जो सर्वज्ञ शब्द है, वास्तव में उसका तात्पर्य क्या है?

दादाश्री : सर्वज्ञ अर्थात् जिन्हें इस जगत् में कोई भी चीज़ जाननी बाकी नहीं है, उन्हें कहते हैं सर्वज्ञ। सर्वज्ञ चीज़, यह तो केवलज्ञानियों और तीर्थंकरों की चीज़ है। तीर्थंकरों के अलावा और कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता।

जिन अर्थात् आत्मज्ञानी। जिनेश्वर अर्थात् आत्मज्ञानी के *ऊपरी,* और वे सर्वज्ञ, केवलज्ञान के आधार पर ऐसे पद पर आए हैं।

भगवान महावीर की भाषा में केवलज्ञान स्वरूप को सर्वज्ञ कहते हैं। केवलज्ञान अर्थात् कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। सभी कुछ जानते हैं, जब कहो तब एट एनी टाइम, आप कहो तो तुरंत ही वे सारी बातें बता देते हैं।

न भूत-न भविष्य, वर्तमान में जो देखते हैं वही बताते हैं सर्वज्ञ

प्रश्नकर्ता : ये सर्वज्ञ जो वाणी बोलते हैं वह सारा, अनंत जन्मों के स्मृति ज्ञान वगैरह में देखकर ही बोलते होंगे न?

दादाश्री : देखकर बोलते हैं, लेकिन अनंत जन्मों की स्मृति की उन्हें कोई ज़रूरत नहीं है। उन्हें तो यह सब जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है उतना ही बताते हैं। अन्य कोई ज़रूरत नहीं है। अनंत जन्मों में क्या हुआ और क्या नहीं, उपयोग रखने पर दिखाई देता है। बाकी, उन्हें ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है। उन्हें तो केवलज्ञान में पूरा जगत् दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ, समय पर प्रभाव डाल सकते हैं क्या?

दादाश्री : प्रभाव? समय पर?

प्रश्नकर्ता : वे क्या समय को स्थगित कर सकते हैं या उसे गति दे सकते हैं?

दादाश्री : जो किसी भी प्रकार का दखल दे, वे सर्वज्ञ नहीं कहलाते। पराई सत्ता में हाथ डालने वाले को सर्वज्ञ कैसे कह सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् इसका अर्थ ऐसा हुआ कि जहाँ सर्वज्ञता है वहाँ स्वतंत्रता ही है।

दादाश्री : ऐसा है न, जहाँ अज्ञदशा है, वहाँ स्वतंत्रता नहीं है। जहाँ प्राज्ञदशा है, वहाँ स्वतंत्रता है और प्राज्ञदशा से लेकर सर्वज्ञ तक की दशा स्वतंत्र है। अज्ञदशा में पूरी ही परतंत्रता है।

आत्मा को जाना, केवलज्ञानी और केवलियों ने

आत्मा, वह एक ऐसी वस्तु है कि जिसका किसी को पता ही नहीं चल पाया है, 'सिर्फ केवलज्ञानियों को ही पता चला था', अगर ऐसा कहें तो चलेगा। बाकी जो भी केवली बने, वे सब केवलज्ञानी के दर्शन करने से बने। लेकिन यदि असल में कोई खोज की हो तो वह केवलज्ञानियों ने, तीर्थंकरों ने की है!

यह बात बहुत समझने की, सूक्ष्म बात है। तभी तो 'आत्मज्ञान जानो', शास्त्रों में ऐसा क्यों कहते हैं? आत्मज्ञान... आत्मा ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जाना जा सके। लोग जो देखना चाहते हैं न, आत्मा की बात, वह सब गलत है। आत्मा वैसा नहीं है। इस आत्मा का एक बाल भी देखने मिल सके, ऐसा नहीं है। उसे सिर्फ तीर्थंकरों ने ही जाना और उनके दर्शन करने से जो केवली बने, उन्होंने जाना, लेकिन वे किसी को बताने को रहे नहीं।

प्रश्नकर्ता : केवली कब कहलाते हैं?

दादाश्री : केवली अर्थात् जो एब्सल्यूट हो गया। केवली अर्थात् एब्सल्यूट ज्ञान मात्र। केवल का अर्थ है, सिर्फ। मात्र निरालंब! कोई अवलंबन नहीं रहा, तब केवली बनते हैं।

केवली करते हैं स्व का कल्याण, तीर्थंकर और ज्ञानी करते हैं अनेकों का

प्रश्नकर्ता : केवली और केवलज्ञानी में कोई फर्क है?

दादाश्री : कोई फर्क नहीं है। केवलज्ञानी भी केवली ही कहे जाते हैं, लेकिन तीर्थंकर और केवली में फर्क है। केवली भी केवलज्ञानी हैं और तीर्थंकर भी केवलज्ञानी है, लेकिन फर्क इतना ही है कि ये तीर्थंकर और ज्ञानी, ये लोगों का कल्याण करने आते हैं, जबकि केवली खुद खुद का ही कल्याण कर सकते हैं, जो औरों का कल्याण नहीं कर सकते, वे केवली कहे जाते हैं। बस, खुद का ही कल्याण करके चले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब खुद का कल्याण हो जाता है तब अंदर से भाव तो होते हैं न, कि जो सुख मुझे मिला, वह दूसरों को भी मिले तो अच्छा है?

दादाश्री : नहीं, लेकिन वे ऐसा भाव करते ही नहीं हैं न! उनके खुद के ही, उनके खुद के झंझट खत्म करके वे चले जाते हैं। वे ज़ल्दबाज़ी करके चले जाते हैं, जबकि तीर्थंकर औरों के लिए बैठे रहते हैं, उन्हें कुछ समय तक रहना पड़ता है।

यदि ऐसी भावना हो न, तो वह तो उत्तम चीज़ है। क्योंकि हमने जो कमाया, लाभ हुआ, वैसा औरों को, सामने वाले को भी होना ही चाहिए न! दादा हैं तो हो रहा है, वर्ना नहीं हो पाता!

प्रश्नकर्ता : तो केवली और तीर्थंकर में क्या फर्क है?

दादाश्री : ज्ञान में फर्क नहीं होता, दोनों के पुण्य में फर्क होता है।

तीर्थंकर हैं वर्ल्ड का आश्चर्य, जिनसे केवली को प्राप्ति होती है

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान प्राप्त करने वाले केवली भी तीर्थंकरों की तरह मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

दादाश्री : करेक्ट (सही) बात है।

प्रश्नकर्ता : तो केवली को तीर्थंकरों की कोटि में रखा जा सकता है क्या?

दादाश्री : नहीं रखा जा सकता। कहाँ तीर्थंकर देव! वे तो वर्ल्ड का आश्चर्य कहे जाते हैं! यह तीर्थंकर गोत्र तो, जहाँ पैर रखा, वहीं तीर्थ बन गया। तीर्थंकरों की वे बातें और उनकी वाणी! उन तीर्थंकरों को अगर आज सच्चे दिल से याद किया जाए तब भी आनंद हो जाता है। तो फिर क्या केवलियों को तीर्थंकरों की कोटि में रखा जा सकता है? नहीं रखा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : दोनों की जाति एक ही प्रकार की है, तो क्या उन्हें समकक्ष माना जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, समकक्ष तो कभी भी नहीं माना जा सकता। तीर्थंकर यानी तीर्थंकर।

साइन्टिस्ट कौन थे? तो कहते हैं, सिर्फ तीर्थंकर ही विज्ञानी थे। और उनके निमित्त से जो केवली बने, उन्होंने खुद ने प्राप्ति कर ली, लेकिन दूसरों को नहीं करवा सकते।

प्रश्नकर्ता : क्यों नहीं करवा सकते?

दादाश्री : केवली अलग है। केवली अर्थात् भगवान की उपस्थिति में ही उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। सिर्फ उपस्थिति की ही कमी थी।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद केवली कुछ बोलते नहीं हैं?

दादाश्री : बोलते सभी कुछ हैं, लेकिन उनके पास दूसरों को प्राप्ति करवाने की शक्ति नहीं होती। ऐसा पूर्व जन्म के कारण है। पूर्व जन्म में यदि भावना हुई होती तो, लेकिन क्रमिक मार्ग में पूर्व जन्म में ऐसी भावना नहीं होती। अगर किसी को हो जाए तब वे तीर्थंकर कर्म बाँधते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी तीर्थंकर बन सकते हैं?

दादाश्री : वही तीर्थंकर बनते हैं, अन्य कोई नहीं बन सकता। क्योंकि भावना की है कि, 'जगत् के लोगों को मेरे जैसा सुख प्राप्त हो।' इसे कल्याण करने की भावना कहते हैं।

केवली तो हर व्यक्ति बन सकता है, ब्राह्मण, बनिया, पटेल, सभी। केवली बनने की छूट सभी को है। लेकिन सिर्फ क्षत्रिय ही तीर्थंकर बन सकते हैं।

केवली को परिपक्व करते हैं ज्ञानी, लेकिन अंतिम मुहर तीर्थंकर की

प्रश्नकर्ता : केवली जो होते हैं, क्या वे ज्ञानी की उपस्थिति में हो सकते हैं?

दादाश्री : ज्ञानी की उपस्थिति में नहीं। ज्ञानी को अभी तक केवलज्ञान नहीं हुआ है। जो केवलज्ञानी (तीर्थंकर) हो चुके हैं उनकी उपस्थिति में ही कोई केवली बन सकता है, ज्ञानी ने उन्हें केवलज्ञान के लायक बना दिया होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जो तीर्थंकरों की उपस्थिति में केवली हो जाते हैं, उन्हें ज्ञानियों ने तैयार किया होता है?

दादाश्री : हाँ! केवलियों ने क्या मेहनत की? केवलज्ञानियों ने क्या मेहनत की? वहाँ जाने पर मुहर लग गई। अपने यहाँ सभी सीमंधर स्वामी भगवान का नाम लेते रहते हैं और फिर जब तीर्थंकर के पास जाएँगे तब देर ही नहीं लगेगी न, केवली बन जाएँगे वहाँ।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी सारा मैल धो देते हैं और वहाँ मुहर लग जाती है, सर्टिफिकेट मिल जाता है!

दादाश्री : हाँ! मुहर तो उनकी ही, तभी केवली बन सकते हैं।

ज्ञानी पुरुष मुक्तानंदी कहे जाते हैं। मुक्तानंदी को देखा लेकिन

तीर्थंकरों को नहीं देखा है। तीर्थंकरों का जो केवलज्ञान है, वह तो अद्भुत है न! लेकिन उसका वर्णन नहीं हो सकता।

सम्यक् दृष्टिधारी का, तीर्थंकरों के दर्शन से होता है बेड़ा पार

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान, तीर्थंकरों की उपस्थिति में होता है, और ज्ञानी की उपस्थिति में क्या होता है?

दादाश्री : यह हो रहा है न, ज्ञान मिल रहा है वह! और फिर उन्हें अगले शरीर में तीर्थंकर मिलते हैं, फिर वहाँ देर ही नहीं लगती। वह उससे पहले हो चुका होना चाहिए। कुछ काबिलियत तो चाहिए न? सर्टिफाइड तो होना चाहिए न? वहाँ पर तीर्थंकर की उपस्थिति में कोई भी इंसान चला जाए, लेकिन उससे कुछ नहीं होता। बहुत लोग वहाँ पर बैठते हैं लेकिन कुछ नहीं हो पाता। उसके लिए तो उसकी काबिलियत हासिल कर ली हो और दृष्टि बदली हुई हो तब वहाँ पर काम हो जाता है। तीर्थंकर कुछ भी कहने नहीं जाते, दृष्टि पड़ते ही उसके भाव बदल जाते हैं। देखते ही केवलज्ञान हो जाता है। इसीलिए मैं कहता हूँ न, कि अपने महात्माओं को अब सिर्फ तीर्थंकरों के दर्शन करने बाकी रहे।

प्रश्नकर्ता : अनेक तीर्थंकर हो चुके हैं। लेकिन ये जीव तो अनेक जन्मों से भटक ही रहे हैं, तो क्या उस समय उन्हें तीर्थंकरों की उपस्थिति नहीं मिली होगी?

दादाश्री : कईं बार मिले होंगे, तीर्थंकरों के पास बैठे भी रहे होंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन भान नहीं था।

दादाश्री : नहीं! चटनी खाने की इच्छाएँ! सिर्फ चटनियाँ खाने के लिए भटकते थे, पूरी थाली खाने की इच्छा नहीं, बत्तीस प्रकार का भोजन खाने की इच्छा नहीं!

प्रश्नकर्ता : तो क्या इसका अर्थ यह है कि उस समय उनकी काबिलियत नहीं थी?

दादाश्री : नहीं, चटनी खाने की इच्छा रह गई थी, इसलिए फिर वहाँ, तीर्थंकर के पास चित्त एकाकार नहीं हो पाया। यों बातें तो बहुत अच्छी लगीं। वे सेठानी से कहते भी थे कि, 'तू पूड़ियाँ और सब्ज़ी ले आना, लेकिन कंदमूल मत लाना, कोई और सब्ज़ी ले आना', और वहीं पर बैठकर खाता था। क्योंकि कानों को अच्छा लगता था न! लेकिन उससे कुछ नहीं हो पाया। इस तरह से तो अनंत जन्मों से भटक ही रहे हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आपने बताया कि तीर्थंकरों के दर्शन करने से इंसान को केवलज्ञान हो जाता है तो उन लोगों ने दर्शन किए, फिर भी?

दादाश्री : तीर्थंकरों के दर्शन तो बहुत लोगों ने किए हैं, हम सभी ने दर्शन किए हैं। लेकिन उस समय अपनी इतनी तैयारी नहीं थी। अपनी दृष्टि नहीं बदली थी, मिथ्या दृष्टि थी। मिथ्या दृष्टि में तीर्थंकर क्या करते फिर? जिनके पास सम्यक् दृष्टि होती है, उन पर तीर्थंकर की कृपा हो जाती है।

अब रहे सिर्फ दर्शन बाकी तीर्थंकर भगवान के

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यदि उसके लिए तैयार हों और उनके दर्शन हो जाएँ तब मोक्ष होता है।

दादाश्री : इसीलिए तो हमें तैयार हो जाना है। क्योंकि इतना ही है कि तैयार होकर फिर वीज़ा लेकर जाओगे तो चाहे कहीं भी जाओ, काम हो जाएगा। कोई न कोई तीर्थंकर मिल आएँगे। तीर्थंकरों का ऐसा कोई नियम नहीं है कि सब क्षेत्रों में सिर्फ बीस ही तीर्थंकर होंगे। कई बार ज़्यादा भी हो सकते हैं, लेकिन कम से कम बीस तीर्थंकर तो होते ही हैं। तब बोलो, ब्रह्मांड तो पवित्र ही है न, जब देखो तब!

प्रश्नकर्ता : हम तो दादा का वीज़ा दिखाएँगे।

दादाश्री : वीज़ा नहीं दिखाना पड़ेगा, अपने आप ही काम हो जाएगा। तीर्थंकर को देखते ही आपके आनंद की सीमा नहीं रहेगी, देखते ही आनंद! पूरा जगत् विस्मृत हो जाएगा। जगत् का कुछ भी, खाना-पीना अच्छा नहीं लगेगा। उस क्षण पूर्ण हो जाएगा। निरालंब आत्मा प्राप्त होगा, उस क्षण। निरालंब आत्मा के बाद फिर कोई भी अवलंबन नहीं रहेगा।

ज्ञानी की आज्ञा रूपी धर्मध्यान के फलस्वरूप सर्वोच्च मनुष्य गति मिलती है। उससे अगला जन्म बहुत ही अच्छा मिलता है, हमें तीर्थंकर मिलते हैं, फिर और क्या चाहिए? हमें आत्मा तो प्राप्त हो ही गया है। अंत में सिर्फ तीर्थंकरों के दर्शन करने बाकी हैं। वह एक ही बार हो जाए तो बहुत हो गया। केवलज्ञान रुका हुआ होगा तो पूर्ण हो जाएगा। 'ज्ञानी पुरुष' तो, जहाँ तक वे खुद पहुँचे हैं वहीं तक ले जाते हैं, उससे आगे नहीं ले जा सकते। आगे तो जो आगे वाले होंगे, वे ले जाएँगे, इसमें कुछ चलेगा ही नहीं न!

दशा अलग-अलग, फिर भी केवलज्ञान एक समान

प्रश्नकर्ता : सभी तीर्थंकर, जो सिद्ध हो चुके हैं, वे सब परमात्मा ही हो गए हैं न?

दादाश्री : हाँ, वे सभी (अलग से) परमात्मा नहीं... उन्हीं को परमात्मा कहते हैं। यह तो, अपनी बुद्धि की वजह से अलग-अलग दिखाई देते हैं। उनमें बुद्धि नहीं है इसलिए सब एक ही लगते हैं। क्योंकि ज्ञान तो वही का वही है। यानी कि शुद्ध ज्ञान, वही परमात्मा है जबकि अज्ञान प्रत्येक (व्यक्ति) में अलग-अलग है। अज्ञान की वजह से अलग हैं, बुद्धि के प्रताप से।

प्रश्नकर्ता : हर कोई अपनी-अपनी स्टेज में आ जाए तब सभी की दशा एक ही प्रकार की होती है?

दादाश्री : नहीं, अलग–अलग दशा। केवलज्ञान एक ही स्टाइल का, दशा अलग–अलग रहती है। किसी को कढ़ी अधिक भाती है, किसी को मिर्च अधिक भाती है। उनका ज्ञान एक ही प्रकार का!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान में कम–ज़्यादा हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : कम–ज़्यादा रहता है लेकिन एक ही प्रकार का ज्ञान। उसका सारांश निकालें तो एक ही प्रकार का निकलता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो लाइट है, यह लाइट सब में एक ही प्रकार की है लेकिन कोई पाँच हज़ार पावर वाली, कोई दस हज़ार पावर वाली, कोई बीस हज़ार पावर वाली, ऐसा है या नहीं?

दादाश्री : हाँ–हाँ! ऐसा सब है, लेकिन उसका सारांश एक ही प्रकार का है। कोई तीर्थंकर बहुत आकर्षक लगते हैं, कोई तीर्थंकर... अरे! कोई वाणी बोले तो इस तरह से बोलते हैं कि यों स्तब्ध कर दें। लेकिन सब एक ही प्रकार का।

देशना – तीर्थंकरों की संपूर्ण, ज्ञानी की अपूर्ण

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकरों की देशना होती है न?

दादाश्री : तीर्थंकरों की देशना होती है। केवली की देशना नहीं होती। देशना सिर्फ अक्रमविज्ञानी की ही होती है और तीर्थंकरों की देशना होती है। हमारी यह देशना ही मानी जाएगी। हमारा (कहा हुआ) उपदेश नहीं कहलाता। देशना अर्थात् जो सहज रूप से निकलती रहती है, सहज रूप से, सेटिंग–वेटिंग नहीं। तो यह सहज रूप से निकलती रहती है लेकिन इसमें मुझे 'मैं' और 'आप', ऐसा ध्यान रहता है। जबकि तीर्थंकरों को ध्यान नहीं, वीतरागता रहती है। हाँ, यानी कमी कहाँ पर है, वह बात हमने अपनी ओपन कर दी।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी स्व–उपयोग में ही बरतते हैं, फिर भी वे देशना देते हैं तो क्या उसे 'पर–उपयोग' नहीं कहेंगे?

दादाश्री : नहीं। वह तो स्वाभाविक रूप से निकलती रहती है।

टेपरिकॉर्डर निकलता रहता है, खुद कर्ता नहीं है। खुद स्व-उपयोग में ही रहते हैं। उन्हें पर-उपयोग करना ही नहीं पड़ता। वाणी अपने आप ही सहज रूप से निकलती रहती है।

सर्वज्ञ ने देखा जो ज्ञान में, उसे बता नहीं सके

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकर केवलज्ञान के बाद में जो कुछ बताते हैं, वह पूरा ही टेपरिकॉर्डर है?

दादाश्री : टेपरिकॉर्डर, टेपरिकॉर्डर!

प्रश्नकर्ता : वह पूरा ही टेपरिकॉर्डर है, लेकिन उन्हें वर्तमान में जो अनुभव में आया, वह तो प्रकाश में आएगा ही नहीं न? उनके वर्तन में या वाणी में नहीं आएगा न?

दादाश्री : नहीं, जो केवलज्ञान का है न, वह नहीं आता है। केवलज्ञान से निम्न अंश का जो है, वह सब आता है।

प्रश्नकर्ता : उससे कम अंश वाला आता है?

दादाश्री : हम जो वाणी बोलते हैं वह, जो आज है वह नहीं आती। अब, इस जन्म में जो अधिक ज्ञान देखा, वह ज्ञान हमें क्या सूचित करता है कि केवलज्ञान ऐसा है, लेकिन हम बता नहीं सकते। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि, 'क्या अनुभव हुआ?' तो मैंने कहा, 'भाई, जितना बताया जा सकता है उतना ही बता रहा हूँ, बाकी का सब अनुभव है। शब्द नहीं हैं, उसके लिए।' इसलिए फिर अशब्द, नि:शब्द कह दिया।

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ भी यह नहीं बता सके!

दादाश्री : आज वाणी नहीं है न! वाणी की पूँजी होनी चाहिए न? वाणी पहले की है, पूर्वयोग की वाणी है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसके बाद तो सबकुछ अनुभवगम्य है न?

दादाश्री : हाँ, सबकुछ अनुभवगम्य है।

प्रश्नकर्ता : यानी फिर वह चीज़ कभी भी इस दुनिया को वाणी में मिल ही नहीं सकती?

दादाश्री : वह मिल ही नहीं सकती। वह आपको समझ लेना है, कि ऐसी सीटें हैं। जब मेरी डिग्री इस डिग्री तक पहुँचेगी न, तब समझ में आएगा कि केवलज्ञान की सीट ऐसी होती होगी।

प्रश्नकर्ता : ऐसा हो सकता है कि संपूर्ण ज्ञान होने के बाद में जो वह टेपरिकॉर्डर की वाणी निकलती है, उस वाणी को जब वे देखें और जानें, और कभी अगर उन्हें ऐसा लगे कि यह वाणी संपूर्ण तो है नहीं, तब बोलना बंद कर देते हैं, क्या ऐसा है?

दादाश्री : ऐसी शक्ति ही नहीं है न! बंद करने की किसी में शक्ति ही नहीं है। इसलिए समय आने पर बोलते भी हैं लेकिन प्ररूपणा के रूप में नहीं, यों ही बोल देते हैं। प्ररूपणा का अर्थ है, दूसरों को उपदेश देने की शक्ति, वैसी भावना नहीं रहती। उसके लिए तो अहंकार की ज़रूरत है न! मेरा भी अहंकार चला गया है, इसलिए क्या कर सकते हैं? यानी कि हमारे इतना सब बोलने के बावजूद भी इसे प्ररूपणा नहीं कह सकते। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि टेपरिकॉर्डर है भाई यह!

'केवल' होने से पहले तीर्थंकरों के होते हैं उपदेश, उसके बाद देशना

प्रश्नकर्ता : क्या तीर्थंकर केवलज्ञान होने के बाद में ही उपदेश देते हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। केवल होने से पहले वे उपदेश देते हैं और केवल होने के बाद में देशना देते हैं, उन दोनों में फर्क है। केवल होने से पहले केवलज्ञानी उपदेश देते हैं तो उस उपदेश के दो गुणस्थानक हैं। छठे गुणस्थानक में उपदेश दे सकते हैं और तेरहवे गुणस्थानक में उपदेश दे सकते हैं, दो जगहों पर उपदेश दे सकते हैं। तेरहवे गुणस्थानक में ही वे उपदेश देते हैं और कुछ समय बाद

केवलज्ञान हो जाता है, तब देशना देते हैं। तेरहवाँ गुणस्थानक ही उन्हें केवलज्ञान देता है। बारहवें में केवलज्ञान नहीं होता, तेरहवे गुणस्थानक में ही केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : चौदहवे में?

दादाश्री : चौदहवाँ उत्पन्न होते ही खुद चले जाते हैं सिद्धक्षेत्र में। एक क्षणवर्ती है, चौदहवाँ तो। तेरहवाँ लंबा भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जितना आयुष्यकर्म भोगना होता है, वह तेरहवे में भोग लेते हैं।

दादाश्री : पूरा भोग लेते हैं। चौदहवे में वे वहाँ पहुँच जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में चले जाते हैं, निर्वाण पद प्राप्त कर लेते हैं।

दादाश्री : हाँ।

विशेष लाभ प्राप्त किया महात्माओं ने, दादा की कृपा से

प्रश्नकर्ता : यदि गणधरों को यह मूल बात जाननी हो तो वे क्या करते हैं? प्रश्न पूछते हैं?

दादाश्री : वे पूछते थे और तीर्थंकर जवाब देते थे। लेकिन व्यवहार का ही बोलना पड़ता था, निश्चय की बात तो बोली नहीं जा सकती! गणधरों से भी नहीं बोल सकते थे। वहाँ पर व्यवहार ही, 'प्रमाद मत करना', ऐसा कहते थे। जबकि हम आपसे कहते हैं कि, 'प्रमाद करोगे तो मुझे हर्ज नहीं है लेकिन तू मेरे कहे अनुसार करना।'

प्रश्नकर्ता : हम भाग्यशाली हैं कि आपसे बातचीत करने को मिलती है।

दादाश्री : जो गणधर हैं, वे एक से शुरू करके निन्यानवे तक पहुँचे हैं इसलिए उनके लिए सौ लिख देते हैं। जबकि आप तो सतासी तक लिखकर लाए हो। इसलिए फिर मैंने कहा कि सतासी के बाद

अठासी लिखो। चलो, आ जाएगा, देखा जाएगा। अगर आप यह लाभ उठा लोगे न, तो काम हो जाएगा। इसलिए एक जन्म के लिए सिन्सियर रहो दादा के प्रति।

अभेद स्वरूप होने के बाद संपूर्ण प्रकाश

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष तो अभेद स्वरूप से भी रह सकते हैं और भेद स्वरूप से भी रह सकते हैं। क्या ऐसा है कि भेद स्वरूप रह पाने की वजह से तत्त्वों का यह विज्ञान और पूरे जगत् का विज्ञान ओपन हुआ है? क्योंकि यदि अभेद स्वरूप होते तो बोल ही नहीं पाते न?

दादाश्री : अभेद स्वरूप अर्थात् ज्ञान। ज्ञान में उत्पन्न होना नहीं रहता न! अभेद स्वरूप अर्थात् संपूर्ण प्रकाश! और इस भेद स्वरूप में प्रकाश होने की शुरुआत होती है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए पूरा विज्ञान ओपन हुआ है!

दादाश्री : तभी ज्ञान उत्पन्न होगा न! अभेद में (ज्ञान) उत्पन्न होने को रहा ही कहाँ? विवाहित व्यक्ति के लिए ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, 'विवाह करना है'? अभेद अर्थात् विवाहित। जबकि हम क्या कहते हैं? 'विवाह कर रहा है, यों मंडप में फेरे ले रहा है।' अत: वह भेद स्वरूप में उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकरों में पूरा ही प्रकाश हो चुका होता है न?

दादाश्री : नहीं, उनमें भी भेद स्वरूप ही था न! महावीर भगवान को बयालीस साल बाद भेद स्वरूप नहीं रहा। बयालीस से बहत्तर, तीस सालों तक अभेद था।

केवलज्ञानी बता सकते हैं, समकिती के पर्याय

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकर बताते हैं कि यह व्यक्ति इतने जन्मों बाद उस जन्म में ऐसा बनेगा, तो वह किस आधार पर बताते हैं?

दादाश्री : समकित की मुहर लगने के बाद की बात है। समकित की मुहर नहीं लगे तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। जिस पर समकित की मुहर लग जाती है उसका फिर डिसाइड (तय) हो जाता है।

तीर्थंकर केवलज्ञान के आधार पर ऐसा बताते हैं, और वह सिर्फ केवलज्ञानी ही बता सकते हैं, अन्य कोई नहीं बता सकता। और वह भी सम्यक् दर्शन से आगे वाले लोगों का ही जान सकते हैं, अन्य लोगों का नहीं जान सकते। बाकी तो अंधेरा ही है न, अहंकार का अंधेरा है। वे प्रकाश को ही देखते हैं, अंधेरे को देखने का रहा ही नहीं न!

क्योंकि उन्हें अज्ञान का ज्ञान नहीं है, ज्ञान का ज्ञान है। वे प्रकाश को ही ज्ञान कहते हैं, अंधेरे को ज्ञान नहीं कहते। अंधेरे को वे अंधेरा ही कहते हैं। प्रकाश को अंधेरा दिख कैसे सकता है? प्रकाश की हद में अंधेरा तो रह ही नहीं सकता। उनका कहना (भविष्य के लिए कहना) प्रकाश की हद में ही है। हर एक चीज़ की गम (समझ, पता) रहती है, सभी कुछ जानते हैं।

घड़े के बारे में बता सकते हैं, जो अकर्ता है उसके बारे में। और दूसरा, देवी-देवताओं का बता सकते हैं, जानवर का बता सकते हैं, और यदि वह (जीव) वापस मनुष्य योनि में आ जाए तो फिर जैसा था वैसा ही। कर्तापन छूटता नहीं है न! अहंकारी क्षण भर में क्या कर ले उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, वह तो पागल जीवित चेतन है (विभाविक चेतन)!

प्रश्नकर्ता : अहंकार सहित हो तो क्या नहीं देख पाते?

दादाश्री : नहीं, बिल्कुल नहीं दिखाई देता। बीच में अहंकार अंधा ही है। यानी खुद ज्ञेय को ज्ञाता मानता है। मैं ही ज्ञाता हूँ, मैं ही जानकार हूँ, ऐसे में तीर्थंकर उसके बारे में नहीं जान सकते। यदि आप उसे (फाइल-1 को) ज्ञेय मानते हो और आप ज्ञाता हो तो तीर्थंकर आपके सभी पर्याय बता सकते हैं। अत: तीर्थंकर, सम्यक्त्व होने के बाद के सभी पर्याय बता सकते हैं, बाकी सब के नहीं बता सकते।

इस प्रकार जानते हैं भूत-भविष्य और वर्तमान के पर्यायों को

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा कहा न, कि घड़े के सभी पर्यायों को जानते हैं, तो वह किस प्रकार से?

दादाश्री : हाँ, घड़े के सभी पर्यायों को जानते हैं यानी कि यह घड़ा आज ऐसा है वर्तमान में, तो भूतकाल में ऐसा था और उसमें से यह उत्पन्न हुआ, उसके सभी पर्याय बता सकते हैं और अभी भी भविष्य में इस घड़े के क्या पर्याय होंगे, ऐसा बता सकते हैं।

वे भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल को किस प्रकार से देखते हैं, वह बात आपको समझाता हूँ। केवलज्ञानी यह सब किस प्रकार से देखते हैं? तो इस घड़े को देखा न, तो भूतकाल में ऐसा था और भविष्य काल में ऐसी स्थिति होगी, इस प्रकार से उसके सभी पर्यायों को जानना, उसी को केवलज्ञान कहते हैं।

उसमें उन्हें कैसा दिखाई देता है कि यह घड़ा है। तो इसका यह जो पर्याय दिखाई दे रहा है, इससे पहले यह क्या रहा होगा? शुरुआत में वह किसी तालाब में मिट्टी में टीले के रूप में था। उसमें उन्हें कोई कुम्हार खुदाई करता हुआ दिखाई देता है। खोदकर फिर गधे पर रखता हुआ दिखाई देता है। उसके बाद गधे पर घर लाकर पानी डालकर गूँधता है, तो वैसे गूँधता हुआ दिखाई देता है। मिट्टी में से उसका गारा बनाया। गारे में से फिर वह चाक पर दिखाई देता है। चाक पर से उतरा हुआ दिखाई देता है। यह सब दिखाई नहीं देता, उनके ज्ञान में बरतता है। उसके बाद भट्टी में रखा गया। वहाँ पका, ऐसा दिखाई देता है। उसके बाद वहाँ से व्यापारी के पास गया और वहाँ से यहाँ पर आया तो उसमें पानी भरा तब घड़ा तैयार हुआ। अब उसके बाद के पर्याय क्या होंगे? तो कहते हैं कि वापस मिट्टी बन जाने तक वह घड़ा रहेगा। उसके बाद मिट्टी बन जाएगा। इस प्रकार से सभी पर्यायों को जानते हैं। वस्तु को जानते हैं, वस्तु के पर्यायों को जानते हैं। एट ए टाइम, एक-एक करके नहीं।

प्रश्नकर्ता : एट ए टाइम जानते हैं!

दादाश्री : इस बुद्धि से क्रमपूर्वक दिखाई देता है जबकि इसमें तो एट ए टाइम ज्ञान-दर्शन में रहना, इसी को कहते हैं केवलज्ञान। इन छः तत्त्वों के द्रव्यों, गुणों व पर्यायों को जानना, उसी को केवलज्ञान कहते हैं।

वर्तमान में रहकर आत्मज्ञानी के पर्यायों को जानते हैं

केवलज्ञान होने के बाद वर्तमान काल को तो वर्तमान काल में ही रखते हैं। वे सिर्फ जानते हैं कि यह पर्याय था, यह फलाना बना, श्रेणिक राजा ऐसे बनेंगे, ऐसा होगा। उनके फिर ऐसे पर्याय होंगे, फिर ऐसा होगा। जितना पूछा जाए उतना जवाब देते हैं।

कोई व्यक्ति मिले और यदि उसने ज्ञान लिया हो तो उसका अहंकार कैसा है, ऐसा देख लेते हैं। उसके पर्यायों पर से समझ जाते हैं कि अभी इस व्यक्ति के इतने जन्म और होंगे।

जिस प्रकार से घड़े के पर्याय देखते हैं उसी प्रकार से इस जीव के पर्यायों को देखते हैं। वे द्रव्य पर से समझ जाते हैं कि यह द्रव्य यहाँ तक पहुँचा है। यह द्रव्य ऐसा है, इसी तरफ जाएगा। यह द्रव्य इस तरफ जाएगा, यह द्रव्य तीर्थंकर बनेगा, द्रव्य पर से ऐसा सब समझ जाते हैं। द्रव्य के पर्यायों पर से वे समझ जाते हैं कि इसकी क्या अवस्था है।

प्रश्नकर्ता : जो सिद्ध भगवंत सिद्ध (क्षेत्र) में हैं, सिद्धों का ज्ञान-दर्शन तो ऐसा भी नहीं देखता न, कि इसका जन्म ऐसा होगा?

दादाश्री : ऐसा इतनी गहराई में देखते ही नहीं हैं न! जो दिखाई देता है, वह देखते हैं। बाकी, गहराई में देखते ही नहीं। गहराई में देखने के लिए तो सोचना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी ये केवलज्ञानी और तीर्थंकर, ये जो देखकर बताते हैं कि इसका... यह फलाना भाई, इसका ऐसा जन्म होगा और

इस योनि में जाएगा, तो उन्हें उतना गहराई में उतरना पड़ता है न, दादा?

दादाश्री : ज्ञान में जो पर्याय दिखाई देते हैं, वही पर्याय बताते हैं। वे दिखाई नहीं देते, जाने हुए हैं। दिखाई तो कुछ भी नहीं देता। लोग समझते हैं कि दिखाई देता है, यह सब।

प्रश्नकर्ता : तो इनमें फर्क क्या है कि दिखाई नहीं देता और जानते हैं?

दादाश्री : सिर्फ जानते हैं, केवलज्ञान ही जानते हैं। यानी कि इस द्रव्य का ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा। उसके बाद यों होगा, यों होगा, यों होगा, ऐसा सब जानते हैं। द्रव्य के सभी पर्यायों को जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह तो फिर अगली चौबीसी में जो-जो तीर्थंकर होने हैं, उन सभी के नाम भी, उनके पिता के नाम...

दादाश्री : लेकिन वे तो जितने जीव शुद्ध हो चुके हैं, उनकी बातें बताते हैं। जो शुद्ध नहीं हुए हैं, उनकी बात नहीं हो सकती न!

प्रश्नकर्ता : उनके पिता का नाम, उनकी माता का नाम, उनके गाँव का नाम, सबकुछ लिखा है शास्त्रों में।

दादाश्री : हाँ, लेकिन जो शुद्ध हो चुके हैं, उनकी सारी बातें बताई थीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा तो चौबीस का ही बताते हैं न! एक ही चौबीसी का बता सकते हैं। वे सारी चौबीसियों के बारे में नहीं बताते।

दादाश्री : नहीं, एक ही चौबीसी के बारे में कहना चाहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि उतना ही उनके शुद्ध में आया होता है?

दादाश्री : जितने (जीव) शुद्ध हो चुके होते हैं उतनों की ही

झंझट। बाकियों का किस आधार पर दिखाई देगा? जो अशुद्ध है, यदि अशुद्ध वस्तु दिखाई दे, ज्ञानी को अज्ञान दिखाई दे, तो वह ज्ञानी ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी को ऐसा सब देखना ही नहीं होता न। वे क्यों देखें?

दादाश्री : नहीं, लेकिन दिखाई ही नहीं देता न!

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों देखेंगे? इसमें किसलिए पड़ेंगे वे?

दादाश्री : नहीं देखते। उपयोग तो नहीं देते लेकिन वह (अज्ञानी) दिखाई ही नहीं देता, क्योंकि 'केवल' प्रकाश अंधेरे को देख ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : यह तो, सारी उल्टी समझ पैदा हो गई है। जो ठीक लगा वही मान लिया लोगों ने, और पूरा विरोधाभासी कर दिया।

देखते हैं मूल तत्त्व और उसकी अवस्थाओं को, केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी के सभी प्रदेशों के आवरण हट जाते हैं?

दादाश्री : सभी! सभी खुल्ले! लेकिन वे बिना बात के नहीं देखते, वर्ना उपयोग बिगड़ेगा न! इसलिए सभी जगह शुद्ध ही देखते हैं।

अब, केवलज्ञान में जगत् का कुछ और नहीं देखना होता। जो तत्त्व सनातन हैं, वे दिखाई देते हैं और सनातन तत्त्व की अवस्थाएँ दिखाई देती हैं, अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता। लोग तो न जाने क्या का क्या समझते हैं कि अंदर न जाने क्या दिखाई देता होगा!

प्रश्नकर्ता : यह जो वाणी सुनाई देती है, उसे सुनने वाला कौन है? शब्द कानों में पड़ते ही उसके शब्दार्थ से लेकर भावार्थ या परमार्थ

तक सबकुछ उसी क्षण समझ में आ जाता है, ऐसा किस प्रकार से? तब मूल आत्मा तो प्रकाश के रूप रहता है, तो फिर बीच में कौन सी मेकेनिज़म (प्रक्रिया) से अंदर समझ में आ जाता है? फिर, रशियन भाषा में निकली वाणी बिल्कुल भी समझ में नहीं आती। क्या केवलज्ञानी को ऐसी वाणी समझ में आती है? उसमें क्या फर्क है? तो कृपा करके समझाइए।

दादाश्री : अहंकार और बुद्धि को सब समझ में आता है। अहंकार के ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम विभाग हैं। केवलज्ञानी को तो ऐसा रहता ही नहीं। वे तो मूल तत्त्व को ही देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो क्या केवलज्ञानी को सबकुछ समझ में आ जाता है?

दादाश्री : नहीं, उन्हें तो ऐसा कुछ है ही नहीं न! उन्हें तो सबकुछ मूल स्वरूप में दिखाई देता है। ऐसा सब नहीं दिखाई देता न!

प्रश्नकर्ता : मूल स्वरूप में अर्थात्?

दादाश्री : तत्त्व स्वरूप में, उसी को केवलज्ञान कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी को सूक्ष्म बॉडी दिखाई देती है? कॉज़ल बॉडी (कारण शरीर) दिखाई देती है?

दादाश्री : हाँ, उन्हें स्पष्ट दिखाई देती है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा से भी ज़्यादा स्पष्ट?

दादाश्री : सभी कुछ देख सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को देख सकते हैं? आत्मा को तो देख ही नहीं सकते न, केवलज्ञानी?

दादाश्री : देख नहीं सकते, जान सकते हैं। देखने का मतलब

सब अपनी-अपनी भाषा में ही समझते हैं कि जैसा आँखों से दिखाई देता है, वैसे ही आत्मा भी स्थूल रूप में दिखाई देता होगा।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को जान सकते हैं और कॉज़ल बॉडी वगैरह सब दिखाई देता है।

दादाश्री : देख सकते हैं। क्योंकि कॉज़ल बॉडी रूपी है। जो रूपी होता है, वह दिखाई देता है। अरूपी तो दिखाई नहीं देता।

परमाणु, चर्मचक्षु से अरूपी लेकिन केवलज्ञान में रूपी

महावीर भगवान को तीन चीज़ों का ज्ञान था : एक परमाणु को देख सकते थे, एक समय को देख सकते थे और एक प्रदेश को देख सकते थे।

रूपी तत्त्व में ये मोटी-मोटी चीज़ें दिखाई देती हैं खुलेआम, लेकिन अणु तक खोज की है इन लोगों ने। अणु तक ये लोग देख सके हैं। दूरबीन से, चाहे किसी से भी देख सके हैं लेकिन अणु जो है, वह कॉम्बिनेशन है, कम्बाइन्ड स्वरूप है। लेकिन उसका मूल असल स्वरूप, अचल स्वरूप परमाणु है, जो बिल्कुल स्वतंत्र है।

प्रश्नकर्ता : क्या परमाणु 'विज़िबल' (दृश्यमान) हैं?

दादाश्री : परमाणु केवलज्ञान से विज़िबल हैं। वे परमाणु आँखों से नहीं देखे जा सकते, दूरबीन या अन्य किसी भी चीज़ से नहीं देखे जा सकते।

परमाणु दिखाई देंगे तभी आप अलग कर सकोगे न? बुद्धि से, आँखों से नहीं दिखाई देते। इन्द्रियगम्य होंगे तभी दिखाई देंगे न? वहाँ पर आपको (आँखों से देखना) बंद कर देना पड़ेगा। क्योंकि मूल वस्तु ऐसी नहीं है कि देखी जा सके। वह सिर्फ ज्ञानियों को ही समझ में आ सकता है। वह मुझे भी अभी कुछ समय बाद केवलज्ञान में जानना है। ये परमाणु तो हम भी नहीं देख सकते, किसी भी प्रकार से! सिर्फ केवलज्ञानी ही देख सकते हैं, अन्य कोई नहीं देख सकता!

केवलज्ञानी अर्थात् जो एब्सल्यूट हो चुके हैं, संपूर्ण एब्सल्यूट। मैं भी एब्सल्यूट हो गया हूँ लेकिन संपूर्णता नहीं है यह। संपूर्ण रूप से एब्सल्यूट हो जाने के बाद ही वह संपूर्ण जान सकता है कि ये परमाणु क्या हैं! बाकी, परमाणु तो सूक्ष्मतम हैं। सूक्ष्मतम अर्थात् उन्हें चर्मचक्षु से नहीं देखा जा सकता। मूल परमाणु ऐसे हैं कि देखे नहीं जा सकते, लेकिन वे स्वभाव से रूपी हैं, उन्हें केवलज्ञान से देखा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है), जिसे कि हम प्योर (शुद्ध) परमाणु कहते हैं, वह अरूपी नहीं है?

दादाश्री : वह परमाणु यों तो अरूपी है लेकिन केवलज्ञान से तो रूपी हैं। वे केवलज्ञान में दिखाई देते हैं। अर्थात् हमारे चक्षु इन्द्रिय से नहीं देखे जा सकते। ज्ञानी को रूपी भासित होता है, अर्थात् इस तरह से नहीं दिखाई देता, लेकिन दर्शन में आता है। जब वे परमाणु दिखाई देंगे तब केवलज्ञान होगा।

परमाणु, समय व प्रदेश को देखते और जानते हैं केवलज्ञानी

प्रश्नकर्ता : फिर आगे?

दादाश्री : कालाणु को देख सकते हैं, समय को। समय अर्थात् काल का अविभाज्य अंश। पल, वह विभाज्य है। पल ऐसा है, जिसका विभाजन हो सकता है लेकिन समय अविभाज्य है।

रूपी तत्त्व का सब से छोटा भाग परमाणु, उसी तरह जो काल तत्त्व है न, उसका सब से छोटा भाग किया जाए तो, वह समय है। लेकिन हम वहाँ तक नहीं पहुँच सकते। हम पल तक पहुँच सकते हैं। समय तो पल का बहुत छोटा भाग है। समय के दो भाग नहीं किए जा सकते।

और तीसरा है, एक प्रदेश। केवलज्ञानी इन तीनों को देख सकते हैं। देखना यानी लोग 'देखते हैं', ऐसा किसे कहते हैं? इन आँखों से जो दिखाई देता है, उसे कहते हैं, लेकिन नहीं, देखना अर्थात् अनुभव करना। देखना और जानना, उसे अनुभव कहा जाता है। देखने और जानने का विभाजन कब होता है? जब इन्द्रियज्ञान होता है, उस अधूरेपन के आधार पर।

प्रश्नकर्ता : अतीन्द्रिय ज्ञान में सब एक साथ ही हो जाता है?

दादाश्री : सब एक साथ ही हो जाता है।

लोकालोक प्रकाशक स्थिति, केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : दादा, शास्त्रों में एक ऐसा वाक्य है कि शुद्ध चैतन्य स्वरूप निर्मल आत्मा खुद के केवलज्ञान में अनंत प्रदेशात्मक लोकालोक को समा लेता है।

दादाश्री : बहुत सुंदर वाक्य है।

प्रश्नकर्ता : सभी लोकालोक को पूरा, आत्मा एक ही समय में देख सकता है?

दादाश्री : इसीलिए हम कहते हैं न, कि पूरे लोक में फैल जाता है।

प्रश्नकर्ता : पूरे लोक में!

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो जब दादा को ज्ञान हुआ था तब यही स्थिति रही होनी चाहिए।

दादाश्री : नहीं, वह स्थिति नहीं थी। उस स्थिति से कुछ कम थी। जो चार प्रतिशत कम मैं कहता हूँ न, वह स्थिति थी।

शैलेषीकरण क्रिया के बाद, पहुँचते हैं सिद्धक्षेत्र में

प्रश्नकर्ता : 'शैलेषीकरण के समय प्रदेशों को स्थिर करता है', इसका क्या मतलब है? शैलेषीकरण में वे लोग क्या करते हैं?

दादाश्री : शैलेषीकरण अर्थात् खुद को बिल्कुल अलग ही दिखाता है। वह शैलेषीकरण क्रिया बहुत उच्च प्रकार की है। उसे समझना बहुत मुश्किल है। वह हमें समझ में ज़रूर आती है लेकिन ऐसी है कि उसे समझाना मुश्किल है।

प्रश्नकर्ता : प्रदेशों को स्थिर करती है?

दादाश्री : हाँ, प्रदेशों को स्थिर करता है। इतना ही नहीं, वह बहुत अलग क्रिया है। साथ में उसके खुद के जो प्रदेश हैं, सभी से, खुद अपने आपको उनसे बिल्कुल अलग कर देता है। तब तक, अभी वे ओत-प्रोत दिखाई देते हैं। भगवान जब विचरण करते हैं तब ओत-प्रोत रहते हैं। शैलेषीकरण क्रिया मोक्ष में जाने के अंतिम समय में ही होती है। जब उन्हें ऐसा लगता है कि अब यह शरीर छूटने की तैयारी है, उस समय शैलेषीकरण की क्रिया अपने आप ही, कुदरती ही हो जाती है। करनी नहीं पड़ती, उसमें कर्ताभाव है ही नहीं, अपने आप ही हो जाती है। फिर वह आत्मा सिद्धक्षेत्र में विराजमान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : सभी केवलज्ञानियों को होती है न?

दादाश्री : शैलेषीकरण क्रिया हर एक केवलज्ञानी में एक सरीखी होती है।

[7.3]

दशा - ज्ञानी पुरुष, दादा भगवान और केवलज्ञानी की

ज्ञानी 356 डिग्री पर, भगवान 360 डिग्री पर

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी तथा तीर्थंकरों की डिग्री में कितना फर्क है?

दादाश्री : उनकी डिग्री होती है 360, जब 360 डिग्री पूर्ण हो जाती हैं, तब वह केवलज्ञान कहलाता है और वे तीर्थंकर भगवान कहलाते हैं। हमारी (ज्ञानी की) 356 डिग्री है।

दादा भगवान की 360 डिग्री है और उन्हें चौबीस तीर्थंकर कहो या जो भी कहो, वे संपूर्ण दशा में हैं अंदर, उसकी मैं गारन्टी देता हूँ। उन्हें चौबीस तीर्थंकरों में से किसी भी तीर्थंकर के नाम से बुलाओ, वे अंदर प्रकट हो चुके हैं! उन्हें मैंने खुद देखा है। मैं बता देता हूँ कि इन दादा भगवान को मैंने खुद देखा है!

प्रश्नकर्ता : आप ज्ञानी और द्रष्टा हैं, तो आपके और दादा भगवान के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : दादा भगवान की 360 डिग्री है, मैं चार डिग्री से

फेल हुआ हूँ केवलज्ञान में। अत: मुझे आपके साथ बैठना पड़ता है। फेल नहीं हुआ होता तो मोक्ष में चला जाता, लेकिन फेल हुआ हूँ चौथे *आरे* (काल चक्र का बारहवाँ हिस्सा) में, अत: इस पाँचवे *आरे* में आना पड़ा है मुझे। चार ही डिग्री का फर्क है यह। इसीलिए मैं ऐसे करके *भजना* (उस रूप होना) करता हूँ दादा भगवान की, हमें चार डिग्री पूरी करनी हैं न?

अब अंदर जो दादा भगवान प्रकट हुए हैं, तो उनमें और मुझ में जुदाई क्यों है? तो वह इसलिए कि कुछ काल तक जुदाई रहती है और कुछ काल तक एक भी हो जाते हैं। अब जुदाई इसलिए रहती है कि मुझ में और उनमें डिफरेन्स है। वे 360 डिग्री पर हैं और मेरी 356 डिग्री हैं। मुझे उनसे चार डिग्री पर से विशेष प्रकाश मिलता है। अब इस दुनिया की किसी भी चीज़ के लिए मुझे उस प्रकाश की कमी नहीं है। सिर्फ केवलज्ञान के अंश में इसकी कमी है। केवलज्ञान समझ में आ गया है। केवलज्ञान है भी सही, लेकिन पचा नहीं है। अब वे चार डिग्री उसमें हेल्प करती है। इसलिए मैं दादा को क्या करता हूँ? ऐसे-ऐसे हाथ जोड़कर क्या बोलता हूँ? जब खुद इस तरह बोलते हैं, तब खुद के अंदर गुलाब, फूल खिलते जाते हैं। है क्या इसमें कुछ जोखिम वाला?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नहीं।

दादाश्री : दादा भगवान अंदर हैं 'ये' दादा भगवान नहीं हैं। ये तो अंबालाल पटेल हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं और फिर ज्ञानी भी कैसे? ऐसे जिनमें बुद्धि का एक छींटा भी नहीं है।

ज्ञानी पुरुष कारण स्वरूप में, केवलज्ञानी कार्य स्वरूप में

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी और ज्ञानी पुरुष में कितना फर्क है?

दादाश्री : केवलज्ञानी कौन हैं कि जिन्हें सभी चीज़ें ज्ञान में दिखाई देती हैं, जबकि 'ज्ञानी पुरुष' को सभी चीज़ें समझ में रहती

हैं, स्पष्ट नहीं होती। जबकि केवलज्ञान में पूर्ण स्पष्टता हो जाती है, अस्पष्ट जैसा नहीं रहता। केवलज्ञानी कार्य स्वरूपी हो चुके होते हैं और ज्ञानी पुरुष कारण स्वरूप हुए हैं, यानी कि केवलज्ञान के कारणों का सेवन कर रहे हैं।

अत: यों ज्ञानी और केवलज्ञानी में कोई फर्क नहीं हैं। आत्मा 'केवलज्ञान स्वरूप' है लेकिन सत्ता में फर्क है। सत्ता अर्थात् आवरण की वजह से केवलज्ञान दिखाई नहीं देता, बाहर का दिखाई देता है। सत्ता वही की वही है। जैसे किसी को डेढ़ नंबर का चश्मा हो और किसी को चश्मा न हो तो फर्क पड़ता है न? वैसा है।

आत्मज्ञानी ही केवलज्ञान में प्राप्त करते हैं सर्वज्ञ पद

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी और मुक्त पुरुष में कोई फर्क है क्या?

दादाश्री : किसी भी तरह का फर्क नहीं है। ज्ञानी अर्थात् ज्ञानी। किसी मुक्त पुरुष की डिग्री ज़्यादा होती है, किसी मुक्त की डिग्री कम होती है और कोई आंशिक रूप से ज्ञानी होते हैं, और कोई सर्वांश ज्ञानी होते हैं। तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ कहे जाते थे।

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञानी सर्वज्ञ बन सकते हैं?

दादाश्री : बन सकते हैं, लेकिन अभी कहे नहीं जा सकते वे। 'सर्वज्ञ हैं', ऐसा नहीं कह सकते। सर्वज्ञ हो जाए तो केवलज्ञानी कहा जाएगा। आत्मज्ञानी, आत्मज्ञानी ही कहलाते हैं और जो केवलज्ञानी हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह दर्जा आएगा तो सही न?

दादाश्री : हाँ, दर्जा आएगा। कुछ समय में, एकाध-दो जन्मों में केवलज्ञानी का दर्जा आ ही जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह सर्वज्ञ की दशा सहज रूप से नहीं आ सकती?

दादाश्री : सहज रूप से ही आती है। पहले आत्मज्ञान का

स्टेशन आने के बाद में, अंतिम स्टेशन के बाद में सहज ही होता है। सबकुछ सहज रूप से प्राप्त होता है।

ज्ञानी का भेद, क्रमिक में और अक्रम में

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में जिन्हें ज्ञानी कहते हैं और आप भेदविज्ञानी हैं, इनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : ज्ञानी बुद्धि वाले होते हैं और 'भेदविज्ञानी' में बुद्धि नहीं होती, (कारण) सर्वज्ञ हो चुके होते हैं।

ऐसा है, हमें आत्मा का अनुभव हो गया है इसलिए इस जगत् में कोई भी चीज़ जाननी बाकी नहीं है। ज्यों का त्यों जानते हैं। हम वीतराग धर्म के आधार पर भेदज्ञानी कहे जाते हैं लेकिन यों तो कारण सर्वज्ञ हैं।

आत्मा को जानना और सर्वज्ञ पद, इनमें अंतर नहीं है। आत्मा जानने के बाद में एक ही आवरण रहता है, सर्वज्ञ पद में और उसके बीच। और सर्वज्ञ पद के लिए भावनाएँ चलती रहती हैं। इसलिए वे कारण सर्वज्ञ कहलाते हैं जबकि वे हैं कार्य सर्वज्ञ।

कारण सर्वज्ञ अर्थात् 'सर्वदर्शीत्व', बुद्धि से परे। संपूर्ण ज्ञानप्रकाश के सामने बुद्धि तो, जैसे सूर्य के सामने दीये के समान है। हमारे पास संपूर्ण ज्ञानप्रकाश है इसलिए बुद्धि नाम मात्र को भी नहीं है हम में। हम खुद अबुध हैं। जो अबुध बन जाते हैं, वे ही सर्वज्ञ बन सकते हैं।

एक किनारे पर अबुधता और सामने वाले किनारे पर सर्वज्ञ पद

प्रश्नकर्ता : 'हम में बुद्धि नहीं है, ज्ञान ही है', यह समझाइए?

दादाश्री : केवलज्ञान, वह मूल प्रकाश है। वह मूल प्रकाश बुद्धि से अलग है। जब तक बुद्धि है तब तक ज्ञान नहीं हो सकता। बुद्धि

का और ज्ञान का बैर है, बुद्धि, ज्ञान नहीं होने देती। बुद्धि भटका देती है, संसार में भटकाती रहती है। बुद्धि तो फायदा और नुकसान, सिर्फ दो ही चीज़ें देखती हैं, और कुछ नहीं देखती, उसका व्यापार ही है फायदे-नुकसान का। कहाँ पर फायदा है और कहाँ नुकसान है और मोक्ष तो फायदे-नुकसान से बाहर है। अतः हम में बिल्कुल भी बुद्धि नहीं है। महावीर भगवान में बुद्धि नहीं थी। चौबीस तीर्थंकरों में बुद्धि नहीं थी।

बुद्धि का नाश होने के बाद में केवलज्ञान होता है। बुद्धि तो अंधेरा है। बुद्धि प्रकाश नहीं है, बुद्धि तो अंधे का प्रकाश है जबकि केवलज्ञान, देख सकने वाले का प्रकाश है।

प्रश्नकर्ता : अंधे का प्रकाश तो इस संसार में भटकने के लिए है।

दादाश्री : बुद्धि ही भटकाने वाली है। अनंत जन्मों से भटका ही रही है, कोई और यह नहीं करता। तीर्थंकरों को पहचानते हैं, तीर्थंकरों के पास बैठे रहे हैं, फिर भी वह भटकाती रहती है, मोक्ष में नहीं जाने देती। इतनी कला को अगर समझ जाए न, तो समझो सारी अक्ल आ गई!

अवस्था में बुद्धि का उपयोग नहीं किया जाए तो वह अबुधता है और अबुधता से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। हमें जैसे ही एक किनारे पर अबुध पद प्राप्त हुआ, तभी सामने वाले किनारे पर सर्वज्ञ पद आ गया।

अक्रम ज्ञानी के पास संपूर्ण केवलदर्शन और अपूर्ण केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि, 'हमारी 356 डिग्री है और दादा भगवान की 360 डिग्री है, चार डिग्री बाकी हैं हमारी'। तो कहते हैं, सत्य का दर्शन होता है तो संपूर्ण होता है या फिर बिल्कुल भी नहीं होता, एक-एक खंड करके तो नहीं होता न?

दादाश्री : नहीं, दर्शन संपूर्ण है, 360 डिग्री का दर्शन है। इसलिए कहा है कि हम केवलदर्शन अर्थात् संपूर्ण दर्शन में हैं लेकिन वर्तन में संपूर्ण नहीं हैं। पहले दर्शन होता है, उसके बाद ज्ञान यानी कि उसका अनुभव होता है और फिर वर्तन आता है। दर्शन संपूर्ण है इसीलिए तो हम में यह ज्ञान प्रकट हो गया है, वर्ना हो सकता था क्या? यह तो संपूर्ण दर्शन है। और निश्चय से 'यह मैं ही हूँ'। निश्चय से पूरा ही प्रकट हो गया है, सिर्फ चार डिग्री की ही कमी है। जितना केवलज्ञानी को ज्ञान में दिखाई देता है, उतना हमें समझ में आ गया है। वह केवलज्ञान कहलाता है और हमारा केवलदर्शन कहलाता है। इसीलिए हम कहते हैं कि पूरे जगत् के बारे में यहाँ पर पूछा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : 'केवलज्ञान' के बिना 'केवलदर्शन' हो सकता है क्या?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में 'केवलज्ञान' के बिना 'केवलदर्शन' नहीं हो सकता। 'अक्रम मार्ग' में 'केवलदर्शन' होता है, उसके बाद 'केवलज्ञान' होने में कुछ समय लगता है। यह सारा बुद्धि का विषय नहीं है, यह ज्ञान का विषय है। इसमें बुद्धि से नहीं समझा जा सकता।

ऐसा है, क्रमिक में पहले ज्ञान, उसके बाद दर्शन और फिर चारित्र और हमारा दर्शन, उसके बाद ज्ञान और फिर चारित्र। अतः अपना ज्ञान तो अनुभव ज्ञान है और वह जो ज्ञान है वह तो, अगर पॉइज़न हो तो उसे भी पी जाता है। क्योंकि वह समझ में नहीं आया है। जो ज्ञान समझ में नहीं आए, वह ज्ञान ही नहीं कहलाता, उसे शुष्कज्ञान कहा जाता है। और अपना तो समझ में आया हुआ है। मुझे समझ में आ गया है एक प्रकार से, लेकिन ज्ञान में नहीं आया है, यह जो इस दर्शन से आगे ज्ञान होना चाहिए, वह नहीं आया है।

प्रश्नकर्ता : अब, जिसे समझ में आता है... अब मैं उसे ऐसा समझा हूँ कि दर्शन, ज्ञान में परिणमित होता ही नहीं है। अर्थात् दर्शन संभव नही है। क्योंकि दर्शन की भूमिका इतनी उच्च है कि वह निम्न

कोटि में नहीं आता, जैसे ज्ञान होता है, वैसे। लेकिन उसकी अभिव्यक्ति ही हो जाती है।

दादाश्री : केवलज्ञान ऐसी चीज़ नहीं है। जिसे केवलज्ञान कहा जाता है न, उसे वास्तव में, अपनी भाषा में ले जाना चाहें तो नहीं ले जा सकते। केवलज्ञान तो, कुछ अंश तक दर्शन में आ जाने के बाद ही केवलज्ञान होता है। क्योंकि यह किस प्रकार से है? चार अंश दर्शन के, दो अंश ज्ञान के, तो एक अंश चारित्र का।

केवलज्ञान में फेल हुए, पूर्व जन्मों के अहंकार की भूल के कारण

प्रश्नकर्ता : ठीक है। आपने कहा कि ज्ञानी पुरुष को चार डिग्री की वजह से केवलज्ञान रुका हुआ है। आत्मज्ञान से आगे का है और केवलज्ञान के स्टेशन तक पहुँचा नहीं है। आत्मज्ञान से आगे और केवलज्ञान से निम्न, इन दोनों के बीच वाली दशा है दादा की?

दादाश्री : हाँ! बीच वाली दशा है।

प्रश्नकर्ता : इस दशा को क्या कहते हैं?

दादाश्री : न तो आचार्य हैं, न ही तीर्थंकर और न ही अरिहंत।

प्रश्नकर्ता : न अरिहंत हैं, न आचार्य हैं लेकिन उनका कोई पद तो होगा न? इसे कोई पद नहीं कहते?

दादाश्री : इसका पद नहीं दिया गया है न! पाँच ही पद दिए गए हैं। ये तो फेल हुए हैं तो इन्हें किसमें रखा जाए? जो परीक्षा में पास हो जाते हैं, उन्हें अरिहंत में रखा जाता है और जो फेल हो गए, उन्हें किसमें रखा जाए?

प्रश्नकर्ता : और फिर वे आचार्य में नहीं आते? बीच में रहते हैं।

दादाश्री : नहीं, आचार्य में कैसे आएँगे?

प्रश्नकर्ता : यह तो दादा, त्रिशंकु जैसी स्थिति हो गई।

दादाश्री : नहीं, त्रिशंकु का इससे लेना-देना नहीं है, ये खुद ही भगवान हैं लेकिन ये फेल हुए भगवान हैं, बस इतना ही।

अभी तो चार डिग्री से फेल हुआ हूँ, अतः आपके काम आ गया, इन सब लोगों के। फेल नहीं हुआ होता और पास हो गया होता तो मोक्ष में चला जाता।

प्रश्नकर्ता : फिर फेल क्यों हुए?

दादाश्री : कोई भूल हो गई होगी इसीलिए तो न! भूल के बिना तो कहीं फेल नहीं किया जाता न!

प्रश्नकर्ता : कैसी भूल हुई? किस तरह की भूल?

दादाश्री : भूल अहंकार से हो गई होगी कुछ। अंदर मैंपन आ गया होगा। 'मैं ही हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ'। उस भूल को लेकर फेल हो गए। अब उस अहंकार को निकाल देना पड़ेगा, तो निकाल दिया है पूरा। अब साफ कर दिया।

प्रश्नकर्ता : तो अब तो केवलज्ञान हो जाना चाहिए न?

दादाश्री : अब साफ हो गया लेकिन अभी नहीं हो सकता। अभी वैसा काल ही नहीं है न, उन दिनों काल था। पच्चीस सौ साल पहले काल था। अभी वह काल नहीं है। मुझे जल्दी भी नहीं है। मैं तो निरंतर मोक्ष में ही रहता हूँ।

356 डिग्री और 360 डिग्री में क्या फर्क है?

प्रश्नकर्ता : अब दादा जो कहते हैं, 356 डिग्री और 360 डिग्री में फर्क, वह कहाँ है, समझाइए?

दादाश्री : हमारा अंश केवलज्ञान है और भगवान का सर्वांश केवलज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : इन दोनों में ज़रा फर्क समझाइए, अंश केवलज्ञान और संपूर्ण केवलज्ञान।

दादाश्री : तीर्थंकरों को केवलज्ञान के सभी अंशों से केवलज्ञान हो चुका होता है और ज्ञानियों को कुछ अंशों से, अन्य अंश बाकी रहे हुए हैं।

रही हैं बाकी तीन, लेकिन 'संपूर्ण जाग्रत' हैं इसलिए कहते हैं चार ही

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप कहते हैं न, कि 'मैं चार डिग्री से फेल हुआ हूँ'। तो चार क्यों कहा है, तीन नहीं कहा, पाँच नहीं कहा?

दादाश्री : जितनी हैं उतनी ही बतानी पड़ेंगी न! अगर कोई कहे कि, 'भाई, मेरे उनतीस मार्क्स हैं, तो चार कम हैं।' उसी प्रकार मेरी चार डिग्री कम हैं, मैं वही बताऊँगा न! पाँच कहने पर कोई मुझे इनाम नहीं दे देगा या तीन कहने पर कोई ले नहीं जाएगा। यह तो मुझे अपनी बात करनी है। क्या कोई इनाम-विनाम दे देगा? मुझे चाहिए भी नहीं! जिसे इनाम चाहिए, उसे दे दें। मुझे न तो मान का इनाम चाहिए, न ही विकारी इनाम चाहिए और न ही लक्ष्मी का इनाम चाहिए, तो फिर कैसा इनाम हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : और पता तो आपको ही चलता है न? किसी और से पूछें तो उसे क्या पता चलेगा?

दादाश्री : क्या पता चलेगा? वह तो उसकी जानकारी के लिए हम उसे बताते हैं कि भाई, हम इतने मार्क्स से फेल हुए हैं। दुनिया के लोग तो, इतने मार्क्स से फेल हुए, ऐसा बताते ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप चार मार्क्स ही क्यों कहते हैं, पाँच क्यों नहीं, छः क्यों नहीं या दो क्यों नहीं?

दादाश्री : लेकिन चार ही हैं, मैंने अपना यह हिसाब निकाला हुआ है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन बीच में तो आप कहते थे न दादा, कि अब तीन ही बची हैं!

दादाश्री : नहीं, वह तो अब एक पार होने वाली है, ऐसा कहा था। और हो गया है, लेकिन अभी भी मैं चार के चार ही कहूँगा। क्योंकि अभी भी अगर उसमें से कुछ जाग उठे तो क्या कहा जा सकता है? अतः हमें इसमें क्या नुकसान है, चार में? लिख लिया गया है, छप गया है न, चार! मैं तो कहता हूँ कि हमें उससे क्या नुकसान है!

प्रश्नकर्ता : आप यह सारी समझ पहले से ही लेकर आए हैं?

दादाश्री : लेकर। हम बहुत उच्च दशा में से आए हैं, वहाँ से गिर गए थे।

प्रश्नकर्ता : आप तो कितनों को आगे, उच्च दशा में ले जाते हैं!

दादाश्री : आपको वह आज दिखाई देता है न! हम जिस जगह पर थे न, अब उस जगह पर आए हैं। अभी तक हम उस जगह पर नहीं थे। बहुत नीचे गिर गए थे। वहाँ से चढ़ते-चढ़ते-चढ़ते... तो उस क्रम से हमारे ज्ञान को भी चढ़ते हुए देखा न! हम कितने ही जन्मों से चढ़ते आए हैं। जिस जगह पर थे उसी जगह पर जाएँगे। वहीं से गिरे थे, हम उस (बहुत उच्च) स्टेज पर से गिरे थे। अतः हमने वह सब देखा है। इसलिए हम पहले से बता देते हैं कि वहाँ पर ऐसा है। यह चीज़ तो ऐसी है कि समझ में ही न आए। यह बहुत अलग बातें हैं।

समझ में सब आता है, लेकिन चार डिग्री की कमी की वजह से दिखाई नहीं देता

प्रश्नकर्ता : आपकी चार डिग्री कम हैं तो वह किस चीज़ में?

दादाश्री : हाँ, वह इस दुनियादारी के बारे में नहीं। इससे आप सब को जो मैं काम में आता हूँ, उसमें कोई कमी नहीं रहती। लेकिन हमें आगे का जो जानना है, सूक्ष्मतम का कुछ भाग जो जानना बाकी

है जिसके आधार पर संपूर्ण एब्सल्यूट ज्ञान कहा जा सके ऐसा नहीं है। एब्सल्यूट में ज़रा सी कमी है। एब्सल्यूट है तो सही, ऐसा है इसलिए निरालंब रह पाते हैं लेकिन जगत् के बारे में अन्य जो जानना चाहिए, वह समझ में आता ज़रूर है लेकिन जान नहीं पाते। वर्ना फिर पूरा वर्णन कर पाते। भगवान महावीर ने जो वर्णन किया है, वह सारा वर्णन मैं कर पाता लेकिन अभी तो मुझे कितना ही भगवान महावीर द्वारा बताया गया वर्णन बताना पड़ता है। कुछ प्रश्न पूछो तब जवाब में ऐसा कहना पड़ता है कि भगवान महावीर ने ऐसा बताया है। हाँ, कुछ मेरा है लेकिन कुछ वहाँ का भी है।

यानी उन चार डिग्री की कमी है। वह चार डिग्री (की कमी) ऐसी है जिससे कि इस जगत् को कोई भी नुकसान नहीं होगा। लेकिन वह जो चार डिग्री की कमी है, वह अंतिम आवरण है, सूक्ष्मतम आवरण है, उसका जाना बाकी है। इस आधार पर यहाँ से सभी वस्तुएँ जो जाननी (ज्ञान में आनी) चाहिए, वे मुझे समझ में ज़रूर आती हैं लेकिन उन्हें जान नहीं पाता।

यह जगत् पूरे केवलज्ञान में जैसा दिखाई देना चाहिए वैसा मुझे नहीं दिखाई देता। अभी घड़ी भर बाद क्या होगा, वह मुझे नहीं दिखाई देता। मैं बस में जाऊँगा या किसमें, वह भी मुझे नहीं दिखाई देता। केवलज्ञान में यह सबकुछ दिखाई देता है। 'यहाँ से मैं बस में जाऊँगा, बस बीच रास्ते में टकरा जाएगी', ऐसा भी दिखाई देता है। लेकिन उन्हें खेद नहीं होता। अगर वे समुद्र में डूब जाएँ तब भी उन्हें खेद नहीं होता। यानी कि केवलज्ञान में पूरा जगत् जैसा दिखाई देता है, वैसा हमें नहीं दिखाई देता और उसके लिए हम जल्दी भी नहीं करते।

चार अंशों की कमी है चारित्र मोह के कारण

प्रश्नकर्ता : यानी आपको केवलज्ञान प्राप्त करने में सिर्फ चार ही अंशों की कमी है?

दादाश्री : वे आपको दिखाई नहीं देते थोड़े-बहुत?

प्रश्नकर्ता : नहीं दिखाई देते। हमें तो दादा पूर्ण दिखाई देते हैं!

दादाश्री : ये जो बाल बनाए हैं, ये नहीं बनाए इन्होंने? क्यों बनाए बाल? कोई पूछे, 'बाल बनाने के लिए तेल कहाँ से लाते हैं? ये बाल किससे कटवाते हैं? यह अगूँठी कहाँ से लाए हैं, चोरी करके लाए हैं?' पूछेंगे।

आपको यह जो चारित्र मोह दिखाई देता है, तो चाहे मुझे उसकी मूर्च्छा न हो, फिर भी सामने वाले को दिखाई देता है इसलिए उतने अंश कम हो जाते हैं और उस वजह से मेरी चार डिग्री कम हैं। बिना स्वार्थ के नहीं, मैं अपने स्वार्थ के लिए बता रहा हूँ।

हमारी चार डिग्री इम्प्योर है। ज्ञान में बहुत इम्प्योरिटी नहीं है, यह इम्प्योरिटी वर्तन में है। कपड़े, कोट, बूट वगैरह सब पहनते हैं न, यह सब वर्तन कहलाता है। 360 डिग्री वाले को तो इसका भी ध्यान नहीं रहता, बूट-वूट किसी का भी। पहनाने वाले मिल जाएँ तो पहनते हैं और पहनाने वाले न मिलें तो यों ही! जबकि यहाँ तो, अगर कोई पहनाने वाला नहीं मिले तो मैं अपने आप ही बूट ढूँढकर पहन लेता हूँ। मैं यों ही नहीं निकल जाता, इतना फर्क है। 360 डिग्री वाले को पहनाने वाले न मिले तो यों ही, और पहनाने वाले मिल जाएँ तो वैसे।

आंशिक तप रहा बाकी, इसलिए रुका हुआ है केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : तो इन चार डिग्रियों में दिखाई देने वाला (व्यवहार) आता है?

दादाश्री : यह दिखाई देने वाला, खास तौर पर देखने जाएँ तो दूसरे सारे दोष ऐसे हैं जो केवलज्ञान को रोकते हैं। लोगों को नुकसान पहुँचाएँ, ऐसे नहीं हैं। हम से अभी भी दिन में सौ-सौ भूलें होती हैं, वे भूलें ऐसी हैं जो आप में से किसी को भी दिखाई नहीं देतीं। वे ऐसी हैं जो केवलज्ञान को रोकती हैं। हमें तो काम से काम है न? हमें तो मोक्ष में जाना है। तो अगर कोई पूछे कि आपको ढील रखनी

है? तब कहते हैं कि, 'नहीं, ढील भी नहीं और जल्दबाज़ी भी नहीं।' हमें ऐसा भी नहीं है कि हमें जल्दबाज़ी है किसी तरह की। जल्दबाज़ी हो ही नहीं सकती न, वीतरागता में!

केवलज्ञान होने में हमारी चार डिग्री कम हैं, तो वह कुछ भाग नहीं होने की वजह से हमारा यह ज्ञान रुका हुआ है। उस तप के बिना ज्ञान रुका हुआ है। वह तप पूर्ण होने के बाद केवलज्ञान उत्पन्न होगा, वर्ना उत्पन्न नहीं होगा।

नहीं रह सकते पूर्ण केवलज्ञान स्वरूप में, इस काल के हिसाब से

प्रश्नकर्ता : आप में चार डिग्री की कमी रहने का कारण क्या है?

दादाश्री : इस काल की वजह से पूर्ण नहीं हुआ। वर्ना केवलज्ञान हमारे हाथ में ही था। लेकिन इस काल की वजह से पचा नहीं।

ज्ञानी पुरुष का आशय केवलज्ञान स्वरूप में रहने का ही होता है। लेकिन इस काल की वजह से, काल के हिसाब से केवलज्ञान स्वरूप में अखंड रूप से नहीं रहा जा सकता। लेकिन उनका आशय कैसा होता है कि निरंतर केवलज्ञान स्वरूप में ही रहना है। क्योंकि वे 'खुद' 'केवलज्ञान स्वरूप' को जानते हैं। केवलज्ञान स्वरूप को जान पाते हैं, जगत् का और कुछ नहीं जान पाते। इस काल का इफेक्ट इतना ज़बरदस्त है कि केवलज्ञान स्वरूप में नहीं रहा जा सकता। जैसे दो इंच के पाइप में से फोर्स से पानी आ रहा हो तो उस पर उँगली रखने पर हट जाती है और आधे इंच के पाइप में से पानी आ रहा हो तो उँगली हट नहीं जाती। इस तरह से इस काल का ज़ोर इतना अधिक है कि ज्ञानी पुरुष को भी समतुला में नहीं रहने देता!

बरतती है चौदस, लेकिन प्रकाश दिखाई देता है पूनम का

प्रश्नकर्ता : तो दादा, चौदस और पूनम में इतना फर्क है, ऐसा है?

दादाश्री : बहुत अंतर है। चौदस तो, हमें ऐसा लगता है उस प्रकार से, लेकिन बहुत फर्क है। हमारे हाथ में तो कुछ है ही क्या? सबकुछ उन्हीं के हाथ में है! लेकिन हमें संतोष रहता है पूनम जितना। हमारी शक्ति खुद के लिए इतना काम करती है कि हमें ऐसा ही लगता है कि पूनम हो चुकी है।

प्रश्नकर्ता : दादा, पूरा मोक्ष ही रुक गया, चार मार्क्स से?

दादाश्री : चार की कमी है इसलिए फेल हुए हैं, चलेगा ही नहीं न? नहीं, ऐसा नहीं चल सकता। वैज्ञानिक तरीके से नहीं चल सकता, देसी तरीके से चल सकता है।

वह तो केवलज्ञान में कमी है। उस कमी से बहुत नुकसान होता है। अंतिम एक प्रतिशत (की कमी) तो बहुत ही नुकसानदेह है, तो एक साथ चार की कमी हो तो कितना नुकसानदेह होगा? और उसकी अभी हमें यहाँ पर ज़रूरत नहीं है। हमारा कोई काम रुका हुआ नहीं है।

नहीं चाहिए परतंत्रता किसी की, इन चार मार्क्स की कमी के लिए

पूरा मोक्ष रुका हुआ है चार मार्क्स के कारण। और इस कालचक्र के आधार पर यहाँ बैठा हूँ। लोगों का कल्याण होना होगा इसलिए बैठा हूँ। तो उसमें हमें नुकसान भी नहीं है। लोगों का कल्याण हो! हम तो मोक्ष में ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, चार मार्क्स ही बचे थे, और आपको तो मूल वस्तु पकड़नी थी न?

दादाश्री : उसमें भी उनकी कोई भूल नहीं है, वे तो कहते हैं कि, 'हम आपको अभी पास कर देते हैं। पेपर जाँचने में हम से भूल हो गई है।' मैं कहता हूँ, 'नहीं भाई, आप ऐसी माथापच्ची मत करना। मुझे यह बात सुनने का समय नहीं है। आप मुझसे मार्क्स बढ़ाने की बात मत करना। मैं तो स्वतंत्र हो चुका हूँ। आप अगर मार्क्स बढ़ा

दोगे तो मुझे परतंत्र होना पड़ेगा। हाँ, हमारे सिर्फ एक *ऊपरी* हैं ये, सीमंधर स्वामी।

यह जग कल्याणी पुण्य प्रकट होगा, अगले अवतार में

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आप हमें ज्ञान देते हैं, हमें रास्ते पर लाते हैं, उसके लिए आपको कोई पुण्य बंधन तो होता होगा या नहीं?

दादाश्री : अरे! होगा ही न, वह तो।

प्रश्नकर्ता : उसे कहाँ भोगेंगे? उसे भोगना ही पड़ेगा न फिर! उसमें वापस वह रूट आकर रहेगा न?

दादाश्री : मेरा कहना है कि पिछले जन्म में जो पुण्य बंधन हुआ था न, उसे आप इस जन्म में देख रहे हो न?

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : वह ऐश्वर्य देखा, यह और ही तरह का ऐश्वर्य देखते हो न! लेकिन पिछले जन्म का ऐसा ऐश्वर्य दिखाई देता है न, तो इस जन्म में हम ऐसा बाँधेंगे, उसका फिर अलग ही तरह का ऐश्वर्य देखोगे आप! आप ही देखोगे!

प्रश्नकर्ता : प्रमाण प्रमाण प्रमाण!

भजना प्रकट करती है अंदर वाले 'दादा भगवान' को

दादाश्री : केवलज्ञान की परीक्षा में फेल हुआ इसलिए फिर मुझे परीक्षा तो देनी ही पड़ेगी न, फिर से? मुझे चार डिग्री पूर्ण करनी पड़ेंगी न? इसलिए मैं ही ऐसे करके नमस्कार करता हूँ। लोग पूछते हैं कि, 'आप दादा भगवान हैं?' मैं कहता हूँ, 'नहीं भाई, ये भादरण के पटेल हैं, हम ज्ञानी पुरुष हैं। और *ऊपरी* ऐसे हैं कि बाकी भगवानों के भी *ऊपरी* हैं, अंदर जो दादा भगवान हैं, वे!'

अंदर जो प्रकट हुआ स्वरूप है, वे दादा भगवान हैं, ये दादा

भगवान नहीं हैं। ये दादा भगवान तब कहे जाते, जब भगवान महावीर जैसे बन जाते। यदि शरीर भी आत्मा जैसा ही हो गया होता तो ये भी दादा भगवान कहलाते लेकिन हमारी अभी चार डिग्री कम हैं। ये चार डिग्री पूर्ण होने पर यह मूर्ति पूर्ण हो जाएगी, फिर 'उस दशा के' दर्शन करना।

लेकिन अंदर बिल्कुल अलग हो चुका है। इस देह से आत्मा निरंतर अलग ही रहता है, एक क्षण के लिए भी एकाकार नहीं हुआ है। लेकिन फिर भी मुझे नमस्कार करने पड़ते हैं, क्योंकि चार डिग्री कम हैं, और आपसे भी कहता हूँ कि 'भाई, आप भी दादा भगवान को नमस्कार करो।' इस अनुसार करना अब, और निरंतर आप यह बोलते रहना। दिस इज़ द कैश बैंक ऑफ डिवाइन सॉल्यूशन! ऐसा कैश बैंक कभी भी नहीं खुला।

जग कल्याण की इच्छा पूर्ण होने पर, होगा मेरा काम पूर्ण

प्रश्नकर्ता : आपके क्या करने से आपको चार डिग्री मिल जाएँगी?

दादाश्री : कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है इसके लिए। यह तो सिर्फ, जब हमारी इच्छा पूर्ण हो जाएगी तब मिल जाएँगी। मेरे जैसा सुख लोग भी पाएँ, जगत्। और इन लोगों के सभी दुःख चले जाएँ, यह जो भावना है न, यह ज़रा सी इच्छा पूर्ण हो जाए। जब यह इच्छा पूर्ण हो जाएगी तब मेरा काम पूर्ण हो जाएगा।

इस इच्छा की वजह से आवरण है। इच्छा ही आवरण है। यों हम चार्ज में निरीच्छक हैं, और यों डिस्चार्ज में इच्छा है।

प्रश्नकर्ता : जब चार डिग्री आगे बढ़नी होंगी तब किस प्रकार से होगा? अपने आप ही हो जाएगा?

दादाश्री : वह अपने आप ही हो जाएगा। स्वभाव से, हाँ, अपने आप ही उदय आएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे चार पूरी करनी पड़ेंगी न?

दादाश्री : मुझे पूरा करने की क्या जल्दी है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा, यही सही है। आपको पूरा करने की जल्दी नहीं है, अपने आप ही पूर्ण हो जाएँगी। पता भी नहीं चलेगा।

दादाश्री : अपने आप ही पूरी हो जाएँगी। यह सब अपने आप ही हो गया है। मैंने इसमें कुछ नहीं किया है। मैं क्या कुँए पर पानी भरने जाऊँगा और पानी पिलाता रहूँगा? घड़े खींच ले और पिला पानी! अरे भाई, यह भी कोई तरीका है?

सहज रूप से अंतराय टूटने पर प्रकट होगा केवलज्ञान

अंतिम स्टेशन केवलज्ञान स्वरूप ही है। कोई भी उस अंतिम दरवाज़े में प्रवेश नहीं कर सकता। हमने वह दरवाज़ा देखा है और यह भी देखा है कि कौन अंदर नहीं जाने देता।

प्रश्नकर्ता : कौन अंदर नहीं जाने देता?

दादाश्री : पब्लिक के लिए दो बड़े-बड़े सिंह हैं, दादा के लिए दो खिलौने हैं। फिर भी, अंदर नहीं जाने देते, यानी क्या? वह हमारा अंतराय है, उनका दोष नहीं है। अत: अंतराय अपने आप ही टूटने चाहिए। हम नहीं तोड़ते, सहज रूप से टूटने चाहिए। लाभांतराय, दानांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, ये सभी अंतराय अपने आप ही टूटने चाहिए। हमारी सहज दशा है। हमारी क्रिया वाली दशा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि आपको जो ज्ञान हुआ है और फिर चार डिग्री पूर्ण होने के बाद में जो पूर्ण केवलज्ञान होगा, उसमें... अभी आपके पास जो अक्रम विज्ञान है और फिर पूर्ण ज्ञान होने के बाद जो अक्रम विज्ञान होगा, उसमें कोई फर्क होगा क्या?

दादाश्री : कोई भी फर्क नहीं। मुझे तो हो ही चुका है न! मुझे तो, तीर्थंकरों के दर्शन करने बाकी हैं। अन्य कुछ करना बाकी नहीं

है। दर्शन करूँगा न, तो मेरे 360 पूर्ण हो जाएँगे। मुझे दूसरे अक्रम की कोई ज़रूरत नहीं है। अभी अगर यहाँ पर तीर्थंकर आ जाएँ और दर्शन करूँ तो मेरा काम पूर्ण हो जाएगा।

फेल हुए केवलज्ञान में, तो काम आए सभी के

प्रश्नकर्ता : आप अपने ज्ञान में भूत-भविष्य का कुछ देख सकते हैं या कुछ जान सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, मुझे ऐसा कोई ज्ञान नहीं है कि मैं देख सकूँ। मैं तो आत्मज्ञान और केवलज्ञान के बीच तक की बातें कर सकता हूँ।

मैं अलर्ट हूँ, एवरी सेकन्ड अलर्ट हूँ और अलर्ट इन तीन सौ छप्पन डिग्री। चार डिग्री में अलर्ट नहीं हूँ, इसी वजह से मैं फेल हुआ, इसलिए यहाँ आया हूँ। यह तो ऐसा है कि मैं केवलज्ञान में फेल हो गया तो आपके काम आया, मॉनिटर के रूप में। करोड़ों जन्मों में भी जो नहीं हो सकता वैसा, ये तो एक्स्पर्ट मिले हैं न, तो काम हो जाएगा। बाकी कुछ नहीं। अतः आपको जो कोई भी काम निकालना हो तो वह निकाला जा सकता है। शाश्वत सुख चाहिए तो वह भी मिलेगा यहाँ।

मेरी जाति बिल्कुल ही अलग है, यह केवलज्ञान की जाति है। मैं तो इस केवलज्ञान में फेल हुआ हूँ, बस इतना ही है। उससे मुझे कोई परेशानी नहीं है। मुझे उससे क्या? मुझे तो, वह मोक्ष जल्दी मिले या देर से, मुझे खुद को निरंतर मोक्ष बरतता ही है। मोक्ष अर्थात् मुक्तभाव, भाव से मुक्त। दुनिया का कोई भी भाव ऐसा नहीं है जो वहाँ प्रवेश कर सके। वे ज्ञानी पुरुष को बाँध नहीं सकते भाव से। कोई भी संसारी भाव कर लेते हैं, लोग कुछ भी देखते हैं और कुछ न कुछ भाव बाँध लेते हैं, हम इस तरह से नहीं बाँधते, अतः लोगों के लिए लाभकारी हैं। इतना फेल हुआ हूँ तो लोगों को लाभ होता है।

वर्ल्ड में ऐसा हुआ ही नहीं है, दस लाख सालों से ऐसा हुआ

ही नहीं है! दीस इज़ द फर्स्ट टाइम (यह पहली बार है)। क्योंकि जिस डिग्री पर केवलज्ञान होता है, उस डिग्री पर फेल होने वाला व्यक्ति पड़ा नहीं रहता। सिर्फ मैं ही पड़ा हुआ हूँ, इसलिए आपके हिस्से में आया हूँ। आपको समझ में आ रहा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, दादा।

दादाश्री : पूरी दुनिया को वास्तविक बातें समझाने के लिए आया हूँ। निमित्त हूँ और मुझे मोक्ष में जाने की जल्दी नहीं है। मैं मोक्ष में ही रहता हूँ, निरंतर। सब (महात्माओं) के लिए मोक्ष है, मैं संपूर्ण मोक्ष में हूँ।

अक्रम ज्ञान उदय है यह, विक्रम शिखर पर विराजे

अक्रम ज्ञान जो है न, वह विक्रम शिखर पर विराजमान है। तो अगर कोई पूछे कि, 'ज्ञानी विक्रम शिखर वाले उत्पन्न नहीं होते थे?' तो कहते हैं, 'जिस देश में केवलज्ञानी उत्पन्न हुए, वहाँ पर क्या-क्या नहीं होगा?' लेकिन कहते हैं, विक्रम शिखर पर उत्पन्न नहीं होते थे। क्योंकि विक्रम शिखर तो केवलज्ञान में जो फेल हो चुके हों, सिर्फ उन्हीं के लिए है। वे फेल होते ही नहीं थे न, और सिर्फ मैं ही फेल हुआ। केवलज्ञान में फेल हुआ, काल के अधीन। इसलिए यह विक्रम शिखर सिर्फ मेरे ही हिस्से में आया है वर्ना केवलज्ञान हो ही जाता!

ज्ञानी पुरुष खुद करेक्ट कहलाते हैं। करेक्ट अर्थात् बाकी हर प्रकार से तीर्थंकर जैसे करेक्ट कहलाते हैं। सिर्फ दो-चार मार्क्स से फेल हुए हैं, तो वह कोई गुनाह नहीं है। फेल होना क्या कोई गुनाह है?

श्री मुख से निकलती है नवीन वाणी, जो नहीं मिलेगी कहीं भी शास्त्रों में

यह ज्ञान एक आश्चर्य ही है न! जो ज्ञान सर्वज्ञ के हृदय में होता है, वह ज्ञान हमारे हृदय में है। सर्वज्ञ पद उत्पन्न हुए बिना किसी को एक भी चीज़ दिखाई नहीं देती। मुझे सर्व चीज़ें ज्यों की त्यों दिखाई

देती हैं। इस जगत् का कोई भी परमाणु बाकी नहीं है, कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जो मेरे ज्ञान से बाहर हो। जगत् के हर एक तत्त्व का मैं ज्ञानी हूँ।

हम इन शास्त्रों से भी आगे का सारा ज्ञान बताते हैं। हमारा ज्ञान शास्त्रों से भी विशेष प्रकार का ज्ञान है। यह सारा केवलज्ञान का अंश कहलाता है। जो दूसरे लोगों को, किसी को भी नहीं दिखाई देता, उस भाग को देखकर हम यहाँ पर बता देते हैं।

मैं एक सेकन्ड के लिए भी ज्ञान स्वरूप से बाहर नहीं रहा कभी भी। ज्ञान स्वरूप से बाहर एक सेकन्ड भी नहीं रहना, उसी को केवलज्ञान कहा जाता है। केवलज्ञान, वह एक अलग चीज़ है और केवलज्ञान स्वरूप वह अलग चीज़ है। केवलज्ञान अर्थात् सभी ज्ञेयों का झलकना। हम में सभी ज्ञेय नहीं झलके हैं लेकिन काफी कुछ ज्ञेय झलके हैं इसीलिए तो हमारी वाणी में आपको नया-नया सुनने को मिलता है या नए-नए, सूक्ष्म, गहन पॉइन्ट जानने को मिलते हैं। सारी नई-नई बातें हैं और शास्त्रों से बाहर की ही हैं सारी बातें। ये सारे तो केवलज्ञान के पर्याय हैं लेकिन संपूर्ण स्वरूप में नहीं झलका है। चार डिग्री कम रह गया है। इसलिए मैं ज्ञानी पुरुष के रूप में हूँ। इसीलिए मैं अपने आपको भगवान नहीं कहलवाता। यदि मुझे खुद को केवलज्ञान प्रकट हो गया होता तो भगवान कहा जाता है लेकिन इस काल में ऐसा हो नहीं सकता।

आत्मज्ञान से कारण सर्वज्ञ और केवलज्ञान से कार्य सर्वज्ञ

प्रश्नकर्ता : सर्वज्ञ बनने के लिए आज की परिस्थिति में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आत्मा को जानना ही सब से अंतिम बात है। आत्मा को जानने के बाद में फिर रहा ही क्या? तो कहते हैं, क्षायक समकित से आगे केवलज्ञान के नज़दीक गया।

आत्मा जानने का अर्थ क्या होता है कि चेतन को जाना। उसके

एक भी अंश को जान ले तो बहुत हो गया! चेतन को जाना अर्थात् (कारण) सर्वज्ञ हो गया! भगवान ही बन गया! आत्मा को जानना और सर्वज्ञ पद, दोनों नज़दीक ही हैं।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए आत्मा को सर्वज्ञ कहा गया है?

दादाश्री : सर्वज्ञ ही कहा गया है उसे। लेकिन वह तो आत्मा और केवलज्ञान, इस तरह अगर दो भाग करने हों तो बातचीत करनी पड़ेगी। वर्ना आत्मा तो, आत्मज्ञान होने के बाद से ही (कारण) सर्वज्ञ कहा जाता है, वास्तविक सर्वज्ञ है केवलज्ञान।

आत्मा का ज्ञाता 'आत्मज्ञानी' कहा जाता है, सर्व तत्त्वों के ज्ञाता 'सर्वज्ञ' कहे जाते हैं। सर्वज्ञ मोक्षमार्ग के नेता हैं। अभी संपूर्ण सर्वज्ञ नहीं हो सकते। कारण सर्वज्ञ हो सकते हैं लेकिन कार्य सर्वज्ञ नहीं हो सकते।

प्रश्नकर्ता : कारण सर्वज्ञ और कार्य सर्वज्ञ के बारे में ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : कार्य स्वरूप सर्वज्ञ अर्थात् पूर्णाहुति हो गई। फिर किसी भी तरह का कारण ही उत्पन्न नहीं होता और कारण स्वरूप सर्वज्ञ, वे आज कार्य सर्वज्ञ नहीं कहे जा सकते, कारण सर्वज्ञ कहे जा सकते हैं। क्योंकि जब विभूति प्रकाश में सर्वज्ञ हो जाएगी तब कार्य स्वरूप हो जाएँगे।

इस जगत् का एन्ड क्या है? तो कहते हैं, सर्वज्ञ। यह ज्ञान प्रकाश बढ़ते-बढ़ते जब पूर्ण प्रकाश हो जाएगा तब सर्वज्ञ कहलाएँगे।

सर्वज्ञ पद के कारणों का सेवन कर रहे हैं और हुए हैं कारण सर्वज्ञ

प्रश्नकर्ता : अंदर आत्मा शुद्ध है, क्या उसे कारण सर्वज्ञ कहा जाएगा?

दादाश्री : नहीं, अंदर आत्मा तो आत्मज्ञानी का भी (या अज्ञानियों का भी) शुद्ध होता है। कारण सर्वज्ञ किसे कहेंगे, उसका मैं आपको उदाहरण देता हूँ। यहाँ पर कोई आदमी कहे कि 'मैं अहमदाबाद जा रहा हूँ'। ऐसा कहकर अपने यहाँ से गया। फिर अगर कोई हम से पूछे कि, 'वे भाई कहाँ गए?' तब हम कहते हैं कि, 'वे तो अहमदाबाद गए'। अपने यहाँ व्यवहार इस प्रकार का है। अब वास्तव में तो वह अभी दादर के स्टेशन तक भी नहीं पहुँचे, फिर भी लोग क्या कहते हैं कि अहमदाबाद गए। वे लोग उसके लिए ऐसा क्यों कहते हैं? क्या वे गलत कहते हैं? तो कहते हैं, 'नहीं'। वह भी गलत नहीं कहता, लेकिन बात करेक्ट है। अगर कोई पूछे कि किस तरह से करेक्ट है? तो वह ऐसे, कि उसने उसके कारण का तो सेवन करना शुरू कर दिया है इसलिए कार्य होगा ही। कल होगा लेकिन हो जाएगा। इसलिए लोग भी गलत नहीं हैं न! वह बात गलत नहीं है। उसके कारण का सेवन करने लगे इसलिए वह कार्य हो जाएगा। तो खुद कारण सर्वज्ञ क्यों कहे जाते हैं, क्योंकि सर्वज्ञ होने के कारणों का सेवन करने लगे हैं इसलिए वे सर्वज्ञ होंगे। वास्तव में आज वे सर्वज्ञ नहीं हैं।

ज्ञानी पुरुष कारण सर्वज्ञ, दादा भगवान कार्य सर्वज्ञ

प्रश्नकर्ता : आपकी पुस्तक में आपके लिए सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग किया गया है। अब हमारी समझ में तो जब कोई पूर्ण केवलज्ञानी हो तभी सर्वज्ञ कहलाएगा। अभी इस काल में सर्वज्ञ की अर्थात् पूर्ण केवलज्ञानी की हस्ती नहीं हो सकती। तो किस भाव से इस शब्द का प्रयोग किया गया है?

दादाश्री : मेरे लिए नहीं लिखा है, मैं तो ज्ञानी हूँ। इस काल में सर्वज्ञ का जन्म नहीं होता। लेकिन हमने जो सर्वज्ञ लिखा है, वह दादा भगवान के लिए सर्वज्ञ लिखा है, वे सर्वज्ञ हैं और हम (ज्ञानी) कारण सर्वज्ञ हैं।

भगवान ने दो प्रकार बताए हैं : कार्य सर्वज्ञ और कारण सर्वज्ञ।

जो कारणों का सेवन कर रहे हैं, वे कुछ समय बाद सर्वज्ञ बनने ही वाले हैं। किसी न किसी ऐसे कारण से ही सर्वज्ञ बनने में ज़रा कमी रह गई है लेकिन कारण सर्वज्ञ, सर्वज्ञ होने के कारणों का तो निरंतर सेवन करते ही रहते हैं। और कार्य सर्वज्ञ अर्थात् संपूर्ण केवलज्ञान, कुछ भी बाकी नहीं रहता। 360 डिग्री पर हों तब सर्वज्ञ कहे जाते हैं। हमारी तो 356 डिग्री हैं, चार डिग्री कम हैं, अतः सर्वज्ञ नहीं कहलाते। सर्वज्ञ तो अंदर जो दादा भगवान प्रकट हुए हैं, वे सर्वज्ञ हैं।

इसलिए अंदर जो हैं, उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं, मुझे नहीं कहते। मैं अंबालाल, ए. एम. पटेल हूँ, 'ये' (दादा भगवान) सर्वज्ञ हैं। मैं सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूँ, सर्वज्ञ की भक्ति करता हूँ। कुछ समय के लिए मैं सर्वज्ञ दशा में रह ज़रूर पाता हूँ, और कुछ समय के लिए मुझे फॉरेन में आना पड़ता है। यानी कि कुछ समय के लिए होम डिपार्टमेन्ट में रह पाता हूँ लेकिन मैं सर्वज्ञ नहीं कहलाता। अगर हम सर्वज्ञ की *भजना* नहीं करेंगे तो हम सर्वज्ञ नहीं बन सकेंगे। अतः मैं ज्ञानी पुरुष तो हूँ ही, लेकिन सर्वज्ञ तो नहीं हूँ। इसलिए हम, ये दोनों अलग हैं, ऐसा बताते हैं। अलग है, ऐसा बताते हैं। मैं कारण सर्वज्ञ कहलाता हूँ और 'ये' जो हैं, वे कार्य सर्वज्ञ हैं। वे अंदर मुझे मेरी गलतियाँ दिखाते हैं। अंदर वाले मेरी गलतियाँ दिखाते हैं।

वे 360 वाले, वे कार्य सर्वज्ञ हैं। यानी कि अंदर वाले कार्य सर्वज्ञ हैं लेकिन अभी हम कारण सर्वज्ञ हैं। यानी अगली बार हमारा रूप अंदर वाले जैसा होगा और आपका कारण में आएगा।

कोई भी विद्यार्थी है, वह वकालत की पढ़ाई कर रहा है तो उसे कारण वकील कहा जाएगा और वकील बनने के बाद में फिर कार्य वकील कहा जाएगा। अभी कार्य वकील नहीं बन सकता लेकिन कारण वकील बन सकता है, यही कहना चाहते हैं हम।

कारण में कार्य के आरोपण के आधार पर सर्वज्ञ

मैं सर्वज्ञ के कारणों का सेवन कर रहा हूँ। अभी तक कार्य नहीं

हुआ है। सर्वज्ञ दशा में नहीं आया हूँ, लेकिन कारण सर्वज्ञ कह सकते हैं। मूल सर्वज्ञ नहीं कह सकते। उस कारण की जो शुरुआत की, वह कारण शुरू किया, उस हिसाब से।

कारण में कार्य का आरोपण किया है। कारण में कार्य का आरोपण अर्थात् अगर कोई कहे कि दादा भगवान तो यहाँ से बड़ौदा गए हैं। अब आप नीचे मिले तो कहोगे, कि 'मुझे मिले थे अभी दादा भगवान, तो फिर अभी ऐसा क्यों कह रहे हो कि वहाँ गए हैं?' बड़ौदा गए। बड़ौदा गए, ऐसा कहते हैं लेकिन अभी तो आधे रास्ते में हैं। वे अभी क्रिया में हैं। अर्थात् जो कॉज़ेज़ में है, वैसा करेंगे ही, वैसा होना ही है। इसलिए इसके लिए हम ऐसा कहते हैं कि 'गए'।

प्रश्नकर्ता : तो इस तरह इसे कारण सर्वज्ञ कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, उसी को कारण सर्वज्ञ कहते हैं। ये सर्वज्ञ होने के कारणों का सेवन कर रहे हैं। अब एक ही स्टेप बाकी है, अगले स्टेप पर सर्वज्ञ हो जाएँगे।

कारण सर्वज्ञ, इस काल में अंतिम पद

इस काल में सर्वज्ञ पद उत्पन्न नहीं हो सकता। यह काल ही विचित्र है। यह दूषमकाल है। यह पद उत्पन्न हुआ है, यह भी आश्चर्य है! कुदरत का आश्चर्य! वर्ना यह पद भी नहीं होता। यह तो, मैं चार मार्क्स से फेल हुआ हूँ, इसलिए आपके हिस्से में आया। जो फेल हुए, वे आपके काम आ गए, और अक्रम विज्ञान आ गया हाथ में, अतः झटपट पूरा काम निकल जाएगा। अतः कारण सर्वज्ञ इस काल का बहुत बड़ा पद कहा जाएगा! सर्वज्ञ पद इस काल में है ही नहीं। उसका अस्तित्व ही नहीं है। सर्वज्ञ पद आ जाए तो मोक्ष हो ही जाना चाहिए लेकिन इस काल में मोक्ष है ही नहीं। एक अवतारी पद है। यह संसार तो एक ही जन्म तक बाकी रहेगा।

यह तो ऐसा है कि यहाँ से 'कारण सर्वज्ञ' तक यानी कि चार

डिग्री कम तक पहुँचा जा सकता है। यह तो कैसा है कि जैसे शहरों में एक मेन (मुख्य) स्टेशन होता है और दूसरा सब-स्टेशन (उपनगर) होता है। आप सब-स्टेशन तक आ गए तो शहर में आ गए, ऐसा कहा जाएगा। यह तो ऐसा है कि यहाँ से कारण केवलज्ञान तक पहुँचा जा सकता है।

चाहे फेल हुए लेकिन कहलाएगा कारण केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके लिए पद में लिखा है न, 'बरतता है केवलज्ञान।'

दादाश्री : अब, इस काल में केवलज्ञान तो होता नहीं है, और कवि ने केवलज्ञान लिखा है लेकिन अपना यह केवलज्ञान नकारने जैसा नहीं है। क्योंकि अपना कारण-केवलज्ञान है। केवलज्ञान के कारणों का सेवन कर रहा हूँ। एक बार परीक्षा देकर हम फेल हो गए इसका मतलब यह नहीं है कि केवलज्ञान के कारणों का सेवन नहीं कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : पूर्ण केवलज्ञान तो संभव नहीं है न, इस समय में?

दादाश्री : नहीं, केवलज्ञान संभव नहीं है। हमें कारण-केवलज्ञान हो चुका है, कार्य-केवलज्ञान नहीं हुआ है। इसीलिए तो हम मास्टर (मॉनिटर) की तरह रह गए न, वर्ना हम मास्टर नहीं होते। और यह अक्रम निकला, केवलज्ञान की सत्ता प्राप्त करे, ऐसा।

केवलज्ञान के दो प्रकार हैं : कारण-केवलज्ञान, कार्य-केवलज्ञान। भगवान महावीर को कार्य-केवलज्ञान था और मैं केवलज्ञान के कारणों का सेवन कर रहा हूँ, और केवलज्ञान दे रहा हूँ।

बरते केवलज्ञान कारण स्वरूप, नहीं है परिणाम स्वरूप

हम तो 360 तक नहीं पहुँचे हैं, 356 पर हैं। यह जो कविराज ने ज़रा ज़्यादा लिख दिया है, वह तो उनका भावावेश है। हम केवलज्ञान स्वरूप नहीं हुए हैं। हम केवलज्ञान के कारण स्वरूप हैं, हम परिणाम

स्वरूप नहीं हैं। हम में केवलज्ञान परिणमित नहीं हुआ है और इस काल में परिणमित हो, ऐसा है भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : कारण और परिणाम, इन दोनों के बीच का भेद समझाइए ज़रा।

दादाश्री : हाँ, तो जब केवलज्ञान परिणमित होगा तब मैं जिस स्वरूप में होऊँगा, अभी उसी स्वरूप में हूँ। मुझे जो समझ में आता है या फिर मैं मेरे कारणों में हूँ, तो स्वरूप दोनों का एक ही है लेकिन उनके (केवलज्ञानी के) ज्ञान में सबकुछ बरतता है। हाँ! 'इसका पर्याय, भूतकाल के कितने पर्याय हुए और भविष्य काल के कितने पर्याय होंगे', वह सब ज्ञान में बरतता रहता है, एट ए टाइम। जबकि हमें वैसा नहीं बरतता, हम उसके कॉज़ में हैं। लेकिन जो स्वरूप उन्होंने देखा है, वही स्वरूप हमने देखा है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का?

दादाश्री : आत्मा का जो सब से अंतिम स्वरूप है, निरालंब स्वरूप, जहाँ कोई भी अवलंबन न रहे वह स्वरूप, केवलज्ञान स्वरूप, वह हमने देखा है।

मूल आत्मा ऐसी जगह पर है कि जहाँ पर *पुद्गल* पहुँच ही नहीं सकता। उसकी बाउन्ड्री में *पुद्गल* पहुँच ही नहीं सकता। वह जगह मैंने देखी हुई है इसलिए मुझे आश्चर्य होता है कि यह कैसी जगह है! जहाँ *पुद्गल* नहीं पहुँच सकता, ऐसी जगह है! इसे इस काल का केवलज्ञान कहेंगे तो चलेगा। लेकिन वास्तव में यह केवलज्ञान नहीं है, कलियुग का है! जैसे-तैसे पास हो जाएँ ऐसा, फुल्ली नहीं!

देखा है आत्मा ज्ञानी ने, जिसे तीर्थंकरों ने जाना है

प्रश्नकर्ता : एक आप्तसूत्र में ऐसा है कि, 'मैंने आपको जो आत्मा दिया है, ऐसा आत्मा तीर्थंकरों ने जाना है और वह मैंने अपने दर्शन में देखा है।'

दादाश्री : तीर्थंकरों को धन्य है कि उनकी इतनी गहरी खोज है! उसमें से उन्होंने आत्मा ढूँढ निकाला, वह आश्चर्य है! देह में आत्मा को ढूँढ निकालना और वह भी बिल्कुल अलग! तो उसे आश्चर्य ही कहा जाएगा न! और मैंने वह देखा है। बिल्कुल अलग आत्मा मैंने देखा है। तीर्थंकरों ने जिस आत्मा को जाना है, तीर्थंकरों ने जिस परमात्मा को जाना है, वह मैंने देखा है। अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सके। अन्य लोग किसी भी ज्ञान को देख सकें, ऐसी स्थिति में नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या कारण है, दादा?

दादाश्री : वह बहुत उच्च पद है। मोक्ष तो सभी का होगा लेकिन वह जो पद है, वह जो मूल आत्मा को देखा है, वह बहुत उच्च पद है। एब्सल्यूट को देखने वाला! शुद्धात्मा, वह एब्सल्यूट आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को तो वह देख सकता है न? मोक्ष में जाने से पहले तो वैसी स्थिति आनी चाहिए न?

दादाश्री : वह तो आ जाती है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि किसी को बता नहीं सकते, खुद देख सकते हैं, समझ सकते हैं लेकिन किसी को बता नहीं सकते। तीर्थंकर बता सकते हैं लेकिन वे (वैसा बताने में) वीतराग रहते हैं। ऐसा (बताना) सिर्फ हमारे ही हिस्से में आया है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस प्रकार की वीतरागता दूसरों के लिए कैसे लाभदायक है?

दादाश्री : वह लाभदायक हो या न भी हो, वह उनके दर्शन का लाभ है, सिर्फ दर्शन ही। वैसा दर्शन मेरे पास नहीं है। उनके दर्शन करने में और इस दर्शन में बहुत फर्क है। मैंने तो... उन्होंने जैसा आत्मा जाना है, वैसा ही आत्मा देखा है मैंने। उतना है मेरे पास।

बाकी, उनके दर्शन तो कुछ और ही प्रकार के! यदि आप वे दर्शन कर लोगे तो आपका वहीं पर मोक्ष हो जाएगा। उसके बाद फिर मोक्ष के लिए वहाँ से आगे जाना ही नहीं पड़ेगा, इसीलिए यह ज्ञान देता हूँ न! मैं आपकी दृष्टि सीधी कर देता हूँ, मशीन घुमा देता हूँ, उसके बाद अगले जन्म में तीर्थंकर मिलते ही मोक्ष हो जाएगा आपका। वे अंतिम निमित्त हैं। ये तो, लोगों को लाभ क्यों होता है? मैंने वह आत्मा देखा है, इसलिए लोगों को बहुत लाभ होता है। यानी कि उस वस्तुस्थिति का लाभ होता है। यों ही छू कर चला जाएगा न, तब भी लाभ हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि आपने देखा, तो हमारे लिए तो श्रद्धा वाली बात हो गई न? निःशंक हो सकते हैं न, वर्ना कोई ऐसा नहीं कह सकता कि, 'हमने देखा है'!

दादाश्री : कोई नहीं कह सकता।

प्रश्नकर्ता : अब, कोई ऐसा कहने वाला मिलेगा कि, 'देखा है?'

दादाश्री : 'देखा है', ऐसा कहने वाला कोई हो नहीं सकता, और अगर कोई ऐसा कहे तो फिर वे तीर्थंकर हैं या फिर तीर्थंकर के नज़दीक वाले हैं।

केवलज्ञान होते ही समा जाती है प्रज्ञा

केवलज्ञान अर्थात् प्योर प्रकाश। हमने भी देखा है प्योर प्रकाश। उसी से यह सब काम होता है, वर्ना कैसे होता? और वही परमात्मा है, अन्य कोई है नहीं।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि हमने प्रकाश देखा है लेकिन देखने वाला कौन है उस प्रकाश को?

दादाश्री : प्रज्ञा।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा है?

दादाश्री : प्रज्ञा तो है न! प्रज्ञा के बिना तो चल ही नहीं सकता न! जब तक देह है तब तक प्रज्ञा रहेगी।

प्रश्नकर्ता : तो दिखाने का वह काम प्रज्ञा ही करती है? देखने का वह काम प्रज्ञा से ही होता है?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा से। केवलज्ञान हो जाए तब देह होने के बावजूद भी समा जाती है वह।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद ज्ञान ही रहता है?

दादाश्री : केवलज्ञान ही रहता है। सिर्फ ज्ञान ही रहता है, तब तक यह प्रज्ञा है। जब तक दूसरा कोई दखल है, जब तक थोड़ा-बहुत मिक्स्चर है तब तक प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : शरीर है तो इस जगत् के साथ उसे विचरना तो पड़ेगा न? तो फिर व्यवहार तो?

दादाश्री : वह तो डिस्चार्ज ही है न! वह लट्टू तो ऐसे घूमता रहता है, वैसे घूमता रहता है। वाणी भी टेपरिकॉर्डर की तरह निकलती रहती है।

केवलज्ञान होने के बाद जो कुछ भी (माल) निकलता है, वह सब शुद्ध डिस्चार्ज है। अपना जो डिस्चार्ज है न, वह मैला डिस्चार्ज है और शुद्ध डिस्चार्ज तो उसके बाद में, साफ-सुथरा डिस्चार्ज। मेरा भी यह डिस्चार्ज है। इसीलिए तो अभी अपना एक अवतार का बाकी है, एक-दो अवतार। उनका (केवलज्ञानी का) तो शुद्ध डिस्चार्ज। आत्मा अंदर अलग ही घूमता रहता है और बाहर का लट्टू भी अलग घूमता रहता है। वह *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) के रूप में घूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें वहाँ पर प्रज्ञा की कोई बात नहीं है?

दादाश्री : प्रज्ञा एकाकार हो जाए तब केवलज्ञान हो जाता है, वर्ना नहीं होता।

प्रज्ञाभाव को आत्मा का स्वभाव नहीं कहा जा सकता। प्रज्ञाभाव अचंचल भाग में आता है। प्रज्ञा का कार्य केवलज्ञान होते ही खत्म हो जाता है। इसलिए उसे आत्मस्वभाव कह ही नहीं सकते। क्योंकि यदि वैसा कहा जाए तो वह उसका अन्वय गुण माना जाएगा, और अन्वय गुण कहेंगे तो सिद्धक्षेत्र में विराजमान सिद्ध भगवंतों में भी प्रज्ञा होनी चाहिए, लेकिन वैसा नहीं होता है। क्योंकि वहाँ पर उसका कुछ भी काम नहीं है। फुल्ली इन्डिपेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट का स्थापन होने के बाद में इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट अपने आप ही खत्म हो जाती है, वैसा ही प्रज्ञा का भी है।

बरतता है देखने वाला, ज्ञेय और ज्ञायक के रूप में

प्रश्नकर्ता : दादा आपने जो कहा न, कि, 'मैंने आत्मा देखा है', तो वह देखने वाला कौन है?

दादाश्री : 'देखा है', ऐसा कहने वाला वह 'खुद' देखने वाला भी है, 'खुद' ज्ञाता भी है। ज्ञायक भी है और ज्ञेय भी है, दोनों है।

प्रश्नकर्ता : खुद ज्ञेय भी है?

दादाश्री : ज्ञेय है और ज्ञायक भी है, दोनों ही प्रकार से है। जब ज्ञायक के तौर पर है तब निरालंब रहता है, वर्ल्ड का कोई भी अवलंबन नहीं। जब हमारी बहुत ही खराब पोज़िशन (परिस्थिति) आ जाए तो हम ज्ञायक ही हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या मतलब है कि आप ज्ञायक हो जाते हैं? कैसे हो जाते हैं?

दादाश्री : यानी जो मूल स्वरूप देखा है, जो आत्मा देखा है, उसी रूप हो जाते हैं। जब वह खराब पोज़िशन चली जाती है यानी कि जब उस रूप नहीं होते तब इस ज्ञेय रूपी ज्ञानी पद में रहते हैं। जबकि आप क्या हो जाते हो? शुद्धात्मा हो जाते हो। यानी कि आपको शब्द का अवलंबन है। हम शुद्धात्मा पद में नहीं हैं, जो मूल है,

वास्तविक उस पद में हैं। उसे देखने के बाद ही एक्ज़ेक्ट वाणी निकल सकती है। वर्ना एक्ज़ेक्ट वाणी नहीं निकल सकती।

प्रश्नकर्ता : तो क्या शुद्धात्मा शब्दावलंबन है?

दादाश्री : 'आत्मा शुद्धात्मा है', ऐसा तो शब्दरूप से समझने के लिए है। तू चाहे कुछ भी करे फिर भी तू शुद्ध ही है। बाकी, आत्मा ज्ञान स्वरूपी है। केवल अर्थात् मात्र ज्ञान स्वरूपी है, प्रकाश स्वरूपी है। वह सूक्ष्म वस्तु है। शुद्धात्मा तो स्थूल द्रव्य है। आत्मा तो आकाश जैसा है। वह तो शुद्धात्मा के स्टेशन पर उतरने के बाद समझ में आएगा। स्थूल (समझ) में आ जाएगा, उसके बाद सूक्ष्म (समझ) में आएगा। केवल अर्थात् सिर्फ ज्ञान ही है, मिलावट नहीं है। ज्ञान के अलावा और कुछ भी नहीं है। विचार व शब्द स्थूल कहलाते हैं और यह (आत्मा) सूक्ष्म कहलाता है। भगवान हर एक चीज़ के आरपार देख सकते हैं। जो सूक्ष्म है, उसे स्थूल के अंतराय नहीं रहते। जब तक आवरण हैं तभी तक अंतराय हैं।

उदयवश बरतते हैं पौद्गलिक अंश में, इस काल के हिसाब से

प्रश्नकर्ता : तो आप एक में से दूसरे में जा सकते हैं, बहुत आसानी से?

दादाश्री : इतनी गहराई में नहीं लेकिन, संपूर्ण केवलज्ञान नहीं हुआ है इसलिए संपूर्ण केवलज्ञान नहीं बरतता। दूसरे अंशों में बरतता है इसका मतलब पौद्गलिक अंश में बरतता है, पौद्गलिक बरतता है। आपके जितने कर्म के उदय आते हैं, उस दिन वे आपको उदय में डाल देते हैं। अत: आपको उदयवश रहना पड़ता है, स्व-वश नहीं रह पाते। अर्थात् स्व-वश होना है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : लेकिन उदयवश रहना पड़ता है न! अभी भी जब

तक आपके उदय हैं, आपके यदि वे सौ होंगे तो मेरे पाँच होंगे लेकिन जितना उदय है न, उतना भाग कमी वाला और वह इस काल में खत्म नहीं हो सकता, वर्ना केवलज्ञान क्या है, वह बता देते। देखा ज़रूर है, समझ में आया है लेकिन बताया जा सके, ऐसी स्थिति नहीं है। बताना अर्थात् अनुभव में आया हुआ होना चाहिए। अनुभव में नहीं आया है, समझ में आ गया है। लेकिन कहना पड़ेगा, यह क्या खोज है!

भगवान तो केवलज्ञान स्वरूपी हैं और हम ज्ञान स्वरूप में रहते हैं। केवलज्ञान संपूर्ण रूप से हमारे ज्ञान में नहीं आया है लेकिन समझ में आ चुका है और समझ पूरी तरह से समझ में आए, उसके बाद में संपूर्णतः ज्ञान में आता है।

प्रश्नकर्ता : आप ये सारी बातें केवलज्ञान से करते हैं?

दादाश्री : नहीं, संपूर्ण केवलज्ञान से नहीं, संपूर्ण केवलदर्शन से, अर्थात् समझपूर्वक है यह सब। समझते सबकुछ हैं लेकिन संपूर्ण ज्ञान में नहीं हैं।

उपयोगी हैं व्यवहार में ये बातें, केवलज्ञान से बताई हुई

जिन्हें केवलज्ञान हुआ था, वे केवलज्ञान की बातें बताने रहे नहीं। क्योंकि संपूर्ण वीतराग हो गए और बाकी सब को जो ज्ञान हुआ है, वे अलौकिक में गए ही नहीं। ये जो हमारी बातें हैं न, वे ऐसी बातें हैं जो व्यवहार में सभी के काम आएँ, क्योंकि ये केवलज्ञान के माध्यम से बताई हुई बातें हैं। संपूर्ण केवलज्ञान से नहीं, संपूर्ण केवलदर्शन से। ऐसी, जैसी अभी तक लोगों ने बताई ही नहीं हैं। इन्हें केवलज्ञान के माध्यम से बताई हुई बातें कहते, पर ऐसी बातें तो सिर्फ तीर्थंकर ही बता सकते हैं लेकिन ये बताने के लिए उनके पास समय ही नहीं था। वीतराग, संपूर्ण वीतराग! ये व्यवहार की बातें हैं न, ये बहुत काम आती हैं, जितना भी बताता हूँ, उतना। मुझे ऐसे कोई अनुभव नहीं हुए हैं। किताबों की बातें नहीं हैं, कहीं और की भी बातें नहीं हैं ये। ज्ञान में देखकर बताता हूँ। तुरंत ही काम आ जाती हैं।

सभी आगमों की स्पष्टता यहाँ पर, संपूर्ण दर्शन के प्रताप से

आप जो भी पूछते हो, उन सभी के जवाब मिलते हैं। पूरे वर्ल्ड में कोई भी ऐसा आध्यात्मिक प्रश्न नहीं है, जिसका यहाँ पर जवाब न मिले। पैतालीस आगम के सभी जवाब, संपूर्ण! हाँ, तभी हल आएगा न! निबेड़ा आएगा न!

प्रश्नकर्ता : दादा, जब से आपके पास आया हूँ तब से आप मुझे एक शब्दकोष जैसे ही दिखाई देते हैं। जब भी हम कहीं उलझन में पड़ जाते हैं तब आपसे पूछने आते हैं और आप तुरंत ही उसका स्पष्टीकरण दे देते हैं।

दादाश्री : सभी स्पष्टीकरण, पूरा दर्शन प्राप्त किया है। चौबीस तीर्थंकरों का सम्मिलित दर्शन प्राप्त किया है। जो भी उलझनें हों, उनका तुरंत हल मिल जाएगा। ज्ञान पूर्ण रूप से उन जैसा नहीं हुआ है, लेकिन दर्शन तो है ही।

अपूर्ण अनुभव, लेकिन ज्ञानी बताते हैं केवलज्ञान में देखकर

केवलज्ञान समझ में आ चुका है, अनुभव में नहीं आया है। क्योंकि हम केवलज्ञान में फेल हुए हैं। हाँ, लेकिन मूल तो केवलज्ञान है न, पास या फेल! पच्चीस प्रतिशत कम आए होंगे। लेकिन पचहत्तर प्रतिशत तो केवलज्ञान है न! इसलिए उसमें देखकर बताते हैं लेकिन यदि पर्यायों के बारे में पूछा जाए तो जानकर कहना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि, 'हम केवलज्ञान में देखकर बोलते हैं', तो अभी इस देखने और बोलने के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : टेपरिकॉर्डर बोलता है और देखने वाला देखता है, संबंध कहाँ रहा? वह तो, 'ज्ञानी' जो भी बोलते हैं, वह देखकर बोलते हैं। ('मैं' खुद केवलज्ञान स्वरूप हूँ) मैं थोड़े ही कोई देखकर कहता हूँ?

आप अभी देखकर बताते हैं न, कि ये फलाने बैठे हैं, ये फलाने

बैठे हैं, इस तरह 'हम' केवलज्ञान में देखकर बताते हैं और आपके इन सभी प्रश्नों के जवाब देते हैं। आपको जो पूछना हो, वह पूछो। यहाँ पर यथार्थ वस्तु है, ज्यों का त्यों ही है। यह ऐसी बातें हैं कि इनमें कोई बदलाव नहीं हो सकता। वास्तविकता अर्थात् रियलिटी। और यह बिल्कुल नई चीज़ है।

हम बीस साल से जो बोल रहे हैं, आज उसके एक-एक शब्द का एक्स्प्लेनेशन (स्पष्टीकरण) देने को तैयार हैं। हम जवाबदेह हैं लेकिन फिर भी हमें केवलज्ञान नहीं है। चार डिग्री (थ्योरीटिकल में) कम है हमारा केवलज्ञान!

हमारी प्रतीति हंड्रेड परसेन्ट (सौ प्रतिशत) है, हमारा ज्ञान लगभग पचहत्तर से अस्सी प्रतिशत है। ज्ञान अर्थात् अनुभव ज्ञान। यह जो केवलज्ञान को रोकता है, वह (प्रैक्टिकल में) बीस प्रतिशत तक का रोकता है और उसी वजह से हमारे वर्तन में यह है कि हम आपसे बातचीत कर पाते हैं, वर्ना बातचीत ही नहीं कर पाते।

न बुद्धि से, न याद से, न पुस्तकों से, देखकर निकला है यह स्पष्ट विवरण

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति प्रश्न पूछता है, उस क्षण आप कहते हैं कि 'हम केवलज्ञान में देखकर उसका जवाब देते हैं' तो ये जो शब्द निकले और वह जो दिखाई दिया, इन दोनों के बीच में कोई कनेक्शन है क्या?

दादाश्री : कनेक्शन है ही न! 'हम' देखकर बोलते हैं, वही कनेक्शन है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जो-जो दिखाई देता है, वह शब्द के रूप में बाहर आ सकता है?

दादाश्री : हाँ! वह दर्शन क्या है, लोग उसे शब्दों से समझ सकते हैं, वर्ना समझेंगे कैसे?

प्रश्नकर्ता : यानी कि दर्शन अपनी जगह पर है, ये शब्द उससे कनेक्टेड हैं न?

दादाश्री : मैं (ज्ञानी) दर्शन देख सकता हूँ, आप नहीं देख सकते। मैं आपको वह शब्दों से समझा सकता हूँ कि, 'वहाँ देखो, ऐसा है'। एक्ज़ेक्ट दिखाई देता है और हम साइन्टिस्टों को ये जो जवाब देते हैं न, इन सभी को जो जवाब देते हैं न, वे हमारे याद किए हुए नहीं हैं। वे केवलज्ञान में देखकर देते हैं। वह केवलज्ञान भले ही पचा नहीं, लेकिन उसमें सब देखने लायक है। इसीलिए फिट हो जाता है, वर्ना समझ में फिट नहीं होगा। कैसे फिट हो पाएगा?

यह तो विज्ञान है! आप जहाँ से पकड़ो वहाँ से टैली होगा (ताल मिलेगा) जबकि रिलेटिव ज्ञान में कभी भी ताल नहीं मिलता।

यह पूरी केवलज्ञानमयी वाणी है। केवलज्ञान किसे कहते हैं? जहाँ बुद्धि का एन्ड हो जाता है, जहाँ मतिज्ञान का एन्ड हो जाता है वहाँ केवलज्ञान है। यह प्रकाश केवलज्ञान से ही उत्पन्न हुआ प्रकाश है!

ये केवलज्ञान की बातें फिर से सुनने नहीं मिलेंगी। केवलज्ञान के सिर्फ कुछ ही ज्ञेय हैं जो हमें दिखाई नहीं देते। बाकी सभी ज्ञेय दिख चुके हैं। तो जब नियम ही नहीं है तो हमारी उस दिशा की तरफ दृष्टि भी नहीं है। बाकी हम ये जो विस्तारपूर्वक सारी स्पष्टता करते हैं, यह बुद्धि से परे केवलज्ञान का विषय है। यानी आश्चर्य है इस काल का! धन्य है कि ज़ुबानी ही सारा ज्ञान! पुस्तक नहीं पढ़ी और पुस्तकों की बात ही नहीं है न!

देखे ज्ञेय व पर्याय हूबहू, केवलज्ञान में

भगवान केवलज्ञान को क्या कहते हैं? 'जो सभी ज्ञेय और ज्ञेयों के सभी पर्यायों को जाने।' तो हमारा यह कुछ जगहों पर से रुका हुआ है। केवलज्ञान समझ में आ गया है, जान नहीं पाए हैं। लेकिन

वह ज्ञान एक खास फल तक ले गया है। कुछ चीज़ें हमें यों खुले तौर पर दिखती रहती है। हम ये जो बातें करते हैं न, वे बातें इसी तरह करते हैं जैसे हूबहू सबकुछ दिख रहा हो। हमारा उदाहरण आपको इटसेल्फ नहीं कहता कि, 'भाई, इस तरह से बातें कर रहे हैं जैसे हूबहू देख रहे हों?' जैसे कि मैं इस तरफ देखकर बातें कर रहा होऊँ, वैसे। हमारे ये उदाहरण उसका प्रमाण नहीं देते?

एक रानी की यदि तेरह सौ राजाओं से शादी हुई हो तो राजा का चेहरा नहीं फूलता। पुरुषों को चेहरा फुलाना नहीं आता, जबकि रानियों के चेहरे देखो तो घबरा जाओ, उनके चेहरे फूले हुए देखकर! उन दिनों चेहरे कैसे फूले हुए होते होंगे और यह राजा का कैसा फँसाव होगा, वह हमें आज दिखाई देता है। तो राजा के मन में जो वरीज़ (चिंता) होती थीं, वे भी दिखाई देती हैं हमें। ये जितनी बातें मैं करता हूँ न, उससे भी अनंत गुना बातें हमें हूबहू दिखती रहती हैं। केवलज्ञान तक जो पहुँचती है न, उन सब का इन्हें पता चल जाता है।

अब यह सब तो मैं देखकर बताता हूँ कि कैसे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिलते हैं।

उपयोग देने पर, केवलदर्शन में देख सकते हैं सभी पर्यायों को फिल्म के रूप में

प्रश्नकर्ता : यह जो देखकर बोलने की बात है, वह आपको ज्ञान में दिखाई दिया या हमेशा देख सकते हैं?

दादाश्री : जब उपयोग दूँ, उस क्षण दिखाई देता है। आप कहो कि, 'सत्रह साल की उम्र में आपने क्या किया था?' तो हमें यों याद नहीं होता कुछ। उपयोग देते ही दिखाई देता है, सभी कुछ दिखाई देता है। शरीर क्या क्रिया करता था, वह भी दिखाई देता है अभी। जैसे पुरानी फिल्म निकालकर देखें न, वैसा दिखाई देता है। हमारा यह केवलदर्शन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : यदि केवलदर्शन हो चुका हो तो वह सभी कुछ कह सकता है। आप पूर्व जन्म के बारे में बता सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसा सब हमें दिखाई नहीं देता। वह केवलदर्शन से संबंधित नहीं है, वह तो बुद्धि का विषय है। हम में बुद्धि बिल्कुल भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि नहीं है लेकिन ज्ञान तो है न?

दादाश्री : ज्ञान है लेकिन वह ज्ञान की चीज़ नहीं है, वह बुद्धि की बात है। यह पिछले जन्म वगैरह तो बुद्धि का विषय है, यादशक्ति का विषय है। हम में तो यादशक्ति भी नहीं है।

वर्तमान पर्याय देखें प्रज्ञा से, नहीं है ज़रूरत चित्त या मन की

प्रश्नकर्ता : दादा, आप कहते हैं कि, 'हमारे अंदर बुद्धि और यादशक्ति नहीं है' लेकिन मन की क्या स्थिति रहती है? ये भाई आए तो उससे पहले विचार शुरू हो गए होंगे न?

दादाश्री : नहीं-नहीं! विचार तो नाम मात्र को भी नहीं। सारी बातें किसी भी तरह के विचार रहित ही हैं।

प्रश्नकर्ता : सीधी, विचार रहित बातें?

दादाश्री : वे भाई दिखाई देते हैं। मंदिर के पत्थरों का क्या हुआ, तो पत्थर दिखाई देते हैं। फलाना क्या हुआ, तुरंत ही उसकी बातें।

प्रश्नकर्ता : तो दिखाई देना अर्थात् चित्त काम करता होगा उस क्षण?

दादाश्री : नहीं-नहीं! वह चित्त, वही शुद्ध होकर प्रज्ञा बन गया है इसलिए दिखाई देता है, और दिखाई देता है इसलिए बातें करते हैं उनसे।

प्रश्नकर्ता : दिखाई देता है तब बातें करते हैं?

दादाश्री : हाँ, हम में याददाश्त नहीं हैं। मन तो है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : जब आप याद भी नहीं करते हैं किसी चीज़ को... आपको याद भी नहीं रहता तो वह चीज़ आपके दर्शन में कैसे आती है? उदाहरण के तौर पर आपको वह पत्थर दिखाई दिया!

दादाश्री : वह मुझे यों ही दिखाई देता है। उनके आते ही पत्थर दिखाई देते हैं, खान भी दिखाई देती है, वहाँ पर काम करते हुए लोग दिखाई देते हैं, सभी कुछ दिखाई देता है। वे (भाई) मिले इसलिए, वर्ना नहीं। यहाँ से उठकर चले जाएँ, उसके बाद कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर चित्त का काम नहीं है?

दादाश्री : नहीं-नहीं! चित्त तो शुद्ध ही हो चुका है। चित्त तो, हम जो भी बोलते हैं न, उस पर वह मुरली की तरह डोलता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अब चित्त शुद्ध हो गया है। चित्त बाहर नहीं जाता। अब मन बंद है, कोई भी चीज़ याद नहीं है। ये भाई आते हैं तब पूरा, सबकुछ यहाँ दिखाई देता है।

दादाश्री : हाँ! पूरा ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : तो चित्त वहाँ पर नहीं जाता लेकिन चीज़ यहाँ पर आ जाती है!

दादाश्री : सामने ही दिखाई देता है सब, जैसे केवलज्ञान में सबकुछ दिखाई देता है न, वैसा ही सब दिखाई देता है।

ज्ञान वाक्य है व्यू पॉइन्ट से परे, केवलज्ञान की दृष्टि से

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन आपके ये जो वाक्य हैं, उन ज्ञान वाक्यों में कोई विरोधाभास नहीं है यानी कि सभी नय से आगे के ही हैं न?

दादाश्री : किससे आगे हैं?

प्रश्नकर्ता : नय, ये सभी व्यू पॉइन्ट पर से देखते हैं और आपकी बातें व्यू पॉइन्ट से परे हैं।

दादाश्री : यह तो केवलज्ञान है। व्यू पॉइन्ट तो जब तक केवलज्ञान नहीं हुआ हो तभी तक, और केवलज्ञान हो गया अर्थात् व्यू पॉइन्ट रहा ही नहीं न! 360 डिग्री! मैं खुद 356 पर हूँ लेकिन यह ज्ञान 360 है।

नहीं कह सकते केवली आज, जोखिमदारी है वीतराग मार्ग में

प्रश्नकर्ता : केवली, केवलज्ञानी-तीर्थंकर भगवान ने जो कुछ भी बताया है और आप जो बताते हैं, उसमें कोई फर्क है?

दादाश्री : हाँ, एक फैट कम है हमारा। वह सौ फैट का दूध है तो यह निन्यानवे फैट का है। बहुत फर्क नहीं है। वीतरागता दोनों में है लेकिन फैट कम है, एक। केवलज्ञानी बता रहे हों तब आप भी मोक्ष में चले जाओगे। अभी मैं बताता हूँ तो मोक्ष में नहीं जा सकते। एक जन्म तो लेना ही पड़ेगा, एक जन्म बाकी रहा। हम से वह इस जन्म में नहीं हो पाएगा, अतः हमारा फैट उतना कम है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी केवली हैं भी नहीं न?

दादाश्री : केवली हो ही नहीं सकते। पुस्तकों में हमने अपने आप के लिए केवली लिखा है लेकिन कारण केवली। अर्थात् कार्य केवली नहीं हैं ये। कारणों का सेवन कर रहे हैं, कभी न कभी बनेंगे ये केवली।

अभी केवली नहीं कह सकते। केवली कहने वाले को भी दोष लगेगा और सुनने वाले को भी दोष लगेगा और जो केवली बन बैठे उसे भी दोष लगेगा। यह जोखिमदारी है। वीतरागों के मार्ग में एक

बाल जितनी भूल भी नहीं चलती, ढील नहीं चलती, बाकी सब जगह ढील चल सकती है। क्योंकि वीतरागों का तराजू बिल्कुल अलग ही तरह का है।

इसीलिए हम केवलज्ञान की आराधना करते हैं और इसीलिए कारणसर्वज्ञ लिखना है न! जो सर्वज्ञ होने के कारणों का सेवन करते रहते हैं।

'दिखा' केवलज्ञान लेकिन पचा नहीं, बरतता है अधूरा

प्रश्नकर्ता : आत्मा की जो सहज अनुभूति दशा है, ज्ञानी की जो सहज अनुभूति वाली दशा है तो उसमें अनंत प्रदेश हैं तो उन्हें इनमें से कुछ ही प्रदेशों का अनुभव क्यों होता है?

दादाश्री : जितने प्रदेश खुलते हैं उतना ही अनुभव होता है। जैसे-जैसे प्रदेश खुलते जाते हैं, यानी कि केवल होने तक वे खुलते जाते हैं। केवल अर्थात् एब्सल्यूट होने तक। मैं एब्सल्यूट के नज़दीक हूँ बिल्कुल। मैंने एब्सल्यूट का अनुभव किया है लेकिन पचा नहीं मुझे।

हमें हमारा समझ में आता है जबकि तीर्थंकरों को ज्ञान में दिखाई देता है। ज्ञानी पुरुष देखकर (समझ से) बता सकते हैं, जबकि तीर्थंकर देखकर और जानकर (समझकर और ज्ञान से) बता सकते हैं।

सर्वज्ञ के ज्ञान में कुछ भी दिखना बाकी नहीं रहता। अनंत बातों को जान सकते हैं। उन सर्वज्ञ के ज्ञान में जो है, वह हमारी समझ में आ गया है लेकिन ज्ञान में नहीं आया है। हमारा ज्ञान तीर्थंकरों से कम है, चार डिग्री। क्योंकि उन्हें जो दिखाई देता है, वह हमें समझ में ज़रूर आता है कि, 'ऐसा-ऐसा होना चाहिए।' लेकिन जान नहीं पाते। जानना अर्थात् ज्ञान में आना चाहिए। जानना बाकी रहा, इसलिए हम ज्ञानी में और उनमें अंतर है।

ज्ञानी किसे कहते हैं कि इस दुनिया में जो कुछ भी है, जिसका

अस्तित्व 'है', उसके लिए ऐसा नहीं कहते कि 'नहीं है', और जो 'नहीं है', उसके लिए ऐसा नहीं कहते कि 'है', उन्हें कहते हैं ज्ञानी पुरुष। ज्ञानी पुरुष जवाबदार कहे जाते हैं। भगवान महावीर जितनी जवाबदारी है। क्योंकि उनमें और भगवान महावीर में ज़्यादा अंतर नहीं है। दो-तीन मार्क्स से फेल हुए हैं, लेकिन क्या भगवान महावीर से कम हैं? यह तो ऐसा है कि सात बजे हम दही की छाछ बना कर पी जाएँ, उसके बजाय दो घंटे ज़्यादा, यानी कि नौ बज जाएँ तब खट्टा नहीं हो जाता? ऐसा है! वही छाछ ज़रा खट्टी हो जाती है, टाइमिंग बदल गया, इसलिए। लेकिन ऐसा नहीं है कि हमने केवलज्ञान नहीं देखा है, देखा ही है लेकिन हमारे *लक्ष* में नहीं आता। समझ में है, समझ में आता है, दिखाई नहीं देता। समझ में आए हुए को खुद जानते ज़रूर हैं लेकिन उसमें बरत नहीं पाते।

समझ में पूर्ण लेकिन अनुभव की कमी

जो आत्मा तीर्थंकरों ने केवलज्ञान में जाना है, उस आत्मा को मैंने देखा है। संपूर्ण निर्भय बना सके, संपूर्ण वीतराग रख सके, वैसा है यह आत्मा। लेकिन अभी संपूर्ण रूप से मुझे अनुभव नहीं हुआ है उसका, केवलज्ञान नहीं होने की वजह से संपूर्ण रूप से अनुभव नहीं हुआ है। अतः उतनी कमी है।

मुझे समझ में आ गया है, अनुभव में नहीं आया है और उसकी मुझे जल्दी नहीं है। मैं यदि जल्दबाज़ी करूँ तो इन लोगों का काम नहीं होगा, यदि हम चले गए तो इन सब लोगों का काम बिगड़ जाएगा। आए हैं तो इन सब का कुछ काम हो जाने दो न! हो जाएगा, दो जन्मों बाद आएगा अपने आप, जो आ चुका है, वह कहाँ चला जाएगा अब? आया हुआ चला नहीं जाता और लोगों के लिए निमित्त हूँ।

[7.4]

केवलज्ञान की श्रेणियाँ पार कर सकते हैं, आत्मज्ञान के बाद

पंचाज्ञा पुरुषार्थ से और कृपा प्रसादी से होगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

दादाश्री : ज्ञानी पुरुष के पास जाकर। ज्ञानी पुरुष मोक्षदाता कहे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप जितने 'ज्ञानी' हैं उतना ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उनके (ज्ञानी के) पास बैठना चाहिए। उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिए। बस! और कुछ भी नहीं करना है। 'ज्ञानी' की कृपा से ही सब होता है। कृपा से 'केवलज्ञान' होता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान देने से मिलता है या खुद पुरुषार्थ करने से मिलता है?

दादाश्री : केवलज्ञान पुरुषार्थ का फल नहीं है। केवलज्ञान तो केवलज्ञानी की कृपा प्रसादी है, इनाम है। और कुछ भी नहीं है, कृपा प्रसादी ही है! पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं होता।

यहाँ हम ज्ञान देते हैं, तब वह एक समय के लिए शुद्ध चित्त की प्राप्ति करता है। यह ज्ञान केवलज्ञान होने तक छोड़ता नहीं है, एक समय की ही ज़रूरत है। एक समय के लिए भी नहीं हुआ है इस जगत् को। एक समय के लिए भी जगत् ने देखा ही नहीं, सुना ही नहीं, आत्मामय हुआ ही नहीं है। एक समय के लिए हो गया तो हो चुका, फिर वह केवलज्ञान तक छोड़ेगा नहीं।

ज्ञानविधि रूपी ऐश्वर्य, प्राप्त करवाता है [अंश] केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : यह जो ज्ञानविधि है, वह आपने बनाई है?

दादाश्री : वह उदय में आई है। यह हमारा जो ऐश्वर्य है, वह प्रकट हुआ है।

प्रश्नकर्ता : इसमें ग़ज़ब की शक्ति है!

दादाश्री : एक्ज़ेक्ट केवलज्ञान! पूरी ज्ञानविधि केवलज्ञान है! यह मेरी शक्ति नहीं है, ऐश्वर्य प्रकट हुआ है। दो घंटे में मोक्ष दे दे, ऐसा ऐश्वर्य! जिसे दादा की ज्ञानविधि मिलती है, उसका मोक्ष हो जाता है, आत्मज्ञान हो जाता है। वर्ना लाखों जन्मों तक भी ठिकाना न पड़े।

यह ज्ञान भेदविज्ञान है। यह तो मतिज्ञान के टॉप तक पहुँचा हुआ ज्ञान है, और सौ प्रतिशत मतिज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। यह लगभग छियानवे से आगे सतानवे प्रतिशत है, इसलिए यह भेदविज्ञान कहलाता है और सौ प्रतिशत पर केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर भेदज्ञान ही सर्वस्व ज्ञान है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : भेदज्ञान ही सर्वस्व ज्ञान है और वही केवलज्ञान का दरवाज़ा है! अर्थात् बिल्कुल शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है, और कुछ भी नहीं। परमात्मा के पास देहधारी रूपी ऐसा शरीर नहीं होता, वे निर्देही हैं। शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं, केवलज्ञान स्वरूप हैं। वे अन्य किसी स्वरूप में हैं ही नहीं।

इसीलिए भगवान ने कहा है कि आत्मज्ञान जानो। आत्मज्ञान और 'केवलज्ञान' में ज़्यादा फर्क है ही नहीं। आत्मज्ञान जाना तो वह 'कारण केवलज्ञान' है जबकि केवलज्ञान, 'कार्य केवलज्ञान' है!

हुआ अंश केवलज्ञान, आज्ञापालन करने से होगा संपूर्ण

हमें यहाँ पर ज्ञान मिलता है न, आत्मज्ञान, उसके बाद पहले अंश केवलज्ञान हो जाता है। फिर वह अंश धीरे-धीरे, बढ़ते-बढ़ते सर्वांश होता है।

एक-एक अंश करके मोक्ष होता ही जाएगा, एकदम से मोक्ष नहीं हो जाता। केवलज्ञान भी एक-एक अंश करके होता जाता है। केवलज्ञान भी एकदम से नहीं हो जाता। अत: अपने यहाँ ज्ञान देने के बाद एक अंश, दो अंश, केवलज्ञान के अंश उत्पन्न होते ही हैं। वह अंश केवलज्ञान कहलाता है।

जितने अंश तक आत्मस्वभाव प्रकट होता जाता है उतने ही अंश तक केवलज्ञान प्रकट होता जाता है। कुछ भाग तक पहुँचने के बाद, उसके बाद सर्वांश हो जाता है। जब सर्वांश आत्मस्वभाव प्रकट होता है तब सर्वांश केवलज्ञान कहा जाता है। यानी कि एब्सल्यूट हो जाता है। एब्सल्यूट केवलज्ञान ही परमात्मा पद है।

यह आंशिक ज्ञान, इसे आंशिक केवलज्ञान कहते हैं। 356 डिग्री या 305 डिग्री पर आंशिक केवलज्ञान उत्पन्न होता है। मुझे 356 अंश तक का केवलज्ञान हुआ है, चार अंश बाकी हैं। और जितना दिखाई देता है, उतने ही केवलज्ञान के अंश मुझे दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान भी आंशिक हो सकता है क्या?

दादाश्री : आंशिक अर्थात् वास्तव में वह केवलज्ञान नहीं होता। आंशिक ज्ञान कहकर उसे ऐसा बताना चाहते हैं कि यह मार्ग, केवलज्ञान की तरफ ही जा रहा है।

यह ज्ञान मिला और आज्ञा का पालन करते हो, तभी से केवलज्ञान के अंश इकट्ठे होने की शुरुआत हो जाती है। फिर दो अंश, चार अंश, ऐसे करते-करते जब 360 अंश पूरे हो जाते हैं तब केवलज्ञान हो जाता है। मेरा 356 अंश पर है। आपके ये अंश इकट्ठे होते-होते 356 अंश तक पहुँचेंगे न? रियल व्यू पॉइन्ट और रिलेटिव व्यू पॉइन्ट, यदि निरंतर ऐसे भाव में रहे तो वह केवलज्ञान है। वह भाव खत्म होने पर संपूर्ण केवलज्ञान हो जाएगा।

ग़ज़ब का पद है यह! केवलज्ञान के कारणों का सेवन होता है

प्रश्नकर्ता : ज्ञान अर्थात् सहज आत्मस्वरूप का ज्ञान होना, वह केवलज्ञान की भूमिका ही हो गई न?

दादाश्री : हाँ, शुरुआत हो गई, बिगिनिंग हो गई। अंश केवलज्ञान, सर्वांश नहीं। लेकिन अंश केवलज्ञान और केवलज्ञान के अन्य कारणों का सेवन कर रहे हैं। कार्य केवलज्ञान नहीं है लेकिन कारण केवलज्ञान तो है ही।

यह तो कोई ग़ज़ब का पद है! दुनिया ने कल्पना नहीं की हो, ऐसा पद है! खुद की पत्नी के साथ रहने के बावजूद भी मोक्ष है, वर्ना सभी परिग्रह छोड़े बगैर आगे एक सीढ़ी भी नहीं चढ़ सकते।

अक्रम विज्ञान द्वारा हुए मुक्त, आरंभ-परिग्रह से

कृपालुदेव ने कहा है, कि, 'आत्मा तो ज्ञानी के हृदय में है।' किताबों में स्थूल आत्मा है। वह स्थूल आत्मा काम नहीं आएगा, सूक्ष्मतम आत्मा होना चाहिए। जिसे केवलज्ञान कहा जाता है, वह चाहिए। उस सूक्ष्मतर तक पहुँचना चाहिए न? हम सूक्ष्मतर तक पहुँचे हैं। ऐसा यह विज्ञान है! अब सूक्ष्मतम में जाना बाकी है। क्रमिक के बड़े साधु हो फिर भी अगर एक ही परिग्रह हो न, तो जब तक उस एक परिग्रह को नहीं छोड़ देते तब तक... कृपालुदेव ने क्या कहा है?

प्रश्नकर्ता : *आरंभ-परिग्रहथी निवर्त्ये....*

दादाश्री : कृपालुदेव ने लिखा है, आरंभ-परिग्रह न छूटे तो श्रुतज्ञान कैसे हो पाएगा और अवधिज्ञान भी कब होगा? और आत्मज्ञान कब होगा? जबकि आप महात्मा तो आरंभ-परिग्रह में खेल रहे हो और केवलज्ञान के नज़दीक हो। केवलज्ञान हो चुका है लेकिन यह पचा नहीं है।

भगवान ने इस आरंभ-परिग्रह की बात की है कि, *'आरंभ-परिग्रह परिनिवर्त्ये।'* तो परिग्रह को लोगों ने ऐसा समझा कि हम इसे छोड़ देंगे, इसका त्याग कर देंगे तो परिग्रह चला जाएगा। अब इसका त्याग कर लेगा पर मूर्च्छा तो रहती ही है, उससे तो बल्कि उल्टा हो गया। इनसे तो संसारी अच्छे हैं। इन्हें तो मूर्च्छा और परिग्रह दोनों ही हैं, जबकि इन्होंने तो परिग्रह छोड़ दिया लेकिन बेहिसाब मूर्च्छा है। क्रोध-मान-माया-लोभ जैसी अन्य कोई मूर्च्छा नहीं है।

अब ज्ञान के बाद आपकी मूर्च्छा चली गई अर्थात् परिग्रह चले गए। ग्रह हैं लेकिन वे कभी भी परिग्रह नहीं बन सकते? यदि मूर्च्छा नहीं हो तो। ग्रह तो हैं ही, लेकिन वे कभी परिग्रह नहीं बन सकते। उनके (समकिती) लिए ग्रह ज्ञेयस्वरूप हैं। आरंभ किसे कहेंगे? 'मैं अकर्ता हूँ', ऐसा भान हुआ तो आरंभ गया।

आरंभ और परिग्रह दोनों *परिनिवर्त्ये* हो गया। अर्थात् इससे केवलज्ञान के कारणों का सेवन होता है, अपने महात्माओं को। यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है, यह तो अद्भुत चीज़ है! लेकिन अब, बच्चे के हाथ में यह हीरा आ गया है।

यह तो अद्भुत ज्ञान दिया है। रात को जब जागो तब हाज़िर हो जाता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। आप जहाँ कहोगे वहाँ हाज़िर हो जाएगा और बहुत मुश्किल आए न तो निरंतर जाग्रत रहेगा। बहुत बड़ी मुश्किल आए और उससे भी ज़्यादा मुश्किल आए, बम गिरने लगे तब तो फिर गुफा में ही घुस जाएगा, केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी!

बाहर बम गिरने चाहिए तो केवलज्ञानी जैसी दशा हो जाएगी, ऐसा ज्ञान दिया है।

कुछ न कुछ निर्मलता होगी, इसलिए मिले दादा भगवान

प्रश्नकर्ता : शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि अभी केवलज्ञान हो ही नहीं सकता।

दादाश्री : सही कहते हैं, मुझे ही नहीं हुआ है न! चार अंश बाकी हैं। 356 पर आकर रुक गया है। 360 तक मैं पहुँचा हूँ, केवलज्ञान ही हुआ था लेकिन पचा नहीं। लेकिन प्रकाश तो है।

क्योंकि इस दूषमकाल का स्वभाव ही ऐसा है कि केवलज्ञान प्रकट होता ही नहीं। यदि प्रकट हो जाए तो मोक्ष हो जाए लेकिन इस तरह मोक्ष में नहीं जा सकते, अप्रकट रहता है। हमारा ज्ञान केवलज्ञान है लेकिन अप्रकट है। इसलिए हम कहते हैं कि पचता नहीं है केवलज्ञान।

मैंने आपको केवलज्ञान दिया है, लेकिन यह ज्ञान पचता नहीं है, अतः आप में कुछ अंश कम रहेगा। मुझ में चार अंश कम रहता है, तो आप में उससे ज़्यादा अंश कम रहेगा। नहीं पचे तो उसमें हर्ज क्या है? अपना ज्ञान किसी को परेशानी हो ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते ज़रूर हैं कि हमें 356 डिग्री वाला ज्ञान है लेकिन हम लोगों को तो आपने 360 डिग्री वाला दे दिया है, इसका क्या अर्थ है?

दादाश्री : इसका अर्थ इतना ही है कि 360 वाला ज्ञान मुझे था लेकिन पचा नहीं और फिर 356 पर आकर काँटा रुक गया। इसलिए आपको भी नहीं पचा, 360 वाला दिया है लेकिन 320 पर आ गया है, किसी का 310 पर आ गया है लेकिन 300 से ज़्यादा है सभी का, जबकि आप थे दो सौ पर। सौ, एक सौ दस एकदम पार कर लिया है। ज़्यादा नहीं लेकिन अगर ज़रा सी भी शुद्धता हो तो दादा भगवान प्राप्त होते हैं, वर्ना दादा भगवान प्राप्त नहीं होते!

उल्टा समझे पारिणामिक को, 'पाचन' कहकर किया सरल

प्रश्नकर्ता : ज्ञान नहीं पचा इसका क्या मतलब है?

दादाश्री : परिणाम नहीं आया। इतना ही कि पचा नहीं है। खाना पच जाए तो परिणाम स्वरूप खून बनता है! यानी मैं इन सब को केवलज्ञान देता हूँ, लेकिन पचता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पचता नहीं है यानी ऐसा कि एकदम से परिणाम नहीं आता?

दादाश्री : इस काल के कर्म इतने हैं कि इन्हें पाचन का संयोग ही नहीं मिलता। ज्ञान पचना चाहिए न? ज्ञान पचना अर्थात् परिणाम आना चाहिए। पचना, ऐसा तो इन लोगों को इनकी भाषा में सिखाते हैं। परिणाम कहेंगे तो नहीं समझेंगे। इसलिए सभी की भाषा में बताते हैं कि, 'मुझे नहीं पचा इसलिए आपको भी नहीं पचेगा'। अब पचने का मतलब क्या है? मूल भाषा में इसका अर्थ 'पारिणामिक' है। लेकिन 'पारिणामिक' को ये लोग उल्टा समझेंगे। पचना कहेंगे तो तुरंत समझ में फिट हो जाएगा कि, 'हाँ, हमें खिचड़ी नहीं पचती है, उसी तरह यह भी नहीं पचा।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन धीरे-धीरे पचेगा न, यह?

दादाश्री : हाँ, धीरे-धीरे पचेगा। एक-दो जन्म लगेंगे, उसके बाद। इस भूमि पर पचना मुश्किल है। भूमि बदलने पर पचेगा। महाविदेह क्षेत्र में जाने पर पच जाएगा। पचने के बाद वह फल देगा।

प्राप्त हुआ शुद्धात्मा पद, मूल आत्मा की निःशंकता होने से

प्रश्नकर्ता : अब क्या इस देह में रहते हुए आप जैसा प्रकाश प्राप्त हो सकता है?

दादाश्री : नहीं तो फिर और किस देह में होगा? मनुष्य के अलावा अन्य किसी भी देह में नहीं, और फिर हिन्दुस्तान का होना चाहिए, हिन्दुस्तान का! हम में जो हुआ है न प्रकाश, वैसा ही प्रकाश हुआ है। आप में हुआ है न, वह प्रकाश? वह थोड़ा-बहुत दिखाई देने लगा है न? दूज का चंद्रमा उगा है या नहीं उगा?

प्रश्नकर्ता : मैं अगर अपने आप के लिए कहूँ तो वह ठीक नहीं है, लेकिन जो जानने वाला है, वह तो प्रकाशित कर ही रहा है। वह जानने वाला तो प्रकाशमान है, उसे कहीं लेने नहीं जाना है।

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा कितने समय तक याद रहता है?

प्रश्नकर्ता : एक क्षण भी विस्मृत नहीं होता।

दादाश्री : तब फिर उस प्रकाश को आप देख रहे हो और फिर उसमें तदाकार हो रहे हो। सिर्फ देखने से ही नहीं चलता, जो देखते हैं उसमें तदाकार हो जाते हैं। उसका जो आकार है, उसी में तदाकार होकर रहता है। यानी अब उसी दिशा में जा रहे हो।

हम में और आप में फर्क क्या है? 'हम' 'केवलज्ञान स्वरूप' में रहते हैं और 'आप' महात्मा 'शुद्धात्मा' की तरह रहते हो। आपकी मूल आत्मा की जो शंका थी वह निकल गई, इसलिए अन्य सभी शंकाएँ निकल जाती हैं। शुद्धता को लेकर निःशंकता उत्पन्न हो जाने के बाद का पद अर्थात् 'केवलज्ञान स्वरूप' है 'अपना'!

संपूर्ण भान प्रकट होने पर, वर्तन में केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : तो इस ज्ञानविधि में हमें पूर्ण ज्ञान नहीं होता?

दादाश्री : नहीं, भान हो जाता है, ज्ञान नहीं होता। वह जो (खुद का) भान चला गया था, वह भान हो जाता है उसे।

प्रश्नकर्ता : बाद में वह भान, ज्ञान में परिणमित होता है?

दादाश्री : हो चुका। भान हुआ यानी कि खत्म, काम पूरा हो गया!

प्रश्नकर्ता : तो उसी को ऐसा कहते हैं कि ज्ञान में आ गया?

दादाश्री : उसके बाद, जितने मील उल्टा चला था, उतने मील वापस आ जाए तो हो जाएगा एकदम कम्प्लीट।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए ऐसा कहा न, कि भान हो गया, ज्ञान नहीं कहते। तो भान में, दर्शन में और ज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : यह भान तो दर्शन से आगे की चीज़ है। पहले दर्शन होता है अर्थात् पहले प्रतीति बैठती है कि, 'ये जो कह रहे हैं, मैं वही हूँ। वास्तव में मैं चंदूलाल नहीं हूँ', उसे ऐसी प्रतीति हो जाती है, उसके बाद उसे भान होता है। फिर उसे इसका संपूर्ण भान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भान हो जाता है, उससे आगे अभी भी ज्ञान बाकी है?

दादाश्री : वह भान ही ज्ञान की निशानी है। रोज़-रोज़ भान में से ज्ञान के अंश बढ़ते जाते हैं। जितना अनुभव, अंश ज्ञान होता जाता है उतना ही भान होता जाता है। संपूर्ण भान प्रकट हो जाए तो फिर वर्तन में आता है और वर्तन ही केवलज्ञान है।

तमाम अनुभवों के बाद शुरू होती हैं, केवलज्ञान की श्रेणियाँ

प्रश्नकर्ता : हमारे लिए अविनाशी की तरफ जाने के लिए कोई सरल मार्ग है?

दादाश्री : नहीं! यह कुदरत ही है, यह प्रवाह अविनाशी की तरफ ही जा रहा है। उतार-चढ़ाव आने के बाद, सभी अनुभव करने के बाद में अविनाशी की तरफ जाना है। अनुभव किए बगैर तो वहाँ

पर पहुँचना नहीं हो सकता। हर एक तरह के अनुभव करने हैं। केवलज्ञान यानी तमाम प्रकार के अनुभवों का संग्रहस्थान। इसलिए यह जो सारा अनुभव करते हैं, वह करेक्ट है।

'ज्ञानी पुरुष' ज्ञान सहित बुलवाते हैं इसलिए आत्मा जाग्रत हो जाता है, उसके बाद *लक्ष* (जागृति) नहीं जाता। *लक्ष* बैठा इसलिए अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति रहती है। इस *लक्ष* में प्रतीति रहती ही है। अब अनुभव बढ़ते जाएँगे। पूर्ण अनुभव को केवलज्ञान कहा गया है।

अब, जो अनुभव हुआ है न, फिर इसके अंश धीरे-धीरे बढ़ते ही जाते हैं। फिर धीरे-धीरे, बढ़ते-बढ़ते अनुभव केवलज्ञान तक पहुँचता है। केवलज्ञान संपूर्ण अनुभव है, तब तक ये अनुभव होते ही रहते हैं।

केवलज्ञान तो अनुभव की चीज़ है और वह खुद ही निरालंब है! जिसने उस केवलज्ञान को देखा हो, जो निरालंब बनता है, उसे कोई भी अवलंबन नहीं रहता। कोई भी अवलंबन नहीं रहे तो वह केवलज्ञान है।

ज्ञान का स्वरूप समझने के बाद वह एकदम प्रवर्तन में नहीं आता। समझने के बाद धीरे-धीरे सत्संग से ज्ञान-दर्शन बढ़ता जाता है और उसके बाद प्रवर्तन में आता जाता है। प्रवर्तन में आता है तब केवल आत्मप्रवर्तन, उसी को कहते हैं 'केवलज्ञान'। दर्शन व ज्ञान के अलावा अन्य कोई भी प्रवर्तन न रहे तो उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं।

केवलज्ञान अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा के अलावा अन्य कुछ भी नहीं हूँ', ऐसा श्रद्धा में आ जाए, ज्ञान में आ जाए और वर्तन में आ जाए तो वह केवलज्ञान है।

केवलज्ञान होने पर शुद्धात्मा बनेगा परमात्मा

शुद्धात्मा पद मिलने के बाद आगे केवलज्ञान स्वरूप (बाकी) रहता है। वह अंतिम पद है। केवलज्ञान, एब्सल्यूट, अन्य कुछ है ही

नहीं। हम एब्सल्यूट ज्ञान स्वरूप हैं। वह पूर्ण रूप से वर्तन में नहीं है। वह ज्ञान स्वरूप कैसा होता है, वह हमने देखा है। बाकी, शुद्धात्मा, वह तो एक पद है, वह अंतिम स्टेशन के यार्ड में रहा हुआ सब स्टेशन (उपस्टेशन) है।

प्रश्नकर्ता : दादा, शुद्धात्मा के बाद परमात्मा पद ही बाकी रहता है?

दादाश्री : शुद्धात्मा ही परमात्मा है लेकिन जब तक केवलज्ञान नहीं हुआ है तब तक शुद्धात्मा है। उसके बाद जब केवलज्ञान हो जाएगा तो हो जाएगा परमात्मा, फुल (पूर्ण) हो जाएगा। निर्वाण पद के लायक हो जाएगा।

सर्वथा निजपरिणति, वही केवलज्ञान

केवलज्ञान का स्वरूप उसी को कहा जाता है कि *पुद्‌गल* (जो पूरण और गलन होता है) परिणति बंद हो जाए। किसी भी प्रकार की *पुद्‌गल* रमणता नहीं, निरंतर खुद में स्वाभाविक रमणता, स्वभाव में, आत्मा में ही निरंतर रमणता। *पुद्‌गल* में ज़रा सी भी रमणता नहीं, वह केवलज्ञान है। जब तक *पुद्‌गल* में थोड़ी-बहुत रमणता है तब तक केवलज्ञान नहीं हुआ है, लेकिन केवलदर्शन है।

सर्वथा निजपरिणति को केवलज्ञान कहा गया है। अभी केवलदर्शन में निजपरिणति उत्पन्न हुई है। जो केवलज्ञान होने पर संपूर्ण होगी। जो निजपरिणति उत्पन्न हुई है, वह क्रमपूर्वक बढ़ती जाएगी और केवलज्ञान स्वरूप में परिणमित होगी। निजपरिणति, वह आत्मभावना है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह आत्मभावना नहीं है।

केवलज्ञान की जो अंतिम सीढ़ी है, उसमें 'स्वरूप' की ही रमणता रहती है। मोक्ष तो हो ही चुका है लेकिन अब जो रमणता हो जाती है, वह रमणता दो प्रकार की है : (1) 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा जानो और जो पसंद नहीं है वैसी रमणता करनी पड़ती है। बाहर

जाना अच्छा नहीं लगता लेकिन पहले जो हस्ताक्षर कर दिए हैं, उस रमणता में रहना पड़ता है। (2) दूसरी है, स्वरूप की रमणता। लोग प्रथम रमणता में तन्मयाकार हो जाते हैं, जबकि अपने लिए भी प्रथम प्रकार की रमणता आती ज़रूर है लेकिन उसमें हम तन्मयाकार नहीं होते।

निश्चय चारित्र उत्पन्न होने पर, अंत में होता है केवलज्ञान

जब तक ऐसी श्रद्धा बैठी है कि, 'मैं आत्मा हूँ', यानी सम्यक् दर्शन हुआ है लेकिन चारित्र उत्पन्न नहीं हुआ है, तब तक केवलज्ञान नहीं हो सकता। जब तक हिसाब है तब तक चारित्र उत्पन्न नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं में तो चारित्र का उदय हुआ है न?

दादाश्री : हाँ! हुआ है। लेकिन चारित्र का वह उदय हमेशा के लिए नहीं रहता। *'उदय थाय चारित्रनो वीतराग पदवास।'* लेकिन फिर *'केवल निजस्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान। कहीए केवलज्ञान ते देह छतां निर्वाण।'* अक्रम है न, इसलिए आत्मा के चारित्र का उदय हो जाता है।

जितने मिथ्याभास, साकारी भाव हैं, जो मोह की वजह से सत्याभास थे, अब, वे जब आते हैं तो वे अच्छे नहीं लगते क्योंकि वे खुद के स्व-सुख को रोकते हैं, वे खुद के अंतराय कर्म हैं। वे मिथ्याभास टल जाएँ तो चारित्र का उदय होगा। बाहर तो व्यवहार चारित्र की सिर्फ परछाई है, व्यवहार चारित्र भी नहीं है। यह तो निश्चय चारित्र है, इससे वीतरागता आती जाती है और अंत में केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

रहती है प्रतीति अखंड लेकिन ज्ञान व अनुभव खंडित

प्रश्नकर्ता : *केवल निजस्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान...*

दादाश्री : हाँ, अब खुद के स्वभाव का निरंतर अखंड ज्ञान बरतता है। निज स्वभाव का अर्थात् आत्मस्वभाव का अखंड ज्ञान बरतता है कि ज्ञाता-द्रष्टा हूँ। ऐसा ज्ञान बरतता रहता है। दिन भर ज्ञाता-द्रष्टा के तौर पर ही देखता रहता है कि, 'अंदर मन क्या कर रहा है, बुद्धि क्या कर रही है, अहंकार क्या कर रहा है', इन सभी का खुद ज्ञाता-द्रष्टा रहता है।

निरंतर अखंड रूप से आत्मरमणता बरते, वह केवलज्ञान है। जब तक निरंतर नहीं रह सकता तब तक केवलज्ञान होने की तरफ का ध्येय है, उसे समकित कहते हैं।

आपको यह निज स्वभाव की अखंड प्रतीति बरतती है, लेकिन अनुभव होने में ज़रा सा ही बाकी रहा है। उस वजह से केवलज्ञान रुका हुआ है और वह भी फिर काल की वजह। यदि काल वह (सत्‌युग) वाला होता न तो नहीं रुकता।

अभी आपको निज स्वभाव का ज्ञान तो बरतता है लेकिन खंडित रूप से बरतता है। यानी कि जब अखंड बरतेगा तब केवलज्ञान कहा जाएगा और अभी का यह अंश केवलज्ञान कहा जाएगा। जितना खंडित उतना ही अंश केवलज्ञान।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वैसा अखंड रूप से बरतता है।

दादाश्री : अखंड रूप से बरतता है। अब इन सभी में खंडित क्यों हो जाता है? अखंड प्रतीति रहती है लेकिन ज्ञान अखंड नहीं रहता। इसका क्या कारण है? तो वह यह कि पिछले कर्म उसे धक्का लगाते हैं। प्रतीति नहीं जाती, लेकिन ज्ञान और अनुभव, ये दोनों अलग चीज़ें हैं। क्या चला जाता है?

प्रश्नकर्ता : *लक्ष* और अनुभव चला जाता है।

दादाश्री : हाँ, इसलिए कहते हैं कि यदि कभी ये कर्म खत्म हो जाएँ तो फिर अपने आप ही केवलज्ञान हो जाएगा।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' का अवलंबन छूटने पर हो जाता है निरालंब

केवलज्ञान अर्थात् एब्सल्यूट। उसे यदि गुजराती में कहना हो तो निरालंब। हमें किसी भी तरह के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है। इसलिए हम पर कोई भी चीज़ असर नहीं डालती, ऐसा स्वरूप है हमारा। जेल में बैठा दिया फिर भी खुद निरालंब, बाहर बैठा दे फिर भी निरालंब। क्योंकि अक्रम विज्ञान है, फुल स्टॉप (पूर्णविराम) विज्ञान है, यह कॉमा (अल्पविराम) विज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का अवलंबन किसे है, आत्मा तो निरालंब है?

दादाश्री : प्रज्ञा को। इस शुद्धात्म पद की प्राप्ति होने पर केवलज्ञान के अंशों की शुरुआत हो जाती है। सर्वांश केवलज्ञान है। कुछ अंशों तक का केवलज्ञान ग्रहण हो जाए तो आत्मा बिल्कुल अलग ही दिखता रहता है, उसके बाद 'एब्सल्यूट' हो जाता है।

शुद्धात्मा हुए अर्थात् आप मोक्ष में आ गए, मोक्ष का वीज़ा मिल गया है आपको। आपकी गाड़ी चल पड़ी, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह वाली। शुद्धात्मा का अनुभव हुआ। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान हुआ है, वह शब्द रूपी भान है और निरालंब होने पर वह केवलज्ञान कहलाता है।

कुछ पुण्यशालियों को ही स्कोप है, बनेंगे वे एकावतारी

प्रश्नकर्ता : निरालंब स्थिति तो एब्सल्यूट हुए बगैर भी अनुभव की जा सकती है न?

दादाश्री : नहीं, एब्सल्यूट होने के बाद ही निरालंब हो सकते हैं। एब्सल्यूट शुरू होने से लेकर संपूर्ण एब्सल्यूट केवलज्ञान होने तक एब्सल्यूट स्थिति है। एब्सल्यूट की बिगिनिंग है और एन्ड भी है।

निरालंब होना, इसका अर्थ ही है केवलज्ञान ही होते जाना। एक तरफ निरावरण, और निरालंब, दोनों साथ में होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : अब अक्रम में क्रम नहीं रहा तो केवलज्ञान में भी क्रम नहीं रहना चाहिए, केवलज्ञान होना ही चाहिए न?

दादाश्री : रहा ही नहीं है, लेकिन *निकाल* (निपटारा) तो करना पड़ेगा न, जो भी इकट्ठा किया है।

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर को भी ऐसा सब था?

दादाश्री : नहीं, लेकिन उन्हें तीन जन्मों के बाद में ऐसा हुआ था, उसके बजाय यह तो एक अवतारी है। अक्रम अर्थात् एक अवतारी। केवलज्ञान हो ही गया है, ऐसा मान लो न अब! लेकिन उसका क्या करना है हमें? मुँह से ऐसा बोलना गुनाह है। जो चीज़ नहीं है, वैसा बोलना गुनाह है।

सही वस्तु के लोगों को अंतराय पड़े हुए होते हैं इसलिए यह सही वस्तु लोगों के काम नहीं आती। यह तो कुछ ही लोग, शास्त्रों में लिखा हुआ है कि साढ़े बारह हज़ार लोग एक अवतारी होंगे। तो उतने ही लोगों के लिए स्कोप है। और यह चार अरब की बस्ती है, बोलो!

प्रश्नकर्ता : कितने? बारह हज़ार लोग?

दादाश्री : साढ़े बारह हज़ार लोग एकावतारी होंगे, उतना स्कोप है। बाकी स्कोप ही नहीं है न! यानी इसकी (टोलियाँ) तो नहीं होती न, यह सब तो गुप्त रूप से चलता रहता है।

काल और कर्मों के हिसाब से रुका है, वर्तन रूपी केवलज्ञान

केवलज्ञान सत्ता नहीं है। सत्ता अर्थात् वह आचरण के रूप में नहीं आएगा, केवलज्ञान वर्तन के रूप में नहीं आएगा, समझ के रूप

में आएगा। क्योंकि अभी वर्तन रूपी केवलज्ञान बंद हो चुका है, इस दूषमकाल की वजह से। भगवान ने मना किया है। समझ रूपी केवलज्ञान हो पाएगा, और वह फिर एक घंटे में हो जाएगा, ऐसा है।

दादा का यह संग, यह सत्संग तो शुद्धात्मा का संग है, यहाँ सब से अंतिम संग दिया जाता है। केवलज्ञान के अलावा और कुछ भी नहीं दिया जाता। ज्ञान तो वही का वही रहता है, लेकिन जैसा प्रवर्तन में रहना चाहिए, काल के आधार पर वैसा रह नहीं पाता।

हमने आपके, हमारे और केवली भगवान के बीच बहुत अंतर नहीं रखा है। वीतराग अर्थात् मूल जगह वाला, स्वरूप का ज्ञान-दर्शन वह। हम आपको पूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन देते हैं। उससे आपको संपूर्ण केवलदर्शन उत्पन्न होता है लेकिन काल की वजह से 360 डिग्री वाला संपूर्ण केवलज्ञान पचता नहीं है। तीसरा और चौथा *आरा* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) ऐसे होते हैं कि केवलज्ञान होने में देर ही नहीं लगती। यदि कभी ज़रा सा भी, तुरंत समतापूर्वक सहन कर लिया तो केवलज्ञान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आज इंसान कितना-कितना सहन करता है फिर भी कुछ नहीं होता।

दादाश्री : उन दिनों (तीसरे, चौथे *आरे* में) कर्ज़ा नहीं होता था न, किसी प्रकार का! नाम मात्र को भी कर्ज़ा नहीं, नफा ज़रूर रहता था जबकि आज तो पाँच-पाँच करोड़ का तो कर्ज़ा है! कर्ज़ा है न? यह सारा क्या लेकर आए हैं? बाकी, केवलज्ञान तो प्राप्त हो गया है आपको, लेकिन इस काल की वजह से टच नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : काल के एविडेन्स की कमी है?

दादाश्री : काल होना चाहिए न! अगर हम रात को दो बजे चने लेने निकलें तो कौन देगा? दिन में मिलते हैं। वह तो, काल के अनुसार ही सारा काम होता है। वेदांत ने अभी इस समय को

भयंकर कलियुग कहा है और जैनों ने दूषमकाल कहा है, ऐसे विचित्र काल में यह केवलज्ञान दिया है। केवल आत्मा को ही केवलज्ञान कहते हैं। यहाँ आत्मा के अलावा, अन्य कोई भी मिलावटी चीज़ नहीं है इसमें। केवल निर्भेल (मिलावट रहित) आत्मा दिया है। केवलज्ञान दिया है लेकिन केवलज्ञान बरतने नहीं देता। बाहर के अंतराय नहीं टूटे हैं इसलिए केवलदर्शन तक ही रहता है इस काल में। सभी अंतराय टूट सकें, ऐसे भी नहीं हैं। इसलिए इस काल में पच सके, ऐसा नहीं है।

चौथे *आरे* में केवलज्ञान तक जा सकते थे, अभी क्षायक समकित तक जा सकते हैं। कृष्ण भगवान को जो प्राप्ति हुई थी, वहाँ तक। आपको क्षायक समकित प्राप्त हुआ है इसलिए अब कर्म नहीं बंधेंगे। फिर चाहे आप ऑफिस में आओ-जाओ, सबकुछ करो, लेकिन कर्म नहीं बंधेंगे। उस हद तक का काल है यह। ज्ञानी पुरुष सौ प्रतिशत दे देते हैं, तो हो गया।

यह निरंतर जागृति है। इसीलिए जब यह फुल फ्लेज (संपूर्ण) हो जाएगी तो केवलज्ञान कहलाएगा। यानी यह निरंतर प्रतीति उत्पन्न हो गई है। एक क्षण के लिए भी प्रतीति नहीं जाती कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : तब तो केवलज्ञान ही हो जाएगा।

दादाश्री : वह तो हो ही जाएगा। यह केवलज्ञान किसलिए रुका हुआ है इन सब का? तो वह इसलिए कि यह काल बाधक है। यह क्षेत्र बाधक नहीं है लेकिन यह काल बाधक है। वह भले ही बाधक रहे। हमें नहीं हो पाए तो हर्ज भी क्या है? केवलज्ञान जैसा सुख बरते तो क्या परेशानी है?

प्रश्नकर्ता : अंश (केवलज्ञान) हो जाए, तब भी बहुत है।

दादाश्री : इसमें तो अंश ही बाकी है।

तीर्थंकरों की अनुपस्थिति से रुका है केवलज्ञान

अब, आपको जो दिया है, वह एब्सल्यूट ज्ञान है, इसीलिए तो अगले ही दिन से प्रकट हो जाता है, वर्ना प्रकट ही नहीं होता। लेकिन पचता नहीं है, इस काल में। इसलिए मोक्ष में नहीं जा सकते।

प्रश्नकर्ता : पाचन नहीं होता है, क्योंकि कपैसिटी नहीं है न इसलिए?

दादाश्री : काल की विचित्रता है और कर्म बहुत हैं। इस काल के आधार पर नियम ही ऐसा है कि इस काल में पास नहीं हो पाते, इस काल में अंतिम हद तक नहीं जा पाते। इस काल की विचित्रता है इस क्षेत्र में, इसीलिए हमारा भी रुका हुआ है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान रुक भी सकता है क्या? इस काल के हिसाब से?

दादाश्री : नहीं, कर्म पूर्ण नहीं होते। ऐसे ठसाठस कर्म भरकर लाया है न, कि वे खत्म नहीं हो पाते। क्योंकि कम्प्रेस कर-करके लाया है।

उसके कर्म इतने सारे हैं कि जैसे रुई को प्रेस कर-करके उसकी गट्ठर बनाते हैं न, तो उस तरह से प्रेस किए हुए कर्म हैं इन लोगों के। सुबह मोटर लेकर निकलता है तो पूरे दिन मोटर में घूमता रहता है फिर भी कर्म खत्म नहीं होते। तो अगर चल कर जाए तो कब खत्म होंगे? निरे कर्मों की ही पूँजी है। ढ़ेरो कर्म लेकर आया है। इतने सारे कर्मों का जबरदस्त संग्रह है कि कर्म खत्म ही नहीं होते।

अब, यह ज्ञान निर्विकल्प है इसलिए जब से यह ज्ञान प्रकट होता है तभी से केवलज्ञान के अंशों को इकट्ठा ही करता रहता है। जब अंश इकट्ठे होते-होते 360 अंश तक पहुँच जाएँगे तब पूर्णाहुति हो जाएगी, लेकिन 360 अंश होने में टाइम लगेगा। बहुत सारे कर्म,

जैसा ठीक लगा, वैसे गूँथकर लाए हैं तो वे सारे हिसाब चुकाने तो पड़ेंगे ही न?

और इस काल में तीर्थंकर भी नहीं हैं न! जब तीर्थंकर होते हैं न, तब तो तीर्थंकरों को देखते ही संपूर्ण हो जाते हैं, सिर्फ दर्शन करते ही! मैं यह जो ज्ञान देता हूँ न, उसमें (तीर्थंकरों की) उपस्थिति की ही कमी है। अन्य कोई कमी नहीं है। आज अगर यहाँ पर तीर्थंकर साहब आ जाएँ तो आप सभी को केवलज्ञान हो जाए। केवली बनने तक का ज्ञान देता हूँ मैं। मैं यह केवलज्ञान ही देता हूँ। अब आपको तीर्थंकर के दर्शन करने बाकी हैं। यहाँ पर माल तैयार हो चुका है इसलिए दर्शन करते ही हो जाएगा।

तीर्थंकरों के दर्शन मात्र से ही, उत्पन्न होती है अंतिम कक्षा

प्रश्नकर्ता : ये सब जो अपने महात्मा हैं, ये सब आगे की कक्षा में पहुँच पाएँगे न?

दादाश्री : वह तो, कभी न कभी पहुँचना ही है, और कुछ नहीं। यह कक्षा कब मिलती है? तीर्थंकर को देखते ही और दर्शन करते ही वैसी कक्षा हो ही जाती है। सिर्फ दर्शन से कक्षाएँ उत्पन्न होती हैं। आगे की कक्षाएँ सिर्फ दर्शन से ही, उनकी स्थिरता देखें, उनका प्रेम देखें, तो सब उत्पन्न हो जाएगा। वह कहीं शास्त्रों के बनाने से नहीं बनी है। यह तो देखने से ही हो जाता है। अब अंतिम, अभी अगर यहाँ तीर्थंकर आ जाएँ तो आप सब को केवलज्ञान हो जाएगा। ऐसा होगा नहीं, और केवलज्ञान हो नहीं पाएगा क्योंकि वैसा काल नहीं है। चौथा *आरा* आ नहीं सकता, और कुछ बदल नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : तब तक दूज का चंद्रमा हो जाए तो भी बहुत है।

दादाश्री : फिर भी इस काल में काफी हो गया। इसमें तो, सिर्फ अंश ही बाकी रहा है। क्योंकि यदि चिंता नहीं होती है, तो वह कैसा केवलज्ञान है? कितना बाकी रहा?

प्रश्नकर्ता : अभी शरीर होने के बावजूद भी हम मुक्तता अनुभव करते हैं तो मृत्यु के बाद में फिर मोक्ष में जा पाएँगे?

दादाश्री : नहीं, इस काल में इस क्षेत्र से मोक्ष में नहीं जा सकते और संपूर्ण मुक्ति नहीं हो सकती। संपूर्ण मुक्ति किसे कहा जाता है? केवलज्ञान को। केवल में जितने अंश बाकी रहते हैं, उतनी ही मुक्ति कम है। फिर भी मुक्त रूप से उसका सुख तो उसे पूरी तरह से बरतता ही है। केवलज्ञान होने के बाद ही संपूर्ण मुक्ति कह सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : उन चार अंशों की पूर्ति के लिए महाविदेह क्षेत्र में जाना पड़ेगा या यहीं से हो जाएगा?

दादाश्री : जाना ही पड़ेगा न! महाविदेह क्षेत्र में तो जाना पड़ेगा। क्योंकि यहाँ से सीधे हो सके, ऐसा नहीं है। क्योंकि, केवलज्ञान प्राप्त व्यक्ति होने चाहिए, उनके सिर्फ दर्शन से ही मुक्ति! अंत में सिर्फ वही दर्शन करने बाकी रहे। लोग कहेंगे, 'सभी जगह यात्रा कर आए, लेकिन रणछोड़ जी के तो बाकी रह गए', नहीं कहते ऐसा? रणछोड़ जी की यात्रा भी कर ले, तब ऐसा कहा जाएगा कि यात्रा पूरी हो गई। उसी प्रकार यहाँ पर, हमारे पास अंतिम दर्शन हैं लेकिन इससे आगे का एक दर्शन बाकी है, वे दर्शन हो जाएँगे तो मुक्ति हो जाएगी। वे दर्शन यहाँ नहीं मिल सकते, इस पद पर (ज्ञानी के पद पर) नहीं है।

'लोक' के सभी ज्ञेय, दिखाई देते हैं केवलज्ञान में

प्रश्नकर्ता : जब उस क्षेत्र में केवलज्ञान होगा तो हमें पता चलेगा?

दादाश्री : हाँ! पता क्यों नहीं चलेगा? केवलज्ञान होने पर हमें पता क्यों नहीं चलेगा? खुद पूरी दुनिया को देख सकेगा एट ए टाइम। जहाँ बैठेगा वहाँ से पूरी दुनिया को देख सकेगा।

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मांड की सभी चीज़ें किस प्रकार से दिखाई देती हैं?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा हो जाए तब सभी ज्ञेय दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकर सिद्धक्षेत्र का जो वर्णन करते हैं, वह सब ज्ञानियों को दिखाई देता होगा?

दादाश्री : केवलज्ञान होने के बाद सभी कुछ दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान अर्थात् यह कि लोकालोक का स्वरूप दिखाई देता है?

दादाश्री : लोकालोक का स्वरूप दिखाई देता है, वह बात सही है। लोक और अलोक पर से लोकालोक शब्द बना है। लोक विभाग किसे कहते हैं, जिसमें ज्ञेय चीज़ें हैं और अलोक में ज्ञेय चीज़ें नहीं हैं। अलोक में सिर्फ आकाश ही है। यानी इसमें, लोक में ज्ञेय है, इसलिए ज्ञाता उन ज्ञेयों को देख सकता है। जबकि अलोक में देखने को कुछ भी नहीं है, इसलिए फिर वहाँ पर (प्रकाश) नहीं पहुँच सकता।

आत्मा जब संपूर्ण हो जाता है तब अंतिम दशा में होता है। तब आत्मा देह से अलग हो जाता है, वह पूरे लोक में फैल जाता है, पूरा लोक प्रकाशमान हो जाता है। उसमें पूरे जगत् की सभी चीज़ें दिखाई देती हैं। देह में होने के बावजूद भी यह तो दिखाई देता है, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। केवलज्ञान अर्थात् क्या? एब्सल्यूट ज्ञान। सभी कुछ दिखाई देता है। यह जो नहीं दिखाई देता है, इसका क्या कारण है? आवरण! हमारे बनाए हुए आवरण!

अब धीरे-धीरे सभी कुछ दिखाई देगा। पहले भूलें दिखाई देंगी। जैसे-जैसे भूलें खत्म करेंगे वैसे-वैसे आगे जा पाएँगे, और वह भी मल्टिप्लिकेशन से। एक शक्ति बढ़ती जाएगी, कैसे? मल्टिप्लिकेशन से। आज दो शक्ति उत्पन्न होगी, कल दो दुनी चार हो जाएगी, चार

चौक सोलह हो जाएगी। सोलह गुणा सोलह, यानी दो सौ छप्पन, इस तरह से। विस्फोट ही...

जब डिस्चार्ज में रस खत्म होगा तब ज्ञान प्रकट होता जाएगा

मूल वस्तु क्या है, वह समझने लगे हो, शुद्धात्मा को। आत्मा और संयोग तो सिर्फ महावीर भगवान को ही दिखाई देते थे, केवलज्ञान हुए बिना अन्य किसी को नहीं दिख सकते, जबकि आपको वे दिखने लगे हैं!

प्रश्नकर्ता : तब तो हम में भी वह केवलज्ञान स्वरूप ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : वही है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह ज्ञान बाहर क्यों नहीं निकलता?

दादाश्री : बाहर कैसे निकलेगा लेकिन? अभी तो अंदर मीठा लगता है न? जितना मीठा लगेगा उतना ही ज्ञान पर आवरण आएगा। जैसे-जैसे डिस्चार्ज में रस खत्म होता जाएगा वैसे-वैसे केवलज्ञान स्वरूप प्रकट होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान हो जाए, उसके लिए क्या मेहनत करनी पड़ेगी?

दादाश्री : नहीं! यह तो सहज मार्ग है। नो लॉ, लॉ है। मेहनत से 'केवल' नहीं होता। सहज होना चाहिए, अप्रयत्न दशा आनी चाहिए।

अब देखना है खुद को, केवलज्ञान स्वरूप से

प्रश्नकर्ता : 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' यदि ऐसा ज़्यादा बोलें तो कोई हर्ज है?

दादाश्री : कोई हर्ज नहीं है, लेकिन शब्द रूप में बोलने का

कोई अर्थ नहीं है। समझकर बोलना अच्छा। जब तक अशुद्ध बातें आने पर अंदर परिणाम विचलित हो जाते हैं तब तक 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलना अच्छा है। उसके बाद आगे की श्रेणी में ऐसा बोल सकते हैं, 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ'। यह निर्विकल्प ज्ञान है इसलिए, 'केवलज्ञान स्वरूप हूँ', ऐसा बोलने में हर्ज नहीं है। दिन में ऐसा पाँच-दस बार बोलना और कई बार खुद को केवलज्ञान स्वरूप से देखना।

केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखाई देता है? पूरे शरीर में आकाश जितना ही भाग खुद का दिखाई देता है। सिर्फ आकाश ही दिखाई देता है, अन्य कुछ भी नहीं दिखता, उसमें कोई मूर्त वस्तु नहीं होती। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास करते जाना है। 'ज्ञानी पुरुष' के कहने से अनादिकाल के अन्अभ्यास को अभ्यास होता जाता है। अभ्यास हो जाए तो फिर शुद्ध हो जाएगा!

गुणों की *भजना* (उस रूप होना) करने से स्थिरता रहती है। यह मेरा स्वरूप है और यह नहीं है। यह जो हो रहा है, वह मेरा स्वरूप नहीं है, ऐसा बोलने से भी विचलित करने वाले परिणाम बंद हो जाएँगे, असर नहीं होगा। आत्मा क्या है, उसके गुण सहित बोलना चाहिए, देखना चाहिए, तब वह प्रकाशमान होगा।

जागृति संपूर्ण होने पर, होता है केवलज्ञान

इस ज्ञान का अर्थ क्या है? जागृति। अपनी यह आत्मजागृति है और इसका फल है केवलज्ञान। निरंतर जागृति रहनी चाहिए। यदि एक सेकन्ड के लिए भी अजागृति रहे तो वह नहीं चलेगा। संपूर्ण जागृति न रहे लेकिन कुछ अंशों तक तो निरंतर रहती है! संपूर्ण जागृति हो जाए तब केवलज्ञान कहा जाएगा, संपूर्ण और निरंतर! आप में अपूर्ण और निरंतर जागृति की शुरुआत हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : अपूर्ण और निरंतर जागृति, यह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : अर्थात् केवलज्ञान नहीं, पूर्ण होता तो केवलज्ञान

कहलाता। अत: आपको अब पुरुषार्थ करना है, आप पुरुष हो गए हो, इसलिए। तो अब आप पुरुषार्थ करो। आज्ञा का जितना पालन करोगे अंदर जागृति उतनी ही बढ़ती जाएगी, पूर्णता उत्पन्न होती जाएगी। जिस हद तक जागृति पहुँची, आत्मा के उतने ही नज़दीक पहुँचे। जितने नज़दीक गए उजाला उतना ही अधिक, उतना ही प्रकाश बढ़ता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार से अब जैसे-जैसे जागृति बरतती जाएगी वैसे-वैसे ज्ञाता-द्रष्टापन भी बढ़ता जाएगा?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टापन जागृति के अधीन है, बुद्धि के अधीन नहीं है। जगत् बुद्धि के अधीन है। बुद्धि और जागृति, दो अलग चीज़ें हैं। अंत में जब जागृति पूर्ण हो जाती है तब केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार यह टेपरिकॉर्डर सभी आवाज़ों को वीतराग भाव से ग्रहण कर सकता है उसी प्रकार से, जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे क्या ऐसा होगा कि प्रत्येक पर्याय को देख सकेगा?

दादाश्री : सबकुछ देख सकेगा। जागृति ही आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : जागृति को देखने वाला आत्मा है या जागृति खुद आत्मा है?

दादाश्री : जागृति खुद ही आत्मा है। आत्मा अन्य कोई चीज़ नहीं है, जागृति ही है।

आपको जागृति तो आ गई है। अब जागृति बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान तक पहुँचेगी। केवलज्ञान अर्थात् फुल स्कोप की जागृति। अभी यह कुछ हद तक पतली हो गई है। निरंतर जागृति को केवलदर्शन कहा जाता है, अगर फुल स्कोप में हो जाए तो केवलज्ञान कहा जाता है। जागृति जब पूर्णत्व तक पहुँच जाए, उसी को केवलज्ञान कहते हैं। फिर उससे आगे स्टेशन नहीं है। यही अंतिम स्टेशन है।

जागृति ही ज्ञान है और संपूर्ण जागृति को ही केवलज्ञान कहते हैं। तमाम प्रकार की जागृति, एक-एक अणु, एक-एक परमाणुओं की जागृति, उसी को कहते हैं केवलज्ञान। केवलज्ञान की जो अंतिम सीढ़ी है, उसमें केवल स्वरूप की ही रमणता रहती है।

संपूर्ण जागृति ही केवलज्ञान है और केवलज्ञान खुद ही परमात्मा है और उन परमात्मा के साथ 'हम' खुद बातचीत करते हैं निरंतर और आप सब हमारे साथ में बैठे हैं, फिर दुःख रह सकता है क्या किसी को? परमात्मा खुद कभी भी प्रकट नहीं होते, चौबीस तीर्थंकरों के अलावा परमात्मा खुद प्रकट नहीं हुए हैं!

उपयोग, उपयोग में, वह है विज्ञान स्वरूप

मैंने जो ज्ञान दिया है, वह आपको दर्शन में परिणमित हुआ है। अब यह जो ज्ञान है, हमारे साथ बैठोगे वैसे-वैसे उतने अंशों तक बढ़ता जाएगा और वैसे-वैसे शुद्ध उपयोग उत्पन्न होगा। जितना शुद्ध उपयोग उत्पन्न हुआ, उतना ज्ञान है। संपूर्ण रूप से निरंतर वैसा शुद्ध उपयोग बरते तो उसे कहते हैं केवलज्ञान! संपूर्ण शुद्ध उपयोग को केवलज्ञान कहा गया है। उसमें (महात्मा में) शुद्ध उपयोग में से केवलज्ञान के बीज बोए गए, अंश केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसे सर्वांश होने में टाइम लगेगा, हर किसी के पुरुषार्थ के अनुसार। यदि हमारी आज्ञा में रहे तो उसे संपूर्ण शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : आपने बताया कि, 'हमारा उपयोग, उपयोग में रहता है', तो इसमें दो उपयोग हुए, तो कौन सा उपयोग कौन से उपयोग में रहता है?

दादाश्री : पहला उपयोग यानी कि जो शुद्ध उपयोग है, वह। वह उपयोग अर्थात् खुद अपने आप को शुद्ध देखना, दूसरों को शुद्ध देखना, आज्ञा में रहना, यह सारा शुद्ध उपयोग कहलाता है और उस शुद्ध उपयोग पर भी उपयोग रखे कि शुद्ध उपयोग कैसे बरतता है, तो

उसे केवलज्ञान कहते हैं। पहला शुद्ध उपयोग कहलाता है, और उपयोग उपयोग में, वह केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : वह उपयोग ज्ञान स्वरूप कहलाता है?

दादाश्री : शुद्ध उपयोग ज्ञान स्वरूप कहलाता है और उपयोग उपयोग में रहे, उसे विज्ञान स्वरूप कहते हैं, केवलज्ञान स्वरूप कहते हैं। शुद्ध उपयोग की जो जागृति है, उस पर भी जागृति, वह केवलज्ञान की जागृति है, अंतिम जागृति है। 'ज्ञानी' की जागृति, वह शुद्ध उपयोग कहलाती है और उससे आगे की जागृति, वह केवलज्ञान का उपयोग कहलाता है। हमें जागृति पर जागृति रहती है, लेकिन जैसी जागृति तीर्थंकरों को रहती है उतनी अधिक नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : जिस समय अंतःकरण की क्रिया में उपयोग रहता है, ज्ञेय-ज्ञाता संबंध रहता है, उस समय खुद ज्ञाता, और अंतःकरण ज्ञेय रहता है, केवलज्ञान में क्या फिर उस पर भी उपयोग रहता है?

दादाश्री : इस ज्ञेय-ज्ञाता संबंध के उपयोग को 'वह' उपयोग 'जानता है' कि उपयोग कितना कच्चा रहा, कितना पक्का हो गया। तीर्थंकरों का उपयोग ज्ञेय-ज्ञाता पर भी रहता है, सब 'केवल' रहता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् केवलज्ञान में ज्ञेय से अलग हो गया कहा जाएगा?

दादाश्री : केवलज्ञान में ज्ञेय से अलग ही रहता है। लेकिन ज्ञेय-ज्ञाता वाले संबंध में ज्ञेय से अलग नहीं हो जाता, उससे संबंध रहता है और वह संबंध को जानता है कि ऐसा संबंध है।

उपयोग, उपयोग में रहता है अर्थात् जागृति, जागृति में ही रहती है, बाहर नहीं खींचता। जो बाहर दिखाई देता है, वह सहज रूप से दिखाई देता है।

सर्वांश वीतरागता से प्रकट होता है, संपूर्ण केवलज्ञान

बाहर का आप देखोगे, वह तो अलग बात है, लेकिन जब आप अपने अंदर का ही सबकुछ देखा करोगे, उस समय आप केवलज्ञान सत्ता में होंगे। लेकिन अंश केवलज्ञान होता है, सर्वांश नहीं।

जितने समय तक आप ज्ञायक रहते हो उतने समय तक आप भगवान, उतने समय तक केवलज्ञान के अंश इकट्ठे होते हैं।

वीतराग होने की शुरुआत से लेकर वीतराग होने के एन्ड तक वीतराग होते, होते, होते, आगे बढ़कर और जब सर्वांश रूप से वीतराग हो जाए तब केवलज्ञान होता है। केवलज्ञान पहले नहीं होता, अंश वीतराग होते, होते, होते, होते जितने अंशों तक वीतराग हुआ, उतने अंशों तक केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान भी उतने अंशों तक माना जाता है। उसके बाद संपूर्ण केवलज्ञान कब माना जाता है? जब सर्वांश वीतराग हो जाए तब संपूर्ण केवलज्ञान होता है।

पाँच आज्ञा पालन करने से, प्राप्त होगा केवलज्ञान निःशंक ही

अभी तो आपको मेरी पाँच आज्ञाओं का पालन करना है। आज्ञा जितनी पालन करोगे उतना केवलज्ञान स्वरूप होते जाओगे।

ये पाँच वाक्य ही केवलज्ञान के यथार्थ साधन हैं। उन साधनों से काम लेने पर केवलज्ञान उत्पन्न होगा। यह संसार बाधक नहीं है। इन पाँच वाक्यों का संसार से लेना-देना नहीं है।

आत्मज्ञान और ज्ञानी की आज्ञा के अनुसार बरते, तब फिर केवलज्ञान होता है। ज्ञानी से मिलने के बाद केवलज्ञान प्राप्ति बहुत दूर नहीं है, वर्ना करोड़ों सालों तक, करोड़ों जन्मों में भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : कृपालुदेव की बुक में पढ़ा था कि सत्संग में रहोगे तो केवलज्ञान नज़दीक है।

दादाश्री : वह सही है। सही लिखा है। आपको केवलज्ञान के लिए जल्दबाज़ी नहीं करनी है। आज तो इसी बात की ज़ल्दी करनी है कि रौद्रध्यान व आर्तध्यान न हो।

प्रश्नकर्ता : अभी जो ज़रूरी है, पहले वही करना चाहिए न?

दादाश्री : केवलज्ञान तो अपने आप ही सामने आ जाता है। उसे लेने नहीं जाना पड़ता।

प्रश्नकर्ता : दादा, उस बोझ को हल्का करने के लिए आपसे अरज़ी की है।

दादाश्री : वह ठीक है। आपको बोझ नहीं रखना है। वह तो अपने आप ही सामने आ जाएगा अब। इन आज्ञाओं का पालन करोगे न, तो वह पद सामने आएगा ही। मुझे साफ-साफ बता देना चाहिए न, कि यह क्या है! करेक्टनेस तो आनी चाहिए न? केवलज्ञान! एब्सल्यूट!

व्यवस्थित के पूर्ण ज्ञान को ही कहते हैं केवलज्ञान

जगत् के लोग कहते हैं कि 'केवलज्ञान' करने की चीज़ है। नहीं, वह तो जानने की चीज़ है। करने की चीज़ तो कुदरत चला रही है। 'करना' ही भ्रांति है। यह शक्ति कितने ऐश्वर्य से आपके लिए कर रही है! उस शक्ति को तो पहचानो। यह तो 'व्यवस्थित' शक्ति का काम है।

ऐसा है, यदि हमारे दिए हुए 'व्यवस्थित' को एक्ज़ेक्ट समझ जाए तो उस तरफ केवलज्ञान हो जाएगा। ऐसा है कि जितना समझ में आएगा और फिट हो जाएगा तो उसके उस तरफ केवलज्ञान सामने आ जाएगा। हमारी समझ में पूर्ण रूप से आने के बाद में हमने आपको यह दिया है और यह हमारी कितने ही जन्मों की खोज है।

व्यवस्थित तो बहुत बड़ी चीज़ है। व्यवस्थित को समझना और

एक तरफ केवलज्ञान होना, दोनों साथ में होते हैं। अत: इस व्यवस्थित को पूरी तरह से समझना चाहिए। व्यवस्थित समझ में आ गया कि कल्याण हो गया। जिस दिन व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाएगा, उस दिन केवलज्ञान हो जाएगा। व्यवस्थित के पूर्ण ज्ञान को ही कहते हैं केवलज्ञान।

प्रश्नकर्ता : व्यवस्थित के पूर्ण ज्ञान को ही केवलज्ञान कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, केवलज्ञान! यह सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं, अवस्था मात्र कुदरती रचना है, ऐसा जब फिट हो जाएगा तब केवलज्ञान उत्पन्न होगा।

समझते-समझते अंतिम व्यवस्थित, करवा देगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : सौ प्रतिशत व्यवस्थित में आ जाएँगे तब यह कर्तापन चला जाएगा?

दादाश्री : व्यवस्थित सौ प्रतिशत एक्ज़ेक्ट समझ में आ जाएगा तो केवलज्ञान हो जाएगा। तब तक जितना समझ में आए उतना केवलज्ञान खुलेगा धीरे-धीरे। व्यवस्थित बुद्धि से समझ में आ जाए ऐसा नहीं है, वह दर्शन से समझ में आता है।

जिसे इस जगत् का कुछ भी नहीं आता, और ऐसा समझ में आ जाए कि, 'व्यवस्थित है' तो ऐसा कहा जाएगा कि उसे केवलज्ञान हो गया है। यह व्यवस्थित, व्यवस्थित ही है लेकिन व्यवस्थित समझ में आना चाहिए, अनुभव में आना चाहिए। और यह व्यवस्थित समझ में आ जाएगा न, तो फिर कुछ भी समझने जैसा रहेगा ही नहीं। जो व्यवस्थित को पूरी तरह से समझ जाए, वह संपूर्ण ज्ञाता-द्रष्टा रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित ठीक से समझ में आ जाए तो केवलज्ञान है', इसे ज़रा ज़्यादा समझाइए।

दादाश्री : यह व्यवस्थित जितना समझ में आएगा न, उतने ही केवलज्ञान के अंश खुलते जाएँगे। और जितना समझ में आ जाएगा फिर उस साइड में देखना रहेगा ही नहीं। जिस ज्ञान में कुछ भी देखना बाकी न रहे, वह केवलज्ञान कहलाता है। अत: जब पूरा रिलेटिव ज्ञान खत्म हो जाता है न, तो दूसरी तरफ केवलज्ञान पूरा कम्प्लीट हो चुका होता है।

व्यवस्थित को उस हद तक समझते-समझते जाना है कि अंतिम व्यवस्थित, केवलज्ञान उत्पन्न करेगा! यह व्यवस्थित हमारी कितनी सुंदर खोज है! यह अद्‌भुत खोज है! यह व्यवस्थित तो समझ में आ गया है न, पूरी तरह से?

संपूर्ण व्यवस्थित समझ में आने पर होगी पूर्णाहुति

प्रश्नकर्ता : पूरी तरह से समझ गया, ऐसा कब कहा जाएगा?

दादाश्री : जैसे-जैसे व्यवस्थित के पर्याय समझ में आते जाएँगे, जितने अधिक पर्याय समझ में आएँगे उतना ही अधिक लाभ होगा। यह व्यवस्थित सब को समझ में ज़रूर आता है, लेकिन हर एक की छलनी, जागृति के अनुसार है। उसके बाद जब संपूर्ण पर्याय समझ में आ जाएँगे तब उस दिन केवलज्ञान हो चुका होगा! मुझे भी चार डिग्री के पर्यायों की कमी है। इसलिए 'व्यवस्थित' समझने जैसी चीज़ है।

जितनी रोंग मान्यताएँ खत्म होंगी उतनी ही जागृति बढ़ेगी और उतना ही उसे 'व्यवस्थित' समझ में आएगा। जैसे-जैसे व्यवस्थित समझ में आता जाएगा वैसे-वैसे फिर जागृति बढ़ती जाएगी और जब संपूर्ण व्यवस्थित समझ में आ जाएगा तब पूर्णाहुति! लेकिन 'व्यवस्थित' एकदम से समझ में नहीं आता।

अपने एक-एक शब्द को समझ जाए न, यदि एक ही सही शब्द को अच्छी तरह से समझ जाए न, तो ऐसा है कि ठेठ केवलज्ञान तक ले जाएगा, लेकिन समझ में आना चाहिए।

यह जो व्यवस्थित समझ में आया है न, वह तो अभी स्थूल समझा है। अभी तो पूरे सूक्ष्म व्यवस्थित को समझना है, उसके बाद सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम। व्यवस्थित पूरी तरह से समझ में आ जाए तो केवलज्ञान हो जाता है।

बुद्धि–अहंकार के निर्मूल होने पर दिखाई देगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए अबुध होने की ज़रूरत है। अबुध हुए बगैर केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।

दादाश्री : केवलज्ञान नहीं हो सकता, वह बात सही है। क्योंकि केवलज्ञान संपूर्ण दशा है, मूल प्रकाश की। वह मूल प्रकाश बुद्धि से अलग है। जिसमें अहंकार नाम मात्र को भी नहीं है, वह है प्रकाश जबकि यह अहंकारी ज्ञान, यह बुद्धि है।

प्रश्नकर्ता : अब अबुध होना है?

दादाश्री : नहीं! अबुध तो, वह ज्ञान लेने के बाद में स्वाभाविक रूप से होता ही रहता है। जब बुद्धि का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होगा, अहंकार निर्मूल हो जाएगा, तब पूरा 'केवलज्ञान' दिखाई देगा। हम बुद्धि का उपयोग नहीं करते हैं, हम 'अबुध' हैं।

पुद्गल का आकर्षण खत्म होने पर प्राप्त होगा केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : प्रत्येक *पुद्गल* का आकर्षण सर्वथा चला जाए तब केवलज्ञान होता है या फिर अहंकार जाने के बाद केवलज्ञान होता है?

दादाश्री : जीवित अहंकार के चले जाने के बाद डिस्चार्ज अहंकार रहता है। वह मृत अहंकार है, वह जीवंत नहीं है। लेकिन जब तक मृत अहंकार है तब तक शरीर कार्य कर सकता है। जब वह चला जाता है तब सारा आकर्षण चला जाता है, तब केवलज्ञान होता

है। शरीर रहता है लेकिन खुद को आकर्षण नहीं होता, किसी भी प्रकार का आकर्षण!

प्रश्नकर्ता : क्या आकर्षण *पुद्गल* का गुण कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, आकर्षण *पुद्गल* का गुण कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जिसका अहंकार जा चुका हो, क्या उसे *पुद्गल* का आकर्षण रहता है?

दादाश्री : उसे खुद को नहीं रहता लेकिन *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण रहता है। तेरा अहंकार चला गया है तो तुझ पर असर नहीं होगा, लेकिन चंदू को रहेगा, *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण रहेगा। जब तक उसमें से रस नहीं खिंच जाता, तब तक नया रस उत्पन्न नहीं होता, और पुराने रस का निबेड़ा ला देता है। जहाँ पर नया रस उत्पन्न हो रहा है, वहाँ पर संसार है। कॉज़ेज़ और इफेक्ट, दोनों साथ में हों तो उसे संसार कहते हैं। यह तो सिर्फ इफेक्ट ही है। इसमें कॉज़ेज़ नहीं है, *निकाली* चीज़ है यह।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण नहीं रहता?

दादाश्री : वह भी नहीं रहता। वह आकर्षण आपको नहीं है, लेकिन *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण है। जब आपका वह निकल जाएगा तब केवलज्ञान होगा। हम में चार अंश की कमी है इसलिए हमारे चार अंश बाकी हैं। हमें अन्य कोई आकर्षण नहीं है।

आत्मज्ञान के बाद छद्मस्थ, केवली हैं विदेही, निर्वाण होने पर महाविदेही

प्रश्नकर्ता : आत्मा की तीन अवस्थाएँ कही गई हैं : एक छद्मस्थ अवस्था, दूसरी विदेही अवस्था और तीसरी महाविदेही, इस प्रकार जो तीन अवस्थाएँ बताई गई हैं, उनका आप ज़रा वर्णन कीजिए।

दादाश्री : जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता न, तब तक सभी अवस्थाएँ छद्मस्थ कहलाती हैं।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान होने तक?

दादाश्री : हाँ, केवलज्ञान होना, वह विदेही अवस्था है, और मुक्त हो गया तो वह महाविदेही। इसका ऐसा अर्थ नहीं लगाना है कि महाविदेह तो अन्य क्षेत्र है। इसके ऐसे अर्थ लगाने की ज़रूरत ही नहीं है। महाविदेही का मतलब क्या है? मुक्त हो गया यहाँ से।

प्रश्नकर्ता : मुक्त हो गया!

दादाश्री : देह से। विदेह अर्थात् देह सहित मोक्ष। ऐसे तीर्थंकर भगवान हैं या फिर केवली।

फाइलों का निकाल होने पर आएगा हल छद्मस्थ का

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में ऐसा कहते हैं कि छद्मस्थ को, केवली को और तीर्थंकर भगवान को, सात तत्त्वों का ज्ञान तो पूरा-पूरा है। फिर भी छद्मस्थ को शुद्ध ज्ञान है, तो उनके और केवली भगवान के शुद्ध ज्ञान में कितना अंतर है फिर?

दादाश्री : अंतर है न! उसे, छद्मस्थ अर्थात् उसकी क्रियाएँ केवलज्ञानमय नहीं हुई हैं, उसकी फाइलें हैं बहुत सी।

प्रश्नकर्ता : तत्त्व का दर्शन तो एक सरीखा हुआ है?

दादाश्री : तत्त्व का दर्शन भले ही हो।

प्रश्नकर्ता : जीवादि सात तत्त्वों को तो एक सरीखा जाना?

दादाश्री : हाँ, लेकिन जब तक सभी को चुकाने की इच्छा है तब तक कुछ भी नहीं हो सकता न! तब तक फिर छद्मस्थ दशा रहती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन छद्मस्थ का तो श्रुतज्ञान है न?

दादाश्री : हाँ, श्रुतज्ञान में हर्ज नहीं है। श्रुतज्ञान केवलज्ञान में ही परिणमित होता है।

प्रश्नकर्ता : दर्शन तो एक सरीखा ही हुआ न?

दादाश्री : हाँ, उसका वह अनुभव एक सरीखा होता है।

प्रश्नकर्ता : अनुभव एक सरीखा हो न, तो फिर आनंद एक सरीखा ही मिलेगा न?

दादाश्री : आनंद भी मिलता है लेकिन कुछ फाइलें हैं न, वे नहीं लेने देती जबकि केवलज्ञानी की फाइलें नहीं होतीं।

प्रश्नकर्ता : तो छद्मस्थ की फाइलें होती हैं न?

दादाश्री : बहुत फाइलें होती हैं।

प्रश्नकर्ता : तो हम सिर्फ छद्मस्थ स्थिति ही प्राप्त कर सकते हैं न? देह धारण करने से संपूर्ण निराकार स्थिति तो नहीं हो सकती न?

दादाश्री : नहीं, संपूर्ण कैसे हो पाएगा? फाइलों का *निकाल* हो जाए तो हल आएगा।

चारित्र मोह खत्म होने पर होता है केवलज्ञान

तीर्थंकरों ने डिस्चार्ज मोह को चारित्र मोह कहा है। केवलज्ञान हो जाए, तब मोह छूट चुके होते हैं, दोनों ही, दर्शन मोह और चारित्र मोह। महावीर स्वामी को केवलज्ञान होने तक चारित्र मोह था।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो फिर चारित्र मोह तो ठेठ तीर्थंकर हो जाने तक भी रहेगा ही न?

दादाश्री : ठेठ तक चारित्र मोह ही है। चारित्र मोह बंद हो जाए तब केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : चारित्र मोह खत्म होने के बाद, अंतर तप खत्म होने के बाद में केवलज्ञान होता है?

दादाश्री : उसके बाद केवलज्ञान होता है। तब तक उसे क्षीण मोह कहा जाता है। उसके कुछ समय बाद केवलज्ञान हो जाता है।

क्षीण मोह में भी चारित्र मोह रह जाता है। यों तो क्षीण मोह कहा जाता है बारहवें गुणस्थानक को, लेकिन अंदर चारित्र मोह रहता है। केवलज्ञान के बिना चारित्र मोह खत्म नहीं हो सकता।

जब तक चारित्र मोह है तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। चारित्र मोह खत्म होने पर केवलज्ञान होता है। यानी (चारित्र मोह) कुछ समय तक रहता है और उसके बाद मुक्ति हो जाती है।

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

लागणी – सुख-दु:ख का असर/भावुकता वाला प्रेम

पुद्‌गल – अहंकार

पूरण – चार्ज होना, भरना

गलन – डिस्चार्ज होना, खाली होना

निर्जरा – आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना

आश्रव – उदयकर्म में तन्मयाकार होना

शाता – सुख-परिणाम

अशाता – दु:ख-परिणाम

भजना – उस रूप होना

लक्ष – जागृति

ताग – सार

उपाधि – बाहर से आने वाला दु:ख, परेशानी

ऊपरी – बॉस, वरिष्ठ मालिक

घड़भांज – बनाना और खत्म करना

भोगवटा – सुख या दु:ख का असर, भुगतना

पोतापन – मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन

गुंठाणा – 48 मिनट, गुणस्थानक

आरा – कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा

संवर – कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना

नोंध – अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना

निकाल, निकाली – निपटारा

कढ़ापा-अजंपा – कुढ़न, क्लेश-अशांति

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
(मुख्य केन्द्र) पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	: 9810098564	**बेंगलूर**	: 9590979099
कोलकता	: 9830093230	**हैदराबाद**	: 9885058771
चेन्नई	: 7200740000	**पूणे**	: 7218473468
जयपुर	: 8890357990	**जलंधर**	: 9814063043
भोपाल	: 6354602399	**चंडीगढ़**	: 9780732237
इन्दौर	: 6354602400	**कानपुर**	: 9452525981
रायपुर	: 9329644433	**सांगली**	: 9423870798
पटना	: 7352723132	**भुवनेश्वर**	: 8763073111
अमरावती	: 9422915064	**वाराणसी**	: 9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 795-92-DADA (3232)

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 402179706

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 91457800

www.dadabhagwan.org

आप्तवाणी, मेरा ही आत्मा!

आप्तवाणी को व्यवहार से खुद का आत्मा मानना। अंदर गहराई में उतरोगे तो इस आप्तवाणी में अज्ञान की शुरुआत से लेकर केवलज्ञान तक की स्पष्टता है। यह जगत् बहुत गहन है और अपने यहाँ सबकुछ स्पष्ट हो चुका है। जगत् कैसे चलता है, आपको कितना करना है और कितना नहीं करना है, चार्ज कितना होता है, डिस्चार्ज कितना होता है, चार्ज कैसे रुक सकता है, संसार शुरू कैसे होता है, मुक्ति कैसे होती है, यह सभी कुछ लिखा हुआ है। हर एक चीज़ आ गई है इसमें। फिर... मूल आत्मा कैसा है, ऐसा सब लिखा हुआ है, इस सादी-सरल गुजराती भाषा में। इसमें पारिभाषिक शब्द नहीं हैं, एक्ज़ेक्ट भाषा में है और कल्याणकारी है। इसमें पूरा ही मार्ग बता दिया है। कुछ बाकी नहीं रखा। पूरे जगत् के कल्याण के लिए है यह!

- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org

Printed in India

Price ₹250